विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र

भाग ६६ | सम्वत् २००४, अक्टूबर १९४७ | संख्या १

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

थोर्नहिल रोड, इलाहाबाद।

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्की इस उद्देश्यसे स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्की कार्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नकशेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकमदे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

परिषद्का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगी जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

विषय-सूची

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ६६ | सम्वत् २००४, अक्टूबर, १९४७ | संख्या १

मिट्टी द्वारा नाइट्रोजन निग्रहण तथा भूमि में नाइट्रोजन की उत्पत्ति

मूल लेखक :—डाक्टर नील रत्नधर अनुवादक :—श्री रमेशचन्द्र कपूर, एम० एस० सी०

(गतांक से आगे)

जीवाणु रहित अवस्था में कार्बोहाइड्रेट द्वारा नाइट्रोजन निग्रहण

हमने जीवाणु रहित अवस्था में भी भिन्न-भिन्न शक्ति-पदार्थों के प्रयोग से नाइट्रोजन का निग्रहण प्रमाणित किया है। न केवल मिट्टी ही वरन् अन्य पदार्थ जैसे ZnO, Fe_2O_3, Al_2O_3, MnO_2, CuO, CoO के तलों पर भी प्रयोग किये गये थे।

साधारण अवस्था में विभिन्न आक्साइडों के प्रयोग करने से निम्नलिखित फल प्राप्त हुये।

प्रतिग्राम कार्बन के आक्सीकरण से नाइट्रोजन निग्रहण

	प्रकाश में	अँधेरे में
MnO_2	३०·५८ मिलीग्राम	१५·६१ मिलीग्राम
CuO	३०·२३ ”	१७·९७ ”
CoO	३७·६६ ”	२१·३१ ”
Ni_2O_3	४६·७ ”	२४·१६ ”

जीवाणुरहित अवस्था में निम्नलिखित फल प्राप्त हुये।

प्रति ग्राम कार्बन के आक्सीकरण से नाइट्रोजन निग्रहण

	प्रकाश में	अँधेरे में
ZnO	१५·१२ मिलीग्राम	८·०६ मिलीग्राम
Al_2O_3	१४·३३ ”	८·८७ ”
Fe_2O_3	१८·७६ ”	१०·८४ ”
Ni_2O_3	१८·४९ ”	१०·५७ ”
CoO	१६·६६ ”	१०·४३ ”
MnO_2	१४·२१ ”	८·८७ ”

जीवाणु रहित अवस्था के फ्लास्कों में रुई की डाट लगाई गई थी और साधारण अवस्था के प्रयोग तश्तरियों में किये गये थे। इसके पश्चात् दोनों प्रकार के प्रयोग फ्लास्कों में रुई लगा कर किये गये जिससे कि दोनों एक ही अवस्था में रहें। साधारण अवस्था के फ्लास्कों से रुई की डाट समय-समय पर हटा ली

जाती थी। जिससे उनमें जीवाणुओं का प्रवेश हो सके। अँधेरे में रखे जाने वाले फ्लास्क भी पास में काले कपड़े से ढके हुये रक्खे रहते थे। प्रयोगों के फल निम्नलिखित हैं।

(१) साधारण अवस्था के फ्लास्क

प्रति ग्राम कार्बन आक्सीकरण से नाइट्रोजन निग्रहण

प्रदर्शन के दिन	प्रकाश में	अँधेरे में
०	—	—
२५	१३·०५ मिलीग्राम	६·२० मिलीग्राम
४५	१२·७२ ”	५.९२ ”
६४	१२·२० ”	५·६६ ”
८५	११·५५ ”	५·४५ ”
(२) जीवाणु रहित अवस्था के फ्लास्क		
०	० मिलीग्राम	० मिलीग्राम
६०	११·२० ”	४·८५ ”
९०	१०·२५ ”	४·७२ ”
१२०	१०·७२ ”	४·६० ”
१३५	१०·५५ ”	४·५५ ”

V_2O_5 को बहुत सूक्ष्म रूप में मिट्टी तथा अन्य पदार्थों के साथ मिला कर निग्रहण के प्रयोग किये गये। इसके मिला देने से यद्यपि कार्बन के आक्सीकरण की गति में अधिक अन्तर नहीं आया परन्तु नाइट्रोजन निग्रहण की मात्रा प्रकाश तथा अँधेरे में कुछ बढ़ गई।

इन सब अन्वेषणों में जीवाणु रहित अवस्था में यद्यपि कार्बन के आक्सीकरण की गति कुछ घट गई परन्तु प्रति ग्राम कार्बन आक्सीकरण से नाइट्रोजन निग्रहण प्रायः बराबर ही रहा। साधारण अवस्था में कार्बन आक्सीकरण सतह पर (Surface reaction) तथा जीवाणुओं द्वारा होता है। परन्तु जीवाणु रहित अवस्था में केवल सतह पर (Surface reaction) ही होता है। परन्तु प्रतिग्राम कार्बन के आक्सीकरण से नाइट्रोजन निग्रहण की मात्रा दोनों में बराबर रहती है। तत्पश्चात् हम यह मानने के बाध्य हो जाते हैं कि नाइट्रोजन निग्रहण साधारण अवस्था की भाँति जीवाणु रहित अवस्था में भी होता रहता है। गति अवश्य कुछ धीमी पड़ जाती है।

इन प्रयोगों से यह भी सिद्ध होता है कि मिट्टी के स्थान पर विभिन्न वस्तुओं की आक्साइड भी काम में लाई जा सकती है। इनमें नाइट्रोजन न रहने से निग्रहण की मात्रा मिट्टी से अधिक होती है। यहाँ पर भी मिट्टी की भाँति प्रकाश से निग्रहण बढ़ जाता है। अब तो यह प्रतीत होता है कि नाइट्रोजन निग्रहण में न तो जीवाणुओं की और न मिट्टी की आवश्यकता है। बस कोई भी आक्साइड सतह (Surface) के रूप में प्रयोग की जा सकती है। इस सतह (Surface) पर नाइट्रोजन तथा आक्सीजन के अपशोषित (Adsorb) होती है और पदार्थ के कार्बन आक्सीकरण द्वारा निकली हुई शक्ति इन दोनों का योग करती है। प्रकाश द्वारा निकली हुई शक्ति इस प्रकार के निग्रहण में सहायक होती है। इसलिये इस निग्रहण को हम प्रकाश रासायनिक (Photo Chemical) कह सकते हैं।

प्रोटीन, अमीनो एसिड तथा अमोनियम लवणों के रूप में निग्रह की हुई नाइट्रोजन अधिक दिवस तक इन अवस्थाओं में नहीं रहती। पहले वह आमोनिकल रूप में बदलती है। उसके पश्चात् आक्सीकरण के द्वारा नाइट्रिक रूप में परिणित होती है। अमोनिकल से नाइट्रिक रूप में परिणित होने के बीच में अमोनियम नाइट्राइट नामक बहुत शीघ्र टूटने वाला पदार्थ बनता है। इसके टूटने से बहुत सी नाइट्रोजन उड़ जाती है। इस प्रकार के आक्सीकरण से सदा कुछ नाइट्रोजन का ह्रास होता रहता है और निग्रहण की मात्रा में कमी आ जाती है। ऐसे पदार्थों के साथ जहाँ मिट्टी के विपरीत नाइट्रोजन की मात्रा शुरू में नहीं होती, इस प्रकार के ह्रास की समस्या कम होती है और वहाँ प्रति ग्राम कार्बन आक्सीकरण से अधिक नाइट्रोजन निग्रहित होती है।

नाइट्रोजन निग्रहण का स्वरूप

प्रायः यह विचार किया जाता है कि वायुमय तथा वायुरहित दोनों ही अवस्थाओं में नाइट्रोजन निग्रहण से प्रथम उत्पत्ति अमोनिया की होती है, क्योंकि वह सदा निग्रहण के समय पाई जाती है। ग्लूकोज वायुरहित अवस्था में पायरूविक एसिड और हाइड्रोजन में परिणित हो जाती है।

$$C_6H_{12}O_6 = 2CH_3CO\,COOH + 2H_2 + \text{१२ कैलोरी}$$
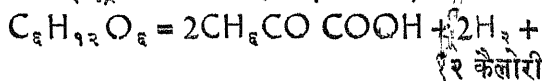
मिट्टी की सतह की नाइट्रोजन इसी हाइड्रोजन से मिल कर अमोनिया के रूप में परिणित हो जाती है।

$$N_2 + 3H_2 = 2NH_3 + \text{२४ कैलोरी}$$
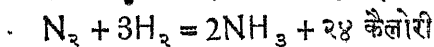
परन्तु आक्सीजन के होते हुए यह विचार करना कठिन है कि अमोनिया पहले बनती होगी क्योंकि आक्सीजन के साथ ग्लूकोज कई प्रकार से आक्सीकरण करता है जिसमें निम्न लिखित सबसे मुख्य है।

$$C_6H_{12}O_6 + 6O_2 = 6CO_2 + 6H_2O + \text{६७६ कैलोरी}$$
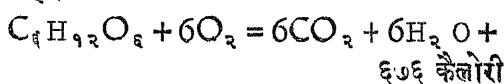
इस प्रकार से शीरा तथा अन्य शक्ति पदार्थ मिलाने से मिट्टी की सतह पर बहुत-सी शक्ति का उत्पादन कार्बन के आक्सीकरण द्वारा होता है जो नाइट्रोजन निग्रहण का कारण बनती है।

भूमि में सूक्ष्म मात्रा में अन्य धातुओं की आक्साइड रहती हैं जैसे लोहा, मेंगनीज, टाइटेनियम इत्यादि यह कार्बन के आक्सीकरण के लिये अत्यंत उत्तम उत्प्रेरक सिद्ध होती हैं। जीवाणु तथा प्रकाश इत्यादि भी आक्सीकरण में सहायक होते हैं।

निग्रहण द्वारा अमोनिया बनने के लिके हाइड्रोजन की आवश्यकता होती है जो कि निम्नलिखित प्रकार प्राप्त हो सकती है।

$$H_2O = H + OH - \text{११२ कैलोरी}$$
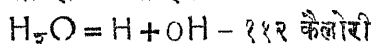
यदि निग्रहण में नाइट्रोजन तथा आक्सीजन सीधे मिलें तो निम्नलिखित प्रकार से योग हो सकता है।

$$N_2 + O_2 = 2NO - \text{४३·२ कैलोरी}$$

इसमें हमें ज्ञात होता है कि दूसरे योग में कम कैलरियों की आवश्यकता होती है इसलिये इस प्रकार का योग सरलता पूर्वक होता है। भूमि में सूक्ष्म रूप में मिली हुई अन्य आक्साइड भी नाइट्रिक आक्साइड के बनाने में सहायक होती है। नाइट्रिक आक्साइड सरलता से नाइट्राइट तथा नाइट्रेट में परिणित हो जाती है।

भूमि में काष्ठिक तथा नाइट्रेट टाइटेनियम द्वारा अमीनो एसिड में परिणित हो जाते हैं। पौधों में भी कार्बोहाइड्रेट तथा नाइट्रेट मिल कर अमीनो एसिड, प्रोटीन तथा अमोनियम साल्ट बनाती है। खाद के रूप में जो शक्ति-पदार्थ मिट्टी में डाले जाते हैं वह भी इसी प्रकार यौगिक होते हैं। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रकाश द्वारा नाइट्रोजन निग्रहण में पहले नाइट्रेट बनता है और फिर वह भिन्न प्रकार की वस्तुयों के संयोग द्वारा अमीनोएसिड प्रोटीन इत्यादि बनाता है। इसके विपरीत नाइट्रोजन जीवाणुओं (azotobacter) द्वारा निग्रह की हुई नाइट्रोजन में अमीनो एसिड का प्रमाण मिलता है।

इन सब संयोगों में प्रति ग्राम कार्बन के आक्सीकरण से नाइट्रोजन निग्रहण की मात्रा बहुत कम होती हैं। इस प्रकार शक्ति-पदार्थों द्वारा दी हुई शक्ति ऐसे बहुत कम उपयोग होती है। प्रकाश द्वारा प्राप्त हुई शक्ति में भी बहुत सूक्ष्म मात्रा में उपयोगित होती है।

काष्ठिक पदार्थों द्वारा नाट्रोजन निग्रहण

वाकसमैन के लेखों से प्रतीत होता है कि काष्ठिक पदार्थों द्वारा मिट्टी में नाइट्रोजन निग्रहण का ठीक प्रमाण नहीं मिलता परन्तु हमारी रसायनशाला के अनुसंधानों से कुछ और ही प्रतीत होता है।

यहाँ पर फिल्टर पेपर, गोबर, नीम की पत्तियाँ, फूस तथा अन्य काष्ठिक पदार्थों को मिट्टी के साथ मिलाकर तथा क्यारियों में अनुसंधान किये गये। यह अनुसंधान जीवाणु रहित अवस्था में भी किये गये। निम्नलिखित फल मिट्टी के साथ नीम की पत्तियाँ मिला कर साधारण अवस्था में प्राप्त हुए हैं।

१०० ग्राम मिट्टी + ४ ग्राम सूखी नीम की पत्तियाँ

(अ) प्रकाश में प्रदर्शित

प्रदर्शन घंटों में	कुल कार्बन की प्रतिशत	कुल नाइट्रोजन की प्रतिशत	प्रति ग्राम कार्बन आक्सीकरण से नाइट्रोजन निग्रहण (मिलीग्राम में)	अजटोबेक्टर प्रतिग्राम मिट्टी में (लाख में)	कुल जीवाणु प्रतिग्राम मिट्टी में (लाख में)	फंगाई प्रतिग्राम मिट्टी में
०	१·६८२६	०·०८०२	—	५६	२४०	२५०००
१५०	१·२६००	०·०८७६	१८·८४	१६५	४००	१८०००
३००	१·१७५५	०.०८८७	१८·७३	३[illegible]०	५६३	२४०००
४५०	१·०७८४	०·०६१५	१८·७०	५४८	७८[illegible]	२६०००
६००	१·०६५४	०·०६१८	१८·७६	६७०	६२०	२३०००
८००	०·६५०४	०·०६१४	—	६००	८४०	२००००
१०००	०·६१०८	०·०६००	—	५४३	८०१	१८०००
१२५०	०·८८७४	०·०८६२	—	४१५	६७२	१४०००

(ब) काले कपड़े से ढका

प्रदर्शन घंटों में	कुल कार्बन	कुल नाइट्रोजन की प्रतिशत	प्रति ग्राम कार्बन आक्सीकरण से नाइट्रोजन निग्रहण (मिलीग्राम में)	अजटोबेक्टर प्रतिग्राम मिट्टी में (लाख में)	कुल जीवाणु प्रतिग्राम मिट्टी में (लाख में)	फंगाई प्रतिग्राम मिट्टी में
०	१·६६३०	०·०८००	—	५०	२५०	१[illegible]०००
१५०	१·३५२५	०·०८२८	८·७३	२५०	६२८	२००००
३००	१·२५४६	०·०८३६	८·८२	१८०४	२१००	२५०००
४५०	१·१३१६	०·०८४७	८·८४	२२००	२६८४	३२०००
६००	१·००२३	०·०८५८	८·७७	२५४०	३८६५	३२०००
८००	०·६८२१	०·०८५५	—	२५००	३८००	३००००
१०००	०·६६५१	०·०८५३	—	२४७८	३७५०	२६०००
१२५०	०·०३०५	०·०८४१	—	२१२०	३५००	२१०००

इन फलों से यह प्रमाणित होता है कि कार्बोहाइड्रेट की भाँति काष्ठिक पदार्थों के आक्सीकरण से भी नाइट्रोजन निगृहण होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि काष्ठिक पदार्थों के आक्सीकरण की गति कुछ धीमी होती है इसलिये इसका प्रभाव जल्दी नहीं मालूम पड़ता परन्तु भूमि में इसका प्रभाव कई वर्षों तक रहता है। जीवाणु यद्यपि इसमें भी अँधेरे ही में अधिक रहते हैं परन्तु निगृहण प्रकाश ही में अधिक रहता है।

जीवाणु रहित अवस्था में भी इसी प्रकार के प्रयोग किये गये। उनमें भी इसी प्रकार के काष्ठिक पदार्थों का उपयोग किया गया। बहुतों में उत्प्रेरकों (Catalysts) का भी प्रयोग किया गया। निम्नलिखित फल गोबर के साथ प्रयोग करने से प्राप्त किये हैं।

(अ) प्रकाश में प्रदर्शित (जीवाणु)

प्रति ग्राम कार्बन आक्सीकरण से नाइट्रोजन निगृहण

शक्ति पदार्थ

(१) मिट्टी + गोबर + TiO_2 + पानी	९·९३
(२) मिट्टी + गोबर + V_2O_5 + पानी	९·३५
(३) मिट्टी + गोबर + पानी	८·५६
(ब) अँधेरे में (जीवाणु रहित)	
(१) मिट्टी + गोबर + TiO_2 + पानी	४·८६
(२) मिट्टी + गोबर + V_2O_5 + पानी	४·६१
(३) मिट्टी + गोबर + पानी	३·७२

इसी प्रकार के फल नीम की पत्तियाँ तथा फिल्टर पेपर से भी प्राप्त हुई। उनमें कार्बन के आक्सीकरण की गति धीमी अवश्य पड़ गई परन्तु प्रति ग्राम कार्बन आक्सीकरण से नाइट्रोजन निगृहण पर बहुत कम अन्तर हुआ। इनसे यह प्रमाणित होता है कि साधारण तथा जीवाणु रहित अवस्था में नाइट्रोजन निगृहण का रूप एक सा है। इन फलों से यह भी प्रमाणित होता है कि गोबर, पत्तियाँ पौदों के तने तथा जड़ें तथा अन्य काष्ठिक पदार्थ जो कि मिट्टी में खाद के रूप में डाले जाते हैं, न केवल मिट्टी के कार्बन और नाइट्रोजन को बढ़ाते हैं, वरन् स्वयं नाट्रोजन निगृहण करते हैं। इसमें प्रकाश भी सहायक होता है। इनसे हमें इस बात का भी उत्तर मिलता है कि भारतीय तथा अन्य उष्ण प्रदेशों की भूमि में प्रतिवर्ष फसल उगाने के पश्चात् भी बिना खाद डाले नाइट्रोजन में कोई कमी नहीं आती। भूमि में नाइट्रोजन की कमी को विभिन्न काष्ठिक पदार्थ, जो फसल काटने के पश्चात् मिट्टी में पड़े रहते हैं, प्रकाश की सहायता से नाइट्रोजन निगृहण द्वारा पूरी करते हैं।

अमेरिका के कई स्थानों के अन्वेषणों से भी काष्ठिक पदार्थ द्वारा नाइट्रोजन निगृहण का प्रमाण मिलता है।

चर्बी द्वारा नाइट्रोजन निग्रहण

हमारी रासायन शाला में मक्खन तथा घी भी शक्ति-पदार्थ की भाँति प्रयोग किये गये हैं। इनके आक्सीकरण की गति कार्बोहाइड्रेट तथा काष्ठिक से भी कम होती है।

एक किलोग्राम मिट्टी के साथ २० ग्राम मक्खन मिलाने पर प्रकाश में प्रति ग्राम कार्बन आक्सीकरण से १·०७ मिली ग्राम नाइट्रोजन निगृहित हुई और अँधेरे में ४·२२ मिली ग्राम। प्रकाश में नाइट्रोजन जीवाणुओं की संख्या ३५० लाख प्रति ग्राम मिट्टी में थी और अँधेरे में ६०० लाख। इसी प्रकार के फल घी के क्यारियों में प्रयोग करने से प्राप्त हुये। जीवाणु रहित अवस्था में मक्खन के प्रयोग करने से कार्बन के आक्सीकरण की गति अति मन्द पड़ गई और बिल्कुल सूखी अवस्था में आक्सीकरण बिल्कुल रुक गया। इनके आक्सीकरण में नमी की अत्यन्त आवश्यकता रहती है।

इससे भी यही प्रमाणित होता है कि चर्बी भी नाइट्रोजन निगृहण कर सकती है। इसमें भी प्रकाश में अँधेरे से अधिक निगृहण होता है यद्यपि जीवाणु अँधेरे ही में अधिक होते हैं।

भूमि में नाट्रोजन की उत्पत्ति

यह पहले ही बताया जा चुका है कि गोबर की

उपयोगिता केवल मिट्टी को अपनी नाइट्रोजन देने में ही नहीं समाप्त हो जाती परन्तु वह स्वयं नाइट्रोजन निगृहण करता है। रथिमस्टेड में किये हुये प्रयोगों के देखने से यह बात और भी स्थापित हो जाती है।

सन् १९१४ में कुल नाइट्रोजन

(१) सन १८४· से बिना खाद के ०·०९५ प्रतिशत
(२) सन् १८५२ से गोबर पाती हुई ०·२५६ ,,
(३) केवल कृत्रिम खाद पर ०·०९० ,,
(अमोनियम सल्फेट आदि)

इसी प्रकार हमने देखा कि शीरा, कार्बोहाईड्रेट शकर, पत्तियाँ, घी, मक्खन तथा अन्य काष्ठिक पदार्थ भी नाइट्रोजन निग्रहण करते हैं। न केवल मिट्टी वरन् अन्य आक्साइड जैसे जस्ता, ताँबा, लोहा, कोबल्ट, अल्यूमिनियम, मेंगनीज आदि की आक्साइड पर भी शक्ति-पदार्थ डालने से भी नाइट्रोजन निग्रहण होता है।

रसेल के आधार पर हम जानते हैं कि एक खेत, कि जिस पर केवल घास लगी थी, की नाइट्रोजन सन् १८५६ में ०·१५२% से सन १९१२ में ०·३३८% हो गई। इसी प्रकार एक भूमि का अंश हरी खेती से २४ वर्ष ढका रहने के कारण अपने नाइट्रोजन प्रतिशत को ०·१०८ से ०·१४५ बढ़ा सका।

उपरोक्त वृत्तांत से यह प्रमाणित है कि कार्बन पदार्थ नाइट्रोजन निग्रहण द्वारा नाइट्रोजन जमा करने में सहायक होते हैं। हमारे प्रयोगों से यह भी सिद्ध होता है कि खाद के रूप में अमोनियम सल्फेट डालने से जो नाइट्रोजन अनिग्रहण होता है वह कार्बन पदार्थों के डालने से रुक जाता है।

हमें यह भी विदित है कि जीवाणु रहित अवस्था में भी मिट्टी में नाइट्रोजन निग्रहित होता है और प्रति ग्राम कार्बन आक्सीकरण से नाइट्रोजन निगृहण की मात्रा साधारण अवस्था के बराबर रहती है। अन्य धातुओं की आक्साइडों के साथ भी नाइट्रोजन निगृहण प्रमाणित होता है। इन सब से यह तत्व निकलता है कि भूमि की सतह पर कार्बन आक्सीकरण द्वारा निकली शक्ति से और प्रकाश से नाइट्रोजन निगृहित होता है। भूमि को प्रधानतः नाइट्रोजन इसी प्रकार मिलती है कि लेग्यूमस् (legumes) द्वारा जैसा न कि शीतोष्ण प्रदेशों में विचार किया जाता है।

पुरातन काल की पथरीली भूमि, उपजाऊ भूमि में किस प्रकार परिणित हुई, इस रहस्य का पता हम इन अन्वेषणों द्वारा लगा सकते हैं।

भूगर्भ की पथरीली भूमि में कोई भी कार्बनिक पदार्थ नहीं रहता परन्तु उसमें नाइट्रेट तथा अमोनिकल नाइट्रोजन कुछ लघु मात्रा में रहते हैं। यह नाइट्रेट नमी और बीज के साथ, प्रकाश के प्रभाव से प्रथम प्रकार के पौदे उपजा सकते हैं। इन पौदों की नाइट्रोजन आवश्यकता को नाइट्रेट तथा अमोनिकल नमक पूरी कहते हैं। इसके पश्चात् प्रकाश जन्य संयोग से कार्बोहाइट्रेट तथा काष्ठिक की उत्पत्ति हुई। इनके आक्सीकरण से नाइट्रोजन निगृहण प्रारम्भ हुआ। इसमें प्रकाश भी सहायक हुआ इस प्रकार नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ने लगी। इनसे फिर पौदों की उपज में वृद्धि हुई और इसी प्रकार का चक्र चलने लगा और नाइट्रोजन मात्रा बढ़ने लगी। इसकी मात्रा के बढ़ने के साथ-साथ अमोनिकल से नाइट्रिक रूप में आक्सीकरण के बीच में नाइट्रोजन का उड़ना भी प्रारम्भ हो गया और निगृहण की मात्रा में कमी आने लगी। इस प्रकार भूमि में कार्बन तथा नाइट्रोजन की मात्रा एक ऊपरी सतह पर पहुँच गई। यह सतह स्थानों के जलवायु पर निर्भर थी।

भूमि की नाइट्रोजन में वृद्धि के उपाय

भारत तथा अन्य उष्ण प्रदेशों में नाइट्रोजन के अधिक आक्सीकरण के कारण उसकी हानि बढ़ जाती है। यदि भूमि को अधिक काल तक घास तथा अन्य छोटे हरे पौदों से ढका जाय तो उसकी नाइट्रोजन मात्रा में वृद्धि हो जाती है। परन्तु फिर खेती करने में मिट्टी खोदने तथा पलटने से उसकी नाइट्रोजन मात्रा फिर साधारण प्रतिशत पर घट कर आ जाती है।

इस उष्णता तथा अधिक प्रकाश से एक लाभ भी है। इससे प्राप्य नाइट्रोजन (अमोनिकल तथा नाइट्रोजन का योग) की मात्रा बढ़ जाती है। यद्यपि कुल नाइट्रोजन की मात्रा शीत प्रदेशों में अधिक होती है परन्तु प्राप्य नाइट्रोजन की मात्रा उष्ण प्रदेशों में कहीं अधिक होती है। भारत ऐसे प्रदेश में जहाँ कुल नाइट्रोजन ·०४% से ·०५% तक रहती है, प्राप्य नाइट्रोजन कुल की १०% से ३०% तक होती है। परन्तु शीतोष्ण प्रदेश में जहाँ कुल नाइट्रोजन ·१% से ·२% तक रहती है प्राप्य नाइट्रोजन कुल की केवल ५% होती है। इस प्रकार भारत में तो प्राप्य नाइट्रोजन की प्रतिशत ·००५ होती है परन्तु योरुप में केवल ·००१% है।

इस प्रकार पौदों की जड़ों को अधिक अमोनिकल तथा नाइट्रिक नाइट्रोजन मिलती है। इससे उनके उगने में समय भी कम लगता है। यहाँ पर शीरा, अन्य कार्बोहाइड्रेट, गोबर इत्यादि डालने से प्राप्य तथा कुल नाइट्रोजन में वृद्धि होती है।

शीतोष्ण प्रदेशों में प्राप्य नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाने के लिये मिट्टी को खोद कर अधिक समय तक प्रकाश तथा वायु प्राप्त कराना चाहिये।

थोड़ी नाइट्रोजन अमोनियम से नाइट्रिक में परिणित होने समय में उड़ अवश्य जायगी परन्तु उससे भूमि की उपज में अन्तर न पड़ेगा क्योंकि नाइट्रोजन की मात्रा यहाँ पर पहले ही अधिक है। शीतोष्ण प्रदेशों में कुछ अम्ल के गुण रहने से अमोनिया के रूप में नाइट्रोजन नहीं उड़ती अमोनियम सल्फेट आदि डालने से भी प्राप्य नाइट्रोजन बढ़ जायगी परन्तु उससे भूमि में अम्ल के गुण अधिक आ जाएँगे जो उपज के लिये हानिकारक सिद्ध होंगे। इन कारणों से उपज के योग्य नहीं रहे हैं, गोबर तथा अन्य कार्बनिक पदार्थों को डाल कर उपजाऊ बनाना चाहिये। लेग्यूम पौदों का असर अगली फसल तक नहीं रहता इससे वह अधिक लाभदायक सिद्ध नहीं होते। यदि नाइट्रोजन की मात्रा कम हो गई हो तो उसे कुछ वर्षों तक घास से ढके रहने देना चाहिये।

इन सब से यह तात्पर्य निकलता है कि नाइट्रोजन पदार्थों की हानि को रोकने के लिए कार्बनिक पदार्थ मिट्टी में डालना चाहिये। यह पदार्थ अमोनियम सल्फेट तथा नाइट्रेट की हानि को भी रोकते हैं। इस प्रकार कार्बनिक पदार्थ नाइट्रोजन निगृहण भी करते हैं तथा नाइट्रोजन की हानि भी रोकते हैं। जिस प्रकार कार्बोहाइड्रेट तथा चर्बी जीवों के शरीर से प्रोटीन की हानि रोकते हैं उसी प्रकार यह भूमि से नाइट्रोजन की हानि रोकते हैं उसी प्रकार यह भूमि से नाइट्रोजन की हानि को रोकते हैं। इन्हीं कारणों से अमोनियम सल्फेट तथा नाइट्रेट को गोबर तथा अन्य कार्बनिक पदार्थ के साथ मिला देने से अत्युत्तम खाद बन जाती है।

दूध और उसके रासायनिक गुण

[लेखक—श्री प्रह्लाद नारायण गुप्त, बी० एस० सी०]

मनुष्य को अपने शरीर को निरोग और सबल रखने के लिये प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, चर्बी, कैल्शियम फासफोरस, लोहा, विटामिन ए, विटामिन बी, विटामिन सी, विटामिन डी आदि की आवश्यकता होती है। यह सभी तत्त्व और यौगिक (पदार्थ) दूध में भिन्न-भिन्न मात्रा में उपस्थित हैं। बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री व पुरुष सबके लिये दूध परम उपयोगी है। दूध की विशेषता यह है कि जिन पदार्थों की मनुष्य को अपने शरीर की बनावट में और उसे स्वस्थ ठीक रखने में आवश्यकता होती है वह सब

दूध में एक साथ पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। केवल लोहा, विटामिन सी व डी की दूध में कुछ कमी होती है।

उत्तम प्रोटीन, कैल्शियम, फासफोरस और विटामिन ए का तो यह खजाना है। एक पाइंट (लगभग आधा सेर) दूध से एक साधारण मनुष्य की आवश्यकता का ⅕ प्रोटीन, ⅔ कैल्शियम और लगभग ⅓ रिबोफ्लेवीन (Riboflavin) होता है। पांच वर्ष के बच्चे को इतने ही दूध से अपनी आवश्यकता का ⅓ प्रोटीन लगभग ¾ कैल्शियम, ⅓ विटामिन 'ए' और 'बी' और ⅔ रिबोफ्लेवीन मिल जाता है।

विटामिन 'ए' दूध में 'कैरोटीन' (Carotene) की शक्ल में भी होता है। गाय का दूध कैरोटीन के ही कारण पीलापन लिये होता है। दूध में कैरोटीन और विटामिन ए की मात्रा गाय की नस्ल और उसके चारे पर निर्भर है। विटामिन बी० की मात्रा गाय के खाने पर बिलकुल निभर नहीं होती क्योंकि यह जब गाय जुगाली करती है तब कीटाणुओं (Bacteria) द्वारा बनाया जाता है। रिबोफ्लेवीन चरने वाली गायों के दूध में अधिक होता है।

रोशनी से दूध का विटामिन सी नष्ट हो जाता है। इसलिये दूध को रोशनी से जहाँ तक हो सके बचाकर रखना चाहिये। दूध में से हवा बिलकुल निकालदेने से भी विटामिन सी पर प्रकाश का कोई असर नहीं होता। इसका कारण यह है कि प्रकाश विटामिन सी को केवल ऑक्सीजन की उपस्थिति में ही नष्ट कर सकता है।

दूध में विटामिन डी की मात्रा ऋतुओं के साथ बदलती रहती है। इसका कारण यह है कि विटामिन डी गाय की खाल में धूप पड़ने से बनता है। गर्मियों में धूप अधिक तेज होती है। इसलिये इन दिनों दूध में विटामिन डी अधिक होता है। जो गाय अधिकतर धूप में नहीं रहती और चरने नहीं जाती उनके दूध में विटामिन डी कम होता है। धूप में देर तक रक्खे हुये खमीरे (Irradiated Yeast) को गाय के चारे में मिलाकर खिलाने से गाय के दूध में विटामिन डी की मात्रा बढ़ जाती है। दूध को धूप में रखने से भी विटामिन डी उसमें बढ़ाया जा सकता है परन्तु दूध को धूप में रखने से पहिले दूध में से सब हवा निकाल देनी चाहिये, नहीं तो दूध का विटामिन सी नष्ट हो जायगा।

प्रायः दूध रक्खा रक्खा खट्टा हो जाता है और गर्म करने पर फट जाता है। इसका कारण यह है कि दूध में कार्बोहाइड्रेट लैक्टोज (Lactose) की शक्ल में है। जब ताजा दूध कुछ देर रक्खा रहता है तो कीटाणु (Bacteria) धीरे धीरे लैक्टोज को दुग्धाम्ल (Lactic acid) में बदल देते हैं। यह Lactic acid दूध के प्रोटीन केसीन (Casein) को इकट्ठा कर के द्रव से अलग (Coagulete) कर देता है। दूध की चर्बी भी जमी हुई केसीन के साथ नीचे बैठ जाती है अर्थात् दूध खट्टा हो जाता है और उसका दही जम जाता है। दूध खट्टा तो दुग्धाम्ल के बनने से ही हो जाता है। अगर हम दही दूध में पहले से ही डाल देते हैं तो यह सब काम शीघ्रता से होता है और दही जल्दी बनता है।

यह कीटाणु जो दही बनाने में भाग लेते हैं दुग्धाम्ल कीटाणु (Lactic Acid Bacteria) कहलाते हैं। एक खास बात दूध के खट्टे होने में यह है कि दूध की मलाई पहले खट्टी होती है। इसका कारण केवल यह है कि जब मलाई बनती है तो चर्बी के तिलमिलों के साथ दूध के Lactic Acid Baeteria भी दूध की ऊपरी सतह पर मलाई में चले जाते हैं। ताजे दूध में यह कीटाणु बहुत अल्प संख्या में होते हैं। इनकी बढ़न दूध को ठंडा रखने से रोकी जा सकती है। अगर दूध केवल थोड़ा खट्टा हो तो केसीन का द्रव्य से अलग होना या दूध का फटना रोका जा सकता है। ऐसे दूध में थोड़ा कपड़े धोने का सोडा डाल दीजिये। सोडे से दुग्धाम्ल उदासीन हो जायगा और दूध गर्म करने पर न फटेगा।

दूध और दही से शरीर के पाचन करने वाले अंगों में दुग्धाम्ल बनने में सहायता मिलती

है क्योंकि इनमें दुग्धामल-कीटाणु मौजूद हैं। जब दुग्धाम्ल अधिक बनता है तो वह Putrefactive Bacteria की बढ़न को रोक देता है। इन कीटाणुओं की बढ़न रोकने में दही और खट्टा दूध अधिक प्रभावशाली होता है क्योंकि Lactic Acid Bacteria खट्टे दूध और दही में अधिक होते हैं। इसलिये दही और मट्ठा आंतों में गंदे कीटाणु नहीं पैदा होने देते और दही उन Intestinal Putrefaction के बीमारों के लिये बहुत लाभदायक होता है जो होते हैं।

कच्चे दूध में बहुत सी बीमारियों जैसे Scarlet fever, Typhoid आदि के कीटाणु आसानी से बढ़ जाते हैं। ठोस खानों में यह कीटाणु इतनी आसानी से नहीं फैल सकते हैं। कच्चे दूध में कुछ कीटाणु बर्तनों दूध दुहने वालों के हाथों और गाय के थनों से भी, आ सकते हैं। प्रायः गाय की बीमारी और निर्बलता के कारण भी दूध में कीटाणु होते हैं। ऐसी दशा में दूध को गर्म करके पीना या काम में लाना आवश्यक है।

अगर दूध ऐसे गर्म किया जाय कि वह एकदम उबलने लगे तो उसके गुणों में कोई अंतर नहीं पड़ता। इससे दुग्धामल कीटाणु मर जाते हैं। गर्म करने से और भी सब प्रकार के रोगों के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। परन्तु दूध गर्म करने से स्वाद में अंतर हो जाता है। यद्यपि गर्म किया दूध, कच्चे दूध की भाँति जल्दी खट्टा नहीं होता परन्तु यह थोड़े समय में दही बन जाता और अधिक समय तक रखने से दही सड़ जाता है।

दूध को Pasteurize करने से उसे देर तक रक्खा जा सकता है। इससे सब कीटाणु भी मर जाते हैं। Pasteurize करने में दूध एक विशेष प्रकार से गर्म किया जाता है और इस रासायनिक-प्रकिया द्वारा दूध के स्वाद में भी कोई विशेष अंतर नहीं होता।

दूध की इतनी महत्ता होते हुये भी हमारे देश में इस समय दूध की बहुत कमी है। दूध की उन्नति के लिये जगह-जगह डेरी व गोशालायें खुलनी चाहिये। उनमें दूध को वैज्ञानिक रीतिओं से स्वच्छ और पौष्टिकारक बनाने पर अन्वेषण कार्य भी होना चाहिये। दूध की उन्नति के साथ ही गायों और दूध देनेवाले मवेशियों का भी प्रश्न आ जाता है। उत्तम नस्ल के मवेशी ही उत्तम दूध दे सकते हैं। इसके लिये यह आवश्यक है कि जो चारा मवेशियों को खिलाया जाय उसमें वे पदार्थ उचित अनुपात में हों जो कि दूध में भी उन्हीं तत्वों का समावेश कर सकें जो कि मानव शरीर को पुष्ट तथा स्वस्थ बनाते हैं। जाति का जीवन और उसकी उन्नति जीवन्त और प्रौढ़ बाहुओं तथा मस्तिष्क पर निर्भर है और इसीलिये नवीन भारत के निर्माताओं को इस समस्या पर ध्यान देना चाहिये।

अर्द्ध प्रयुक्त अनुसन्धानों की करुण गाथा

[लेखक :—डाक्टर ओंकारनाथ पर्ती, सागर विश्वविद्यालय, सागर]

संसार में अनुसन्धानों के प्रयोग में आने की कहानी भी बड़ी करुण है। वैज्ञानिक क्षेत्र में अनेक अनुसन्धान होते रहते हैं। किन्तु इनमें से बहुत थोड़े ही जन साधारण के सामने आ पाते हैं। इसके कई कारण हैं। पहिला कारण तो यह है विज्ञान के क्षेत्र में इतनी उन्नति हो गई है कि एक मनुष्य केवल एक विशेष विभाग में ही अनुसन्धान कर सकता है और विज्ञान के दूसरे क्षेत्र में कार्य करने वालों को उसका पता तक नहीं चलता। कई बार ऐसा हो चुका है कि एक महत्वपूर्ण खोज विज्ञान के साहित्य में किसी कोने में दबी पड़ी रहती है और कितने ही वर्षों बाद मनुष्य उसका उपयोग कर पाते हैं।

सुल्फा (Sulfa) नामक यौगिकों का प्रयोग

दवाई के रूप में केवल दस गत वर्षों से हो रहा है। वास्तव में सुल्फा यौगिक सन् १९०८ में पाल गेल्को नामक एक पी० एच० डी० के विद्यार्थी ने बनाये थे। वह वियना इन्स्टीच्यूट आफ टेकनोलोजी में काम करता था। उसकी खोज के एक वर्ष उपरान्त जर्मन आई० जी० फार्बेन कम्पनी ने इन यौगिकों का यौगिक-रंग बनाने में प्रयोग किया। सन् १९१९ के वैज्ञानिक साहित्य में इसकी कीटाणु नाशक शक्ति का विवरण मिलता है। इसके बाद कुछ समय तक वैज्ञानिक इसे भूल सा गये और संसार इससे अपरिचित ही रहा। सन् १९३३ में आई० जी० फार्बेन कम्पनी ने प्रोंटोसिल नामक एक लाल रंग पेटेन्ट किया जिसमें सुल्फा यौगिकों का समावेश था। सन् १९३५ में डा० डोमाक (Domagk) ने सुल्फा यौगिकों की कीटाणु नाशक शक्ति की पुनः खोज की। डा० डोमाक के कार्य की ओर सर्वत्र वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित हुआ और फल स्वरूप सुल्फा नामक दवाइयों का चलन संसार में होने लगा। यह तो स्पष्ट है कि यदि सुल्फा यौगिकों की कीटाणु नाशक शक्ति का अध्ययन सन् १९०८ से ही किया जाता तो संसार को इन दवाइयों से लगभग तीस वर्ष तक वंचित न रहना पड़ता।

डी० डी० टी० की कहानी इससे भी अधिक करुण है। जाइडलर नामक एक जर्मन विद्यार्थी ने सन् १८७४ में इस यौगिक पर खोज की। उसकी खोज का संक्षिप्त विवरण रासायनिक साहित्य के एक कोने में पड़ा रहा। द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ होने के कुछ समय पूर्व स्विटजरलैण्ड के रसायनज्ञ म्यूलर (Muller) को कीटाणु नाशक यौगिकों की आवश्यकता थी। रासायनिक खोजों का विवरण पढ़ते-पढ़ते उसे डी० डी० टी० का हाल भी ज्ञात हुआ है। उसने इसकी कीटाणु नाशक शक्ति पर कुछ प्रयोग किये। उसे आशातीत सफलता हुई। संसार ६० वर्ष तक डी० डी० टी० से अनभिज्ञ रहा।

आपने कदाचित् १०८० का नाम सुना होगा। यह चूहों को मारने की सर्वोत्तम औषधि है जो हाल ही में प्रयोग में लाई गई है। द्वितीय महायुद्ध में इंगलैण्ड में इस यौगिक पर युद्ध सम्बन्धी कुछ प्रयोग हुये किन्तु कुछ सफलता न प्राप्त हुई। इसके उपरान्त अमरीका के फेडरल फिश और वाइल्ड-लाइफ सरविस ने इस यौगिक पर प्रयोग किये। शीघ्र यह ज्ञात हो गया कि चूहों को मारने के लिये इससे अच्छी कोई वस्तु नहीं है।

विज्ञान के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं। होता यह है कि रसायनज्ञ एक यौगिक बनाता है। उसका अध्ययन रासायनिक साहित्य में छप जाता है। रसायनज्ञ के कार्य की सीमा यहीं तक होती है। बहुधा उसमें इतनी योग्यता होती ही नहीं कि वह शारीरिक क्रिया पर उसके प्रभाव का अध्ययन कर सके अथवा उसकी कीटाणु नाशक शक्ति की परीक्षा कर सके। वर्ष बीत जाते हैं और उस यौगिक पर अनुसन्धान अपूर्ण ही रहते हैं। फिर एक समय एक डाक्टर या अन्य वैज्ञानिक जो शारीरिक क्रिया और कीटाणु से परिचित है इस यौगिक का शारीरिक क्रिया एवं कीटाणु नाशक प्रभाव का अध्ययन करता है। इस अध्ययन में यदि उसे कोई महत्वपूर्ण बात मिली तो वैज्ञानिकों का ध्यान उस यौगिक की ओर फिर आकर्षित होता है। अन्यथा वह वैज्ञानिक साहित्य के एक कोने में पड़ा रहता है।

वैज्ञानिक अनुसन्धानों में अब एक ऐसा समय आ गया है कि अलग-अलग व्यक्ति बहुधा कोई महत्वपूर्ण अनुसन्धान नहीं कर सकते। आवश्यकता इस बात की है कि विज्ञान के विविध विभागों के विशेषज्ञ मिल कर काम कर सकें। इससे अनुसन्धान अर्द्ध प्रयुक्त अवस्था में न रह पायेंगे और किसी भी महत्वपूर्ण खोज का लाभ संसार तुरन्त उठा सकेगा। वैज्ञानिक संसार में विशेषज्ञों के मिल कर काम करने की महत्ता अब सर्व मान्य हो चुकी है। अमरीका में एक प्रस्ताव है कि वाशिंगटन में

एक ऐसी संस्था बनाई जाय कि जिसमें कोई भी रसायनज्ञ अपने यौगिक परीक्षा के लिये भेज सकता है। इस विभाग में इन यौगिकों का शारीरिक क्रिया एवं कीटाणुओंपर प्रभावका अध्ययन किया जायेगा। यदि ऐसी संस्था बन गई तो इसमें सन्देह नहीं कि इससे बहुत लाभ होगा। नये यौगिकों की तो बात ही अलग है। रसायनिक साहित्य में अनेक यौगिक भरे पड़े हैं कि जिनका शारीरिक क्रिया और जीवाणु पर प्रभाव अध्ययन हुआ ही नहीं है। कौन जानता है कि इस अध्ययन में न जाने कितने उपयोगी पदार्थ मिल जाँय।

अर्द्ध प्रयुक्त अनुसन्धानों की वर्तमान अवस्था भी करुण है। लगभग दस वर्ष पूर्व संसार भर में ३३००० वैज्ञानिक पत्र थे। गत महायुद्ध के कारण कई पत्रों का प्रकाशन अवश्यमेव बन्द हो गया होगा। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अब उनकी संख्या पहिले से भी अधिक होगी। इन पत्रों में प्रकाशित वैज्ञानिक खोजों को एकत्र करने का कार्य सरल नहीं है। सच देखा जाय तो एक ऐसी संस्था नितान्त आवश्यक है कि जिसमें पुराने और नये सभी अनुसन्धानों का विवरण इकट्ठा किया जाय और इसे पूरा रूप में छापा जाय कि किसी भी वैज्ञानिक को उनका हाल जानने में कठिनाई न पड़े। ऐसा होने से विज्ञान के क्षेत्र का कोई भी कार्य-कर्त्ता किसी विषय के पूर्व अनुसन्धानों से वंचित न रहेगा।

ग्रेगर मंडल ने अपने प्रयोग आस्ट्रिया के छोटे से शहर ब्रून (Brunn) में किये थे। इन प्रयोगों का विवरण वहाँ के साहित्यक पत्रों में छपा था। किन्तु किसी को उसका पता न था। उनकी खोज के लगभग चालीस वर्ष बाद डी व्राइज के हाथ मंडल के प्रयोगों का विवरण लगा। संसार ने तब सर्व प्रथम मंडल वाद (Mendelian Theory) की महत्ता का अनुभव किया।

वैज्ञानिक प्रयोगों की महत्ता अनुमान सदैव तुरन्त ही नहीं ज्ञात होता। ऐसा भी होता है कि प्रयोग करने वाले को स्वयं उसकी महत्ता का ज्ञान न हो। सन् १८८३ में एडिसन ने अपने बनाये हुये बिजली के बल्व में कुछ अद्भुत प्रभाव देखे। एडीसन को उनकी महत्ता का ज्ञान न हुआ और न उसने उनका अध्ययन करने की चेष्टा की। फ्लेमिंग और डी फॉरेस्ट ने 'एडीसन प्रभाव'' (Edison Effect) का अध्ययन किया और फल स्वरूप संसार में इलेक्ट्रोनिक्स का (Electronics) आगमन हुआ।

दूसरे के प्रयोगों के विषय में अनभिज्ञ रहना अथवा अपने ही प्रयोगों की महत्ता का ज्ञान न होना करुण है। किन्तु उससे करुणतर है किसी भी प्रवीणता में मानव जाति की आदतों द्वारा रुकावट। यह रुकावटें केवल आदतों पर ही निर्भर है किन्तु इनके पीछे एक आर्थिक समस्या भी है।

पहले आदतों को लीजिये। हमारा कलेण्डर (ग्रेगेरियन) इतना पुराना हो गया है कि केवल अजायबघर में रखने योग्य है। महीनों के दिन एक से नहीं हैं किसी में २८ हैं तो किसी में ३१। इसकी क्या आवश्यकता है? माहवारी, हफ्तेवारी अथवा रोज की मजदूरी पाने वालों की मजदूरी में कितना भद्दा अनुपात है। यह सब सरलता से दूर हो सकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है किसी ढङ्ग के कलेण्डर का चलन गवर्नमेन्ट द्वारा किया जाय। वर्ष के समय और गति विधि का पूर्ण ज्ञान वर्तमान संसार को है फिर भी मानव जात अपनी आदत को नहीं बदलना चाहती।

यही हाल हमारी लिपि का भी है। देव नागरी लिपि में भी अनेक सुधार आवश्यक है। लिपि का यह रूप होना चाहिये कि सरलता से इसका टाइप राइटर बनाया जा सके और छापे खाने में देव नागरी लिपि में लेख शीघ्रता पूर्वक छापे जा सकें। एक ओर तो देव नागरी लिपि को राष्ट्र लिपि बनाने का प्रस्ताव है किन्तु दूसरी ओर उस लिपि को उत्तमतर बनाने के प्रयास की ओर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है।

हमारे तौल के माप को ही ले लीजिये। हमारे बाटों में कोई साधारण अनुपात नहीं है :—

८ चावल = १ रत्ती
८ रत्ती = १ माशा
१२ माशा = १ तोला
५ तोला = १ छटाँक
१६ छटाँक = १ सेर
४० सेर = १ मन

यही हाल दूरी नापने की मात्राओं का है—

१२ इञ्च = १ फुट
३ फीट = १ गज
१७६० गज = १ मील

क्या इन्हें उत्तमतर नहीं बनाया जा सकता है ? यह कार्य कोई कठिन नहीं है। वैज्ञानिक आज वर्षों से सेन्टीमीटर और ग्राम का प्रयोग कर रहे हैं। क्या भारतीय जनता इनका प्रयोग नहीं कर सकती ? यदि इनका प्रयोग सर्व साधारण हो जाय तो तोलने और दूरी नापने अथवा इनसे सम्बन्ध रखने वाली गणित में बड़ी सरलता हो जायेगी।

हमारी सरकार रुपये, आने, पाई के अनुपात के विषय में अवश्य विचार कर रही है। क्या उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह अन्य मात्राओं के विषय में भी कुछ सोचे ? यह सुधार तो कभी के हो जाने चाहिये थे किन्तु आज तक यह प्रत्यक्ष रूप में हमारे सामने नहीं आये है। वैज्ञानिक सर्वत्र परिष्कृत मात्राओं का प्रयोग कर रहे हैं और उससे लाभ उठा रहे हैं किन्तु जन-साधारण उनसे वंचित हैं। केवल इसीलिये कि वह अपनी विचार धारा में लेषमात्र भी परिवर्तन नहीं चाहते।

वास्तव में हर नवीन अविष्कार या खोज में उन मनुष्यों ने जो अपनी विचार धारा में परिवर्त्तन नहीं चाहते रुकावट डाली है।

राइट भाइयों (Wright Brothers) के पहली हवाई उड़ान सफलता पूर्वक हो जाने के छै महीने बाद भी एक सुप्रसिद्ध अमरीकी वैज्ञानिक ने यह सिद्ध किया कि संसार में हवाई जहाज सम्भव नहीं हैं।

स्टीवेन्स इन्स्टीट्यूट आफ टेक्नौलोजी के सभापति ने एडीसन के सर्व प्रथम बिजली के प्रयोगों का मज़ाक उड़ाया था।

जब कमोडर वान्डरबिल्ट (Commodore Vanderbilt) से वेस्टिंग हाउस के हवाई ब्रेक Air-Brake) की चर्चा की गई तो उन्होंने कहा कि "मूर्खों के लिये मेरे पास समय नहीं है।"

जब जर्मनी में सर्वप्रथम रेलगाड़ी बनी तो डाक्टरों ने कहा कि १५ मील की गति से चलने वाली इस गाड़ी में बैठने वालों के आँख और मुँह से खून निकलने लगेगा और उनकी मृत्यु हो जायेगी।

इस तरह की रुकावटें कभी-कभी इसलिये भी डाली जाती है कि नवीन अविष्कारों से व्यवसाइयों को आर्थिक हानि होती है। यदि हम अविष्कारों के प्रयोग में आने का इतिहास देखें तो हमें कितने ही ऐसे उदाहरण मिलेंगे। पूंजीवाद और मजदूर होने ने ही नवीन अविष्कारों का विरोध किया है।

इंगलैण्ड में जब सर्वप्रथम रेलें चलीं तो कोचवानों ने बड़े जोर से इसके विरुद्ध प्रचार किया। यही हाल मोटरों का रहा।

जब कभी किसी ऐसे यन्त्र का आविष्कार होता है कि जिसकी सहायता से एक मजदूर कई का काम कर सके तो मजदूर वर्ग उसके प्रयोग के विरुद्ध हो जाता है। यदि कोई ऐसा अविष्कार होता है कि जिसके प्रयोग से पूंजीवादों की खड़ी फैक्ट्रियाँ बेकार हो सकती हैं तो वह उसके विरुद्ध हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में नवीन अवष्कारों का प्रयोग में आना एक जटिल समस्या सी हो जाती है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि पूंजीवाद और मजदूर दोनों की ही हार होती है और नये अविष्कारों का चलन हो कर ही रहता है।

एक अमेरिकन वैज्ञानिक एस० सी० गिलफिन ने अविष्कारों के प्रयोग में आने के समय पर कुछ

आँकड़े एकत्रित किये हैं। उसकी गणनानुसार सन् १८८२ से १९१३ तक १९ मुख्य अविष्कार अथवा अनुसन्धान हुये हैं। उसने देखा कि इन अविष्कारों सम्बन्धी विचार वास्तव में १७६ वर्ष पूर्व पाये जाते हैं। संसार के सामने इन अविष्कारों आने में लगभग २४ वर्ष लगते हैं। व्यवसाय की दृष्टिकोण से लगभग १४ वर्ष और व्यतीत हो जाते हैं। जब कि यह पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त होने लगते हैं। इस अविष्कार को जन-साधारण तक पहुँचते-पहुँचते लगभग १२ वर्ष और लग जाते हैं।

हम लोग टेलीविजन (Television) का नाम इतने दिन से सुन रहे हैं किन्तु हमारे देश में तो वह बाजारों तक में नहीं दिखाई देता। अभी न जाने कितने वर्ष और लगेंगे जब कि टेलीविजन रेडियो के समान जन साधारण को उपलब्ध होगा।

हमारे मकानों में पुरातन से कोई नवीनतम नहीं आई है। आज से दो हजार वर्ष पहले के मकानों में और आज कल के मकानों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। क्या इस विषय में कोई अविष्कार नहीं किये जा सकते थे? वास्तव में बात यह है कि ग्राहक, मजदूर और पूंजीपत कोई भी नहीं चाहता कि मकान बनाने की रीति में विशेष परिवर्तन हों।

अभी हाल ही में स्टूडीबेकर (Studibkaer) कम्पनी ने एक नई मोटर बनाई थी। आज कल की मोटरों के नीची होने के कारण ड्राइवर पीछे की खिड़की से पीछे की ओर अच्छी तरह नहीं देख सकता। सन् १९४५ में स्टडी बेकर कम्पनी ने उपरोक्त माडल चलाया जिसमें मोटर की ऊँचाई आधुनिक मोटर की ऊँचाई से अधिक थी। मोटर वालों ने इस माडल के गुणों की ओर तो ध्यान नहीं दिया किन्तु इस माडल के रूप का खूब मजाक उड़ाया गया। फल स्वरूप कम्पनी को यह माडल हटाना पड़ा।

आवश्यकता इस बात की है कि जन साधारण नये अविष्कारों को सन्देह की दृष्टि से न देखें। अच्छी तरह से उसके गुणों की स्वयं परीक्षा करें केवल विज्ञापनों के भरोसे न रहें। इससे आविष्कार कर्त्ताओं को प्रोत्साहन मिलेगा और इस विषय की ओर उनका ध्यान अधिक होगा। पूंजीपतियों को भी नवीन आविष्कारों को उचित स्थान देने की चेष्टा करनी चाहिये। अन्तर्राष्ट्रीयता के इस युग में मजदूरों को नवीन अविष्कारों से चौंक न जाना चाहिये। उनको इस प्रगतिशील संसार की गति का भी ध्यान रखना उचित होगा। सरकार को भी नवीनतम अविष्कारों का उचित आदर करना चाहिये और कुछ ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि पूंजीपत अविष्कार कर्त्ताओं का गला घोंट न सकें।

सन् १२९९ में फ्लोरेंस के व्यापारियों ने जब यह देखा कि उनके कुछ साथी अरबी अंकों में हिसाब किताब करते हैं और ऐसा करने से अपना बहुत सा समय बचा लेते हैं तो उन्होंने जोड़ देकर वहाँ की सरकार से यह कानून बनवा लिया कि फ्लोरेंस में अरबी अंकों का प्रयोग करने वाले को सजा मिलेगी।

आधुनिकाल में भी ऐसा होने की सम्भावना है। यही अर्द्ध-प्रयुक्त अनुसन्धानों की करुण कहानी है।

सृष्टि की उत्पत्ति और जीवन विकास

(ले०—डा० सत्यप्रकाश)

सृष्टि शब्द का अर्थ रची हुई या बनाई हुई वस्तु से है। इसे जगत् भी कहते हैं, जिसकी भावना यह है कि जगत् परिवर्त्तनशील है—"जगत्यांजगत्"। इसका नाम ब्रह्माण्ड भी है। आपने केन्द्रस्थ समझ कर कल्पना की दौड़ में हम जहाँ तक भी दौड़ सकते हैं, हमें अण्डाकृतिक यह विश्व दिखाई देगा। विश्व शब्द की भावना भी 'सर्व' की भावना है। प्रत्यक्षगत सर्वजगत् का नाम जगत् है। यह जगत् ब्रह्म के समान ही पूर्ण है—पूर्णमिदं पूर्णमिदं, पूर्णाद् पूर्णाद् पूर्णमुदुच्यते। पूर्ण में ही यह

आविष्ट है—यह सब ईशावास्य है। समस्त ब्रह्माण्ड का विराट् स्वरूप पुरुष सूक्त—सहस्रशीर्षाः पुरुषः अथवा अनेक भाषाओं में यस्य भूमि। प्रमा सूर्य्यश्चक्षुः, यस्यवातः प्राणापानौं आदि में अभिव्यक्त है। यह बाह्य जगत् की सृष्टि है। पर इससे कुछ कम विलक्षण सृष्टि हमारे पिण्ड में भी स्थित है। शरीर भी एक ऐसी रचना है जिसकी विलक्षणता स्पष्ट है। शरीर से अभिप्राय मन आदि अन्तःकरण चतुष्टय से लेकर स्थूल शरीर तक सभी से है—आनन्दमय कोष से लेकर अन्नमय कोष तक। शरीर से तात्पर्य केवल मनुष्य के शरीर से ही नहीं प्रत्युत समस्त प्राणियों के शरीर से है। प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति यही समझने का प्रयत्न करता है कि बाह्य जगत् क्या है और यह अन्तर्जगत् के सम्बन्ध को सुलझाते उलझाते ही बीतता है। शैशव में जिस दिन पहली बार हमने अपने नेत्र खोले तभी से हमने बहिर्जगत् की अपेक्षा से अपने को और अपनी अपेक्षा से बहिर्जगत् को समझने का प्रयत्न किया। अपने श्वासों की अन्तिम घड़ियों तक भी हम यही समझते रह जायंगे।

सृष्टि की परिवर्त्तनशीलता को देख कर के और प्राणिमात्र में जन्म और मरण की व्यवस्था देख कर सब यही मानते हैं कि सृष्टि और जीवन दोनों का आरम्भ है, और इन दोनों का कोई उद्देश्य भी है। सृष्टि का आरम्भ कहाँ से होता है इसके सम्बन्ध में अनेक आचार्यों ने कल्पनायें प्रस्तुत कीं—

(१) शून्य से जगत् उत्पन्न हुआ—शून्यं तत्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य। (सांख्य १-४४)

(२) अभाव से भाव—अभावाद्भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्य प्रादुर्भावात्। (न्याय ४।१।१४)

(३) ईश्वर से—ईश्वरः कारणं पुरुष कर्माफल्य दर्शनात्। (न्याय ४।१।१९)

(४) अनिमित्त से—अनिमित्त मे भावोत्पत्तिः कण्टक तैक्ष्ण्यादि दर्शनात्। (न्याय ४।१।२२)

(५) किसी नित्य से नहीं—सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाश-धर्मकत्वात् [न्याय ४।१।२२]

[६] सृष्टि नित्य ही है—सर्वंनित्यं पञ्चभूत नित्यत्वात्। [न्याय ४।१।२९]

७—कोई चीज किसी से उत्पन्न नहीं—सभी पृथक्-पृथक् हैं—

सर्वं पृथग् भाव लक्षण पृथक् त्वात्

८—सब अभाव ही है अतः उत्पत्ति और नाश का प्रश्न ही क्यों?

सर्वमभावो भावेष्वितेर तराभाव सिद्धेः।

(न्याय ४।१।३७)

९—सब अपेक्षा से सृष्टि और विनाश है—

न स्वभावसिद्धिरापेक्षिकत्वात्। (न्याय ४।१।३९)

इसी प्रकार श्रुति वाक्य इस प्रकार भी हैं—

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा
भूतानि योनिः पुरुषइति चिन्त्या
संयोग एषां न त्वात्मभावादात्मा
प्यनीशाः सुख दुःख हे तोः।

इस स्थल पर काल स्वभाव, नियति, यदृच्छा, भूत, पुरुष आदि सृष्टि के कारक बताये गये हैं। हम आज यह मान कर चलेंगे कि सृष्टि का कारण—ईश्वर, जीव के अदृष्ट और उपासय प्रकृति तीनों हैं।

सृष्टि का आरम्भ कैसे हुआ यह कहना बड़ा कठिन है। स्वयं वेद इस सम्बन्ध में अनिर्वचनीयता स्वीकार करते हैं—नासदीय सूक्त (ऋ० १०।१२९) देखिये—

नासदा सीन्नो सदासीत् नासीद्रजो नो व्यामापरोयत्।
किमाकरीकः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम् ॥१
न मृत्युरासीदमृतं न र्तीह न रात्र्या अहः आसीत् प्रकेतः।
अनीद वातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किंचनम ॥२॥
तम आसीत् तम साग्मग्रे ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमाइदम्।
तुच्छ्येनाम्व विदितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥३॥
कामस्तदग्रे समवर्ततांधि मनसोरेतः प्रथमं यदासीत्।
सतोबन्धुमसीत निरविन्दन् हृदिप्रतीष्या कषयोमनीषा ॥४॥
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषधः स्विदासी दुपरिस्विदासीत्।
रेतोधाअसन् महिमाम असन् स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमेव्योमन् त्सो अंगवेदं यदिवान वेद ॥६॥

सृष्टि के सम्बन्ध में यदि वा दधे यदि वान, और 'सोअंगवेद यदि वानवेद' कहके स्वयं श्रुति वाक्य कौतूहल

के साथ-साथ असन्दिग्धता व्यक्त कर रहे हैं। सृष्टि के आरम्भ में न तो असद् था और न सद्-नरज यों कहिये कि सद्रज और असद् की साम्यावस्थ थी—सांख्य के शब्दों में सत्व, रज और तम तीनों की सामावस्था सी—क्या था यह कोई नहीं कह सकते जिस किसी की भी कल्पना करना हमारे लिये सम्भव है, निश्चयरूप से वह पदार्थ उस समय वहाँ न था। न उस समय वहाँ मृत्यु थी न अमृत था न दिन और रात्रि का भेद ही था। अपनी स्वधन से ही चेतन रहने वाला (प्रकृति से अनपेक्षित) कोई एक चीज अवश्य थी।

अब सृष्टि आरम्भ हुई समस्त विश्व में तम उत्पन्न हुआ, अप्रकेत सलिल हुआ, तप द्वारा उस स्वधन से चेतन सत्ता में मर्त्यलोक वाले जीवन विकास के पहले चिन्ह आरंभ हुये। काम उत्पन्न हुआ, रेत उत्पन्न हुआ और सृष्टि चल पड़ी। इव्यक्त सृष्टि व्यक्त हो गयी। सृष्टि के विकास का पूर्ण रहस्य जानना चाहते हैं, तो आप को निराश होना पड़ेगा। इस सृष्टि का जो अध्यक्ष है वह भी सन्देह है, कि पूर्णतः समझता है या नहीं।

ऋग्वेद के इसी मंडल के अघमर्षण सूक्त में तीन मन्त्रों में ही सृष्टि के विकास की सूक्ष्म आयोजना उपस्थित कर दी है। यह सूक्त तो हम लोगों का नैष्ठिक सूक्त है और इससे हम परिचित हैं। इसे पापमोचक माना जाता है। आरम्भ में ऋत और सत्य-सामान्य और विशेष नियम की आय व्यक्ति हुई। तपस् द्वारा फिर रात्रि आयी और फिर समुद्र और हर्णव, इनसे संवत्सर उत्पन्न हुआ, दिन और रात का भेद आरम्भ हुआ। सूर्य, चन्द्र, अन्तरिक्ष, दिव और पृथ्वी का क्रम पूर्व सृष्टियों के अनुसार इस सृष्टि में भी आरम्भ हुआ। यदि सृष्टि अपने क्रम की पहली नहीं है। सृष्टि और प्रलय का प्रवाह अनादि है।
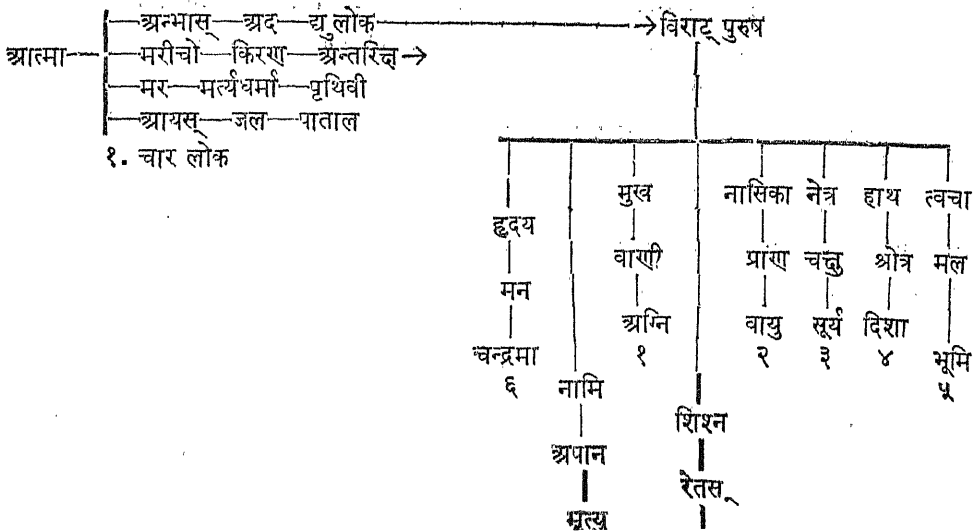
ऐतरेयो परिषद् में सृष्टि का विकास

ऐतरेयोपनिषद् में सृष्टि के विकास का एक सुन्दर चित्रण है।

आत्मा वा इदमेव एवाग्र आसीत्। नान्यत्किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥१॥ स इमांल्लोकानसृजत। अम्भोमरीचीमरमापः। अदोदमः परेण दिवं, द्यौः प्रतिष्ठा, अन्तरिक्षं मरीचयः पृथवी मरो, या अधस्तात्ता आपः ॥२॥ स ईक्षेतत्रे नुलोकाः लोकापालान्नु सृजा इति। सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृ त्यामूर्च्छयत् ॥३॥ तमभ्यतपत्तस्यामि तप्तस्य मुखं निरभिद्यत, यथाऽण्डं मुखाद्वागवाचोऽग्निः। नासिके निरभिद्येतां, नासिकाभ्यां प्राणः, प्राणाद्वायुः। अक्षिणी निरभिद्येतां, अक्षीभ्यां अक्षुश्चक्षुष आदित्यः। कर्णौनिरभिद्येतां, कर्णाभ्यां श्रोतं श्रोत्राद्दिशः। त्वङ् निरभिद्यत, त्वचोलोमानि, लोमभ्य ओषधि-वनस्पतयः हृदय निरभिद्यत, हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमाः। नाभिर्निरभिद्यतः नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः। शिश्नं निरभिद्यत, शिश्वाद्रेतो देहस आपः ॥४॥ प्रथम खंड ॥

इसमें रचना का क्रम इस प्रकार है—

इसके अनन्तर विधाता उर्वा देवताओं के लिये गाय लाया, और फिर अश्व लाया, पर उन्होंने यही कहा कि 'वैनोऽयमलमिति'—ताभ्यः पुरुषमानयत्—तब पुरुष की रचना हुई और वे सन्तुष्ट हुये। और देवता यथा स्थान प्रविष्ट हो गये। भूख और प्यास की रचना गाय और अश्व में पहले ही हो गयी थी।

तैत्तिरीय की ब्रह्मवल्ली में विकास का क्रम इस प्रकार वर्णन किया गया है—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधीभ्योऽन्नम्, अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः। सवा एषपुरुषोऽन्नरसमयः॥

इस प्रकार भौतिक जगत् की उत्पत्ति का क्रम आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथिवी-ओषधि-अन्न-रेतस्-पुरुष है। यह पुरुष अन्न रसमय है।

विकास का सबसे उत्तम क्रम सांख्य में वर्णित है—

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारः, अहंकारात्पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि पुरुषः इति पंचविंशतिगणः ॥१।६१॥

स्थूलात्पंचतन्मात्रस्य ॥६२॥

बाह्याभ्यन्तराभ्यांतैश्चाहंकारस्य ॥६३॥

तेनान्तःकरणस्य ॥६४॥

ततः प्रकृतेः ॥३५॥

संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य ॥६६॥

स्थूल भूतों से पंचतन्मात्राओं का अनुमान होता है, बाह्यागमन्तर इन्द्रियों से अहंकार का, और अहंकार से अन्तःकरण का, और उसमें मूल प्रकृति का। सत्व रज तम तीनों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। इससे व्यक्त जगत् की उत्पत्ति और इससे है शरीरस्थ पुरुष का विकास होता है। पुरुष की कल्पना संहतपरार्थ की दृष्टि से है। सांख्य का यह अभिप्रायः नहीं है कि अचेतन प्रकृति ही चेतन आत्मा का उपादान है। आत्मा के लिए समस्त शरीर का विकास होता है और इस शरीर के विकास का ढंग इस सूत्र में बताया गया है।

आधुनिक विकासवाद

प्रकृति से पुरुष तक विकास सांख्य की एक अमूल्य देन है। तैत्तिरीय उपनिषद् ने जिस विनोस का विवरण दिया है वह भी महत्व का है। आजकल ज्ञान के समस्त अंगों में विकास-वाद का अनुसरण किया जाता है— १. सौर मंडल का विकास, २. जीवन का विकास, ३. अपने शरीर का विकास, ४. रासायनिक द्रव्यों का विकास, ५. भाषा का विकास, ६. मनोभावों का विकास ७. आचार शास्त्र का विकास ८. समाज का विकास। हमें अब इस बात की आदत पड़ गयी है कि प्रत्येक विषय का विकास ढूँढा जाये।

कहा जाता है कि रोम देश में लुक्रेटियस नाम का एक दार्शनिक कवि था। उसने पृथ्वी पर वर्षा और धूप के प्रभाव में जीवन के आरम्भ के सम्बन्ध में एक कविता रची जिसमें विकासवाद की स्पष्ट झलक थी। बाद को जर्मन दार्शनिक काण्ट ने जीवन जगत् के विकास की आयोजना प्रस्तुत की। फ्रांस के एक दार्शनिक बफ्फन (Buffon) ने यह धारणा प्रस्तुत की कि ध्रुव प्रदेश के समुद्र में जीवन का आरम्भ हुआ मानों यह प्रदेश कोई क्षीर सागर हो, बाद को इरेसमस डार्विन ने विकासवाद की निश्चित आधार शिला रक्खी, उसकी विचार-धारा निम्न बातों पर अवलम्बित थी—

(१) टेडपोल से मेंढक बन जाना।

(२) घोड़ों, कुत्तों और भेड़ों में कृत्रिम रीतियों से नयी जातियों का बनाना।

(३) जलवायु और ऋतु के अनुसार शरीर के लक्षणों का विकास होना जैसे गरम जलवायु की भेड़ों में ऊन की जगह बाल होना उत्तरी प्रदेशों में खरगोशों और तीतरों में जाड़े में बालों का सफेद पड़ जाना।

[४] विभिन्न पेशे वाले व्यक्तियों में शरीर के कुछ अंगों का विभिन्नता से विकास होना और इनमें वर्ण संकरण उत्पन्न होना।

[५] उत्तरोत्तर श्रेणी के पशुओं में गुणों का क्रमशः विभिन्न होता जाना।

इतने विचार तो हेरमंस डार्विन ने दिये थे। बाद को उसी कुल के चार्ल्स डार्विन ने जिस विकासवाद को परिपुष्ट किया उससे उसका नाम अब तक सम्बन्धित है। लगभग सन् १७९४ के जर्मनी में कवि गेटे ने इगलैंड

में डा० डार्विन ने और फ्रांस में सेण्ट हिलेयर ने लगभग एक से ह विचारों का प्रदर्शन किया था। प्रकृति निरीक्षक लैमार्क का नाम भी इस सम्बन्ध में अमर रहेगा। इन आचार्यों के विवरणों में कितना ही अन्तर क्यों न हो, इतना तो निश्चय है, कि सब इसमें एक मत थे कि भिन्न-भिन्न योनि के पशुओं का प्रादुर्भाव होना प्रकृति में कोई आकस्मिक घटना न थी। निश्चित आयोजना के अनुसार ही एक योनि से दूसरी योनि के जीवों का विकास हुआ है।

लैमार्क का कहना है कि शरीर की आवश्यकता की दृष्टि से अंगों का विकास होता है। उसका कहना है कि जिराफ की बड़ी-बड़ी गर्दनों का विकास धीरे-धीरे हुआ क्योंकि ऊँचे स्थलों में उन्हें भोजन प्राप्त करना था। चौपाये बन्दरों से दुपाये बानर, और उससे केवल पैरों पर खड़े चलने वाले मनुष्यों का विकास हुआ। चींटी भक्षक प्राणी की लम्बी जिह्वा भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये थे।

दूसरी बात जो विकासवाद की दृष्टि से आवश्यक है वह जीवन संघर्ष का सिद्धान्त है। छोटी गर्दन वाले जिराफों की अपेक्षा लम्बी गर्दन वाले जिराफ ही भोजन सरलता से प्राप्त कर सकते थे, अतः छोटी गर्दन वाले जिराफ मिट गये। जीवन के संघर्ष में निर्बल का ह्रास और प्रबल की विजय होती है। निर्बल प्राणी लुप्त हो जाते हैं और प्रबल की सन्तति आगे चलती हैं। बली प्राणी दुर्बल को खा जाता है।

भग्नावशेषों से पुष्टि

पत्थरों के स्तरों के बीच में भिन्न-भिन्न प्रकार के भग्नावशेष पाये जाते हैं। इन अवशेषों में वनस्पतियों और प्राणियों के शरीर का चित्रण होता है। लेओनाडोंडा विन्सि १५७९ से पूर्व लोगों की धारणा थी कि ये अवशेष पहाड़ों पर ग्रहों और तारों के प्रभाव से बने हैं। इन अवशेषों को महत्व नहीं दिया जाता था। पर्वतों के भिन्न-भिन्न स्तरों में भिन्न प्रकार के अवशेषों का पाया जाना कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। विलियम स्मिथ ने यह देखा कि कुछ समान शिलास्तरों में जो अवशेष मिलते हैं वे भी कुछ अंशों में समान हैं। पृथ्वी के सभी स्तर तो एक साथ नहीं बने, भिन्न-भिन्न कालों में बने, और उस समय प्राणियों और वनस्पतियों की जो अवस्था थी, उसकी एक झाँकी हमें इन अवशेषों से मिल जाती है। इन अवशेषों का अध्ययन करना, और इतिहास के अनुसार उनका वर्गीकरण करना आजकल एक स्वतन्त्र शास्त्र हो गया है। अवशेषों के आधार पर चट्टानों की आयु और चट्टानों के आधार पर नये अवशेषों का अनुमान लगाना अब बहुत कुछ सरल हो गया है। यह शास्त्र अब इतना प्रशस्त हो गया है कि जिस प्रकार हम परीक्षणों से निश्चय रूप से यह कह देते हैं कि अमुक ओषधि या रस में अमुक-अमुक रासायनिक पदार्थ हैं, उसी प्रकार अब निश्चय पूर्वक इन अवशेषों और शिलाओं की आयु भी बता सकते हैं।

भौगर्भिक चट्टानों की अधिकतम मोटाई ५२९००० (पाँच लाख २९ हज़ार फुट अर्थात् १०० मील से कुछ अधिक मिली है। ग्रेट ब्रिटेन में ३००० वर्षों में शिला १ फुट अधिक मोटी हो जाती है, दक्षिणी अमरीका में ६००० वर्षों में १ फुट चट्टान जमती है। मिश्र में प्रति ५०० वर्षों में ही एक फुट जम जाती है, औसत प्रति ४००० वर्षों में १फुट का है। इस प्रकार पृथ्वी की आयु ५३००० × ४००० = २१२००००००० अर्थात् दो अरब वर्ष के लगभग निकलती है। पृथ्वी के आयु के अनुमान लगाने की और भी विधियाँ हैं—सब से अच्छी विधि यूरेनियम धातु से बने हुये सीसे की मात्रा के आधार पर है। यह धातु विछिन्न होकर शनैः शनैः विशेष प्रकार का सीसा बनता रहता है। हम यह भी जानते हैं कि कितना यूरेनियम कितने समय में कितना सीसा देगा। और हम यह भी जानते हैं कि यूरेनियम से बना सीसा खानों में कितना है। इस आधार पर हम निश्चय पूर्वक कह सकते हैं पृथ्वी अपने तरल रूप से ठोस रूप में कम से कम १४००,०००,००० वर्षों में (एक अरब चालीस करोड़) आई होगी। समुद्र में कितना नमक है और किस गति से प्रतिवर्ष नमक बढ़ता है, उस आधार पर भी पृथ्वी की आयु की कल्पना की गई है। सभी परिणामों से यही निश्चय होता है कि यह आयु २ अरब वर्षों के लगभग

है। हमारे देश में प्रचलित सृष्टि संकवत्सर भी तो १ अरब ९७ करोड़ वर्षों का माना जाता है।

अस्तु, अब भूगर्भवेत्ता इस बात को जानते हैं कि कौन से शिलास्तर किस समय बने। विकासवाद के सिद्धान्तों की इन स्तरों में पाये जाने वाले अवशेषों से भली भाँति पुष्टि हुई। किस युग में या किस मन्वन्तर में किस प्रकार के प्राणी रहते थे और वनस्पतियों की उस समय क्या अवस्था थी, यह अवशेषों से पता चल गया। मनुष्य, हाथी, घोड़े और इसी प्रकार अन्य वनस्थ पशुओं के पूर्वजों से हम परिचित हो गये। परिस्थितियों की भिन्नता ने इन पशुओं को किस प्रकार की भिन्नता शनै शनैः ही यह कोरी कल्पना की वस्तु न रह कर अब यथार्थ की एक बात बन गई है। डार्विन और अन्य आचार्यों ने उस क्रम वृद्ध का पता लगाया जिसके आधार पर विकास की सम्भावना हुई है। जीवन का प्रथम विकास एक कोष्ठक रूप में हुआ जैसे पानी पर लगी काई। फिर शंख, मूँगा आदि की उत्पत्ति हुई, बेरीढ़ वाले प्राणी आये, तदन्तर मछलियों का विकास हुआ। जल के ये जीव धीरे-धीरे भूमि पर भी आने लगे। मगर और कछुये के समान कुछ ऐसे भी हुये जो कभी पानी में और कभी किनारे पड़े रहने लगे। धीरे-धीरे उरगों का भी विकास हो गया, फिर दो प्रकार के पक्षी बने दूध पिलाने वाले और अंडा देने वाले और तदन्तर रीढ़दार प्राणियों का अविर्भाव हुआ धीरे-धीरे अनेक प्रकार के साँप और वानर आये और वानर से आदि मनुष्य की सृष्टि हुई। आदि मनुष्य की सभ्यता में विकास हुआ और मस्तिष्क का मनुष्य बन गया।

मस्तिष्क की तुलना

विकास का क्रम दृढ़ करने के लिये अनेक शारीरिक अंगों की तुलना करनी पड़ती है; शरीर में मस्तिष्क का किस प्रकार विकास हुआ यह भी कम कौतूहलप्रद नहीं है। केवल स्तनपायी पशुनें की तुलना हम करेंगे। जब से एकस किरणों का प्रचार बढ़ा है, इस प्रकार का अध्ययन सुगम हो गया है। मनुष्य स्पष्टतः सबसे अधिक मस्तिष्कवान है—संपूर्ण शरीर की तौल का [illegible] भाग मस्तिष्क है। शिम्पाञ्जी की गणना दूसरी है। इसका मस्तिष्क मनुष्य के मस्तिष्क का १/३ तौल में है। हाथी बड़ा विचारशील मालूम होता है, पर इसका मस्तिष्क अपने शरीर की तौल का १/६०० से भी कम है। शेर की छोटी प्रतिमा बिल्ली में शेर की अपेक्षा मस्तिष्क का अनुपात अधिक है। इतने दिनों से मनुष्य के सम्पर्क में रहने पर भी घोड़े में मस्तिष्क बहुत ही कम है, कुत्ते में फिर भी अधिक है आधुनिक कल्पना यह है कि हम मस्तिष्क से ही सुख-दुःख की कल्पना करते हैं। यदि ऐसा है तो जिसका मस्तिष्क तौल में अधिक होगा उसमें सुख-दुख की भावना अधिक होगी। मनुष्य शिकार खेलकर प्राणियों की हत्या करता है और औषधियों के तैयार करने में भी बड़ी हत्या होती है। यदि आदर्श सुख-दुःख की भावना रक्खी जाय, तो ऐसे पशु जिनमें मस्तिष्क बहुत ही कम है बलिदान किये जा सकते हैं, और मस्तिष्क का नहीं बहुत से लोग गिनीपिग, तिल्ली और गोल्डफिश के मस्तिष्क को मनुष्य के मस्तिष्क की बराबरी देते हैं। तो अहिंसा का यह नया आदर्श हमें कितना आचारवान् बना सकेगा यह कहना कठिन है। अपने प्राणों की रक्षा में सम्भवतः सब बराबर सचेष्ट रहते हैं, और प्राणों के निकलते समय जो प्रतिशोध की भावना होती है उसी से दुःख का आविर्भाव होता है। हम चाहें समझ न सकें, पर सभी को जीवन समान रूप से व्याप्त है।

दानवों का युग

सदा ही सृष्टि में मानवों के साथ दानव रहे हैं और देवासुर संग्राम भी कोई नयी घटना नहीं है। यह ठीक है कि प्रत्येक काल के दानव कुछ विशेषता रखते थे, और युग युग में नये प्रकार के दानवों का आविर्भाव हुआ। एक समय था जब पृथ्वी पर दानवों का प्राधान्य था। हम दानव से उन विशाल काय जन्तुओं को समझते हैं जो निर्द्वन्द्व जंगलों में अपने आहार की चिन्ता में विचरते थे। पृथ्वी जंगलों में परिपूर्ण थी, और इतने बड़े जंगलों या थोड़े से ही दानव रह सकते थे, क्योंकि यदि इनकी संख्या लाखों की हो, तो इनको भोजन कहाँ से मिले। जब दूसरे पशु कम मिलने लगे जिनका ये आहार कर

सकें, तो पेट की भूख के सताये हुये ये दानव स्वयं ही लड़ने लगे। परिणाम यह स्वाभाविक था, कि ये आपस में ही कट मरे। और आज धरती उन प्राचीनकालीन दानवों से बहुत कुछ मुक्त भी है। यह नहीं सकझना चाहिये कि दानव हैं ही नहीं। अब तो इस युग में मानव भी कुछ कुछ दानव सा बन गया है और जिसका ज्वलंत प्रमाण इस वर्त्तमाप युद्ध में मिला।

उरग प्राणियों का एक भयंकर युग हुआ। एक समय था जब संसार में इनका प्राधान्य था। गरमी सहन करने के योग्य इनके शरीर पर मोटी त्वचा भी बन गयी थी, इनके फेंफड़े भी विकसित हो गये। पेड़ों पर बिना पैर वाली मछलियाँ भी चढ़ने लगीं, सब से अधिक उग्र रूप के दानव उत्तर अमरीका, ग्रीनलैंड उत्तरी यूरोप और उत्तरी एशिया में पाये गये। डिन्सेसौर जाति के इन राक्षसी जानवरों का विस्तृत उल्लेख करना कठिन है। इसी प्रकार मनुष्य को आसानी से उड़ा ले जाने वाले पक्षियों का भी अभाव न था, जल जगत् में दानव आकार के प्राणी तो अब भी समुद्र की गहराई में पाये जाते हैं।

प्रलय

पृथ्वी के इतिहास में कई बार जल थल में परिवर्त्तन हुये जिस स्थान पर आज जल है, वहाँ कभी स्थल था और एक युग था जब आज के स्थल भाग में सागर की उत्तुंग तरंगे लहरा रही थी, जल जल के विनिमय ने कई बार स्थल के प्राणियों को जल में और जल के प्राणियों को स्थल में फेंक दिया। इन भयंकर जीवों के अस्थिपिंजर जब कहीं सुरक्षित मिल जाते हैं तो उस समय के इतिहास का एक नया पृष्ठ खुल जाता है।

सापेक्षवाद

(ले०—श्री बालकृष्ण, एम० एस० सी०)

ऐसा कहा जाता कि विज्ञान व्यवहारिक ज्ञान पर आधारित है। पिछले ४० वर्षों से सापेक्षवाद के क्षेत्र से जिस ज्ञान का विस्तार हुआ है, वह साधारण मनुष्य की कल्पना शक्ति से परे है, सापेक्षवाद के तथ्य हमें अपने व्यवहारिक ज्ञान के विरुद्ध प्रतीत होते हैं, परन्तु वे यथार्थ हैं। निम्न लेख में मैं सापेक्षवाद के ऐसे ही कुछ उदाहरण दे रहा हूँ जो व्यवहारिक ज्ञान के सर्वथा विरुद्ध हैं।

गतिवान घड़ियों की सुस्ती

उदाहरण के लिए दो मनुष्य 'क' और 'ख' अपनी घड़ियों को बिलकुल मिला लें, तो यदि उनकी घड़ियाँ ठीक हैं, तो बराबर उनमें एक सा समय मिलेगा। अब यदि 'क' और 'ख' एक दूसरे से विपरीत दिशा में गतिवान हो जायें, तो 'क' को ऐसा प्रतीत होगा कि 'ख' की घड़ी सुस्त चल रही है और 'ख' को ऐसा भास होगा कि 'क' की घड़ी सुस्त है। यदि दोनों की आपेक्षिक गति प्रकाश की गति (१८,६००० मील सेकिन्ड) हो जाये, तो क को 'ख' की घड़ी बन्द मालूम होगी और 'ख' को 'क'। प्रत्येक अवस्था में दोनों को अपनी घड़ी ठीक काम करती मालूम होगी; दोनों ही जब अपनी अपनी नब्ज की गति से घड़ी की परीक्षा करेंगे, तो उन्हें अपनी घड़ी बिलकुल ठीक काम करती मालूम होगी।

निष्ठुर पयेसी की कथा

इस प्रकार की कथा उस काल में सम्भव होगी, जब मनुष्य दूसरे ग्रहों पर भी विजय प्राप्त कर लेगा और ग्रहों में पारस्परिक आना जाना साधारण बात होगी। उस काल में यदि एकाएक लड़ाई छिड़ जाय और पृथ्वी के निवासियों को यह समाचार मिले कि अमुक ग्रह की प्रजा ने विद्रोह कर दिया है, तो यहाँ से फौज भेजी जायेगी। फौज में मान लीजिये एक ऐसा सिपाही है जो एक स्त्री से अगाध प्रेम करता है, परन्तु दोनों १ वर्ष के लिये अपनी

विवाह तिथि को टाल देते हैं और पुरुष अपनी प्रेयसी को यह वचन देकर कि वह एक वर्ष के बाद अवश्य वापिस आ जायेगा, फौज के साथ राकेट पर सवार होकर १८४००० मील प्रति सेकिन्ड की गति से युद्ध के लिये चल दिया। ६ मास तक चलने के बाद उसे यह पता चलता कि वह अभी आधी दूर तक ही पहुँच पाया है और अपनी प्रेयसी के प्रति अपना वचन सच्चा रखने के लिए वह वापिस चल देता है। परन्तु पृथ्वी पर पहुँचने पर यह क्या देखता है! उसकी प्रेयसी की तो शादी हो चुकी है! उससे मिलने पर उसने पूछा "क्या यही तुम्हारा वचन था?"

"मैं क्या करती, क्या मैं अनन्त काल तक तुम्हारी प्रतीक्षा किया करती। ५ वर्ष तक प्रतीक्षा करने के बाद लाचारी में मैंने विवाह किया और आज तो मेरे दो बच्चे भी हैं।" उत्तर मिला।

"तो क्या मुझे दस वर्ष लग गये।" वह आश्चर्य से चिल्ला उठा।

गतिवान रेडियो की कथा

कल्पना कीजिए कि दिल्ली से ४० मीटर पर आने वाले गाने को आप सुन रहे हैं, और थोड़ी देर में आपका रेडियो १,८४००० मील प्रति सेकिण्ड की गति से चलने लगे, तो आपको वही गाना ४०० मीटर पर सुनाई देगा, हालाँकि दिल्ली से गाना अब भी उसी तरङ्ग लम्बाई आ रहा है।

गतिवान डंडे की लम्बाई में कमी

मान लीजिए आप एक ४० गज लम्बा डण्डा ले लें। क्या आप विश्वास करेंगे कि वही डण्डा जिसकी लम्बाई आपने पर्याप्त सावधानी से ४० गज नाप ली है यदि १,६०००० मील प्रति सेकिण्ड की गति से चलने लगे, तो वह सिकुड़ कर केवल लगभग २० गज के ही प्रतीत होगा।

साधारण व्यवहारिक ज्ञान तथा सापेक्षवाद

उपर्युक्त वर्णन की हुई बातें सरलता से समझ में नहीं आती। किसी भी विज्ञान का आधार साधारण व्यवहारिक ज्ञान पर ही होना चाहिये। इन बातों को सुनने के बाद किसी भी मनुष्य को सापेक्षवादी वैज्ञानिक से यह पूछने का अधिकार है कि आपके पास परम्परा से चले आये समय तथा दूरी की परिभाषा को इतना विकृत रूप दे देने के लिए क्या प्रमाण है। शायद वैज्ञानिक यह उत्तर दे कि आपके ऐसे साधारण मनुष्य की परीक्षण व अवलोकन शक्ति अनुभवी वैज्ञानिकों से कम है। हो सकता है, परन्तु यह तो हम नहीं मान सकते कि चीज की लम्बाई ४० गज से २० गज रह जाये और हमें भास न हो। हम तो रोज ही वस्तुओं की लम्बाई स्थिर तथा गतिवान अवस्थाओं में देखते हैं, हमें तो इन दोनों में कोई भी भेद दिखलाई नहीं देता। हम तो सापेक्षवाद में विश्वास करने को तैयार नहीं, जब तक आप उसे व्यवहारिक जीवन पर सत्य न सिद्ध कर दें।

साधारण मनुष्य का उपरोक्त कथन अपने स्थान पर ठीक है और महत्व रखता है। परन्तु उसका उत्तर भी बहुत सरल है। विज्ञान में किसी भी अन्य तथ्य की ही भाँति सापेक्षवाद भी व्यवहारिक तथा प्रयोगिक ज्ञान पर ही निर्धारित है। भौतिक शास्त्र तथा ग्रहों के पारस्परिक व्यवहार में वैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे तथ्य देखे कि उन्हें वह बिना सापेक्षवाद के सिद्धान्तों के समझ ही न पाता था। उनकी धारणाओं की सत्यता तो उन तथ्यों से पूर्णतया स्पष्ट है जिनके कारण सापेक्षवाद का जन्म हुआ। रही जनसाधारण के व्यवहारिक ज्ञान की बात, तो जो कुछ अनुमान वह लगा लेते हैं वह सदैव सत्य भी नहीं उतरता। गैलीलिओ के पहिले लोग विश्वास करते थे कि यदि किसी ऊँचे स्थान से एक भारी पत्थर और एक हल्की चीज फेंकी जाये, तो भारी पत्थर जमीन पर पहिले पहुँचेगा। आज भी विज्ञान से अनभिज्ञ मनुष्य ऐसे मिल जायेंगे जिनकी धारणा इसी प्रकार की होगी। शताब्दियों पहिले जब गैलीलिओ ने इस धारणा के विरुद्ध आवाज उठाई तो जन साधारण में उसी प्रकार का कोलाहल हुआ था, जैसा आज आइनस्टाइन के सापेक्षवादी सिद्धान्तों को सुन कर हुआ है।

सापेक्षवाद क्या है ?

सापेक्षवाद का जन्म प्रकाश की गति के माप करने वाले प्रयोगों के साथ हुआ। शायद आप सोचते हैं कि प्रकाश तो असीमित गति से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाता है। परन्तु उसका गति नापने पर मालूम हुआ कि वह भी सीमित गति से चलता है जो १,८६००० मील प्रति सेकिन्ड है। इसी गति से चलने पर उसे सूर्य से हमारी पृथ्वी पर पहुँचने में ९ मिनट का समय लगता है। कुछ सितारे जो हमसे इतनी अधिक दूरी पर हैं कि उनसे तो प्रकाश हमारे पास वर्षों में पहुँच पाता है।

प्रकाश सीधी रेखाओं में चलता है, यह साधारण विश्वास है। परन्तु सूक्ष्म परीक्षणों ने सिद्ध कर दिया है कि वह भी तरङ्गों के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाता है। पानी में उठने वाली तरंगें आपने देखी होंगी। वैज्ञानिक ने एक प्रकार की तरङ्गों से प्रकाश के चलने की विधि को भी समझाया। जब प्रश्न उठा कि आखिर यह तरङ्ग उठता किस माध्यम में है, तो उन्होंने एक नवीन माध्यम 'ईथर' की कल्पना की जो समस्त संसार के प्रत्येक कोने में विद्यमान है. परन्तु उसके गुण ऐसे हैं कि उसकी उपस्थिति का भास हमको नहीं होता।

अब यदि उपर्युक्त तथ्य सही है, तो ईथर हमारी पृथ्वी से आपेक्षिक गति में होगा। मैं अपना मतलब इस प्रकार स्पष्ट कर सकता हूँ कि पृथ्वी गतिवान है और ईथर स्थिर है। परन्तु आपने देखा होगा कि यदि आप चलती ट्रेन में बैठे हों, तो आपको पास में खड़ी स्थिर ट्रेन विपरीत दिशा में चलती मालूम होगी और अपनी ट्रेन स्थिर। यही आपेक्षिक गति है। यदि आप पृथ्वी को स्थिर मान लें तो ईथर विपरीत दिशा में गतिवान होगा। अब प्रकाश ईथर में चलता है। यदि हम प्रकाश की गति ईथर की गति की दिशा ही में नापें तो प्रकाश की गति इस दिशा में ईथर की गति से विपरीत दिशा से अधिक होगी। यह तो व्यवहारिक ज्ञान की ही बात है, यदि हवा चल रही हो, तो हवा की दिशा में आवाज तेज चलती है। इसी व्यवहारिक ज्ञान को प्रकाश की गति पर लगाया गया, परन्तु परीक्षणों से सिद्ध हुआ कि प्रकाश की गति तो प्रत्येक दिशा में एक ही आती है। अब वैज्ञानिकों को कौतूहल आरम्भ हुआ कि उनकी वर्तमान विचार प्रणाली में कहीं न कहीं त्रुटि है। यही त्रुटि आइनस्टाइन महोदय ने हमें बतलाई और सापेक्षवाद की नींव रक्खी।

आइनस्टाइन के विचारों के अनुसार समय, लम्बाई तथा दूरी के हमारे आभास हमारी गति पर निर्भर करते हैं। यदि दो मनुष्य एक दूसरे की अपेक्षा गतिवान हैं तो उन्हें किसी भी दो घटनाओं के बीच समय एक सा नहीं दिखलाई देगा। आइन-स्टाईन के विचारों के अनुसार समय तथा दूरी इस प्रकार अपने को क्रमित कर लेते हैं कि प्रकाश की गति स्थिर रहे। इसी लिए आवश्यकतानुसार हमें घड़ी सुस्त या तेज चलती मालूम होती है, किन्हीं दो स्थानों के बीच की दूरी कम या ज्यादा मालूम होती है। आइनस्टाइन के विचार आज केवल कल्पना की ही वस्तु नहीं है पर ठोस यथार्थ जीवन के धरातल पर उनकी सत्यता परीक्षणों द्वारा सिद्ध की जा चुकी है। प्रश्न केवल एक रह जाता कि यदि उपरोक्त सिद्धान्त सही हैं, तो हमें दैनिक जीवन में इसी प्रकार घटनायें क्यों नहीं दिखलाई देती। उत्तर स्पष्ट है कि हमारी साधारण गतियाँ, जिनसे हम परिचित हैं, प्रकाश की गति (१८६००० मील प्रति सेकिण्ड) की अपेक्षा इतनी नगण्य है कि हमारे ज्ञान तन्तु हमारी गति द्वारा उत्पादित इन सूक्ष्म परिवर्त्तनों का भास नहीं कर पाते। यदि आप प्रकाश की गति के लगभग गति से चल सकें, तो आइनस्टाइन के विचार और धारणाएँ जनसाधारण के प्रत्येक दिन के व्यवहारिक जीवन में प्रतिक्षण ही सत्य दिखलाई देंगी।

बाल संसार

आवाज़–दीखती है परन्तु सुनाई नहीं देती

[लेखक—सुमन]

प्यारे पाठकगण ! तुम्हें यह पढ़ कर आश्चर्य होगा कि आवाज सुनाई न दे और दिखाई दे। आज तक चिड़ियों का चहचहाना, बादल का गरजना और बच्चों का चीखना सुनाई देता है, परन्तु दिखाई नहीं देता। इस लेख में ऐसी ध्वनि का वर्णन है जो केवल दिखाई दे सकती है परन्तु सुनाई नहीं दे सकती।

साधारण तौर से जो शब्द या आवाज हमें सुनाई देती है वह वायु में लहरों के उत्पन्न होने के कारण होती है। जब स्कूल का घंटा बजाया जाता है तब उससे वायु में कम्पन पैदा होती है। इस कम्पन द्वारा वायु पहिले दबती है और बाद में फैलती है। इस प्रकार का दबाव और फैलाव वायु की एक तह से दूसरी तह में होता रहता है और ध्वनि आगे चलती जाती है। इस कारण वैज्ञानिक कहते हैं कि ध्वनि लहरों के रूप में वायु द्वारा इधर उधर फैलती है। यदि सन्दूक में बन्द कर दिया जाय और इस सन्दूक से पम्प द्वारा सब वायु निकाल ली जावे, और तब घंटा बजाया जाय तो कोई आवाज न सुनाई देगी। अर्थात् वायु रहित स्थान में ध्वनि पैदा नहीं हो सकती। इस लिये हमारी दुनिया की ध्वनि या आवाज चाहे कितनी ही जोरों की क्यों न हो—इस दुनियाँ के बाहर नहीं जा सकती क्योंकि वायु-मंडल के बाद शून्य स्थान है।

बालको ! अब तुम्हारे समझ में आ गया होगा कि ध्वनि वायु द्वारा लहरों के रूप में फैलती है। यह लहरें उसी प्रकार से उत्पन्न होती हैं जिस प्रकार तुम एक तालाब में पत्थर फेंक कर लहरें पैदा करते हो और ये लहरें एक दूसरे के बाद बढ़ती हुई तालाब के किनारे तक पहुँच जाती है। अब यह घंटे की ध्वनि हमें कैसे सुनाई देती है ? जब कि ध्वनि की लहरें हमारे कानों से टकराती हैं तो हमारे कान का पर्दा भी उसी प्रकार से कम्पन करने लगता है और कुछ विशेष तन्तुओं (nerves) के कारण हमें ध्वनि या आवाज सुनाई देती है। कोमल या कठोर ध्वनि लहरों पर ही निर्भर होती है। जैसी लहरें होंगी वैसी ही आवाज सुनाई देगी।

मनुष्य को न सुनाई देने वाली ध्वनि कुत्ते सुनते हैं :

मनुष्य के कानों की उपयोगिता सीमित है। हमारे कानों के पर्दों का उपयोग विशेष कम्पन तक हो सकता है। यदि हम कलम को जोरों से वायु में हिलावें तो वायु में लहरें अवश्य पैदा होंगी, परन्तु हमें आवाज नही सुनाई देगी। कुत्ते और दूसरे जानवर ऐसी आवाज सुन लेते हैं जो कि मनुष्य को नहीं सुनाई देतीं। उनके कान अधिक उपयोगी होते हैं और इसी कारण कुत्ते दूर से पाँव की भी आहट सुन लेते हैं। इसी कारण कुत्तों का उपयोग महायुद्ध में भी किया गया था। वे ऐसी सीटियां सुन लेते थे जो कि दुश्मनों को नहीं सुन पड़ती थीं और सीटियों को सुन कर वे गुप्तचर का काम कर लेते थे।

किसी को न सुनाई देने वाली ध्वनि

सुनाई देने वाली ध्वनि वायु द्वारा लहरों व कम्पन पर निर्भर है परन्तु जब इन लहरों का कम्पन अधिक हो जाता है तब ध्वनि नहीं सुन पड़ती। हमारे संगीतों में एक सेकण्ड में ३० से लेकर ५,००० कम्पन तक होते हैं। हमारे सुनने की सब से अधिक सीमा एक सेकेंड में १८,००० से २२,००० कम्पन तक होती है। यदि प्रत्येक सेकेंड में २००,००० से भी अधिक कम्पन होते हैं तो जानवर भी इनको नहीं सुन सकते। इससे भी अधिक कम्पन वाली 'ध्वनि' पैदा की जा सकती है और यद्यपि ये कानों के नहीं सुनाई पड़तीं परन्तु इन ध्वनियों को खास तरीकों द्वारा चार्ट पर अंकित कर सकते हैं। इसी कारण हम इन ध्वनियों को न सुनाई देने वाली परन्तु दीखने वाली आवाज कहते हैं। अंग्रेजी में ऐसी ध्वनि को 'अति सूक्ष्म तरंगी ध्वनि' ('सुपरसोनिकस्') कहते हैं।

न सुनाई देने वाली ध्वनियों का उपयोग

प्रकाश के समान इन ध्वनियों को भी 'केन्द्रित' कर सकते हैं और इसी गुण के कारण इनका उपयोग भी किया जाता है। सुनाई देने वाली ध्वनि को सरलता से केन्द्रित नहीं किया जा सकता क्योंकि इन लहरों की लम्बाई अधिक होती है और उसको केन्द्रित करने के लिये बहुत बड़े (reflector) की आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु इन सुपरसोनिक लहरों का कम्पन बहुत होता है और लम्बाई कम होती है। इस कारण छोटा (rflector) इनको केन्द्रित करके एक पतली, कमचौड़ी और तीव्र किरण देगा जो कि लकीर के समान होगी। ऐसी किरण देगा जो कि लकीर के समान होगी। ऐसी किरण बहुत उपयोगी हो सकती है।

यह तो हमें मालूम ही है कि जब हम किसी कुएँ में झाँक कर बोलते हैं तो प्रतिध्वनि पैदा होती है। इस प्रकार पहाड़ों के पास या किसी बड़ी इमारत में बोलने या सीटी बजाने से भी प्रतिध्वनि पैदा होती है। ऐसा मालूम होता है कि कोई दूसरा आदमी हमारी नकल कर रहा हो। परन्तु वास्तव में जब हम बोलते हैं तो हमारी आवाज़ वायु द्वारा लहरों के रूप में पहाड़ों आदि से टकराती है और टकरा कर फिर वापस आती है। हमेशा प्रतिध्वनि हमारे बोलने के कुछ देर बाद सुनाई देती है क्योंकि हमारी आवाज़ के जाने में और वापस आने में कुछ समय अवश्य लगता है। कोई भी ध्वनि चाहे उसके कम्पन की मात्रा कितनी ही हो वायु में उसकी गति एक सी रहेगी। यह गति एक सेकेंड में १,१०० फीट होती है। अब यदि हमें किसी दूर स्थित पहाड़ या और किसी वस्तु से झांई सुनाई देती है तो हम सरलता से उसके फासले का अनुमान लगा सकते हैं। केवल हमें घड़ी द्वारा यह पता लगा लेना है कि हमारे बोलने और झांई के सुनाई देने में कितने सेकेन्ड लगते हैं। अब इन सेकेन्ड को १,१०० से गुणा करने पर हमारे और उस वस्तु के बीच का दुगना फासला फीटों में मालूम हो जाता है।

न सुनाई देने वाली ध्वनि का उपयोग भी प्रतिध्वनि द्वारा फासला जानने के लिए किया गया है। यह बड़ा उत्तम उपयोग है और इससे जहाज़ का कप्तान प्रत्येक मिनिट बतला सकता है कि कितना गहरा समुद्र उसकी जहाज़ के नीचे है। उसे पता लग सकता है कि समुद्र में कहाँ पर चट्टान कहाँ पर पहाड़ी, कहाँ पर बर्फ के पहाड़ है। सुनाई देने वाली ध्वनि का उपयोग इस प्रकार से नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह नहीं है कि पानी में आवाज़ की गति नहीं होती। पानी में तो ध्वनि की गति वायु से अधिक है। एक सेकेंड में ४,६०० फीट है। परन्तु कठिनाई होती है केन्द्रित करने में। क्योंकि इनकी लहर की लम्बाई अधिक होती है। इस कारण यह आवाज़ पानी में चारों ओर फैल जायगी और आसपास की बड़ी चीजें सभी प्रतिध्वनि पैदा करेंगी और इस प्रकार कई प्रतिध्वनि आने से गड़बड़ी हो जावेगी। परन्तु अतिसूक्ष्म तरंगें सरलता से केन्द्रित होकर किरण के रूप में एक खास चीज़ से प्रतिध्वनि पैदा कर सकती है और उसका फासला मालूम हो सकता है।

इन न सुनाई देने वाली आवाज़ों से केवल फासले का ही ज्ञान नहीं होता परन्तु इनसे डूबे हुए जहाज़ों का भी ठिकाना मालूम हो सकता है और इसका उपयोग डूबे हुए जहाज़ निकालने में किया भी गया है। १९१४ के युद्ध में जर्मन पन डुब्बियों के पता लगाने में भी इन ध्वनियों का उपयोग किया गया था परन्तु उसमें एक खराबी थी कि पनडुब्बियाँ भी इस ध्वनि को पकड़ लेती थी जिससे उन्हें मालूम हो जाता था कि शत्रु जहाजें भी हमारी फिराक में हैं। इन ध्वनियों द्वारा हमें समुद्रतह (bed) का भी ज्ञान हो सकता है। यदि तीव्र और साफ साफ झांई पैदा होती है तो समुद्र की तह ठोस और कठोर है और यदि साफ और तीव्र नहीं है तो तह फसफसी और कीचड़ से भरी है।

समालोचना

आकाशना तारा-नकशा

प्रकाशक तारक मंडल, चरोतर एज्युकेशन सोसायटी, आणंद। आकार १४ इञ्च × १३ इञ्च। पृष्ठ संख्या १ + ६। हलकी दफ्ती की जिल्द। मूल्य ४ रुपया।

इस तारा चित्रावली में ६ नकशे ब्ल्यु-प्रिंट की रीति से छाप कर दिये गये हैं। ब्ल्यु-प्रिंट की रीति वही है जिससे इनजीनियर लोग एक नकशे से कई प्रतिलिपियाँ तैयार करते हैं। इससे नीली ज़मीन पर सफेद अक्षर और रेखाएँ छपती हैं। प्रकाशकों ने इस पुस्तक को ब्ल्यु-प्रिंट में छपाया है। इसका अर्थ या तो यह है कि उनको पता नहीं था कि पुस्तक लीथो पद्धति से नीली स्याही में प्रायः उतनी ही सुन्दर छप सकती थी जितनी यह ब्ल्यु-प्रिंट में छपी है, या इतनी कम प्रतियों की आवश्यकता थी कि ब्ल्यु-प्रिंट में छपवाने के अतिरिक्त और कोई सस्ता उपाय नहीं था। समालोचक का विश्वास है कि यदि पुस्तक की १०० प्रतियाँ भी छापनी पड़ी हों तो लीथो में ही सस्ता पड़ता।

तो भी चार रुपये में पुस्तक मंहगी नहीं कही जा सकती। वस्तुतः जब इस पर ध्यान दिया जाता है कि इन नकशों की पांडुलिपि प्रस्तुत करने में कितना परिश्रम करना पड़ा होगा और ब्ल्यु-प्रिंट छापने में कितना व्यय हुआ होगा तो मूल्य बहुत कम ही जान पड़ता है।

प्रत्येक नकशे की रूप रेखा वृत्ताकार है। तारों का नाम स्पष्ट अक्षरों में लिखा गया है। केवल प्रमुख तारे ही दिखाये गये हैं। विषुवांशों और क्रांन्ति बताने वाली रेखायें नहीं दिखाई गई हैं। तारा मंडलों की सीमायें नहीं दिखाई गई हैं, केवल प्रमुख तारों को बिन्दुमय रेखाओं से मिला दिया गया है। इन सब कारणों से चित्र सब स्वच्छ और सुन्दर लगते हैं, और नवसिखुओं के लिये वे सरल भी हो गये हैं, परन्तु निसन्देह ज्योतिष के सच्चे विद्यार्थियों लिये के ऊपर बताये गये कारणों से इन नकशों की उपयोगिता कम हो गई है।

ब्ल्यु-प्रिंट होने के कारण नकशे बहुत सुन्दर लगते हैं। हिन्दी में यह एक नई वस्तु है। प्रत्येक ज्योतिष-प्रेमी और प्रत्येक स्कूल, कालेज, पुस्तकालय आदि को एक प्रति खरीदनी चाहिये।

नकशों के अतिरिक्त एक पृष्ठ टाइप में भी छपा है जिसमें नकशों के लिये प्रयोग-विधि गुजराती में दी गई है। अच्छा होता यदि सम्पादकगण इस पेज की पीठ पर (जो इस समय कोरी ही है) हिन्दी में उन्हीं बातों का अनुवाद दे देते। यदि सब पुस्तकों की जिल्द न बँध गई हो तो मैं प्रकाशकों को यही सलाह दूँगा कि वे अब भी शेष प्रतियों में प्रयोग-विधि हिन्दी में भी छाप दें। प्रयोगविधि के हिन्दी में भी रहने से पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ जायगी, और फिर केवल एक पृष्ठ के छापने की ही बात तो है।

अन्त में मैं सम्पादक या सम्पादक-गण (खेद है पुस्तक पर उनका नाम नहीं है) और प्रकाशन करने वाली सभा के सदस्यों को बधाई देता हूँ कि उन्होंने भारतीय भाषाओं की ऐसी उत्तम सेवा की। नकशे पर सब नाम देव नागिरी अक्षरों में है जिससे नकशों का उपयोग हिन्दी और थोड़ा-सा ज्योतिष जानने वाले सुगमता से कर सकते हैं।

(गोरखप्रसाद)

विज्ञान-परिषद्‌की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञान की प्रारम्भिक बातें सीखने का सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ;

२—चुम्बक—हाईस्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ॥=)

३—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १॥),

४—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें, मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ॥),

६—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी, प्रथम भाग १॥) द्वितीय भाग ॥=),

७—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी० ; ।),

८—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

९—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।–),

१०—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

११—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१२—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१३—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१४—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।॥),

१५—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१६—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण—फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह एम० एस-सी०; २),

१७—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १॥)

१८—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १॥),

१९—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र, सजिल्द, १॥),

२०—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिश करनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख-प्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १।),

२१—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, आकार बड़ा विज्ञानके बराबर २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २।।),

२२—कलम पेवन्द—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ, ४० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १।।),

२३—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द १।।),

२४—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुका है।

२५—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२६—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ५२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६), मिल है।

२८—वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्त-प्रसाद टंडन, डा० फिल० मूल्य ।।।)

२९—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डा० फिल० मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—विज्ञान हस्तमलक—ले०—स्व० रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगका यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रोंसे सुसज्जित है, आजतककी अद्भुत बातोंका मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयोंमें भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञानकी एक समूची लैब्रेरी, है एक ही ग्रंथम विज्ञानका एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२—सौर-परिवार—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२) इस पुस्तक पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक

३—भारतीय वैज्ञानिक—(१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां—ले० श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।।) अजिल्द ३)

४—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलमें काम करने वाले फिटरों इंजन-ड्राइवरों, फ़ोर-मैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं; २),

विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र

भाग ६६ | सम्वत् २००४, नवम्बर १९४७ | संख्या २

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

बेली रोड, इलाहाबाद।

वार्षिक मूल्य ३) ।

[एक संख्या का मूल्य ।)

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्‌का उद्देश्य

१—१९७० वि० वा १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्‌की इस उद्देश्यसे स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्‌का संगठन

२—परिषद्‌में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्‌की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ५) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्‌की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

१७—परिषद्‌के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

विषय सूची

विज्ञान

विज्ञान-परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ६६ | सम्वत् २००४, नवम्बर, १९४७ | संख्या २

कोंह न पावकु जारि सक !

[देवेन्द्र शर्मा]

यह कहना कठिन है कि किस जीवधारी ने सब से पहले सुन्दर उषा के सुहावने सौन्दर्य में उदय होते हुए सूर्य के दर्शन किये होंगे। जो भी वह प्राणी रहा हो, और जिस अवस्था में भी उसने बाल-रवि के दर्शन किये हों उसने आश्चर्य और आनन्द के कौतूहल में अपनी भाषा अथवा मूक अवस्था में अपने साथियों से उसका वर्णन किया होगा...। नियम से नित्य प्राची में उदय होते और दिन भर अन्तरिक्ष में एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाकर सन्ध्या होने पर मानों थक कर अपनी माँ की गोद में सो जाने वाले इस आग के गोले को देख कर इसके विषय में और जानने का कुतूहल रोकना अस्वाभाविक है। सूर्य का ज्ञान प्राप्त करने के अपने प्रयास को जो सम्भवतः सबसे पहला था, सम्पाती इन शब्दों रखता है :—

हम द्वौ बन्धु प्रथम तरुनाई,
गगन गए रवि निकट उड़ाई।
तेज न सहि सकि सो फिर आवा,
मैं अभिमानी रवि निअरावा।
जरे पंख अति तेज अपारा,
परेउ भूमि कर घोर चिकारा।

इससे अधिक उस बेचारे ने कुछ नहीं छोड़ा। और छोड़ता भी क्या ? इन थोड़े से शब्दों में रवि के तेज और गर्मी का वर्णन निहित है, हाँ कुछ विस्तार की कमी है। आजकल हम लोग उतने से ही सन्तुष्ट नही होते कि सूर्य बहुत गर्म है, और बहुत बड़ा। हमको तो इन सब बातों का माप चाहिये।

सूर्य जो हमारी पृथ्वी से ३·३ लाख गुना भारी है और जिसकी मानों देवता मान कर यह धरा प्रदक्षिणा करती है, हम से ९ करोड़ ३० लाख मील के व्यवधान पर है और उसका प्रकाश १८४००० मील प्रतिपल के द्रुतवेग से चल कर भी हम तक पहुँचने में प्रायः ८ मिनट लेता है। स्वभावतः ही प्रश्न उठता

है कि इतनी दूर होने पर वह इतनी गर्मी कहाँ से लाता है जो हम को व्यथित करके नाना प्रकार के शीतलता प्राप्त करने के उपायों को काम में लाने के लिए बाध्य कर देती है।

सूर्य के ऊपर की सतह का तापक्रम प्रायः ६०००° शतांश है। यह पृथ्वी पर गर्मी से गर्म धँधकती हुई भट्टी से भी गर्म हुआ। इस तापक्रम पर न केवल लोहा भी भाप की भाँति उड़ जायगा, वरन् उसके परमाणु भी अपने विभाजन की सोचने लगेंगे। हम जानते हैं कि प्रत्येक परमाणु एक छोटा सा सौरपरिवार' है, जहाँ एक केन्द्रीय धनात्मक पिण्ड के चारों ओर ऋणाणु ग्रहों की भाँति अपनी-अपनी कक्षाओं में चक्कर लगाते हैं।* जब ये ऋणाणु एक कक्षा से दूसरी में जाते, तो परमाणु की शक्ति में परिवर्तन होता है जो ये मूक कण प्रकाश के रूप में कह देते हैं। जब ऋणाणु भीतर की कक्षा से बाहर को जाता है तो उसे बाहर से शक्ति लेनी पड़ती है जो वह अपने ऊपर पड़ते हुए प्रकाश से लेता है। इसके प्रतिकूल अवस्था में वह स्वयं प्रकाश देता है। प्रत्येक परमाणु का अपना विशेष प्रकाश है जो उसकी अवस्था (ऋणाणुओं की कक्षाओं में स्थिति) पर निर्भर है। इसी प्रकाश द्वारा हम परमाणु को भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में पहचानते हैं। यह कार्य कठिन नहीं। भादों की अँधेरी रात में दो चमकती हुई आँखों को देख कर जंगल का एक निवासी वन्य पशु को पहचान लेगा; लपट का रंग आदि देख कर एक अभ्यस्त व्यक्ति बता देगा कि उसमें क्या जल रहा है। वे लोग अनजाने ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग कर रहे हैं। वैज्ञानिक अपनी सहायता के लिये कुछ यन्त्रों का प्रयोग और करता है।

हाँ, तो जैसे-जैसे तापक्रम या शक्ति भी बढ़ती जाती है, शक्ति के प्रभाव से ऋणाणु बाहरी कक्षाओं में जाने लगते हैं और अन्ततः केन्द्रीय पिण्ड के क्षेत्र से बिलकुल बाहर हो जाते हैं; यहाँ तक कि सूर्य के भीतरी भाग के लाखों शतांश के तापक्रम पर सब परमाणु अपने ऋणाणुओं से विहीन हो केवल पिण्ड रूप हो जाते हैं- हमारी पृथ्वी की सुन्दर से सुन्दर वस्तु भी वहाँ अपना समस्त लावण्य खोकर केवल यत्र तत्र भटकते हुए धन कण और ऋणाणुओं का समूह मात्र होगी। सम्पाती वहाँ पहुँचने पर यहां अपना अनुभव सुनाने न आ पाता।

यह जानकर हम को आश्चर्य होगा कि सूर्य प्रतिक्षण कितनी गर्मी देता है। इसका अनुमान लगाना कठिन है, यद्यपि सन्दिग्ध नहीं। यह प्रायः बिलकुल ठीक ज्ञात है कि वह अन्तरिक्ष में प्रति सेकिण्ड प्रायः १ अरब मन शक्ति फेंक देता है। यहाँ यह शङ्का स्वाभाविक है कि हम शक्ति को तौल कैसे सकते हैं। परन्तु यह कहना ही पर्याप्त और सङ्गत होगा कि पदार्थ को जब पूर्णतः शक्ति में परिवर्तित कर दिया जाय (जो सम्भव है) तो हम शक्ति को उस पदार्थ की मात्रा के माप से व्यक्त कर सकते हैं। इस माप से एक मजदूर जीवन भर कठिन परिश्रम करके केवल तोले के दस हजारवें भाग शक्ति का व्यय करता है। एक तोले पदार्थ के पूर्णतः शक्ति में परिवर्तित होने पर हमको जो शक्ति मिलेगी वह दस हजार मन बर्फ को भाप बनाने के लिए काफी होगी।

तब तो हमारा सूर्य बड़ी फिजूल खर्ची में लगा हुआ है। इस फैय्याजी से वह शीघ्र ही दिवालिया होकर अपना तेज खो बैठेगा। यह सत्य है, परन्तु चिन्ता की बात नहीं। हम को यह जानने का प्रयत्न करना चाहिये कि वह यह शक्ति कहाँ से और कैसे लाता है और उसका खजाना कितना बड़ा है।

सूर्य इतनी गर्मी कहाँ से लाता है इसके कई कारण दिये गये हैं। परन्तु एक के बाद एक अपूर्ण

---

*परमाणु की यह प्रतिमा केवल अनुमान के लिये दी जाती है। प्रतिमा की यथार्थता समझ लेना पत्थर को देवता मानना है।

सिद्ध हुए हैल्महोल्ट्ज़ का अपने इतने बड़े आकार और भार के कारण सूर्य का दबना और फलस्वरूप बहुत-सा ताप उत्पन्न करना सूर्य को बहुत समय तक जीवित नहीं रख सकता। सूर्य के अन्दर रेडियम-धर्मी तत्वों का होना भी उसको अधिक समय तक पर्याप्त ताप नहीं दे सकता। इतने महान दानवीर का खजाना और सुदृढ़ स्तम्भों पर अवलम्बित होना चाहिये।

हम लोग जानते हैं कि आधुनिक वैज्ञानिक एक सीमा तक पारस पत्थर की खोज में सफल हुआ है। मेरा अभिप्राय है एक तत्व को दूसरे में परिवर्तित किया जा सकता है। जब लिथियम के एक कण में हाइड्रोजन का एक वेग गामी परमाणु आकर बिंधता है तो हीलियम के दो परमाणु बन जाते हैं। इस प्रकार अन्य क्रियाएँ हो सकती हैं। प्रायः इन सब में परमाणुओं का कुछ भाग शक्ति में परिणित होता है।

सूर्य में भी इसी प्रकार की क्रियायें हो रही हैं जिनसे इतनी ताप शक्ति मिलती है। कुछ ही वर्ष पूर्व बेथे ने उस सम्बन्ध में अपना सिद्धान्त दिया था जो हमारे सूर्य सम्बन्धी आज के ज्ञान से पुष्ट होता है। उसके अनुसार सूर्य में ४ हाइड्रोजन परमाणु एक हीलियम परमाणु में परिवर्तित होते हुए शक्ति देते हैं। इस क्रिया को सम्पन्न करने में कार्बन एवं नाइट्रोजन के परमाणु कारण मात्र होते हैं। हाइड्रोजन को हीलियम में परिणित करने में कार्बन वैसे ही अछूता रहता है जैसे तेल में हाइड्रोजन मिलाकर वनस्पति घी बनाने में निकिल के बहुत बारीक कण प्रवर्तक का काम करते हैं। प्रयोगशाला में यह क्रिया बहुत धीरे-धीरे होगी क्योंकि हाइड्रोजन के परमाणु पर्याप्त वेगवान न होंगे। सूर्य के इतने तापक्रम पर सब क्रियाएँ द्रुत गामी हो जाती हैं।

सूर्य का ईंधन हाइड्रोजन है और उसकी राख हीलियम। जलने में ही गौरव पाने वाला यह हमारी पृथ्वी से सवा तीन लाख गुना भारी है और प्रायः ३५ प्रतिशत हाइड्रोजन है। आजकल जिस क्रम से वह गर्मी लुटा रहा है उससे उस मलिन सन्ध्या से जब कर्ण को कुरुक्षेत्र में गिरते देख वह मलिन मुद्रा से धीरे से क्षितिज की ओट में चला गया आज तक हमारी पृथ्वी के दस हजारवें भाग से भी कम ईंधन जलाया है। अभी वह इस धरा के दृश्य सवा आठ सौ ग्रह ईंधन अपने खजाने में रखता है। परन्तु जैसे-जैसे ईंधन जलता है गर्मी बढ़ रही है। अन्ततः जैसे-जैसे दीपक का तेल कम होने लगेगा लौ तेज होगी, और बुझने के पूर्व अब से प्रायः दस अरब वर्ष बाद इसका तापक्रम अब से सौ गुना अधिक हो जायगा। वनस्पति जल जायगी, सागर उबल-उबल कर भाप उगलने लगेंगे और मानव को सम्भवतः किसी सुदूर ग्रह की शरण में जाना पड़े।

और फिर अपना सब ईंधन समाप्त कर सूर्य सिकुड़ने लगेगा; वह सिकुड़न जो गर्मी के बाहर की ओर दबाव के कारण रुकी हुई थी, प्रारम्भ हो जायगी, जिससे फिर तापक्रम कुछ समय तक कम होने से रुका रहेगा। निःसन्देह इसमें भी लाखों वर्ष लग जायँगे। और इसके बाद वही अवश्यम्भावी अप्रिय सत्य!

हमारे आप उत्तरदायी हैं—"वैज्ञानिक"

[लखनऊ रेडियो पर डा० सत्यप्रकाश और डा० हीरालाल दुबे के बीच में संवाद]

स० प्र०—आइये, डा० दुबे जी आइये, कहिये, क्या समाचार है ? कुशल तो है, सब न ?

डा० दुबे—कुशल क्या है ! आप वैज्ञानिकों के होते हुये भी इतनी विपदायें हैं। न तो खाने को मिलता है न कपड़ा है और न हमारे स्वास्थ्य की ही आप लोगों ने कुछ चिन्ता की है दूसरे देशों में वैज्ञानिक मनुष्यों को दुखी बनाने के लिये सब प्रकार के प्रयत्न कर रहे हैं। पर बताइये तो सही, आप ने हमारे लिये इस देश में क्या किया ? हैं तो आप हमारे उत्तरदायी ?

स०प्र०—ठीक है, डाक्टर साहेब, हमें स्वयं इस बात का खेद है कि इस देश में हम लोग अभी बहुत ही कम कर पाये हैं। पर आप यह देख तो रहे हैं, कि जनता और सरकार दोनों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। आपने खाने की बात कही, सो यह तो स्पष्ट है कि जब तक हम कृषि में आधुनिक आविष्कारों का प्रयोग न करेंगे, हम अपने देश की भोजन संबंधी आवश्यकताओं का पूरा नहीं कर सकते। हमारे देश में प्रति बीघा अन्न के उपज की मात्रा अन्य देशों की अपेक्षा लगभग आधी है, और फिर गेहूँ आदि अन्न होता भी तो बहुत खराब है। अच्छी जाति के बीजों का प्रयोग करना हमें अभी सीखना है।

डा० दुबे—कृषि का प्रश्न बीज पर तो निर्भर है ही, परन्तु खाद सिंचाई और पौधों के रोगों पर भी आश्रित है। दूसरे, हमारे देश में सहस्रों एकड़ रेगिस्तानी और ऊसर भूमि पड़ी हुई है, इसके लिये आप लोगों ने कुछ सोचा भी है ?

स० प्र०—डा० दुबे जी आप ठीक कहते हैं। अभी तक तो हमारे किसान गोबर और पत्ती की खाद से काम लेते रहे हैं, और यही नहीं, आप यह भी तो देखते हैं, कि कितना गोबर कंडों के रूप में जलाकर व्यर्थ नष्ट कर दिया जाता है। जब तक रासायनिक खादों का उपयोग नहीं होगा, हम अपने खेतों की अवस्था नहीं सुधार सकते। हमारे देश में शोरा बहुत है, पर इसका भी हमें ठीक तरह से उपयोग करना है। खादों के बनाने के बहुत से कारखाने खोलने हैं। सिचाई के लिये देश में बहुत काम किया जा रहा है। हमारे ही प्रान्त की हाइड्रो-एलेक्ट्रिक स्कीम से पश्चिम के अनेक जिलों में सिंचाई का काम आसान हो गया है। नहरें भी स्थान-स्थान पर निकाली गयी हैं। सिन्ध और पंजाब में बाँध और बृहद्‌काय जलाशय निर्माण किये गये हैं। हमारी सरकार का ध्यान बाँध बना कर बरसाती पानी को सुरक्षित रखने के प्रति आकर्षित हुआ है। यदि वैज्ञानिक साधनों का उपयोग किया जाय तो राजपूताने और सिन्ध के अनेक ऊसर और मरुस्थल उपजाऊ बनाये जा सकते हैं।

पोधों को रोगों से बचाने की जो बात कही, वह बड़ी आवश्यक है। आप देखते हैं, कि फसल का बहुत अधिक भाग रोगों वाले कीड़ों से नष्ट कर दिया जाता है। कानपुर, पूसा आदि के कृषि विद्यालयों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। गन्ने के रोगों पर भी अब ध्यान दिया जा रहा है। जिससे शक्कर व्यवसाय में हानि न हो।

डा० दुबे—डा० सत्यप्रकाश जी, आपने शक्कर के व्यवसाय की बात छेड़ी। जहाँ तक मैं जानता हूँ, भारत में ये ही दो बड़े व्यवसाय हैं; कपड़े और शक्कर का। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि आज ये दोनों ही आवश्यक वस्तुयें हमें दुर्लभ हो रही हैं। विज्ञान का हाथ तो आधुनिक उद्योग और व्यवसायों में बहुत बड़ा है परन्तु भारत में ऐसा दीखता है कि विज्ञान का उपयोग केवल बिजली की रोशनी या पंखों तक ही सीमित है।

स० प्र०—आप ठीक कहते हैं, ये वैज्ञानिक साधन ही थे जिनसे गत पच्चीस वर्षों में हम कपड़ों और शक्कर के कारखानों को देश में इतना विस्तार दे पाये हैं। मेरा अपना विचार है कि यदि अच्छे प्रकार की कपास हम पैदा कर सके, तो कपड़ों के लिये हमें अन्य देशों का आश्रित न होना पड़ेगा। शक्कर तो इतनी पैदा कर सकते हैं, कि दूसरे देशों को भी शक्कर दे सकें। पर हमें गन्ने की जाति सुधारनी पड़ेगी! हमारे गन्नों में उतनी शक्कर नहीं होती जितनी कि जावा के गन्नों में इस ओर हमारे रिसर्च इन्सीटीच्यूट कुछ काम कर रहे हैं।

यह आपने मजे की बात कही कि बिजली का उपयोग रोशनी या पंखों तक ही हमारे देश में सीमित है! हाँ अभी तो यही अवस्था है, पर शीघ्र ही हमें बिजली इतनी सस्ती तैयार कर लेनी होगी, कि सभी कारखानों में इसका उपयोग हो सके। अब तो देश में हमारी ही शासन होने जा रहा है। इस समय की प्रान्तीय सरकार का ध्यान वैज्ञानिक अनुसन्धानों के प्रति आकर्षित हुआ है। क्या आपने अनेक राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं के स्थापित होने की बात नहीं सुनी श्री जवाहरलाल नेहरू जी ने दिल्ली में भौतिक विज्ञान संबंधी प्रयोग शाला का शिलान्यास किया।

डा० दुबे—डा० साहेब, हमारे उद्योग और धन्धे कई धातुओं पर निर्भर हैं, विशेषतया लोहे पर। क्या आप लोगों ने ताँबा और ऐल्यूमीनियम और धातुओं को भूगर्भ से निकाल कर शुद्ध करने के कारखाने बनाये हैं। हमारे देश की तो यह दशा है कि आलपीन और सुइयों के लिये भी दूसरों का मुँह देखना पड़ता है। यदि आप सरीखे वैज्ञानिक ऐसे ही उदासीन रहे तो हमारे देश का भविष्य अन्धकार मय है।

स० प्र०—डा० दुबे जी! हमारा देश बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है। लोहे के टाटा के कारखाने तो प्रसिद्ध हैं ही। ताँबे के लिये कलकत्ता कापर कारपोरेशन है। ऐल्यूमीनियम का भी काम कई स्थानों पर आरंभ हुआ है। आप तो यह जानते ही हैं, कि ऐल्यूमीनियम को खनिज मिट्टी में से अलग करने के लिये सस्ती बिजली परम आवश्यक है, अगर हम बिजली तैयार करने की सामग्री अच्छी जुटा सकें तो ऐल्यूमीनियम का व्यवसाय तो चमक उठेगा। हमारा ऐल्यूमीनियम खनिज धातु तैयार करने के लिये विदेशों में भेज दिया जाता है। हमारी सरकार का ध्यान भी इस ओर गया है और अभी हाल में कई लाख रुपये के व्यय से जमशेदपुर में धातु-विज्ञान संबंधी एक विशेष प्रयोगशाला स्थापित हुई है। आप को इतना निराश होने की आवश्यकता नहीं है।

डा० दुबे—डाक्टर साहेब! आप हमें कहाँ तक आशा दिलाएँगे। भविष्य में कांच सेल्यूलाइड और बेकेलाइट, रबर आदि का हमारी सभ्यता में बहुत बड़ा हाथ रहेगा। मुझे तो आशा है कि दूसरे देशों में ये चीजें घरों का रूप रंग ही बदल देंगी। भोजन के बर्तन चाय की प्याली आदि, मेज कुर्सी भी कांच बेकेलाइट की बनने लगेंगी। रबर का उपयोग तो बहुत ही महत्व का है। इसकी तो अन्तरराष्ट्रीय महत्व है। यदि हम इन वस्तुओं में पीछे रहे तो इस बढ़ती हुई दुनियां में हमारा कोई भी स्थान न रह जावेगा।

स० प्र०—आप ठीक कहते हैं। मैं तो देख रहा हूँ कि जिस प्रकार देश के सीमेन्ट के कारखानों में हमारे यहाँ की शिल्पकला में पत्थर और लकड़ी को बेकार का सिद्ध कर दिया है उसी तरह शीघ्र ही बेकेलाइट के सामान पदार्थों के कारखाने कांच और धातु की बनी हुई वस्तुओं को भी नगण्य सिद्ध कर देंगी। बेकेलाइट के लिए हमें केवल फीनौल और फौरमलडीहाइड तैयार करने की आवश्यकता है। हमारे देश में कोयला बहुत है और धानबाद में राष्ट्रीय ईंधन प्रयोगशाला बन रही है। अगर कोयले के निकाले गए पदार्थों के कुछ कारखाने हम शीघ्र खोल सके तो बेकेलाइट ही क्या अन्य अनेक चीजें भी तैयार कर सकेंगे। देश में मोटर बनाने की बात

तो बहुत दिनों से चल रही है। इसके लिये हमें अपनी रबर की खेती को प्रोत्साहित करना होगा। कुछ लोगों का विचार तो हवाई जहाज बनाने के कारखाने खोलने का भी है। चार पांच वर्षों में ही हवाई जहाज की यात्रा देश में बहुत सुलभ हो जायगी। इसके लिए भी हमें हलकी धातुएँ और बेकेलाइट के सामान प्लासटिक पदार्थ तैयार करने होंगे।

डा० दुबे—अच्छा डाक्टर साहेब! यह सब बातें तो ठीक हैं परंतु यदि स्वास्थ्य ही ठीक न रहा तो इन बड़ी-बड़ी बातों से क्या लाभ। आप देख रहे हैं कि हमारा स्वास्थ्य कितना गिर गया है। दवाइयाँ इतनी मंहगी हैं कि साधारण मनुष्य के लिए तो आजकल बीमार पड़ने से मर ही जाना अच्छा है। जब तक हमें सस्ते उपचार नहीं मिलते तब तक हमारे गरीब देश वासियों के लिए इन अस्पतालों का कुछ भी लाभ नहीं है। यह तो अमीरों के लिए हैं।

स० प्र०—डा० दुबे जी! यह खेद की बात है कि हमारे देश में यह समझा जाता है कि डाक्टर, अस्पताल और दवाइयाँ केवल अमीरों के लिए है। है। जनता के स्वास्थ्य का उत्तरदायित्व सरकार पर है और से सरकार किसी भी छोटे से छोटे व्यक्ति की अवहेलना नहीं कर सकती। हमें अपने पुराने वैद्यक और हिकमत को प्रोत्साहन देना है और हर्ष की बात है कि हमारी लोकप्रिय सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। माताओं और नवजात शिशुओं के स्वास्थ्य के लिए कस्तूरबा स्मारक निधि से अनेक स्थानों पर केन्द्र स्थापित हो गए हैं। इस सम्बन्ध के प्रत्येक केन्द्र को वैज्ञानिक पद्धति पर बने हुए अच्छे औषधालयों और मातृ मन्दिरों की आवश्यकता होगी; ऐसे मातृमन्दिर जो प्रयाग के कमला नेहरू अस्पताल के ढंग के हों, जहाँ आधुनिक ढंग पर चीर फाड़ आदि का पूरा प्रबन्ध हो। अब तो हमारे देश के कई कारखानों में इस काम के औजार पट्टियां और औषधियाँ बनने लगी है।

डा० दुबे—डाक्टर साहेब बीमारी अच्छी करने के पहले यदि हम उसे रोक सकें तो अधिक अच्छा होगा। इसके लिए आप लोगों ने क्या किया है। पहले तो भारत में दूध, दही, घी आदि की नदियाँ बहा करती थीं और भारतवासी बलवान और दीर्घायु होते थे। परंतु अब तो मखनियां दूध और वेजिटेबुल घी की भरमार है। कहाँ तक बच्चे और बूढ़े स्वस्थ्य रहें।

स० प्र०—डाक्टर दुबे जी, यह वैज्ञानिक युग है और वे दिन गए जब कि हम अपने अपढ़ ग्वालों के हाथ में गाय भैंसों को सौंप कर दूध दही और घी की नदियाँ बहा लेते थे। हमारे देश की जनसंख्या प्रतिवर्ष लगभग आधा करोड़ बढ़ रही है। और जनता का एक अच्छा अंश गावों को छोड़ कर नगरों में आ बसा है। अब तो हमारा भविष्य तभी उज्ज्वल हो सकता है जब हम वैज्ञानिक ढंग पर पशु पालन और गोधन का विस्तार करें आप देखते हैं कि हमारे देश में इस सम्बन्ध में अनेक विद्यालय खोले जा रहे हैं। हमको अपने देश की सम्पत्ति बढ़ाने के लिए अब तो एक बड़ा मत्स्य विभाग खोलना पड़ रहा है। इसी प्रकार पोलट्री फार्म या मुर्गीखाने भी खुल रहे हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि हमें देश की प्रत्येक समस्या को वैज्ञानिक ढंग से सुलझाना है और हर्ष और संतोष की बात है कि प्रत्येक विषय के विशेषज्ञ इन कामों के लिए तैयार किए जा रहे हैं।

डा० दुबे—डाक्टर साहेब! पुराने समय से हमारे यहाँ जड़ी-बूटियों का उपयोग चिकित्सा में होता आया है, मेरा अनुमान है कि इस निर्धन देश के लिये यदि इनका उपयोग किया जावे तो अधिक अच्छा होगा। अब भी तुलसी, गुर्च, बेल आदि का उपयोग गाँवों में लोग करते हैं, यदि आपकी चिकित्सा में ऐसी वस्तुओं का अधिक उपयोग किया जावे तो कम मूल्य में ही अधिक लाभ प्राप्त होगा। परन्तु मैं देखता हूँ कि हमारे रसायन के आचार्य इन बातों की ओर ध्यान न देकर विलायती औष-

धियों को ही अपनाते हैं।

स० प्र०—डाक्टर दुबे जी, समय में अब बहुत परिवर्त्तन हो गया है। लगभग बीसवर्ष पूर्व तो आपका यह लांच्छन ठीक ठहरता पर अब तो रसायनज्ञों का ध्यान चिकित्सा शास्त्र में भारतीय वनस्पतियों की ओर बढ़ता जा रहा है। आवश्यक यह है कि इन वनस्पतियों के रसों और उपयोगी अंशों के रासायनिक ढंग पर ठीक प्रकार परीक्षण हो। आज कल भारत की सभी रसायनशालाओं में इस ओर अच्छा काम किया जा रहा है। इन वनस्पतियों से प्राप्य निष्कर्षों की रासायनिक परीक्षा के अनन्तर रोगों पर इनकी वैज्ञानिक विधि से परीक्षा की जा रही है। हमारी पुरानी पद्धति की आयुर्वेदशालायें भी आधुनिक वैज्ञानिक विधिओं को अपना रही हैं, अच्छे-अच्छे कारखानों में भारतीय वनस्पतियों से औषधियाँ तैयार की जा रही हैं?

डा० दुबे—डाक्टर साहेब, मैंने आपका बहुत समय ले लिया परन्तु आपको एक या दो प्रश्नों का और कष्ट दूँगा। आजकल एटमबम या परमाणुबम की बहुत चर्चा है और उसका भयानक रूप हमारे सामने रक्खा जाता है। आखिर को यह क्या वस्तु है।

स० प्र०—मुझे हर्ष है कि आपने परमाणुबम की बात छेड़ दी। भविष्य का इतिहास यह बतायेगा कि परमाणु सम्बन्धी इन खोजों का हमारी संस्कृति पर कितना गहरा प्रभाव पड़ा है। पेट्रोल या कोयले के जलने पर जिस प्रकार हमको शक्ति प्राप्त होती है, उससे कहीं अधिक शक्ति हमको यूरेनियम के परमाणुओं के टूटने पर मिलती है और इस शक्ति के उपयोग करने का विचार जर्मन आदि देश वाले कर रहे थे। आइन्स्टाइन आदि विश्वविख्यात वैज्ञानिकों ने मित्र राष्ट्रों को सतर्क किया और अमरीका में अतुल धन के व्यय से यह परमाणुबम तैयार किया गया। इस काम में जर्मनी वाले पीछे पड़ गये, और आपने देखा देखा कि युद्ध की समाप्ति किस प्रकार परमाणुबम के कारण हुई।

डा० दुबे—मेरे विचार में अगले युद्धों में परमाणु बम का उपयोग अधिकता में होगा और यदि यह हुआ तो हमारे देश की स्थिति क्या होगी? मेरे विचार में यदि भारतीय वैज्ञानिक इस ओर ध्यान दें और परमाणु बम के कारखाने यहाँ पर भी खुल सकें तो विश्व के संघर्ष में हम भी भाग लेकर जीवित रह सकते हैं।

स० प्र०—मैं यह तो ठीक नहीं कह सकता कि भावी युद्धों में परमाणु बम का उपयोग अच्छा समझा हो जायगा। अन्तर्राष्ट्रीय विचार धारा यह है कि परमाणुओं की शक्ति के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाये जायें। पर चाहे जो भी कुछ हो, हमारे देश में अनेक ऐसी धातुयें हैं जिनका उपयोग यूरेनियम के समान परमाणुशक्ति प्राप्त करने में किया जा सकता है। इनमें से एक धातु थोरियम है, जो ट्रावनकोर के आस पास की बालू में पायी जाती है। यह हर्ष की बात है, कि हमारे वैज्ञानिक इस पर अनुसन्धान करने के लिये उत्सुक हैं। पर आप जानते ही हैं, कि परमाणुओं के इन प्रयोगों में करोड़ों रुपये का व्यय होता है; अतः हमें राष्ट्र के पूर्ण सहयोग की आवश्यकता है।

डा० दुबे—डाक्टर साहेब, हमारे ऐसे निर्धन देश के लिए करोड़ों रुपया इस विध्वंसकारी बम के लिए लगाना मुझे तो उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। दूसरे, हमारा देश का आदर्श तो अहिंसा परमोधर्मः रहा है। इस बम के प्रयोगों से पता चला है कि यह बहुत ही नाशकारी है-और निर्दोष जनता पर इसका प्रयोग करना मनुष्यता के बाहर है। यदि वैज्ञानिक इसी प्रकार के यंत्र निकालते रहे, तो मुझे पूर्ण आशा है कि निकट भविष्य में हमारी तथा विश्व की संस्कृति तथा सभ्यता नष्ट हो जावेगी।

स० प्र०—डा० दुबे! वैज्ञानिक अविष्कार इस बात का आसरा नहीं देखा करते, कि मनुष्य उनका किस प्रकार उपयोग करेगा। जिस समय गोला बारूद या डायनेमाइट का आविष्कार हुआ था, उस समय भी वैज्ञानिकों पर दोषारोपण किया गया

था। पर आज हम देखते हैं, कि इनका उपयोग शान्ति और कल्याण में भी किया जाता है। परमाणु की शक्ति का जो नृशंस उपयोग हिरोशिमा के विध्वंस में किया गया है, उसके लिए हमें पश्चात्ताप तो अवश्य है, पर इससे डरना नहीं चाहिये। आप देखेंगे कि शीघ्र ही इस शक्ति का उपयोग मोटरों और हवाई जहाजों के चलाने में किया जायगा। इसका उपयोग कारखानों की मशीनों के चलाने में होगा। जैसे बिजली, और पेट्रोल ने हमारी सहायता की, वैसी ही सहायता इससे हमें मिलेगी। लोगों को डर था कि कोयला और पेट्रोल अगर समाप्त हो गया तो संसार में कैसे काम चलेगा, पर परमाणुशक्ति के आविष्कार ने हमारी यह आशंका मिटा दी है।

डा० दुबे—डा० सत्यप्रकाश जी, आपने मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर बहुत सी समस्याओं पर प्रकाश डाला। यदि भारतीय वैज्ञानिक अपने तन मन से हमारे देश की समस्याओं को सुलझाने में लग जावें, तो हमारा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बड़ा ऊँचा स्थान हो सकता है। हमारे देश के उद्योग धन्धों और व्यवसायों में आप लोग बहुत सहायता कर सकते हैं, और इस निर्धन देश को सुखी और सम्पत्ति वाला बना सकते हैं।

स० प्र०—डा० दुबे जी, हम सब भारतीय वैज्ञानिक अपना उत्तरदायित्व समझते हैं हम यह जानते हैं, कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ऊँचा गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करने के लिये भारतीय वैज्ञानिकों को मनोयोग से कार्य करना होगा। पर जहाँ हमारा इतना उत्तरदायित्व है, वहाँ हम यह आशा भी करते हैं कि राष्ट्र और जनता से हमें सहानुभूति पूर्ण सहयोग मिलता रहेगा और हमें सन्तोष है कि देश की भावी गति विधि हमारे अनुकूल चल रही है। अच्छा, मालूम होता है कि आप जाने को उत्सुक हैं। नमस्ते।

—"रेडियो के सौजन्य से"

'हास्य'

(मनोवैज्ञानिक-विवेचन)

ले०—'शैलेन्द्र' बी० ए०

साधारणतया लोग यही समझते हैं कि हम अपनी प्रसन्नता का प्रदर्शन करने के लिये हँसते हैं। यह धारणा सर्वथा भ्रामक एवं अदूर दर्शी है। हम स्वतः ही हँसते हैं। हँसना प्राकृतिक क्रिया है। किन्तु हँसते समय हमें आनन्द का अनुभव होता है। इस भांति हँसी आनन्द का प्रदर्शन नहीं है। आनन्द की प्राप्ति तो हँसने के साथ ही होती है।

कभी-कभी हँसी समाप्त हो जाने पर एक सूक्ष्म मुस्कान होंठों पर रह जाती है। यह उस आनन्द की द्योतक है जो हमें हँसते समय प्राप्त होता है। हँसी एवं मुस्कान से सम्बन्धित आन्तरिक प्रक्रियाओं में अन्तर है।

हॉबसन (Hobson) के मतानुसार हमें हँसी दूसरे के हीनत्व पर ही आती है। जब हम दूसरे को कोई मूर्खता करते देखते हैं तो हमें अपनी योग्यता का भ्रम होता है और इस भांति हँसी हमारे मिथ्या गर्व से ही प्रेरित होती है।

कदाचित् हमारे हिन्दी एवं संस्कृत आचार्यों की भी यही धारणा थी हमारे नाट्याचार्य समझते थे कि हास्य छिछली मनोवृत्ति का परिचायक है। जब हम अपने को दूसरे से श्रेष्ठ एवं दूसरे को अपने से निम्नतर समझते हैं तब ही हास्य का उद्रेक होता है। हमारे उदारमना आचार्य इस प्रकार के मिथ्या गर्व को प्रोत्साहन देना अनुचित समझते थे। 'हास्य में द्वैत और भेद अपेक्षित हैं। भारतीय जीवन वृत्त अद्वैत परक है।'

सम्भवतः इसी कारण हास्य-रस को सब रसों में निकृष्ट माना गया है। कालिदास एवं बाण जैसे

कुशल नाटककारों तक ने हास्य-रस का समावेश करना अनुचित समझा।

भारतीय नाट्य साहित्य में प्रथम तो हास्य है ही नहीं यदि है भी तो बहुत स्थूल रूप में; क्योंकि परिहास-चेष्टा सभ्यता से च्युत मानी गई, यही कारण है कि इसका आलंबन हमारे आदर्शवादी—नाटकों के पात्रों में नहीं मिला। अतः नाटककार को इस 'आलंबन' की मुख्य पात्रों से विलग सृष्टि करनी पड़ी। यह व्यक्ति अंग्रेजी के Court-fools और पारसी ढंग के विदूषकों से बहुत कुछ साम्य रखता था। 'प्रसाद' जी ने 'स्कन्द-गुप्त' में 'मुद्गल' की सृष्टि करके इसी परिपाटी का अनुसरण किया है। यह व्यक्ति राजा का कृपा पात्र कोई भोजन-भट्ट ब्राह्मण होता था। ऊपर यह कहा जा चुका है कि यह व्यक्ति संभ्रान्त पुरुष नहीं हो सकता था क्योंकि तब तक हास्य का इतना मार्जन नहीं हुआ था कि व्यक्तित्व पर आक्षेप किये बिना हास्य का आलंबन बनाया जा सके।

अभी हास्य स्थूल रूप में था और हास्य का उद्रेक करने के लिये स्वांग, मटकना, सभा की ओर पीठ करके बैठना, गिरना आदिक उपक्रम किये जाते थे।

'शकुन्तला' का हास्य भी इसी प्रकार का है। 'अन्धेर नगरी का राजा' एवं 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' का नायक, ऐसी ही कृत्रिम चेष्टाओं के कारण साधारण पात्रों की कोटि से भी गिर गए हैं।

'बर्गसां' ने हास्य के तीन लक्षण बताए हैं।

पहला—मनुष्य तत्व की अपेक्षा।

दूसरा—सहानुभूति का अभाव।

तीसरा—घटना की अस्वाभाविकता।

वे कहते हैं कि हास्य सामाजिक क्रीड़ा होने के नाते समाज से विलग अस्तित्व नहीं रख सकता। हास्य में मनुष्य तत्व अनिवार्य रूप से अपेक्षित है। मनुष्यता की पृष्ठ भूमि पर ही हास्य का सृजन हो सकता है। एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाएगा: हम बादलों को देखकर नहीं हंसते। वृक्ष को देखकर भी नहीं हँसते, किन्तु यदि बादल की आकृति बर्नार्ड-शा के दाढ़ी युक्त मुख के समान हो जाय अथवा वृक्ष का स्वरूप बापू की झुकी हुई कमर से साम्य स्थापित करले तो हमें बरबस हँसी आ जाती है।

दूसरी बात मैंने यह कही है कि सहानुभूति का अभाव आवश्यक है। भावुकता परिहास के लिये घातक है। हम किसी को गिरते देख कर हँसते हैं, किन्तु यदि उसके चोट लग जाती है तो करुणा उद्रेक होता है। उस समय सहानुभूति हास्य को आवृत्त कर लेती है। इस भांति यदि हमारा कोई विरोधी अपनी उंगली पर हथौड़े से चोट लगा ले तो हम उन्मुक्त हृदय से हंस सकते हैं।

शैक्सपीयर के Tempest में ही देखिये: कैलिबां (Caliban) के शरीर में भयंकर खुजली उठते देखकर हम हंसते हैं। ज्यों-ज्यों उसकी व्याकुलता बढ़ती जाती है हास्य का परिमाण भी बढ़ता जाता है; किन्तु जब फर्डिनेन्ड पर दैवी कोप होता है तो हमारा आमोद विलीन हो जाता है। मनोरंजन पीड़ा के साथ ही विलीन हो जाता है। हम करुणार्द्र हो उठते हैं।

एक नीरस प्रकृति का व्यक्ति सहज ही हंस सकता है। अंग्रेज दारुण स्थिति में भी परिहास कर सकता है। शेक्सपियर को गहन से गहन परिस्थिति में भी हंसी सूझती है, कारण कि वह रुक्ष एवं तटस्थ रहता है.........और अंग्रेजी में हास्य-साहित्य का बाहुल्य है। आयरिश निवासी और भी अधिक आमोद प्रिय होता है; स्कॉट दोनों से बढ़कर। भारतीय अथवा जर्मन मौलिक रूप से गम्भीर एवं सहृदय होता है। उसे हंसी नहीं सूजती वरन् वह दूसरों को अकारण हसते देख कर खीज उठता है।

तीसरा लक्षण अस्वाभाविकता एवं असंगति है। हम किसी को कीचड़ में लथपथ देखकर हंसते हैं। कारण कि उसका स्वरूप अस्वाभाविक है। हकले मनुष्य की बोली सुन कर हम खिलखिला पड़ते हैं

कारण कि उसकी बोली अस्वाभाविक है। कोई असामयिक बात सुन कर हम हंसते हैं क्योंकि वह अवसर के लिये असंगत है।

हास्य की आधार शिला वैषम्य है।

जब तक साम्य का अभाव नहीं हो जाता हमें हंसी नहीं आती। कभी ऐसा भी होता है कि किसी लम्बी युवती में हमें हास्य की सामग्री दिखाई नहीं पड़ती। किन्तु जब उसका ठिगना पति उसके निकट खड़ा हो जाता है तब हमें बरबस ही हँसी आ जाती है। जब तक दोनों समक्ष नहीं आते, वैषम्य स्पष्ट नहीं होता।

हास्य की प्रक्रिया अत्यन्त संश्लिष्ट है। इसका सम्बन्ध मेधा से है। हंसी उसी समय आ सकती है जब हमारी मनोदशा उसके अनुकूल हो। बच्चे को गुदगुदाइये, वह ठहाका मार कर हंसेगा। यही नहीं वह वास्तव में मग्न होगा तो बारबार आपके निकट आकर गुदगुदी का आवाहन करेगा। किन्तु यदि बालक की मनोवस्था विनोद के अनुकूल न होगी तो वह भाग जाएगा अथवा रोने लगेगा। अस्तु, वही उत्तेजक क्रिया एक मनोदशा में हास्य उत्पन्न करता है दूसरी में खीज।

ऊपर कहा जा चुका है कि हास्य के लिये परिहास को समझना आवश्यक है। क्योंकि हास्य का सम्बन्ध मस्तिष्क से है अतः विकास में उच्चतरस्तर के प्राणियों में ही हास्य प्रवृत्ति मिलती है। डाक्टर यार्कस (Yerkes) ने चिमपैन्जी में भी हास्य प्रवृत्ति का होना सिद्ध किया है।

शिक्षित समाज में सूक्ष्म हास्य के लिये अधिक क्षेत्र है क्योंकि उनके मध्य एक संकेत मात्र से मनोविकार उत्पन्न किया जा सकता है।

प्रारम्भिक रूप में हास्य-प्रस्फुटित करने का एक ही उपाय था और वह था स्थूल रूप से दृश्य का उपयोग। किसी पर किसी को धक्का देकर, किसी की टोपी चुराकर अथवा किसी की थाली छिपाकर हास्य के प्रयोग किये जाते थे।

इसके बाद राज विदूषकों का युग आया। यह लोग ऐसे ही मनोरंजन के लिये वेतन पाते थे अतः वे स्वयं मूर्खता के स्वांग भरते और छिछोरपन करते थे। (विदूषकों के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है)।

कुछ चतुर विदूषकों ने तुरत-उक्ति एवं वाग्चातुर्य का अनुसंधान किया। अब स्वांग की आवश्यकता नहीं रही क्योंकि उत्तेजक की यह सामग्री अधिक प्राप्त थी। हास्य के यह रूप अधिक परिमार्जित एवं शिष्ट था।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ यह प्रथा भी प्राचीन हो गई। ज्यों-ज्यों सामाजिक जीवन (club life) में उन्नति हुई, विनोद के साधन भी परिवर्धित एवं परिष्कृत होते गए। स्वांग, उपहास (Ludicurous), व्यंगम (satire), वक्रोक्ति (irony) और विदग्ध (wit) से ऊपर परिहास (Humour) का जन्म हुआ। परिहास का अनुसंधान बड़े महत्व की वस्तु सिद्ध हुई। परिहास के द्वारा न तो किसी के व्यक्तित्व पर आक्षेप आता था न किसी प्रकार की मान-हानि की सम्भावना थी। परिहास में तीक्ष्णता नहीं होती। परिहास का प्रभाव व्यंग्य की भांति अप्रिय एवं स्थायी भी नहीं होता। अतः परिहास अधिक लोक प्रिय हुआ।

परिहास में एक गुण और भी है। हास्य के और रूपों की भांति इसमें सहानुभूति के प्रति विरोध भी नहीं है।

Dickens एवं Chaucer के परिहास में सहृदयता पर्याप्त मात्रा में है। Chaucer ने तो यहां तक कहा है कि हास्य और सहानुभूति सहोदर हैं।

परिहास के द्वारा वैषम्य एवं विलक्षणता को दूर करके समानता लाने की चेष्टा की जाती है अतः यह भारतीय मनोवृत्ति के अधिक अनुकूल है।

स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद जी ने कहा है "हास्य मनोरंजनी वृत्ति का विकास है, परन्तु हमारी जाति शताब्दियों से पराधीन एवं पददलित रही है, इस लिये हमें हँसने का अवकाश नहीं है।"

सचमुच हिन्दी को सामाजिक शान्ति प्राप्त नहीं

हुई—सामाजिक जीवन का अभाव रहा। हास्य के लिये व्यवहारिक-मनोरञ्जनी प्रकृति आवश्यक है। हिन्दी सदैव विजितों की भाषा रही है। उर्दू इसी की समकालीन होते हुए भी हास्य में अधिक सम्पन्न है।

सामाजिक प्रहसन अथवा Refined Comedy में भी हास्य का उत्तम मसाला रहता है क्योंकि यहां हमें उस स्तर पर उठना पड़ता है जहां हम स्वयं अपनी रूढ़ियों पर हँस सकें।

हास्य-भण्डार की कमी को पूरा करने के लिये लिखने वाले आधुनिक लेखकों को अधिक सफलता नहीं मिल सकती क्यों यह बलात् प्रस्तुत किया जाने वाला हास्य जीवन का सहज प्रोद्भाव नहीं होता। ऐसा लेखक जो मोटा भद्दा मजाक जीवन में पाता है, वही साहित्य में समाविष्ट कर देता है।

मैकडूगल के अनुसार, बालकों में एक भिन्न प्रकार का हास्य भी मिलता है। जब बालक पूर्ण स्वतन्त्र होता है तो उसमें स्फूर्ति एकत्रित रहती है। वह उस केन्द्रित शक्ति का प्रयोग करने के लिये किंचित उत्तेजन से और कभी-कभी अकारण हँस पड़ते हैं।

बर्गसाँ (Bergson) कहते हैं कि हम स्वयं हँसकर दूसरे को मूर्खता से सचेत करते हैं और इस रूप में समाज का उपकार करते हैं। यह तर्क कुछ जंचता नहीं; क्योंकि हँसते समय हम कोई उद्देश्य सम्मुख रख कर नहीं हँसते। वह तो एक स्वाभाविक क्रिया है।

हास्य के उपरान्त रक्त-प्रवाह और श्वासोच्छ्वास में यथेष्ट स्फूर्ति आ जाती है। थकन के उपरान्त हँसने से श्रम करने की शक्ति अनिवार्य रूप से बढ़ जाती है।

मैकडूगल का मत है कि सहानुभूति की यंत्रणा कम करने के लिये हास्य-यंत्र अत्यधिक उपयोगी है। इसी के कारण साधारण दुर्घटनाओं के समय सहरोदन के स्थानपर हास्य उच्छलित हो उठता है। ठीक उसी भांति जैसे साधारण विकृति से बिजली की व्यवस्था नष्ट होने के बदले केवल fuse wire मात्र जल जाये और बस—

इस पीड़ाबहुल संसार में हास्य की यह उपयोगिता, साधारण मूल्य नहीं रखती!

सोंठ

सोंठ के अन्य उपयोग

(अगस्त ४७ के अंक से आगे)

[लेखक—श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार गुरुकुल काँगड़ी, हरद्वार]

मनः शिला, पारा, गन्धक, संखिया और मीठे विष को सम भाग में लें। अदरक के रस से सात भावनाएं देकर छोटी सरसों के बराबर गोलियाँ बनाएं। बुखार में अदरक के रस अनुपान के साथ इस का प्रयोग करना चाहिए। यदि सरदी लगकर बुखार चढ़ रहा है तो गोलियाँ देकर रोगी कपड़ों से ढक कर सुला देना चाहिए। इससे पसीना खुल कर आ जाता है।[1] भैषज्यरत्नावलि तथा अन्य ग्रन्थों के

[1] मनः शिला रसो गन्ध ! सामृ‍धाराऽमृतञ्च वै।
आर्द्रकस्वरसेनैव मर्दयेत्तत्तोभिषक्॥
भावयेत् सप्तवाऽञ्च सप्तमाने दिने सुधीः।
वटिका सर्षपमिता कार्या वैद्येन धीमता।
आर्द्रकस्वरसेनापि यत्नयत्तापेज्ज्वरशान्तये।
स्वेदार्थं शापपेद्रोद्रं मात्रेदत्वा सुचेलकम्।

ज्वराधिकार में पठित सन्निपात भैरव, चिन्तामणि, प्रताप तपन, मन्लवतन्त्र, दाडिमपत्रौषध, रसेश्वर, त्रिदोषदावानल, श्री प्रतापलंकेश्वर कफकेतु, कस्तूरी भूषण, श्री कालानल, ज्वरमुरादि, चन्द्रशेखर, मृत-सञ्जीवन, पञ्चखण्डेश्वर, ज्वरांकश आदि अनेक रसों को अदरक स्वरस से भावना देने या रस के अनुपान से प्रयोग करने का विधान है।

बुखार में पसीना न आता हो, नींद न पड़ती हो, प्यास लगती हो तो सोंठ और आंवले से साधित घी में भुनी हुई पेया में खाण्ड गल कर पिलाना चाहिए। इससे ज्वर भी उतर जाता है।[१] सोंठ और पित्त-पापड़ा या सोंठ, चिरायता, मोथा और गिलोप के कषाय को बुखार उतारने के लिए देते हैं। ये कषाय ज्वरनाशक, दीपक, दोष का परिपाक करने वाले, प्यास को शान्त करने वाले, अरुचि और मुख की विरसता को हटाने वाले हैं।[२] वात ज्वर में सोंठ, धनियाँ और करेली का क्वाथ पिलाया जाता है।[४]

धर्मं दृष्टा च तं वस्त्रं अजेत् खादेच भत्स्यकम् ॥
स्विलतुग्दांस्त था चेसुरसं दधि च शीतलम्।
तत्परेऽहनि च स्नानं कुर्यान्निर्भय एव च ॥
भै० र०, ज्वदा०; ६२०-२३।

१ अस्वेदनिद्रस्तृतस्मर्तः पिबेत्पेयाँ सशर्कराम्।
नागरायलकैः सिद्धां घृतमृस्टां ज्वरापहाम् ॥
च० चि० अ० ३; १८७।

२ ....कषाया ज्वरनाशः।
सनागरं पर्पटकं पिबेत्.................॥
किराततिक्तकं मुस्तं गुडूचीं विश्वभोजजम्।
..................घिवेद्वा ज्वर शान्तये ॥

३ ज्वरघ्ना दीपनास्त्वेते कषाया दोषपाचना।
तृष्णारुचि प्रशमना मुखवैरस्य नाशनाः ॥
च० चि० क० ३, १९६-१९६।

४ ....मरुज्ज्वर ! स्मात् पिबतः कुतऽपम्।
क्काथोऽथ कुस्तुम्बुरुदेवदारुक्षुद्रौषधैः
माचनमत्र चारु ॥
वै० र०, ज्वका; ६५।

बुखारों में प्रकट होने वाले कुछ उपद्रवों को वश में करने के लिए सोंठ का प्रयोग होता है। अरुचि को दूर करनेके लिए अदरकके रसमें सेन्धा नमक गला कर कोसा करके मुख में रखा जाता है।[१] मसूरिका ज्वर में गला साफ करने के लिए अदरक या अदरक के रस को मुख में रखते हैं।[२] प्यास को शान्त करने और बुखार उतारने के कषायों में सोंठ भी डालते हैं।[३] चरक की तृष्णाभर्मिनवारक दस औषधियों में सोंठ का पाठ है। सोंठ के बारीक चूर्ण को खाण्ड के साथ जल में घोल कर नस्म देने से ज्वर में होने वाला हिचकी बन्द हो जाती है।[४] ज्वर में बेहोशी होने पर अदरक के रस की एक-दो बूंदें नाक में टपकानी चाहिए।[५] अदरक और बिजौरे के रस में सौंचल, सैन्धक और बिड नमक घोल कर तीक्ष्ण नस्य देने से श्लेष्मा का भेदन होता है और सिर, हृदय, गला, मुख तथा पसलियों की पीड़ा शान्त हो जाती है।[६] संन्यास रोग में बेहोशी को दूर करने के

१ अरुचौ तु शृंगवेरन रसकैः सोस्णैः
ससिन्धुजैः कवल।
भा० प्र०, म० ख, चि०, ज्वरा; ८५१

२ ....कण्ठशुद्धये।
.........कवलश्मा-र्द्रकादिभिः ॥
सि० मसुरिका, ३६।

३ ....नागरैः।
शृतशीतं जलं दद्यात्पिपासाज्वर शान्तये ॥
च० चि० or. ३; १४४।

४ देखें च० सू० अ० ४, १४ (२९)।
.........नस्मेन नूनं विनिहन्ति टिक्काम्।
शुण्ठी हठाद्वा सितया समेता.........॥
भा० प्र०, म० ख०, चि०; ज्वरा; ८६०।

५ आर्द्रकस्य रसैर्नस्यं मूर्च्छापायलरेन्नरः।
भा० प्र०, म० ख०, चि०, ज्वरा; ८४६।

६ मातुलुङ्गार्द्रकरस कोष्णं त्रिलवणान्वितम्।
अन्यद्वा सिद्धि विहितं नस्यँ तीक्ष्णँ, प्रयोजयेत् ॥
तेन प्रभिद्यते श्लेष्मा प्रभिन्नश्च, प्रसिच्यते।
शिरोहृदय कण्ठास्यपार्श्वरुक्चोपशाम्यति।
सि० यो०, ज्वरा; १५१-१५२।

लिए सोंठ से युक्त बिजौरे का रस रोगी के मुख में बारबार गला जाता है।[1]

बुखार के रोगी का मन खट्टी चीज खाने को करे तो सोंठ गले हुए खीलों के रस को अनार के रस से खट्टा करके पीने को दें।[2] सोंठ तथा हरड़ की चटनी बना कर भोजन से पहले नित्य खाने से अनेक देशों के जल से उत्पन्न होने वाले ज्वर आदि दोष नष्ट हो जाते हैं।[3] इसी प्रयोजन के लिए अदरक और यवक्षार की चटनी बना कर कोसे पानी के साथ देते हैं।[4] चार तोले सोंठ के क्वाथ में शहद डालकर जीरे से अरुचि, अग्नि की मन्दता, पीनस रोग। दमा, खांसी, पेट के रोग और खराब पानी से पैदा होने वाले सब ज्वर आदि विकार नष्ट हो जाते हैं और शरीर में कान्ति, चित्त में प्रसन्नता तथा नेत्रों में निर्मलता आती है।[5]

अदरक का टुकड़ा मुख में रख कर चबाने से कफ सुगमता से निकल आता है।[1] अदरक को गोमूत्र में पका कर कफ के रोगी को सुखाने के वास्ते दी जाती है।[2] श्लैष्मिक आवरण में अदरक कफ का निर्हरण करती है। गला बैठा हो, आवाज साफ न हो, गल-शुण्डिकाएँ बढ़ी हों तब भी दिन में दो बार अदरक की गाँठ चबा लेने से कफ निकल जाने के कारण रोगी को आराम प्रतीत होता है। अदरक के रस को शहद के साथ सेवन करने से श्वास प्रणाली के रोग, खांसी तथा जुकाम आदि दूर होते हैं।[3] पैत्तिक प्रतिश्याय को पकाने के लिए अदरक व सोंठ से पकाया घी और दूध देना चाहिए।[4] शिरोविरेचन में अदरक और इसके पत्तों का प्रयोग होता है।[5] पित्त प्रधान खाँसी में मांस, दूध मायूग आदि के रसों को सोंठ से पका कर देना चाहिए।[6] सोंठ के गरम क्वाथ को खांसी, श्वास प्रणाली के रोग, प्रकुपित वात, शूल तथा हृद्रोगों के लिए पीना चाहिए।[7] सोंठ और हरड़ के चूर्ण को खाँसी तथा

---

१ ·········तस्य स्पे गालपेन्मुहुः ॥
मातुलुङ्गरसं तदुन्महौषधसयापुतत्।
भ० सू० अ० २४, ४७-४८।

२ पिबेज्ज्वरी ज्वरहरा क्षुद्रावसाग्निदादित ॥
अम्लाभिलाषी तामेव दाडिमाम्लां सनागराम्।
च० चि०, क० ३; १७९-१८०।

३ भोजनाग्रे नरैर्भुक्त सुण्ठ्यग्जाऽपयोत्थितम्।
कहकन्तु सेवितं नित्यं नानादेशोद्भवं जलम्।
भा०, प्र०, म०, ख०, चि०, ज्वरा; ८३७।

४ सहार्द्रकयवक्षारौ पीतका कोष्णेन वारिणा।
नानादेशसमुद्भवं वारिदोषमपोहति ॥
भा०, प्र०, म० ख० १८ ज्वरा, ८३८।

५ अरुचिमनलान्ध्यं पीनसश्वासकासान्।
उदरमुदकदोषामाशु हन्यादशोषान्।
जनपति तनु कान्ति चित्तनेत्रप्रसादं।
पलपरिमित शुण्ठी श्नौद्रसिद्धः कषायः ॥
भा० प्र०, म० ख० चि० अ० १; ८३१।

१ ···········आर्द्रकेण कफे हितः।
शा०, ख० ३, अ० १०, १२।

२ देखें च० वि० अ० ८; १४९।

३ स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेन समन्वितम्।
पायपेच्छ्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥
भै० र०, कासरोगा; १८।
सि० यो०, कास०; १०।

४ पैत्ते सर्पिः पिबेत्सिद्धं शृङ्गवेरशृतं पयः।
पाचनार्थं ·····················॥
च० चि० अ० २६; १४३।

५ देखें: च० वि० अ० ८; १५८।
·····················नागरैः।

६ पित्तकासे रसान क्षीर यूषांश्चाप्युपकल्पयेत् ॥
च० चि० अ० १८, ९८।

७ नागरं विवेदुष्णं कषायञ्चाग्निवर्द्धनम्।
कासश्वासानिलहरं शूलहृद्रोगनाशनम् ॥
भै० र०, हृद्रोगा०; ४।
वृ० नि० र०, हृद्रोगा०।

दमे[1] में और इनका कल्क बना कर हिचकी[2] में भी गरम पानी से देते हैं। गुड़ के साथ बनाये अदरक के कल्क[3] को अथवा सोंठ के चूर्ण को खाण्ड[4] या गुड़[5] के साथ खाने से हिचकी दूर हो जाती है।

कटु रस वाले द्रव्य सामान्यतः वृष्य नहीं होते पर सोंठ वृष्य है।[6] चरक यद्यपि इस गुण को बहुत स्पष्ट शब्दों में लिखता है परन्तु बृहण शक्ति को बढ़ाने के लिए आयुर्वेदिक लेखकों ने इसका उपयोग प्रायः नहीं किया। चरक ने सोंठ को रुचिकारक, अग्निदीपक और वृष्य[7] लिखा है। इससे संभवतः वह इस बात की ओर संकेत कर रहा है कि वृष्य योगों के साथ रुचिकारक और अग्निदीपक के रूप में इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। बृहद पदार्थ प्रायः गुरू और देर से पचने वाले होते हैं इसलिए सोंठ उनको शीघ्र पचाने और उनके आत्मीय करण में अवश्य लाभजनक होगी। सोंठ का चूर्ण एक

---

१ सनागराभया तुल्या कासश्वासौ व्यपोहति।
सि० यो०, हिकाश्वासा०; १८।

२ अभयानागरकल्कं············।
तोयेनोष्णेन पिबेद्धिकी श्वासी च तच्छान्त्यै॥
सि० यो०, हिकाश्वासा; १०।

३ गुडार्द्रकं च दातव्यं हिकाघ्नं······।
सि० यो०, हिकाश्वासा०।

४ शर्कराश्रृङ्गवेरं च······।
···दातव्यं हिकाघ्नं······॥
सि० यो०, हिकाश्वासा।

५ नागरं गुडसंयुक्तं हिकाघ्नं···।
सि० यो०, हिकाश्वासा०, ३।

६क ···नागरं वृष्यं कटु भावृष्यमुच्यते।
च० सू० अ० २६; ७३।

ख गणः कटुकं वातलमवृष्यं मान्यत्र पिप्पलीविश्व-भेषजात॥
च० सू० अ० २७; ३।

७ रोचनं दीपनं वृष्यमार्द्रकं विश्वभेषजम्।
च० सू० अ० २७; १६३।

रत्ती, हीरा एक रत्ती और रेवन्दचीनी एक रत्ती; भोजन के बाद ऐसी एक मात्रा बलदायक औषध के रूप में सेवन की जाती है। रूक्ष पुरुष को मद्य में रख, सोंठ और तेल मिला कर पिलाया जाता है।[1]

क्षय में अग्नि मन्द हो जाने के कारण रोगी को प्रायः आंवयुक्त दस्त आने लगते हैं। मुख का स्वाद बिगड़ जाने से अन्न खाने में रुचि नहीं रहती। इस अवस्था में अग्निदीपक, अतिसार नाशक, मुख को शुद्ध करने वाले तथा अरुचिनाशक योगों का प्रयोग करना चाहिए। सोंठ और इन्द्र जौ के चूर्ण को चावलों के पानी के साथ रोगी को देते हैं।[2]

सोंठ और धनिये से पकाया पानी भी क्षय में दिया जाता है।[3] क्षीण पुरुषों के लिए चरक ने सोंठ और मुलहठी का कल्प लिखा है। इनको एक तोला से आरम्भ कर प्रतिदिन एक तोला बढ़ाते हुए आठ तोले तक बढ़ाकर एक मास तक सेवन करना चाहिए। इसके सेवन काल में दाल खाने की मनाही है। भूख लगने पर केवल दूध ही पिलाते हैं।[4]

---

१ फाणितं श्रृङ्गवेरं च तैलं च सुरया सह।
पिबेद्रूक्षः··················॥
च० सू० अ० १३; ८४।

२ प्रायेयहताग्नित्वात्सपिच्छमतिसार्यते।
प्राप्नोत्यास्यस्य वैरस्यं न चान्नमभिनन्दति॥
तस्याग्निदीपना न्योनानतीसारनिबर्हणान्।
वक्त्रशुद्धिकरान्कुर्यादरुचि प्रतिबाधकान्॥
सनागरानिन्द्रयवान्पिबेद्वा तण्डुलाम्बुना।
च० चि० अ० ८; १२२-१२४।

३ धान्यनागरसिद्धं वा············।
च० चि० अ० ८, ६७।

४ ·········अर्धकर्षविवर्धनम्।
पलं क्षीरयुतं मासं क्षीरवृत्तिरनन्नभुक्॥
एव प्रयोगः पुष्पायुर्बलारोग्यकरः परः।
·········कल्पोयं शुण्ठीय धुकयोस्तथा॥
च० चि० अ० ११; ९०-९१।

वृन्दमाधव बताते हैं कि गलगण्ड में जीभ के नीचे और पार्श्व की शिराएं जब फूल जाती हैं तो चीरा देकर उनसे खून निकाल देने के बाद रोगी को अदरक और गुड़ चबाने को देना चाहिए।[१]

कफ के जीते जाने पर जो रक्तपित्त शान्त नहीं होता वहां वायु को प्रवृद्ध समझ कर सोंठ से पकाया मीठा दूध पिलाना चाहिए।[२] गुदा से जाने वाले खून को बन्द करने के लिए सोंठ, गन्धवाला और नीलोफर से पकाया दूध हितकर होता है।[३]

अदरक से बनाई गई एक शराब को चरक मदात्यय में देते हैं।[४] मदात्यय में वायु की शान्ति के लिए चावलों की शराब में सोंठ का चूर्ण बुरक कर दिया जाता है।[५] मदात्यय के वातिक रोगी को अदरक भरे समोसे खाने को दे सकते हैं।[६] कफज मदात्यय में अदरक से संस्कृत किये हुए मांस को खिलाते हैं। अदरक को घी में भून लेने के बाद उसी में मांस को भून लें। पक जाने पर कालीमिरच, नमक, अजवाइन और सोंठ भी बुरक लें।[१] वाग्भट्ट तो मांस में बहुत सी सोंठ, कालीमिरच और अदरक आदि डाल कर समोसे तल लेने को कहता है।[२]

चक्रदत्त और वृन्दमाधव ने वातघ्न गण में सोंठ गिनायी है।[३] गृध्रसी, आमवात आदि वातिक विकारों से ग्रस्त व्यक्ति घी में भुनी अदरक का प्रयोग भोजनों में बहुत करते हैं। ताजी अदरक प्राप्य न हो तो सोंठ के चूर्ण को घी में भून लिया जाता है और खाण्ड मिला कर सेवन किया जाता है। दही और लस्सी में सोंठ का चूर्ण डाला जाता है। उरुस्तम्भ में सोंठ के गरम कषाय से धोना चाहिये।[४] अदरक का रस शहद मिला कर सेवन करने से अण्डकोश के वात विकार नष्ट होते हैं और श्वास, खांसी, अरुचि तथा जुकाम दूर होते हैं।[५]

---

१ जिह्वायाः पार्श्वतोऽधस्ताच्छिरा द्वादश कीर्त्तिताः ॥
तासां स्थूलशिरे कृष्णे छिन्द्यात्ते च शनैः शनैः।
बडिशनैव संगृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान् ॥
स्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन्दद्यात्सगुडयार्द्रकम्।
भोजनं चानभिष्यन्दि.......... ॥
सि० यो०, गलगण्डाय, ११-१३।

२ यद्रक्तपित्तं प्रशमं न याति तत्रानिलः स्यादनु तत्र कार्यम्।

३ विशेषतो विट्पथसम्प्रवृत्ते पयो हितं...।
......ह्रीवेरनीलोत्पलनागरैर्वा ॥
च० चि० अ० ४; ८५।

४ सौवर्चलानुसंविद्धं शीतं सबिडसैन्धवम्।
मातुलुङ्गार्द्रकोपेतं जलयुक्तं प्रमाणवत् ॥
च० चि० अ० २४; ११०।

५ ......शृङ्गवेरावचूर्णितम् ॥
दद्यात्सलवणं मद्यं पैष्टिकं वातशान्तये ॥
च० चि० अ० २४; १२० १२१।

६ पिशितार्द्रकगर्भाभिः स्निग्धाभिपूपवर्त्तिभिः।
......वातिकं समुपाचरेत् ॥
च० चि० अ० २४; १२५।

१ व्यक्तमारीचकं मांसं मातुलुङ्गरसान्वितम्।
प्रव्यक्त पटुसंयुक्तं यवानीनागरान्वितम्।
दृष्टं दाडिमसाराम्लमुष्णं यूपोपवेष्टितम् ॥
सघृतं पाचयेत् काले प्रभूतार्द्रकपेशिकम्।
च० चि० अ० २४; १७३-१७४।

२ प्रभूतशुण्ठीमरिचहरितार्द्रकपेशिकम्।
बीजपूररसाद्यम्लं भृष्टं नीरसवर्तितम् ॥
अ० स०, चि० अ० ९।

३ ....महौषधम्।
.........गणोमारुतनाशनः ॥
च० स०, वातव्याधिचि०; ८२।
सि० यो०, वात; ४।

४ ....विश्व.........॥
......तोयं शृतमुष्णं च सेचनम्।
च० चि० अ० २७; ५०-५१।

५ आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवातनुत्।
श्वासकासारुचिर्हन्ति प्रतिश्यायं व्यपोहति ॥
शा० स०, ख० २, अ० १;१३।
.........नागरकः शृतं वा......।
..............पयः प्रयोज्य......॥
च० सं० अ० ४; ८१ और ८३।

गणितीय शब्दावली की समस्यायें

[डा० ब्रजमोहन [

३

(२०) सम-इस शब्द के अनेक प्रयोग देखने में आए हैं। कुछ यहाँ दिए जाते हैं :—

१—सम	बराबर
समभुजीय	Equilateral
समकौणिक	Equi-angular
समता	Equality
असमता	Inequality
२—सम	Regular (समभुजीय और समकौणिक)
समबहुभुज	Regular Polygon
समचतुष्फलक	Regular Tetrahedron
समबहुफलक	Regular polyhedron
३—सम	चौरस
समतल	Plane, Plane surlace
समतलीय	Coplanar
समतल भूमि	चौरस भूमि
विषमतल	Rough Surfacc
सम परिच्छेद	Plane Seetion
४—सम	Uniform (constant)
सम गतिवृद्धि	Uniform acceleration
सम दाब	Uniform pressure
५—सम	Uniform (of uniform material)
सम छड़	Uniform Rod
सम रज्जुवक्र	Uniform Catenary
६—सम	Uniform (एकरूप)
सम संसृति	Unjform Convergence
समरूपता	Uniformity
७—सम	एक
समरैखिक	Collinear
समचक्रीय	Con-cyclic
समतलीय	Uni-planar
८—सम संख्या	Even number
विषम संख्या	Odd number
९—सम	Alike
सम समानान्तर बल	Like parallel forccs
१०—समकोण	Right angle
सम शंकु	Right cone
सम सूचीस्तम्भ	Right pyramid
सम अतिपरवलय	Rectangular Hyperbola

स्पष्ट है कि एक ही शब्द को इतने सारे अर्थों में चलाना उपयुक्त नहीं है। तथापि इनमें से कई प्रयोग रूढ़ हो चुके हैं। जब तक अत्यन्त आवश्यकता न हो, उन्हें बदलना भी ठीक न होगा। प्रथम तो हम प्रयोगों ४-६ पर विचार करते हैं। इन प्रयोगों में Uniform तीन अर्थों में आया है। इसका पहिला अर्थ तो 'बराबर' या 'अचल' है। हिन्दी का एक शब्द 'समान' भी परम्परा से इसी अर्थ में आ रहा है। अतएव, यदि हम Uniform के इस अर्थ के लिए 'समान' को निर्धारित कर दें तो अनुचित न होगा। शब्द इस प्रकार के बनेंगे --

Uniform acceleration	समान गतिवृद्धि, अचल गतिवृद्धि
Uniform motion	समान गति
Uniform pressure	समान निपीड (र)

Uniform के शेष दोनों अर्थों के लिए यदि हम एकरूप को निश्चित कर दें तो भ्रम की कोई सम्भावना न होगी। शब्दावली इस प्रकार की बनेगी—

Uniform rod	एकरूप छड़
Uniform Catenary	एकरूप रज्जुवक्र
Uniform convergence	एकरूप संसृति
Uniformity	एकरूपता

मेरा विचार है कि प्रयोग १, २ और ८ को ज्यूँ

का त्यूँ रहने दिया जाय। यह प्रयोग बहुत पुराने हो चुके हैं। शेष प्रयोगों में हम थोड़ा-थोड़ा परिवतन इस प्रकार कर सकते हैं :—

३—Plane, Plane Surfaee समतल

Coplanar	समतली
Non Coplanar	असमतली (र)
Plane Section	समतल काट, समतल परिच्छेद
Flat Surface	समतल भूमि
Smooth plane	चिकना समतल
Rough plane	रूक्ष समतल

इस प्रकार इस अर्थ में 'सम' के स्थान पर सदैव 'समतल' प्रयुक्त किया जायगा।

७—Collinear	संरेख (र)
Non-Collinear	असंरेख
Con-Cyclic	संवृत्तीय
Non-Concyclic	असंवृत्तीय
Concurrent	संगामी
Non-concurrent	असंगामी
Concentric	संकेन्द्र
Contact	संस्पर्श
Contract	संकोचन
Continue	संतन्
Uniplaner	एकतली
९—Alike	सजातीय
Like terms	सजातीय पद
Like surds	सजातीय करणियाँ
Like parallel forces	सजातीय समानांतर बल
१०—Right angle	समकोण
Right cone	लाम्बिक शंकु
Right pyramid	लाम्बिक स्तूप
Rectangular hyperbola	आयताकार अतिपरवलय

(२१) शून्य—यह शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है, Zero और Vacuum; कहीं-कहीं इस ढंग के वाक्य का अनुवाद करना पड़ता है।

In vacuum the retardation will be Zero.
इसका अनुवाद

शून्य में गति ह्रास शून्य होगा।

बहुत भद्दा लगता है। Zero की धारणा विद्यार्थियों को स्कूल की कक्षाओं के आरम्भ से ही हृदयंगम करनी पड़ती है। अतएव शून्य का यह अथ Vacuum से अधिक प्रचलित है। अतः शून्य को Zero के पर्याय के रूप में चलने दिया जाय। यदि Vacuum के लिए शब्द 'शून्यक' (र) निर्धारित कर दिया जाय तो यह कठिनाई दूर हो जायगी।

(२२) शुद्ध—यह शब्द परम्परा से Pure और Corrcet दोनों अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है। अब इन दोनों अर्थों में विवेचन करना आवश्यक हो गया है। वैज्ञानिक विषयों में इस प्रकार के वाक्य नित्य प्रयोग में आते हैं :—

The correet percentage of impurity in the Solution is 10. 32.

इसका अनुवाद होगा।

विलेय में अशुद्धि की प्रतिशतता का शुद्ध मान १०.३२ है।

यहाँ 'शुद्ध मान' के स्थान पर 'यथार्थ मान' भी कह सकते हैं। परन्तु यथार्थ भी कई अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित शब्द विचारणीय हैं :

Actual Value	वास्तविक मान	(ना० प्र० सभा)
Correet Value	यथार्थ मान	"
Accurate Value	" "	"
True Value		
Exact Value	यथार्थ मान	(ना० प्र० सभा)
Precise Value		

'वास्तविक' तो हम Real के लिए निश्चित कर चुके हैं। और स्पष्ट है कि इन सारे शब्दों के लिए अकेले 'यथार्थ' से काम नहीं चलेगा। जीवित भाषा का यह एक लक्षण है कि उसमें अर्थों के सूक्ष्मान्तर भी व्यक्त हो सकें। किसी भी कोष के देखने से पता चल जायगा कि इन समस्त शब्दों के अर्थों में थोड़ा-

थोड़ा अन्तर है। Actual को हम इस शब्दावली से अलग कर सकते हैं क्योंकि यह शब्द एक दूसरी विचारधारा का द्योतक है और यदि 'शुद्ध' को Pure के लिए निश्चित कर दिया जाय तो हम अपनी शब्दावली इस प्रकार बना सकते हैं :—

Correet	साधु
Accurate	सुसाधु, परिशुद्ध
True	सत्य
Exact	तथ्य, यथार्थ
Precise	सुतथ्य, यथार्थतम (२)

दूसरा उपाय यह हो सकता है कि Correet के लिए 'शुद्ध' को भी चलने दिया जाय और Pure के लिए 'निर्मल' अथवा कोई और शब्द ढूँढ़ निकाला जाय।

(२३) निम्नलिखित शब्दों के पर्यायों में बड़ी अराजकता फैली हुई है :—

Common, General, Ordinary, Normal

शब्द 'साधारण' General के लिए भी प्रयुक्त हो रहा है, Ordinary के लिए भी, Common के लिए भी। बहुधा वैज्ञानिकों को Generalisation के लए 'साधारणीकरण' का प्रयोग करते देखा है। शब्द 'सामान्य' Ordinary के लिए भी प्रयुक्त होता है, Normal के लिए भी*। इन शब्दों के लिए एक-एक पर्याय निश्चित कर दिया जाय तो अच्छा है। मान लीजिए हम यह पर्याय ,निर्धारित करते हैं।

Common	सार्व	(ना० प्र० सभा)
General	व्यापक	,, ,,
Ordinary	सामान्य	,, ,,
Normal	प्रकृत	

'Common' के कई अर्थ हैं। इसके दो अर्थों के लिए तो पर्याय निश्चित हैं :—

Common (to two)	उभयनिष्ठ
Common (to all)	सर्वनिष्ठ

* यहाँ Normal के ज्यामितीय अर्थ 'अभिलम्ब' से तात्पर्य नहीं है।

इन अर्थों में तो यही पर्याय चलने दिए जायँ। अन्य स्थलों पर 'सार्व' का प्रयोग किया जाय। यहाँ उपरिलिखित दोनों पर्यायों और 'सार्व' के प्रयोग में विभेद करना आवश्यक दिखाई देता है। इस हेतु मैं यहाँ तीन वाक्य लेता हूँ :—

The side A B is common to the two triangbs.

The side AB is common to all the triangbs.

The three fractions have a common denominator.

पहिले वाक्य का अर्थ यह है कि एक भुजा A B दोनों त्रिभुजों में विद्यमान है। अर्थात् प्रत्येक त्रिभुज की तीन भुजाओं में से एक A B है। दूसरे वाक्य का भी अर्थ इसी ढंग का है। परन्तु तीसरे वाक्य का अर्थ यह नहीं है कि तीनों भिन्नों का एक ही हर है वरन् यह कि हर तो अलग-अलग हैं परन्तु उनका मान एक ही है। अतएव इन वाक्यों का अनुवाद इस प्रकार होगा :—

भुजा क ख दोनों त्रिभुजों में उभयनिष्ठ है।
भुजा क ख समस्त त्रिभुजों में सर्वनिष्ठ है।
तीनों भिन्नों में सार्व हर है।

इस प्रकार 'Common' के तीन पर्याय निश्चित हो गए। परन्तु कहीं-कहीं 'Common' का एक चौथा अर्थ होता है—'सर्व साधारण' से मिलता जुलता। ऐसे स्थानों पर हम 'साधारण' का प्रयोग कर सकते हैं। मेरा तात्पर्य निम्नलिखित शब्दावली से स्पष्ट हो जायगा। यहाँ मैं उन शब्दों को छोड़े देता हूँ जहाँ 'उभयनिष्ठ' अथवा 'सर्वनिष्ठ' का प्रयोग होना चाहिए।

Common denominator	सार्वहर
Common Difference	सार्वान्तर,
Common Divisor	सार्व भाजक
Common element	सार्व तत्व
Common factor	समापवर्त्तक (प्राचीन)

Common fraction	स्थूल भिन्न(लीलावती)
Proper fraction	सूक्ष्म भिन्न ”
Common letter	सार्व वर्ण
Common Measure	सार्व भाजक
Common Multiple	समापवर्त्य (प्राचीन)
Common Ratio	सार्व निष्पत्ति, गुणोत्तर निष्पत्ति

अब मैं यहाँ कुछ शब्द ऐसे भी देता हूँ जिनमें Common के लिए 'साधारण' का प्रयोग होगा :—

Common balance	साधारण तुल्य
Common logarithm	साधारण लघुगणक
Common pump	साधारण उदंच (र)
Common Screw	साधारण पेंच

शेष शब्दों की सूची :—

Ordinary Differential Equation	सामान्य अवकल समीकरण
Ordinary point	सामान्य बिन्दु
Normal Dispersion	प्रकृत विकिरण
Normal Distribution	प्रकृत विश्लन
Normal form	प्रकृत रूप
Natural form	प्राकृतिक रूप
Normal System	प्रकृत संहृति
Normal Transformation	प्रकृत रूपान्तर
Normal Value	प्रकृत मान
General Conic	व्यापक शांकव
General Definition	व्यापक परिभाषा
General Enunciation	साधारण प्रतिज्ञा (रूढ़)
General Expression	व्यापक व्यंजक
General Formula	व्यापक सूत्र
General Integral	व्यापक अनुकल
Generalisation	व्याप्ति
Generalised	व्याप्त
Generality	व्यापकता

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य

[लेखक—डा० हीरालाल दुबे]

भारत की स्वतन्त्रता के साथ प्रत्येक शिक्षा में उन्नति की आशा की जाती है। अभी तक हमारी कोई राष्ट्रभाषा ही नहीं थी परन्तु अब शीघ्र ही भारतीय विधान सम्मेलन इस प्रश्न को भी तय कर देगा। इसमें अब कोई भी सन्देह नहीं रह गया है कि हिन्दी भारत के लिए स्वाभाविक राष्ट्रभाषा हो सकती है और होगी। संस्कृत से निकली हुई हिन्दी ही हमारी मातृभाषा है। हिन्दी वैज्ञानिक भाषा है और प्रत्येक हिन्दू अपने विचार इस भाषा में सरलता से प्रगट कर सकता है। मेरा तो विश्वास है कि जब तक भारतीय विद्वान अपनी भाषा में पठन-पाठन, लेखन तथा भाषण न कर सकेंगे तब तक देश तथा समाज में ज्ञान और विज्ञान का वास्तविक प्रचार नहीं हो सकता।

हिन्दी में विज्ञान की शिक्षा

आज हमारे सामने यह कठिन प्रश्न है कि वैज्ञानिक शिक्षा का माध्यम क्या हो? पाश्चात्य सभ्यता में रंगे हुए कुछ लोगों का मत है कि हिन्दी में वैज्ञानिक शिक्षा देना असंभव है। हमें अंग्रेजी का सहारा लेना ही पड़ेगा। उनका मत है कि अँग्रेजी के वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों की हिन्दी नहीं की जा सकती। अँग्रेजी के शब्द ज्यों के त्यों हिन्दी-लिपि में लेने होंगे। इस प्रकार अनगिनती अँग्रेजी शब्दों का बोझा जन साधारण पर लाद लेना होगा जिसका याद रखना सरल न होगा। बहुधा यह भी देखा गया है कि दूसरे प्रान्त के शिक्षक भी जो कि हिन्दी प्रान्तों में हैं, स्वार्थवश हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने में अड़चने डालते हैं और दुर्भाग्यवश

इन प्रान्तों में ऐसे शिक्षकों की अधिकता ही दीख पड़ती है। कुछ भी हो हिन्दी तो अब रुकती नहीं और हिन्दी में वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का निर्माण भी जोरों से आरम्भ हो गया है। हिन्दी की समानता बंगाली, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं से होने के कारण हिन्दी के वैज्ञानिक शब्द ही इन भाषाओं में भी उपयोग किए जा सकते हैं। इस ओर भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग और लाहौर के डा० रघुबीर का प्रयत्न उल्लेखनीय है। भारतीय हिन्दी परिषद् ने रसायन, भौतिक, बनस्पति और जीव विज्ञान के हिन्दी शब्दों का निर्माण कर लिया है शीघ्र ही अन्य विज्ञानशास्त्रों के हिन्दी शब्द तैयार हो जावेंगे। डा० रघुवीर ने इस ओर बहुत समय दिया है और उन्होंने संस्कृत के आधार पर वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया है। आजकल डा० रघुबीर मध्यप्रान्त सरकार की, वैज्ञानिक साहित्य के लिखने में सहायता कर रहे हैं और आशा है कि अगले वर्ष तक मध्यप्रान्त के विद्यालयों में वैज्ञानिक शिक्षा हिन्दी में दी जाने लगेगी।

वैज्ञानिक साहित्य की आवश्यकता

वैज्ञानिक साहित्य की आवश्यकता केवल हमारी शिक्षा के लिए ही नहीं है। स्कूल और कालेजों के लिए तो हमें हिन्दी में यह साहित्य चाहिए ही परन्तु यदि भारत अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना अस्तित्व रखना चाहता है तो हमें अपने वैज्ञानिक साहित्य की उन्नति की ओर अधिक ध्यान देना होगा। इस वैज्ञानिक युग में कोई देश विज्ञान का उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकता और यदि हमारे जन साधारण इस ओर उदासीन रहे तो हमारा भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता। हमारे उद्योग-धन्धे, कृषि और रोजगार विज्ञान पर निर्भर हैं। अपने रहन-सहन को भी विज्ञान के अनुसार करना पड़ेगा। हमें विज्ञान की आवश्यकता युद्ध और शान्ति दोनों में पड़ेगी और इन सब की सफलता वैज्ञानिक साहित्य पर ही निर्भर है।

वैज्ञानिक साहित्य के चार अंग

अभी तक तो हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य नहीं के बराबर है परन्तु अब इस ओर प्रयत्न होना आरम्भ हो गया है। वैज्ञानिक साहित्य चार भागों में बाँटा जा सकता है और वे इस प्रकार से हैं—

(१) उच्च कोटि के वैज्ञानिक साहित्य—

यह साहित्य ऊँचे दर्जे का होगा जिससे हमारे देश में अनुसन्धान तथा अन्वेषण में सहायता मिल सके। यह खेद की बात है कि अभी तक भारत में ऐसा पत्र नहीं है जिसमें हमारी भाषा में भारतीय वैज्ञानिकों के लेख तथा अनुसंधान छप सकें। अभी तक अंग्रेजी ही इस योग्य समझी गई है। किसी भी देश में ऐसा नहीं होता। हमें शीघ्रातिशीघ्र यह चाहिए कि हम एक ऐसा पत्र निकालें जिसमें कि राष्ट्रभाषा में हमारे वैज्ञानिक लेख छप सकें। इस ओर मैं अपनी लोक प्रिय सरकार का भी ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

(२) उद्योग-व्यवसाय से सम्बन्धित साहित्य

ऐसे साहित्य की हिन्दी में बहुत आवश्यकता है। विज्ञान परिषद् प्रयाग ने इस ओर प्रयत्न किया है और कुछ पुस्तकें लिखी भी गई हैं। मधुमक्खी पालन, मिट्टी के बर्तन, फल संरक्षण, उपयोगी नुसखे आदि पुस्तकों की माँग बहुत है। इसी प्रकार कई विषय हैं जिन पर हिन्दी में पुस्तकें नहीं हैं। ऐसी पुस्तकों से न केवल वैज्ञानिक साहित्य का ही भला होगा वरन् हमारे निर्धन देश में उद्योग-व्यवसाय भी बढ़ेगा। हिन्दी पढ़े-लिखों में ऐसी पुस्तकों की बहुत माँग है।

(३) जन साधारण विज्ञान साहित्य

इस प्रकार की पुस्तकें अँग्रेजी भाषा में बहुत हैं। हमें इन्हीं पुस्तकों के आधार पर इस साहित्य को बढ़ाना है। ऐसी ही पुस्तकों से जन साधारण में विज्ञान का प्रचार हो सकता है। हमें खेद है कि हमारे वैज्ञानिक इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं देते। वे केवल अनुसंधानों की ओर लगे रहते हैं। अंग्रेजी

में 'पेंगुइन सीरीज' इस क्षेत्र में बहुत उत्तम पुस्तकें निकाल रही है और इनके लेखक अपने विषय के अच्छे ज्ञाता होते हैं। इसी प्रकार की पुस्तकों की हमें भी आवश्यकता है। हमारा जन-साधारण तो विज्ञान से बिलकुल अनभिज्ञ है। यही नहीं हमारे पढ़े-लिखे लोग भी विज्ञान की पुस्तकों से डरते हैं और विज्ञान को अपनी बुद्धि से परे समझते हैं। यह डर हमें रुचिकर और उपयोगी पुस्तकें लिख कर निकालना है।

बाल विज्ञान साहित्य

आज हमारे यहाँ इस प्रकार का साहित्य तो है ही नहीं। यदि हमें आरम्भ से ही बालकों में विज्ञान की प्रेम और रुचि पैदा करना है तो हमें इस साहित्य की ओर ध्यान देना होगा। हमारे स्कूलों में नीचे की कक्षाओं में जो विज्ञान की पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनसे लाभ की जगह हानि ही दीख पड़ती है। विज्ञान में रुचि न होकर घृणा पैदा हो जाती है और उनमें वैज्ञानिक शब्द भी ऐसे होते हैं जो कि बालकों की समझ में नहीं आ सकते। हमारा बाल साहित्य भी अमेरिकन बालसाहित्य के ढंग होना चाहिए। छोटी छोटी सचित्र पुस्तकें सरल और रुचिकर ढंग में होनी चाहिए। इनमें गम्भीर विषय भी किस्से कहानी के रूप में या केवल चित्रों ही द्वारा वर्णित हों। बहुधा यह भी देखा गया है कि विज्ञान न जानने वाले भी वैज्ञानिक विषयों पर छोटी मोटी पुस्तकें लिख देते हैं। ऐसे लोग बिना समझे बूझे कई बातें गलत लिख देते हैं और दूसरे विषय को सरल और रुचिकर नहीं बना सकते। बाल साहित्य में बहुत सावधानी होनी चाहिए क्योंकि कोमल मस्तिष्क में कई बातें ऐसी जम जाती हैं कि बाद में उनका ठीक करना कठिन हो जाता है। इस कारण बाल वैज्ञानिक साहित्य भी अच्छे वैज्ञानिकों द्वारा ही लिखा जाना चाहिए।

विज्ञान परिषद् प्रयाग

भारत के हिन्दी—भाषा भाषी प्रांतो में केवल एक ही ऐसी संस्था दीख पड़ती है जिसने वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार किया है और वह है विज्ञान परिषद्, प्रयाग। लगभग ३४ वर्षों से यह परिषद् हिन्दी की सेवा कर रही है और इसका उद्देश्य रहा है कि जन साधारण में विज्ञान का प्रचार हो और अपनी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य की रचना हो। इस ध्येय को रखते हुए करीब ३४ वर्षों से यह परिषद् विज्ञान नामक मासिक पत्र निकाल रही है। हिन्दी में यह अपने ढंग का निराला पत्र है और हिन्दी साहित्य जगत् में इसकी प्रतिष्ठा है। इसमें भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक विषयों पर लेख रहते हैं। उच्च कोटि के वैज्ञानिक साहित्य में लेकर बाल साहित्य तक के लेख इसमें रहते हैं और विज्ञान के पृष्ठों में इतनी सामग्री विद्यमान रहती है कि अनेकानेक वैज्ञानिक विषयों पर सरलता से पुस्तकें लिखी जा सकती हैं।

परिषद ने करीब ३५ पुस्तकें विभिन्न विषयों पर प्रकाशित भी की हैं। स्कूल और कालेजों की उद्योग और व्यवसायों की तथा आयुर्वेद और स्वास्थ्य की पुस्तकें लिखी गई हैं। इस प्रकार हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य की सेवा परिषद ने बड़े परिश्रम और लगन के साथ की है। इस ध्येय को पूर्ण करने में वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली भी बनती गई और हमेशा यह दृष्टिकोण रहा कि साधारण वैज्ञानिक साहित्य को समझाने के लिए अंग्रेजी पढ़ना आवश्यक न हो। इस प्रकार साहित्य की वृद्धि के साथ ही साथ परिभाषिक शब्द-समूह भी बन गया। आज भी विज्ञान परिषद इस कार्य में तन मन से लगा हुआ है परन्तु धन के अभाव से उतना काम नहीं कर पा रहा है जितना कि वह करना चाहता है।

हिन्दी पत्र-पत्रिकायें

मुझे यह लिखते हुए खेद होता है कि हमारे दैनिक तथा साप्ताहिक समाचार पत्र और मासिक पत्रिकाएँ इस ओर से उदासीन रही हैं। हमारे पत्रों में वैज्ञानिक समाचारों को उचित स्थान नहीं दिया जाता यहां तक कि कुछ पत्रों में वैज्ञानिक समाचार

ही नहीं होते । यदि हमें वैज्ञानिक शिक्षा जन-साधारण को देना है तो हिन्दी के पत्रों को इस उदासीनता का त्याग करना होगा और वैज्ञानिक विषयों को वही स्थान देना होगा जो कि अभी तक 'कहानी' और 'फिल्मी दुनिया' को दिया जाता है। उदासीनता का एक और कारण भी है । जहाँ तक मुझे मालूम है हमारे पत्रों में ऐसे सम्पादक अधिकांश होते हैं जो वैज्ञानिक शिक्षा-प्राप्त नहीं होते और उनकी रुचि वैज्ञानिक विषयों की ओर कम रहती है । परन्तु इस वैज्ञानिक युग में कोई भी पत्र या पत्रिका विज्ञान को तिलांजलि नहीं दे सकती । उन्हें विज्ञान को अपनाना ही पड़ेगा और इस सम्बन्ध में यह आशा करता हूँ कि प्रत्येक पत्र अपने सम्पादकीय विभाग में कम से कम एक सज्जन ऐसा नियुक्त करेगा जो कि वैज्ञानिक विषयों का अच्छा विद्वान हो। मुझे पूर्ण आशा है कि इससे हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य को प्रोत्साहन मिलेगा ।

प्रश्नोत्तर

१२. श्री नरेन्द्र नारायण बाँदा मच्छड़ों से बचने की दवा जानना चाहते हैं।

नीचे की किसी एक दवा से मालिस करने से मच्छड़ बदन पर नहीं बैठते । शरीर के उन भागों में जो कपड़े से न ढके हों इससे मालिस करना चाहिये ।

१—सिट्रोनेला तैल	३ भाग
मिट्टी का तैल	२ भाग
नारियल का तैल	४ भाग
कारबोलिक ऐसिड	$\frac{1}{10}$ भाग
२—दालचीनी का तैल	२ भाग
काजपुती का तैल	१ भाग
फॉरमैलिन	१ भाग
ऐलकोहल (या स्पिरिट)	३० भाग
३—बोरिक ऐसिड	६० ग्रेन
वेसलिन	१ आउंस
तारपीन का तैल	३ बूँद
४—तिल का तैल	१ आउंस
अजवाइन का सत	१५ ग्रेन

गरम करके घोलो।

१३. श्रीराम कृष्ण वर्मा नरसिंह पूर कोई अच्छा दाँत का मंजन बनाने की विधि पूछते हैं।

संगजराहट	ऽ। =
लोध पठानी	ऽ।
कत्था	५ तोला
सीप का चूना बुझा हुआ	५ ,,
मौलश्री की छाल	५ ,,
बायबिडंग	५ ,,
अकर करा	५ ,,
कायफल	५ ,,
माजूफल	५ ,,
नीला थोथा	१ ,,
खाँड	ऽ।
इलायची	६ माशा
पिपरमिंट	३ माशा

सबको बारीक पीस कर मंजन करते रहें। दाँतों की हर एक बीमारी में लाभ दायक है। दाँत को साफ रखता है।

वैज्ञानिक समाचार

१ वैज्ञानिक अन्वेषण में तीव्रता लाने के लिए प्रधान मंत्री की अपील

२५ अगस्त को नयी दिल्ली में औद्योगिक एवं वैज्ञानिक अनुसन्धान परिषद् की प्रबन्ध समिति की बैठक की अध्यक्षता करते हुए भारत के प्रधान मन्त्री ने जो भाषण दिया उससे प्रकट हो गया कि वैज्ञानिक अन्वेषण की दिशा में भारत सरकार और विशेषतः प्रधान मन्त्री महोदय कितनी गहरी दिलचस्पी ले रहे हैं।

प्रबन्ध समिति को सम्बोधित करते हुए पंडित नेहरू ने उन अनेक तात्कालिक समस्याओं का उल्लेख किया जो उस समय उनका ध्यान बटा रही थीं और मस्तिष्क पर जिनका अधिकार होते हुए भी उन्होंने प्रबन्ध समिति की बैठक में सम्मिलित होने का निश्चय कर रखा था। अपने भाषण में पंडित जी ने कहा: "मैं इस बैठक में दोनों हैसियतों से शामिल होना चाहता था। व्यक्तिगत हैसियत से, इसलिए कि वैज्ञानिक शोध में मेरी अनुरक्ति है और सरकारी हैसियत से इसलिए कि ताकि यह जाना जा सके कि भारत के वैज्ञानिक विकास को हम कितना महत्व देते हैं।......शीघ्र ही हम अनेक प्रकार की योजनाओं पर विचार करने लगेंगे और उस समय आपका परामर्श मूल्यवान सिद्ध होगा। हमें बड़ी तीव्रता से अग्रसर होना पड़ेगा। एक महान परिवर्तन के बाद हमें बहुसंख्यक समस्याओं का सामना करना है।

इस बैठक में वैज्ञानिक अन्वेषण की आठ योजनाओं को स्वीकार किया जिन पर कुल ८३७००० रुपये खर्च होंगे। इन योजनाओं के अतिरिक्त परिषद् ने बनस्पति तेलों, सेलुलोज, विद्युत-रासायनिक और रासायनिक उद्योगों, खनिज उद्योगों आदि के सम्बन्ध में विशेषज्ञों से अपनी अनुसन्धान योजनाएं विचारार्थ भेजने का निवेदन किया।

बैठक में यह भी निश्चय किया गया कि औषधि विषयक सामान्य अन्वेषण के लिए देश में एक केन्द्रीय औषधिअन्वेषणशाला के सम्बन्ध में विस्तृत योजनाएँ तैयार की जा रही हैं और शीघ्र ही उन्हें पूरा कर डाला जायगा।

फौजी और गैर-फौजी कामों के लिए भारत में अन्तर्दाही इंजन तैयार करने और इस उद्योग को विकसित करने के सम्बन्ध में भी सोचविचार किया गया। परिषद् ने इस सम्बन्ध में कई महत्वपूर्ण सिफारिशें पेश कीं। रेलगाड़ियों के लिए जमीन पर दौड़ने वाले और बिजली इत्यादि बनाने के लिए स्थिर भाव से खड़े रहने वाले इंजनों की परीक्षा के लिए एक राष्ट्रीय अन्तर्दहन इंजीनियरिंग प्रयोगशाला स्थापित करने का निश्चय किया गया। १५ छात्रों को अन्तर्दाही इंजनों के सम्बन्ध में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश भेजा जायगा।

परिषद् ने अन्तर्दाही इंजनों के सम्बन्ध में कर्मचारियों को ट्रेनिंग देने और इस विषय पर अन्वेषण करने के लिए बंगलौर के इंडियन साइंस इंस्टियूट को २३ लाख रुपये देने की सिफारिश की। एक भारतीय वायुयान प्रतिष्ठान, एक नौसैनिक प्रतिष्ठान और एक अन्तर्दाही इंजन विकास बोर्ड की स्थापना की भी सिफारिश की गयी।

परिषद् ने भारतीय जड़ी-बूटियों के सम्बन्ध में एक विवरण पुस्तिका और एक लोकप्रिय विवरण पुस्तिका भारत के सुगंधित पौधों के सम्बन्ध में प्रकाशित करने का निश्चय किया।

सर सी० वी० रमन के निरीक्षण में भौतिक एवं रासायनिक अनुसन्धानों के लिए बंगलौर की इंडियन अकेडमी आफ साइंसेज़ की अन्वेषणशाला को ३ लाख रुपये देने की स्वीकृति दी गयी।

राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं के संचालक

परिषद् ने राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के लिए प्रोफेसर के० एस० कृष्णन को और राष्ट्रीय रसायनिक प्रयोगशाला के लिए डाक्टर एस० सिद्दीकी को संचालक नियुक्त करने की स्वीकृति दी है। जमशेदपुर की राष्ट्रीय धातुशोधन प्रयोगशाला के संचालक पद के लिए अमेरिका के डाक्टर सैक्स को चुना गया है जो धातुशोधन विषय के संसार के सर्वाधिक मान्य विशेषज्ञ हैं।

माननीय डाक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी को कौंसिल का उपाध्यक्ष चुना गया है।

२ युक्त प्रान्तीय वैज्ञानिक अनुसंधान समिति

यह हमारे प्रान्त के लिए अत्यन्त ही सौभाग्य का विषय है कि हमारी काँग्रेस सरकार का ध्यान वैज्ञानिक अनुसंधान की ओर गया है। विश्व-विद्यालयों में तथा अन्य औद्योगिक संस्थाओं में

वैज्ञानिक अनुसंधान की उन्नति करने के लिए सरकार ने एक समिति बनाई है जो बोर्ड आफ सांइटिफिक तथा इंडस्ट्रियल रिसर्च की भाँति यू० पी० सरकार को वैज्ञानिक विषयों पर परामर्श देगी। इस समिति के अध्यक्ष सर कृष्णमाणिकम् श्री निवासन् कृष्णन जी हैं और मंत्री हमारे विज्ञान' के भूतपूर्व सम्पादक डाक्टर सत्यप्रकाश जी नियुक्त किये गये हैं। इनके अतिरिक्त समिति पर निम्नलिखित सदस्य और नियुक्त किये गये हैं।

(१) डाक्टर नील रत्नधर, (२) डाक्टर बीरबल साहनी, (३) डाक्टर फारुकी, (४) डाक्टर अवध बिहारी मिश्र, (५) डाक्टर अ० प्र० माथुर, (६) प्रिंसपल एग्रीकलचर, कालेज कानपुर.(७) प्रिंसपल हारकोर्ट बटलर टेकनीलाजिकल इंस्टीट्यूट, कानपुर, (८) डाक्टर अ० च० चटर्जी, (९) डाक्टर एन० एन० गाडबोले, (१०) डाक्टर अग्निहोत्री, (११) डाक्टर बाबा करतार सिंह।

३ सेठ हजारीलाल

सेठ हजारीलाल गुप्त उन मनुष्यों में से हैं जो अपने धन को देश का धन समझते हैं और गाँधी जी के अनुसार वे अपने धन के केवल ट्रस्टी हैं। इधर कुछ दिनों से उनका ध्यान प्रयाग की विज्ञान परिषद् की ओर गया और उन्हें इस संस्था की उपयोगिता मालूम पड़ी। यह देखते हुए वे स्वयं इस संस्था के संरक्षक बन गये और परिषद् को समय समय पर आर्थिक सहायता देने के लिए तैयार हो गए। हमें आज ऐसे दानवीरों की आवश्यकता है। हमारी लोकप्रिय सरकार की ओर प्रत्येक संस्था को आर्थिक सहायता के
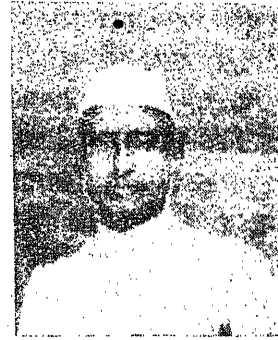
लिए ताकते रहना बहुत उचित नहीं जान पड़ता परन्तु सेठ हजारीलाल के समान दानवीरों से हमारी समाज को बहुत लाभ हो सकता है।

सेठ जी का जन्म उड़ीसा में हुआ था। आज आप केवल ३४ वर्ष के हैं और दारागंज, प्रयाग में रहते हैं। आपका व्यापार कलकत्ते, बालासोर और अलवर में होता है। आपकी कई मिलें चावल और तेल की हैं।

हजारीलाल जी से हमें बहुत आशा है और वे अपने देश, समाज और धर्म की सेवा बराबर करते रहेंगे।

विज्ञान-परिषद्‌की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञान की प्रारम्भिक बातें सीखने का सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ;

२—चुम्बक—हाईस्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०, सजि०; ॥=)

३—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १ा),

४—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१५ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें, मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०; ॥।),

६—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी, प्रथम भाग १॥) द्वितीय भाग ॥=),

७—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसादअग्निहोत्री बी० एस-सी० ; ।ा),

८—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

९—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।=),

१०—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

११—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१२—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१३—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१४—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ॥।),

१५—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह, १)

१६—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण—फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह एम० एस-सी०, २),

१७—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १॥)

१८—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १॥),

१९—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र, सजिल्द, १॥),

२०—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिश करनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामयतन भटनागर, एम०, ए०, २१८ पृष्ठ, ३१ चित्र, सजिल्द; १।।),

२१—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा विज्ञानके बराबर २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं! प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २।।);

२२—कलम-पैबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १।।),

२३—जिल्दसाजी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाजी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द १।।),

२४—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२५—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२६—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ५२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६), मिल है।

२८—वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२९—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—विज्ञान हस्तामलक—ले०—स्व० रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगका यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रोंसे सुसज्जित है, आजतककी अद्भुत बातोंका मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयोंमें भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञानकी एक समूची लैब्ररी, है एक ही ग्रंथमें विज्ञानका एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२—सौर-परिवार—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७९ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२) इस पुस्तक पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक

३—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियाँ—ले० श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द, मूल्य २।।) अजिल्द ३)

४—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों इंजन-ड्राइवरों, फ़ोरमैनों और कैरेज एग्जामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र

भाग ६६ | सम्वत् २००४, दिसम्बर १९४७ | संख्या ३

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces,
for use in Schools and Libraries

प्रकाशक
विज्ञान-परिषद्,
बेली रोड, इलाहाबाद ।

[एक संख्या का मूल्य ।)

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्की इस उद्देश्यसे स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकमदे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उसका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

विषय सूची

विज्ञान

विज्ञान-परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६६	सम्वत् २००४, दिसम्बर, १९४७	संख्या ३

गणितीय शब्दावली की समस्यायें

(डा० ब्रज मोहन)

(४)

[२४] स्थानान्तरण—इस शब्द के दो प्रयोग देखे गये हैं :—

स्थानान्तरण Transference

स्थानान्तरण Displacement [ना० प्र० सभा)

साधारण भाषा में यह शब्द Transference के लिये रूढ़ हो चुका है और इसी शब्द के लिए ही यह उपयुक्त प्रतीत होता है। Displacement के लिए हम 'स्थानच्युति' अथवा 'निस्थापन' [र] नियुक्त कर सकते हैं।

[२५] मूल—यह शब्द Root और Fundamental दोनों के लिए प्रयुक्त हो रहा है। परन्तु कहीं कहीं इस ढङ्ग का वाक्यांश

The fundamental roots of the equation

भी प्रयोग में आता है। यहाँ यदि हम इसका इस प्रकार

समीकरण के मौलिक मूल

अनुवाद करें तो एक अन्य कठिनाई यह आन पड़ती है कि 'मौलिक' Original के लिए प्रयुक्त होता है। इन दोनों अर्थों को पृथक रखना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में मेरे प्रस्ताव यह हैं :—

Fundamental formula मूल सूत्र

Fundamental law मूल नियम

Fundamental operation मूल क्रिया

Fundamental Root आधार भूत मूल, मौली मूल

Original Root मौलिक मूल

Original value मौलिक मान

Radical Axis मौलाक्ष

Radical centre मौल केन्द्र

Radical difference मौलिक अन्तर

Radical sign करणी चिन्ह

[२६] सिद्धान्त—यह शब्द Principle और Theory दोनों के लिये प्रयोगों में आ रहा है। जब हम कहते हैं 'आर्किमेडीज का सिद्धान्त' तो हमारा तात्पर्य एक विशिष्ट नियम से होता है। परन्तु जब हम कहते हैं 'समीकरण सिद्धान्त' तो उसका अर्थ

होता है 'एक सिद्धान्त-समूह का दिग्दर्शन' यदि हम Principle के लिये 'नियम' को निश्चित कर दें और 'सिद्धान्त' का प्रयोग केवल Theory के लिये करें तो संभ्रम की सम्भावना नहीं रहेगी।

[२७] विषम--इस शब्द के कई प्रयोग देखे गये हैं :—

विषम	Irregular
विषम भिन्न	Improper fraction
विषम संख्या	Odd number
विषम समानान्तर बल	Unlike parallel forces
विषम	Unequal
विषम गतिवृद्धि	Variable acceleration
विषम संसृति	Non-uniform convergence

अवश्य ही एक शब्द का प्रयोग इतने सारे अर्थों में नहीं होना चाहिये। यदि यह समस्त प्रयोग प्रचलित रहें तो 'विषम फलिन' का क्या अर्थ होगा Odd function अथवा Irregular function? इसके अतिरिक्त Unlike parallel forces और Unequal parallel forces के अनुवाद में कोई अन्तर नहीं होगा।

इन प्रयोगों में से तीसरा प्रयोग सब से अधिक रूढ़ प्रतीत होता है। शेष प्रयोगों में हम इस प्रकार परिवर्तन कर सकते हैं :—

Regular function	नियमित फलिन
Irregular function	अनियमित फलिन
Proper fraction*	सूक्ष्म भिन्न
Improper fraction*	स्थूल भिन्न
Like parallel forces	सजातीय समानान्तर बल
Unlike parallel forces	विजातीय समानान्तर बल
Equal angles	समान कोण
Unequal angles	असमान कोण
Canstant acceleration	अचल गतिवृद्धि
Variable acceleration	विचल गतिवृद्धि।

Uniform convergence	एकरूप संसृति
Non-uniform convergence	अनेक रूप संसृति

[२८] सर्वथासम—यह शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है Identical और Identically Equal. परन्तु इन दोनों अर्थों में वास्तविक अन्तर है। जब हम कहते हैं

Point A is identical with point B.

तो इसका अर्थ यह होता है कि बिन्दु A और B एक ही हैं। परन्तु जब हम कहते हैं

Triangles ABC, DEF are identically equal.

तो इसका अर्थ यह होता है कि दोनों त्रिभुज एक हैं। वरन् यह कि एक त्रिभुज के समस्त अंग क्रमानुसार दूसरे त्रिभुज के अंगो के बराबर हैं। यदि हम इन दोनों अर्थों के लिये एक ही शब्द का प्रयोग करते रहेंगे तो संभ्रम की बहुत सम्भावना है। अतएव यदि इन अर्थों में इस प्रकार विवेचन कर लिया जाय तो अच्छा है :--

Identical	अनन्य, एक ही
Identically equal	सर्वाङ्गसम, सर्वथासम

[२९] कल्पित—ना० प्रा० सभा की शब्दावली में यह शब्द Imaginary के अर्थ में दिया हुआ है जो सर्वथा अनुचित है। 'कल्पित' का अर्थ है "कल्पित किया हुआ" अर्थात् Supposed, imagined, assumed और imaginary का अर्थ इससे सर्वथा भिन्न है। यदि यह शब्द 'imaginary' के अर्थ में प्रयुक्त रहा तो किसी स्थल पर यह पता चलाना कठिन हो जायगा कि 'कल्पित राशि' से तात्पर्य assumed quantity का है अथवा imaginary quantity का। इसके अतिरिक्त हम

Our assumed imaginary quantity.

का अनुवाद कर ही न पायेंगे। अतएव यह आवश्यक है कि 'कल्पित' को Supposed का ही पर्याय माना जाय और imaginary के लिये 'काल्पनिक' का प्रयोग किया जाय जैसा कुछ लेखक करने लगे हैं।

---

* देखो इस माला तीसरा लेख-विज्ञान ६६ [२००४] ४०-३

[३०] आकार--यह शब्द चार अर्थों में प्रयुक्त होते देखा गया है :--

Size, Shape, From, Figure

स्पष्ट है कि इन चारों अर्थों में तो एक शब्द चल ही नहीं सकता। यदि हमें कहना हो

The size and shape of the figure.

तो हिन्दी में किस प्रकार कहेंगे ? इसके अतिरिक्त इस प्रकार के वाक्य

The bodies rêsemble in shape but not in size.

का अनुवाद भी दुस्तर हो जायगा। यह आवश्यक है कि ऊपर लिखे चारों शब्दों के लिये पृथक पृथक शब्द निश्चित कर दिये जायँ। हम अपनी शब्दावली इस प्रकार की बना सकते हैं :--

Size	परिमाण
Shape	आकार
Form	रूप
Figure	आकृति

[३१] उदाहरण—यह शब्द इन तीनों शब्दों के लिए प्रयोग में आ रहा है :—

Illustration, Example, Instance.

पिछले दोनों शब्दों का अर्थ तो प्रायः एक ही है। परन्तु पहिले और दूसरे में थोड़ा सा अन्तर है। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं पर हमें

Illustrative Example

का भी अनुवाद करना होगा। अतएव, इन दोनों शब्दों में विवेचन करना आवश्यक है। मेरा तत्सम्बन्धी प्रस्ताव यह है :—

Example	उदाहरण
Illustration	दृष्टान्त
Illustrative Example	दृष्टान्तिक उदाहरण, द्योतक उदाहरण

[३२] अनियमित—ना० प्रा० सभा की शब्दावली में यह शब्द इन दोनों अर्थों में दिया है।

Incommensurable, Random

इन दोनो शब्दों के अर्थों में आकाश, पाताल का अन्तर है। यदि हम कहें कि

मान लो कि य कोई अनियमित राशि है

तो इसका क्या अर्थ निकलेगा ?

Let x be any incommensurable quantity अथवा Let x be any quantity, taken at random ?

इस सम्बन्ध में एक शब्द और भी विचार करने योग्य है :--

करणी	Surd
करणीगत	Irrational
अकरणीगत	Rational

इन शब्दों पर एक आपत्ति तो यह है कि Rational जैसे धनात्मक शब्द के लिये ऋणात्मक शब्द 'अकरणीगत' क्यों रक्खा जाय। दूसरी बात यह है कि 'अकरणीगत' का अर्थ है 'जो करणी न हो।' परन्तु केवल Rational संख्यायें ही तो ऐसी नहीं हैं जो करणीगत न हों। Transcesdental संख्यायें भी 'करणी' नहीं कहलाई जा सकतीं, परन्तु यह Rational नहीं होतीं। यह तो Irrational से भी परे हैं। अतएव 'करणीगत' और 'अकरणीगत' उपयुक्त प्रतीत नहीं होते। इस सम्बन्ध में डा० रघुवीर के शब्द विचारणीय हैं जो यहाँ दिये जाते हैं :—

Rational	सुमेय
Irrational	दुर्मेय
Commensurable	समेय
Incommensurable	असमेय

'अनियमित तो हम [२७] में Irregular के लिये नियत कर चुके हैं। 'Surd' के लिये प्राचीन शब्द 'करणी' को बदलने का कोई कारण दिखाई नहीं देता। Random के लिये 'स्वेच्छ' का प्रयोग हो सकता है वैसा हम ऊपर कह चुके हैं।※

※ देखो इस माला का दूसरा लेख—विज्ञान ६५ (२००४) १३२-६

[३३] अनन्त—यह शब्द Infinite और Infinity दोनों के लिये प्रयुक्त हो रहा है। यदि इन प्रयोगों को चलने दिया जाय तो

अनन्त रेखा

का अर्थ 'Infinite Line' भी हो सकता है, तथा Line at Infinity' भी। इस प्रकार के संभ्रम को मिटाने के लिये 'Infinity' के लिये कोई पृथक शब्द रखना ही होगा। मेरी समझ में इसके लिये 'अनन्ती' शब्द अनुपयुक्त न होगा। हमारी तत्संम्बन्धी शब्दावली का यह रूप होगा :—

Infinite Integral	अपरिमित अनुकल
Infinite Limit	अपरिमित सीमा
Infinite Product	अनन्त गुणनफल
Infinite Quantity	अपरिमित राशि
Infinite Sequence	अनन्त अनुक्रम
Infinite Series	अनन्त श्रेणी
Infinitude	अनन्तता
Infinity	अनन्ती
Circular Points at Infinity	अनन्ती वर्तुल बिन्दु
Line at Infinity	अनन्ती रेखा
Plane at Infinity	अनन्ती समतल
Point al Infinity	अनन्ती बिन्दु
Sum to Infinity	अनन्ती तक योग
Tangent at Infinity	अनन्ती स्पर्शी

[३४] यन्त्र—यह शब्द इन चार शब्दों के लिये प्रयुक्त हो रहा है :—

Instrument, Apparatus, Machine, Machinery.

मान लीजिये कि हमें इन दोनों वाक्यों का अनुवाद करना है :—

Six instruments are required for the apparatus,

The machinery consists of five machines.

तो इनमें से प्रत्येक वाक्य में दो भिन्न अर्थों में दो स्थानों पर 'यन्त्र' का प्रयोग होगा। अतएव ऊपर लिखे चारों शब्दों के लिये पृथक-पृथक पर्याय निर्धारित करने ही होंगे। एक प्रस्ताव यह है :—.

Instrument	उपकरण
Apparatus	साधित्र = (साधक + यन्त्र) (र)
Machine	यन्त्र
Machinery	(यन्त्र समूह) संयन्त्र (र)

[३५] अन्तर—इस शब्द का प्रचलित अर्थ तो Difference है ही, परन्तु नागरी प्रचारिणी सभा की शब्दावली में Interval का पर्याय भी यही शब्द दिया है। यह सर्वथा अनुचित है। इस प्रकार तो हम

The difference between the intervals.

का अनुवाद कर ही न पायेंगे। इसके अतिरिक्त Interval of space और Interval of time में भी भेद करना होगा। हम अपनी शब्दावली इस प्रकार बना सकते हैं :—

Interval [of time]	अन्तर्धि
Interval [of space]	अन्तराल
Sub-interval [of time]	उपान्तर्धि
Sub-interval [of space]	उपान्तराल
Class interval	वर्गान्तराल
Closed interval	बन्द अन्तराल
Interval of convergence	संसृति अन्तराल
Open interval	खुला अन्तराल
Overlapping interval	प्रारोहक अन्तराल

[क्रमशः]

नेत्र के कुछ रोग और उनकी चिकित्सा

(लेखक—कविराज वागीश्वरी प्रसाद पाठक जी० ए० एम० एस०)

सृष्टि के सभी सजीव प्राणियों के ईश्वर प्रदत्त-ज्ञानेन्द्रियों में नेत्र का महत्व सबसे अधिक है। जगत् के सभी दृश्यमान पदार्थों का ज्ञान नेत्रों के द्वारा होता है। नेत्रों के बिना सम्पूर्ण जगत अन्धकारमय है। सभी ज्ञानेन्द्रियों में नेत्रों का मूल्य अत्यधिक होने से इनकी रक्षा के लिए पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। नेत्रों में होने वाले रोग चाहे बड़े हों या छोटे, अधिक कष्टदायक हों या अल्प, अविलम्ब योग्य चिकित्सक की सम्मति से उपयुक्त उपाय करना हितकर है इस विषय की हिदायत के लिये वाग्भट ने लिखा है—

सर्वात्मना नेत्र बलाय यत्नं कुर्वीत नस्याञ्जन तर्पनाद्यैः।

नेत्र चिकित्सा में अञ्जन, आश्च्योतन, तर्पण और पुटपाक आदि क्रियाएँ प्रयुक्त होती हैं। सुश्रुतोक्त नेत्र चिकित्सा में उक्त सभी क्रियाएँ प्रधानतः की जाती हैं। आज भी पाश्चात्य विधि के अनुसार जो चिकित्सा प्रयुक्त होती है, प्राचीन अञ्जनादि पुटपाकान्त कर्मों से कुछ भी भिन्न नहीं है। नेत्र के रोग अनेक हैं सुश्रुतानुसार कुछ रोग की परिगणना आज प्रत्यक्षरूप से देखी जाती है। इन रोगों का विभाग नेत्र के अवयवानुकूल पृथक् पृथक् किया गया है। यथा—श्वेतभागगत, कृष्णभागगत, सन्धिगत, सर्वगत और दृष्टिगत इत्यादि—। यहाँ कृष्णगत रोगों से इस लेख का सम्बन्ध है अतः आपको कृष्णगत रोगों का दिग्दर्शन कराता हूँ।

नेत्र के कृष्णगत रोगों का वर्णन करते हुए महर्षि सुश्रुत ने लिखा है :—

यत्सव्रणं शुक्रमथाव्रणंवापाकात्ययश्चाप्यजकातथैव चत्वार एतेऽभिहिताः विकाराकृष्णाश्रयः संग्रहतः पुरस्तात्॥

मतलब यह कि सव्रनशुक्र (Corneal ulcer) अव्रण शुक्र (Corneal opacity), पाकात्यय और अजका नाम के रोग नेत्र के कृष्ण भाग में होते हैं। कृष्ण भाग, गत रोगों में सव्रणशुक्र का वर्णन और चिकित्सा यहाँ दी जाती है—

सव्रणशुक्र (Corneal ulcer)

जब अधिक समय तक नेत्रों को किसी दाहक पदार्थ की ओर देखने के लिये प्रयोग किया जाता है तो उससे कनीनिका (Cornea) पर जो व्रण होते हैं उसे सव्रण शुक्र कहते हैं। सव्रणशुक्र के अनेक और भी कारण हैं—यथा अधिक प्रकाशमय, अल्प प्रकाशमय एवं आघात आदि निमित्त सव्रण शुक्र होने के सहायक हैं। कनीनिका के किसी भी भाग में या सम्पूर्ण में होते हैं। समाज में अन्धों की संख्या वृद्धि में यह रोग प्रधान समझा जाता है। जब व्रण अच्छा हो जाता है, कनीनिका पर उजाला व्रणचिन्ह (Scar) वर्तमान रह जाता है। इसी व्रणचिन्ह को अव्रण शुक्र (Corneal opacity) कहा जाता है। यह व्रण चिन्ह अपारदर्शी होता है। जब दृष्टि के सामने व्रण चिन्ह पड़ जाता है तो अपना अपारदर्शित्व के दोष के कारण कनीनिका को भी अपारदर्शी या अर्धपारदर्शी बना देता है। कनीनिका में अपार दर्शित्व दोष से दृष्टि शक्ति नष्ट हो जाती है। क्योंकि प्रकाश की रश्मियाँ कनीनिका की माध्यम से पार नहीं होती और तेजःपटल (Retina) तक पहुँचने में असमर्थ हो जाती हैं। कनीनिका के मध्यांश के अतिरिक्त अन्य भाग में व्रण चिन्ह होने पर दृष्टि शक्ति वर्तमान रहती है। इस व्रण चिन्ह को अपारदर्शित्व दोषानुसार तीन भाग में विभक्त करते हैं—यथा—यदि व्रणचिन्ह की अपारदर्शकता अल्पतम हो तो

Nebula, अल्पतर हो तो Mecula और अल्प होने पर Leucoma कहा जाता है।

सव्रण शुक्र के अनेक कारण बतलाये गये हैं। यह अनेक शारीरिक रोगों के होने पर या अन्य नेत्र गत व्याधियों के उपद्रव रूप भी होते हुए देखा जाता है। यथा—शीतला, संक्रामक ज्वर, नेत्राभिष्यन्द (Conjuctivitis) नेत्रपाक और पोथकी (Trachoma)

सव्रण शुक्र के भेद बहुत हैं—यथा (कृमिजन्यव्रण (Septic ulcer)

यह कृमिजन्य सव्रणशुक्र अत्यन्त भयानक संक्रामक रोग है। यह उन मजदूर वर्गों में जो हाथों से कोयले की खानियों में काम करते हैं ज्यादा होता है।

लक्षण—प्रथम व्रण की अवस्था साधारण रहती है। दो या तीन दिनों के अन्दर नेत्रों में तीव्र वेदना (काटने या सुई चुभोने की तरह) प्रारम्भ हो जाती है। नेत्र के अतिरिक्त शंख प्रदेश और शिर में भी वेदना का प्रादुर्भाव होता है। नेत्र लाल हो जाते है। प्रकाशासहिष्णुता, अश्रुस्राव, कनीनिका पर धब्बे या गढ़े आदि लक्षण होते हैं। जिससे निद्रानाश बेचैनी और नेत्र के पलकों में किंचित् शोथ भी हो जाते हैं। इसका लक्षण सुश्रुत ने लिखा है—

निमग्न रूपंहि भवेतु कृष्णे सूच्येव विद्व प्रति भातिय द्वै।
स्रावः स्रवेदुष्णमतीव रूकच तत्सव्रणंशुक्रमुदाहरन्ति॥

चिकित्सा—पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार व्रण को रोकने के लिये क्षारीय या अम्लीय दाह (Touching & Cautising) कर्म किया जाता है। यदि शारीरिक रोगों के उपद्रुत दशा में हुआ हो, तो दोनों की चिकित्सा की जाता है। व्रण को पूरण के लिये व्रण पूरक मलहम (Yellow ointment) का प्रयोग होता है। नेत्रों में हरा चश्मा लगाना चाहिये, प्रतिदिन नेत्र स्नान के लिए कृमिघ्न विलयन (Silver nitrate Solution १ %) का प्रयोग हितकर है। प्राचीन चिकित्सक इसके लिये—यशदभस्म को मिथुनान्नन के साथ मिश्रित कर प्रयोग करते हैं। व्रण अच्छा होने पर चिन्ह को मिटाने के लिये आयोडिन का मलहम अर्वाचीन मतानुसार श्रेष्ठ समझा जाता है। शारीरिक अवस्था पर भी विशेष ध्यान देना नितान्त आवश्यक है। कोष्टशुद्धि करा कर रोगी को बलवर्द्धक औषधि देना हितकर है। स्वच्छता पर अधिक ध्यान रहना चाहिये। यदि रक्त में अन्य रोग के विष मौजूद हो तो रक्त परीक्षा कराकर उचित उपाय करना श्रेष्ट है।

(क्रमशः)

———

अचेतनकारी पदार्थों की शतवार्षिकी

(ले०—डा० अरुण दे, सागर विश्वविद्यालय)

मानव जाति के कष्टों को कम करने में रसायन विज्ञान की देन सब से अधिक है। आधुनिक युग में जितनी औषधियों का प्रयोग होता है, वे सब रासायनिक पदार्थ हैं। रसायनज्ञ ने ही चिकित्सा शास्त्र को सलफर ड्रगस, डी० डी० टी० तथा पेनिसिलीन दी है। अनेकानेक रासायनिक वस्तुओं का व्यवहार चिकित्सा शास्त्र में होता है, परन्तु शल्य चिकित्सा (surgery) में अचेतनकारी पदार्थों (anaesthetics) का स्थान सर्वोच्च है। सर विलियम ऑसलर (Sir William Osler) का मत है कि चिकित्सा विज्ञान के इतिहास में अचेतनकारी पदार्थों का स्थान अमूल्य है और इससे मानवजाति के अनेक उपकार हुए हैं, इसके अतिरिक्त मनुष्य के कष्ट निवारण में समाज इससे भविष्य काल में भी अनेक आशाएँ रखता है।

यदि हम इन अचेतनकारी पदार्थों के सर्वप्रथम प्रयोग की कहानी खोजने की चेष्टा करें, तो हमें प्रतीत होगा कि इन परम उपकारी पदार्थों के प्रथम व्यवहार की तिथि निर्णय करना कठिन है; तथापि आज से लगभग एक सौ वर्ष पूर्व कई ऐसी घटनायें हुई थीं, कि इस समय अचेतन कारी पदार्थों की शतवार्षिकी मानना उचित है। इन वस्तुओं का आविष्कार तथा प्रयोग रसायनज्ञों और चिकित्सकों के सम्मिलित चेष्टा से ही सम्भव हुआ, अतः इन गवेषणाओं के लिए दोनों ही प्रशंसा के पात्र हैं।

१६ अक्तूबर १८४६ में विलियम टॉमस ग्रीन मॉर्टन (William Thomas Green Morton) नामक वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम ईथर (ether) को अचेतनकारी औषधि के रूप में व्यवहृत किया। अमेरिका के बोस्टन नगर में चिकित्सकों के एक विराट सभा में उन्होंने अपनी प्रणाली की सफलता प्रदर्शित की। इसके प्रायः एक वर्ष पश्चात् ४ नवम्बर १८४७ में जेम्स यंग सिम्पसन (James Young Simpson), डा० कीथ (Dr. Keith) तथा मैथ्यूज डंकन (Matthews Duncan) ने क्लोरोफॉर्म (chloroform) की अचेतनकारी शक्ति की परीक्षा की। उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यह नया पदार्थ क्लोरोफार्म ईथर से कहीं अधिक अचेतन कारी शक्ति रखता है। इन घटनाओं के पश्चात् ईथर तथा क्लोरोफार्म अचेतनकारी औषधियों के रूप में व्यवहृत होने लगे एवं अन्यान्य औषधियों के होते हुए भी आज तक इनका प्रयोग अचेतन कार्य में होता है।

जब १७७४ में जॉसफ प्रीष्टली (Jeseph Priestley) ने ऑक्सीजन गैस का आविष्कार किया था तब वैज्ञानिकों को जीवों पर इस गैस का प्रभाव ज्ञात न था। फ्रेंच वैज्ञानिक लैवोशिए (Lavosier) ने सर्वप्रथम जीव जन्तुओं के जीवन में ऑक्सीजन के प्रयोजनीयता के सम्बन्ध में गवेषणाएँ कीं एवं १७७४-८५ के बीच में उन्होंने वायुमडल तथा निश्वास-प्रश्वास में ऑक्सीजन का स्थान निर्णित किया। इस समय से गैसों के द्वारा चिकित्सा का प्रचलन हुआ और वैज्ञानिकों ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। १७९४ में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के अध्यापक टॉमस बेडोज (Thomas Beddoes) ने जीवों पर गैसों के प्रभाव के गवेषणार्थ एक गवेषणागृह (Pneumatic Institution) की स्थापना की। यहाँ के गवेषणाओं में मनुष्य ईथर की प्रक्रिया परीक्षा उल्लेखनीय है। यह देखा गया कि ईथर सूँघने से शरीर की वेदना दूर हो सकती है। बेडोज के गवेषणा से हम्फरी डेवी (Humphry Davy) का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और शीघ्र ही वे इस प्रतिष्ठान के प्रधान बना दिये गये। इस समय डेवी केवल २० वर्ष के थे। अप्रैल १७९९ में उन्होंने नाइट्रस ऑक्साइड (nitrous oxide) के अचेतनकारी शक्ति की परीक्षा की। उन्हें प्रतीत हुआ कि इस गैस के सूँघने के पश्चात् सब शारीरिक कष्ट दूर ही नहीं हो जाते परन्तु एक मादकता का प्रभाव मनुष्य पर होता है। अतः डेवी ने सन १८००

में नाइट्रस ऑक्साइड को शल्य-चिकित्सा के समय व्यवहार करने के सम्बन्ध में अपना मत प्रकाशित किया। परन्तु इस गैस का उपयोग शल्य चिकित्सा में कई वर्ष तक नहीं हुआ। डेवी ने देखा कि नाइट्रस ऑक्साइड के सूँघने से एक अपूर्व आनन्द अनुभव होता है जिससे मनुष्य हँसने लगता है; इस प्रकार यह गैस हँसाने वाली गैस (laughing gas) कहलायी। इसके पश्चात् यूरोप में प्रत्येक पार्टी में इस गैस का सूँघना एक प्रथा सा हो गया, जहाँ निमंत्रित सज्जनों को यह गैस सुँघायी जाती थी। सन् १८१८ में हम्फरी डेवी के शिष्य माइकल फैरडे (Michel Faraay) में यह देखा कि ईथर को गैस के रूप में सूँघने से भी यही फल प्राप्त हो सकता है।

प्रायः इसी समय इंगलैण्ड में हेनरी हिल हिकमैन (Henry Hill Hickman) नामक एक चिकित्सक ने शल्य चिकित्सा में कार्बन डाइ ऑक्साइड (Carbon di oxide) के व्यवहार के सम्बन्ध में गवेषणा थी। जन्तुओं की शल्य-चिकित्सा में उन्हें इस गैस से यथेष्ट सहायता प्राप्त हुई, परन्तु जब १८२५ में उन्होंने अपना मत प्रकाशित किया, तब अन्यान्य चिकित्सकों से उन्हें सहायता न मिली और मनुष्य पर कार्बन डाइ आक्साइड के प्रभाव की परीक्षा नहीं की गई।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक 'हँसने वाली पार्टियां' केवल यूरोप में ही चलती थी; परन्तु इसके पश्चात् अमेरिका में भी इनका प्रचलन हो गया। ऐसी ही एक पार्टी में लॉङ्ग (C.W. Long) नामक एक चिकित्सक ने देखा कि लोग ईथर सूँघने के पश्चात् प्रायः कोई कष्ट अनुभव न करते हुये अपने को आघात करते थे। यह देख कर लांग ने शल्य चिकित्सा के समय ईथर का प्रयोग किया और १८४२-४४ के समय इस प्रणाली से अनेक आपरेशन किये गये। प्रायः इसी समय होरेस वेल्स (Horace Wells) नामक एक दन्त चिकित्सक ने नाइट्रस ऑक्साइड की इस शक्ति की परीक्षा की और दांत निकालते समय उन्होंने इस गैस का पयोग किया। परन्तु खेद की बात है कि जब वेल्स तथा उनके मित्र मॉर्टन (Morton) एक वैज्ञानिकों की सभा में इस प्रणाली का प्रदर्शन कर रहे थे, तब वे सफल न हुए। इस घटना से मॉर्टन हताश न हुये और जैकसन (C. T. Jackson) नामक एक रसायनज्ञ के उपदेश से उन्होंने शुद्ध ईथर का व्यवहार दाँत निकालते समय किया। १६ अक्टूबर १८४६ में बोष्टन के एक विराट-सभा में मॉर्टन ने अपनी इस गवेषणा का प्रदर्शन किया, जिसमें उन्हें बहुत सफलता मिली। इसके पश्चात् ईथर का प्रचलन अमेरिका, इंगलैंड, फ्रांस तथा अन्यान्य देशों में होने लगा।

इसके एक वर्ष पश्चात् सिम्पसन (Simpson) ने ईथर से अधिक शक्तिशाली क्लोरोफॉर्म की खोज की। क्लोरोफॉर्म का व्यवहार ईथर से कठिन है, परन्तु इसकी उपयोगिता को देखते हुए शीघ्र ही इसका व्यवहार होने लगा।

सन् १८८४ में एक नूतन पदार्थ का व्यवहार शल्य चिकित्सा में अचेतन कारी औषधि के रूप में होने लगा। कार्ल कोलर (Corl koller) ने कोकेन (Cocoine) के व्यवहार के सम्बन्ध में गवेषणा की और शीघ्र ही इसका प्रयोग होने लगा। रसायनज्ञों ने अन्य नये अचेतनकारी पदार्थों की खोज की और आज ईथर, क्लोरोफॉर्म और नाइट्रस ऑक्साइड के अतिरिक्त इथाइल क्लोराइड (ether choride), विनाइल इथर (Vinyl ether), ट्राइक्लोरो इथाइलीन (Trichloroethylene), साइक्लोप्रोपेन (Cyclo-propane), पेन्टोथॉल (pentothal), केमिथान (xemithan), प्रोकेन (procaine), न्यूपरकेन (nuprocaine) इत्यादि का प्रयोग शल्य चिकित्सा में इस कार्य्य के लिये होता है। आशा है कि अभी और अनेक आविष्कार होंगे और रसायनज्ञ अपने नूतन गवेषणाओं द्वारा मनुष्य जाति के कष्ट को कम करने में और भी अधिक सफल होंगे।

आलमारी में गोला-गल्ता (मोल्डिग)

ले०—श्री० त्रिवेणी राय विशारद' (षष्ठ वर्ष, कारपेन्टरी स्कूल, इलाहाबाद)

आज की बीसवीं सदी में हमारे सामने प्रत्येक क्षेत्र में वस्तु-कला साधारणतः एक सादगी लिए हुए आती है। इसका ही प्रभाव है कि काष्ठ शिल्प में भी संगतराशी [कारविंग] और गोला गल्ता की कारीगरी समाप्त होती जा रही है। आज की जनता आधुनिक प्रकार के सादे-सादे फरनीचरों की ही माँग करती है। कारीगरी के लुप्त होने के कुछ विशेष कारण हैं। प्रथम तो मध्यम-वर्ग के लोगों के लिए कारीगरी वाले फरनीचर खरीदना कठिन-सा है। और वास्तव में श्रम के बढ़ जाने से परिश्रमिक का बढ़ना स्वाभाविक है। द्वितीय कारण विशेष कर उच्च श्रेणी के फैशनेबुल जनता के लिए ही है: वह है फरनीचर की सफाई। बहुधा गोला-गल्ता तथा संगतराशी के आन्तरिक भागों में धूल जम जाया करती है, जो कि प्रतिदिन सफाई करने पर भी फरनीचर के कोनों में जमी ही रह जाती है। वह धूल पालिश किए हुए फरनीचरों में बड़ी अरुचिकर प्रतीत होती है।

फिर भी आजकल फरनीचर में बिना संगतराशी वाले गोला-गल्तों का प्रयोग होता है। मनुष्य स्वभावतः परिवर्त्तन का प्रेमी है। यदि हम किसी के टेढ़े मेढ़े घुँघराले बालों के बीच ऊँचे-नीचे धरातल के मध्य में कहीं प्रकाश तथा कहीं अँधकार देखते हैं, तो एक विशेष आनन्द प्राप्त होता है। यही बात गोला-गल्ता के विषय में भी है। मोल्डिंग के मध्यान्तर में कहीं प्रकाश तथा कहीं [कवर्क में] अँधकार-सा रहता है; जो कि वास्तव में सौन्दर्य वर्द्धक है। चित्र नं० १ के आकृति नं० ७ में दिए हुए गोला-गल्ता को देखने से स्थल 'अ' पर प्रकाश, 'ब' पर [कवर्क में] अँधकार दिखलाई देता है। इस तरह गोला-गल्ता के द्वारा विभिन्न अवस्थाओं से फरनीचर में सौन्दर्य का निर्माण होता है।

आलमारी में बहुधा कार्निस [कारनाइस] बनाए जाते हैं। किसी भी आलमारी के ऊपर शिखर [टाप] पर कार्निस [कगनी] आलमारी की ऊँचाई के अनुसार लगाई जाती है। बहुधा कार्निस की
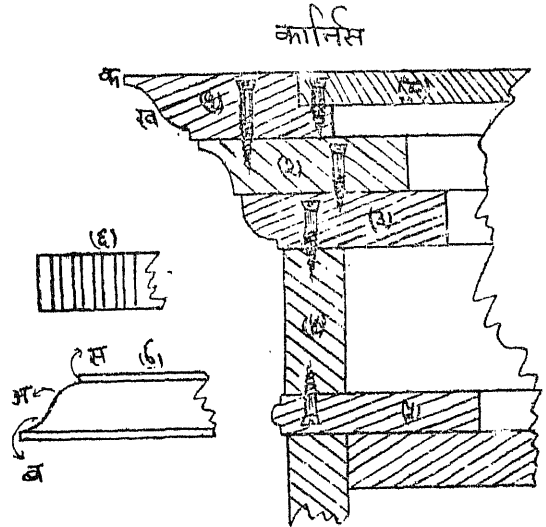
चित्र नं० १

ऊँचाई १ फीट में १ इञ्च के अनुपात से रखते हैं: यदि एक आलमारी की ऊँचाई ६ फीट है तो उसका कार्निस अधिक से अधिक ६ इञ्च में बनाया जा सकता है। पायदार आलमारियों में गोल-गल्ते के साथ एक तल्ला चौखट [बेस फ्रेम] लगाया जाता है।

कार्निस बहुधा निम्नलिखित गोले-गल्ते प्रयोग किए जाते हैं। सबसे ऊपर नतोन्नत गोला-गल्ता [ओजी मोल्ड] फिर पोला [हालो मोल्ड], फ्रीज बकर, गला गोला-गल्ता [नेकिंग मोल्ड], फिर इसके पश्चात् फरनीचर का ढाँचा होता है। चित्र

नं० १ में नं० १ चौखटे [फ्रेम] में नतोन्नत गोला-गल्ता, फिर क्रमशः दूसरे गोले-गल्ते लगाए गए हैं। कार्निस का गोले-गल्ते चौखटे बनाकर ही लगाए जाते हैं। इस चौखटे के नियम से कुछ विशेष लाभ हैं। प्रथम तो इसमें लकड़ी कम लगती है; जिससे कि फरनीचर का मूल्य कम होता है। द्वितीय यदि ये चौखटे ठोस तख्तों से बनाए जायँ तो फरनीचर का वजन बढ़ जायेगा जो कि अव्यवहारिक-सा होगा। इन चौखटों की प्रत्येक लकड़ीबहुधा ३ से ४ इञ्च तक चौड़ी होती है और प्रायः सभी गोले-गल्ते चौखटे की रेल की मोटाई के बराबर जगह में बनाए जाते हैं। किसी कार्निस में गला गोले-गल्ते के ऊपर एक और चौखटा लगाते हैं जिसे दसनावलि [Dental] कहते हैं। इस चौखटे में, जो कि चित्र नं० १ के आकृति नं० ६ में दिखाया गया है, दांतों की पंक्ति-सी बनी रहती है। इसलिए इसके दसनावलि कहा जाता है।

आलमारी में कार्निस चौखटों के नीचे ढाँचे में ठोस [सालिड] तख्ते का बना हुआ शिखर लगाया जाता है; इस शिखर के ऊपर जितने भी गोले-गल्ते के चौखटे रहते हैं, उनके चारों रेलों के बीच बिलकुल खाली और खुली जगह रहती है, जिससे कि इस खाली जगह में धूल जम जाने की सम्भावना रहती है। यह जगह समतल भी नहीं होती है जिससे कि धूल सरलता के साथ साफ कर दी जावे। इस धूल को रोकने के लिए कार्निस में सबसे ऊँचे वाले गोले-गल्ते के चौखटे में खाँचा [रिबेट] काट कर एक 'रजरोक' [डस्टबोर्ड] लगाया जाता है। यह रजरोक आम की लकड़ी का ४ सूत मोटाई में ठोस तख्ते का बना रहता है। यदि आलमारी शीशम की लकड़ी की बनी हो तो भी रजरोक को आम का ही बनाते हैं। क्योंकि कार्निस केवल उसी आलमारी में लगाते हैं जिसकी ऊँचाई ५ फीट ६ इञ्च से कम न हो। इस तरह इतनी ऊँचाई पर होने के कारण रजरोक दिखाई नहीं पड़ता है। रजरोक को आम का बनाने से व्यय भी कम पड़ता है। चित्र नं० १ में आकृति ८ की लकड़ी रजरोक है कि पेंच के द्वारा खाँचे में जोड़ी गई है।

जो भी फरनीचर मनुष्य की आँख की ऊँचाई [लगभग ५ फीट] से अधिक ऊँचे नहीं होते हैं उनमें कार्निस नहीं लगाये जाते हैं; क्योंकि कार्निस के गोले-गल्तों का जो मुख्य सौन्दर्य्यवर्द्धक भाग है वह आँखों के नीचे पड़ जाता है। ऐसे स्थल पर सबसे ऊपर वाले नतोन्नत मोल्ड के नीचे सब गोला-गल्ता छिप जायगा। ५ फीट से अधिक ऊँचाई वाली आलमारियों में कार्निस लगाने से एक आर्थिक लाभ भी है कि ऐसी आलमारियों में ठोस शिखर लगाने के अतिरिक्त दो पतली [३″ चौड़ी १″ मोटी] के 'बाधक' [बैरियर] के द्वारा ढाँचे को तोड़ सकते हैं। इस तरह पैसे की बचत होगी।

आलमारियों को माप के अनुसार चार भागों में बाँटा गया है। १—माप अ = ६′—०″ × ४′—०″ × १′—६″। दूसरी माप ब = ५′—६″ × ३′—६″ × १′—३″। तीसरी माप स = ५′—०″ × ३′—०″ × १′—२″ और चौथी माप द = ४′—६″-३′—०″ × १′—३″ होती है। माप अ और ब की आलमारियों में कार्निस लगाई जाती है। माप द की आलमारी के ढाँचे को बाधकों के द्वारा देते जोड़ हैं और उनके ऊपर ठोस शिखर पेंच के द्वारा जोड़ देते हैं जैसा कि चित्र नं० २ में दिखाया गया है। ऐसी जगह पर शिखर ढाँचे से बाहर सामने निकला तथा दोनों पार्श्वों [साइडों] में लगभग १″ बाहर रहता है। पीछे कि तरफ ढाँचे के बाहर नहीं बल्कि ठीक बराबर होता है। जिससे कि फरनीचर को हम आसानी से दीवाल से सटा कर खड़ा कर सकें। ऐसे शिखर जिनमें कि ढाँचे के बाहर प्रोजेक्शन [क्षेपण] रहता है बहिर्गत शिखर [प्रोजेक्टेड टाप] कहलाते हैं। ऐसे शिखर के किनारों को कुछ-कुछ गोला कर देना चाहिए। इस तरह किसी चीज के द्वारा चोट लगने पर भी किनारे नहीं टूटेंगे। यथा-चित्र नं० २ के स्थान अ पर यदि कोई वस्तु गिरती तो उसका दबाव स्थान ब पर पड़ जायेगा, जिससे

स्थान अ टूटने की कम सम्भावना है। परन्तु स्थान क और ख सरलता के साथ टूट सकते हैं।
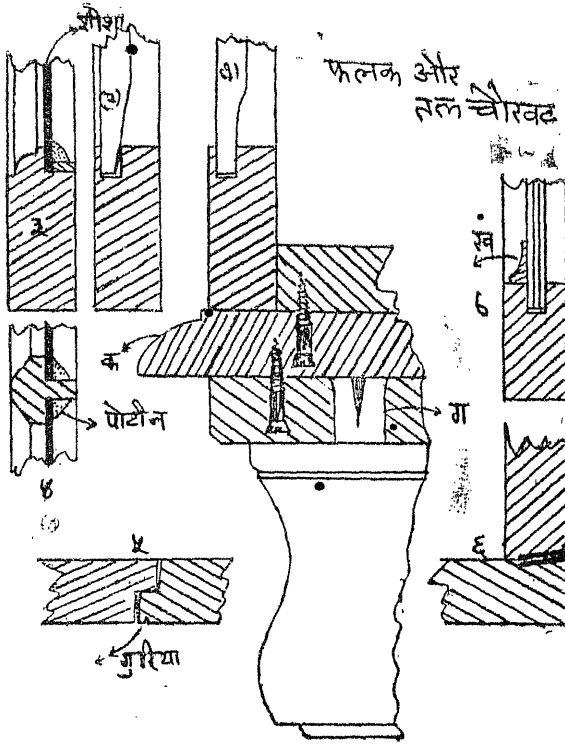
चित्र नं० २

आलमारी के तल चौखट में अधिकतर अँगूठा गोला-गलता [थम्ब मोल्ड] तथा उठानत [साइमारेक्टा] मोल्ड लगाते हैं, जैसा कि चित्र नं० ३ में क अँगूठा तथा चित्र नं० १ में आकृति नं० ७ उठा-

चित्र नं० ३
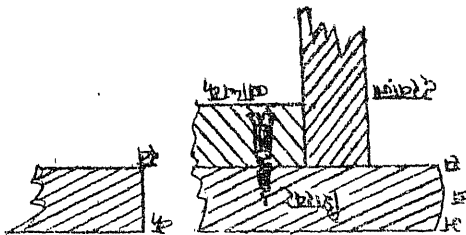
नत गोला गलता है। तलचौखट के नीचे खरादे हुए पाए फाक्सवेज [पच्चरदार चूल] के साथ जुड़े रहते हैं। चूल में बाहर से बीच में पच्चर ठोंक देने से चूल बाहरी सिरों पर फैल जाती है। जैसा कि स्थल ग पर है। इस तरह चूल बाहर नहीं निकलती है।

कार्निस तथा तल चौखट के गोले-गल्तों की बनावट में अन्तर का कारण :—

जो गोले-गल्ते कार्निस में लगाए जाते हैं, बहुधा उन्हीं को उलट कर तल चौखट में लगाते हैं। यदि हम कार्निस के मोल्डों को तल चौखट में बिना उल्टे ही लगायेंगे तो मोल्ड का सारा भाग आँख से दिखाई नहीं देगा। ऐसे स्थल पर चित्र नं० १ का भाग छिप जायगा और केवल ऊपरी भाग का दिखाई पड़ेगा। ऐसे मोल्ड से कोई लाभ नहीं और भाग क आसानी से साधारण चोट के द्वारा ही टूट सकता है। इसी तरह यदि तल चौखट के मोल्डों को कार्निस में लगाएँगे तो परिश्रम व्यर्थ होगा। आलमारी के तल चौखट में जितने भी चौखटे [फ्रेम] होते हैं उनको आपस में पेंच द्वारा ही जोड़ा जाता है। इससे लाभ यह है कि यदि संयोगवश किसी चौखटे का कोई भाग खराब हो जाता है तो उसको सरलता के साथ पेंच को खोल कर चौखटे को बदल सकते हैं। दूसरा लाभ यह है कि यदि आलमारी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना पड़े तो हम चौखटों को खोलकर आलमारी के साथ अलग भेज सकते हैं। इस तरह रास्ते की असावधानी से भी गोले-गल्ते बच जायेंगे।

आलमारी के दरवाजों को, पार्श्व तथा पृष्ठ को फलकदार [पैनल्ड] बनाते हैं। इन भागों में आधुनिक प्रकार के फरनीचरों बहुधा ठोस तख्तों का प्रयोग होता है। परन्तु ठोस तख्तों के द्वारा फरनीचर का मूल्य बढ़ जाता है। और साथ ही साथ फरनीचर का वजन भी बढ़ जाता है। इसलिए फलक [पैनल] का प्रयोग उचित है। इसमें कोई संदेह नहीं कि फलक वाले फरनीचर आसानी से तोड़े जा सकते हैं। परन्तु इनमें कम व्यय तथा हल्कापन रहता है। फलक चौखटों के अन्दर ही मिरी यानी नाली [ग्रूव] बनाकर फिट किए जाते हैं। यह नाली चौखटे के

रेलों के भीतर वाली मोटाई में बनाई जाती है। इस नाली के अन्दर फलक को चारों ओर से डाल देते हैं। फलक का माप ठीक उतना ही रक्खा जाता है कि वह चौखटे में फिट करने के बाद चारों तरफ नाली में पूरी गहराई तक न आ सके, जैसा कि चित्र नं० ३ के फलकों में है। लगभग आधा सूत गहराई नाली में छूट गई है। इतनी खाली जगह जगह चारों तरफ छोड़ना अति आवश्यक है। जल-वायु के प्रभाव से लकड़ी के माप में परिवर्तन होता रहता है। इस तरह यह खाली जगह लकड़ियों के बढ़ जाने पर भर जाती है। इसके चौखटे के जोड़ों के खुल जाने की सम्भावना है। फलक की साधारण मोटाई ३ सूत होता है। इससे अधिक करने से मूल्य अधिक तथा कम करने से कमजोरी आ जायगी। फलक के किनारा को नाली में फिट करने के लिए अन्दर से पतला तिरछा [सिलोप में] बना लेते हैं। यह सिलोप फलक में चारों ओर ३/४ इञ्च चौड़ा होता है, जैसा कि चित्र नं० ३ के फलक में है। किसी किसी फलक में मशीन के द्वारा अन्दर चारों ओर पोला मोल्ड बनाते हैं, जैसा कि स्थल [२] में है।

शीशेदार आलमारी के दरवाजे में चौथाई गोला-मोल्ड या चेम्बर बना देते हैं। चित्र नं० ३ के स्थल ३ पर चौथाई गोला तथा स्थल ४ पर चेम्बर बनाया गया है। इसके बाद शीशा फिट करते हैं। फिर शीशे के पीछे से रोकने के लिए पतली पट्टियों को कील के द्वारा जोड़ देते हैं। किसी जगह पर पीछे से केवल पीटीन के द्वारा ही शीशे को रोक देते हैं। यदि हम चाहें तो शीशे को चौखटे में नाली [ग्रूव] के साथ फिट कर सकते हैं। परन्तु इस रीति के अनुसार कई खराबियाँ हैं। प्रथम तो यह कि यदि किसी कारण से शीशा फूट जाता है तो हमें दूसरा शीशा लगाने के लिए फ्रेम को ही तोड़ना पड़ेगा। यदि शीशा खांचे [रिबेट] के साथ जैसा कि चित्र नं० ३ में है फिट होगा, तो शीशा फिट करने के बाद भी हम चाहें तो अन्दर की पोटीन तथा पट्टी को हटा कर शीशा बदल सकते हैं। दूसरा यह कि यदि फर-नीचर कहीं ट्रेन के द्वार दूसरी जगह भेजना हो तो शीशे को निकाल सकते हैं और फिर फिट कर सकते हैं। इसलिए नाली की रीति ही अच्छी तथा लाभ-दायक है। किसी किसी दरवाजे में फलक को त्रिपरत [थ्रू लाई] से बनाते हैं। त्रिपरत के झिरी में फिट करते हैं। त्रिपरत के बाहर एक पोले मोल्ड की पतली पट्टी केवल सरेस [गिलू] के द्वारा चिपका दी जाती है। जैसा कि चित्र ३ में स्थल ख पर है। ऐसे दरवाजों को बोलेक्शन दरवाजा कहते हैं।

अधिकतर जहाँ भी लकड़ी के ऐसे दो किनारे मिलते हैं जो कि घूमते रहते हैं अर्थात् जहाँ दो दरवाजे मिलते हैं या जहाँ वे कब्जे के साथ फिट किए जाते हैं—वहाँ एक पतली झिरी दिखाई पड़ती है। इस झिरी को छिपाने के लिए वहाँ पर की लकड़ी में एक पतली लगभग १ सूत चौड़ी गोली गुरिया [बीड] बनाते हैं। जैसा कि चित्र नं० ३ के स्थल ५ और ६ में है। इस तरह इस गोली गुरिया के मध्य में कब्जे की मोटाई भी छिप जाती है।

६—सितारों की प्राकृतिक अवस्था तथा रासायनिक संगठन

Physical Nature and chemical constrtuion of the stars.

[लेखक—श्री नत्थन लाल गुप्त]

पीछे हम वर्णन कर चुके हैं, कि सितारे दूर दराज़ फासले के सूर्य्य हैं; अर्थात् वह हमारे सूर्य्य के समान निजी प्रकाश से चमकते हैं। बहुत दूरी के कारण चाहे वह कितने ही मद्धिम दिखाई पड़ते हों, किन्तु वास्तव में वह सूर्य्य के समान बहुत बड़े २ अति तप्त और तेजस्वी पिण्ड हैं। विकास के भिन्न २ दर्जों में होने के कारण वह भिन्न २ रंगों के प्रकाश से चमकते हैं। उनमें से कुछ तो श्वेत हैं, कुछ पीले, कुछ लाल हैं और कुछ, छोटे सितारे, हरे और नीले हैं, फिर उनमें भी किसी का रंग अधिक गाढ़ा है और किसी का फीका। दक्षिणीय चतुष्पथ [Southern croos] तारा मंडल में सितारों का एक झुण्ड है, जिसमें रंग बिरंग के सितारे हैं; यह जवाहरात का डब्बा कहलाता है। इसमें १०० से ऊपर सितारे हैं; जिनमें केवल ७ सितारे दशम श्रेणी से ऊपर के हैं; उनमें दो लाल रंग के हैं, दो हरे हैं, तीन पीत वर्ण लिये हरे हैं और एक नीला है।

सितारों के रंग बदलते हैं। प्राचीन समय से लुब्धक [Sirius] को लाल सितारा समझा जाता था। उस समय से सितारों को क्षितिज के निकट देखने का रिवाज था। सर विलियम हरशल [Sir William Herschel] और वर्तमान काल के ज्योतिर्विदों ने सितारों के रंगों के सम्बन्ध में जो सम्मति प्रकट की है उसमें भी कहीं २ बड़ा भेद पाया जाता है। परिवर्तनशील सितारों के भी रंग बदलते देखे जाते हैं। इससे स्पष्ट है, कि सितारों की प्राकृतिक अवस्था [Physical Nature] के साथ २ रंग भी बदलता रहता है।

सितारे हम से इतनी दूर है, कि दूरबीन से उनके सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं लग सकता; किन्तु, प्रकाश विश्लेषक यन्त्र के द्वारा जब उनके प्रकाश की परीक्षा की जाती है, तो उससे हम उनकी प्राकृतिक अवस्था और रासयनिक संगठन के सम्बन्ध में बहुत सा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

बहुत से सितारों के प्रकाश विश्लेषक यन्त्र से जांच की जा चुकी है। सबसे पहले फ्रान होफर [Fraunc hofer] ने मालूम किया था कि, सूर्य्य के लगातार रश्मि चित्र [Continuous spectrum] में बहुत सी कृष्ण रेखायें पाई जाती हैं और करशाफ [Kirchhoff] ने बतलाया कि, वह रेखायें क्या अर्थ रखती हैं। ग्रहों, उपग्रहों का रश्मिचित्र तो सूर्य्य के रश्मिचित्र के ही समान होता हैं; क्योंकि वह वास्तव में सूर्य्य का प्रकाश होता है। ग्रहों के रश्मिचित्र में कुछ रेखायें उनके वायुमंडल के कारण अधिक पाई जाती हैं। सितारों के रश्मिचित्र भी सूर्य्य के रश्मिचित्र के समान लगातार [Contiuous] होते हैं; और उसमें कृष्ण रेखायें, और कभी २ काली पट्टियां, पाई जाती हैं, किन्तु सूर्य्य की अपेक्षा उनकी संख्या बहुत न्यून होती है। लुब्धक [Sirius] और पुनर्वसु द्वितीय [Castor] के रश्मिचित्रों में बहुत सी बारीक २ काली रेखाओं की बजाय केवल चार मोटी २ रेखाएँ ही दिखाई देती है। इनमें से एक तो रश्मिचित्र के रक्तवर्ण भाग में, दो पीतवर्ण में और एक हरे रंग में पाई जाती है। पुनर्वसु प्रथम [Pollux] का रश्मिचित्र सूर्य्य के रश्मिचित्र के ही समान होता है; और ब्रह्महृदय [Capella], आर्द्रा [Betelgeuze] और प्रश्वन [Procyon] के रश्मिचित्र विशेष प्रकार के हैं। किन्तु इन चारों सितारों और सूर्य्य के रश्मिचित्रों में एक रेखा बहुत स्पष्ट होती है जो डी [D] रेखा कहलाती है और सोडियम धातु से सम्बन्ध रखती है। इन तमाम बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि तमाम सितारों में लगभग वह तत्व पाये

जाते हैं जो हमारे सूर्य्य में हैं, मानो सारे विश्व में द्रव्य एक ही प्रकार का है; किन्तु सितारों की प्राकृतिक अवस्थाओं में थोड़ा २ भेद अवश्य है।

सर विलियम ह्यूगन्स [Sir. W. Huggins] ने आर्द्र नक्षत्र [Betelguze] और रोहिणी [Aldebarn] की तरफ विशेष ध्यान दिया और मालूम किया है कि यह सितारे उन्हीं तत्वों से मिलकर बने हैं, जो पृथ्वी पर पाये जाते हैं उसने बतलाया कि रोहिणी में अन्य तत्वों के अतिरिक्त लोहा सोड्यिम, केल्सियम और मैगनीशियम भी पाये जाते हैं। आर्द्र नक्षत्र के रश्मिचित्र में काली पट्टियां भी पाई जाती हैं जिनकी बाबत यह मालूम हो सका है कि उनका सम्बन्ध किन तत्वों से है।

सितारों का श्रेणी बन्धना

सेकी [Secchi] ने लगभग ४००० सितारों का प्रकाश विश्लेषक यन्त्र द्वारा परीक्षण किया और उनके रश्मिचित्रों की समानतानुसार उन्हें चार श्रेणियों में बांट दिया; किन्तु बाद में वह श्रेणी बन्धन अपूर्ण समझा गया; अतएव सन् १८७४ ई० में पोटसडम [Potsdam] की वेधशाला के डाइरेक्टर डा० वोगल [Dr. Vogel] ने उन श्रेणियों को और भी उपश्रेणियों में बांट दिया।

प्रथम. श्रेणी—इसमें श्वेत और नीले रंग के सितारे सम्मिलित हैं। इनके रश्मिचित्रों में धातुओं से सम्बन्ध रखने वाली कृष्ण रेखायें [जो सूर्य्य के रश्मिचित्र के बनफशी भाग में बहुत और स्पष्ट होती हैं और कठिनता से देखी जाती है; और नीला तथा पीत भाग खूब रोशन होता है, वोगल [Vogel] ने इस श्रेणी के सितारों की तीन उपश्रेणियां बनाई हैं।

१—इनके रश्मि चित्रों में हाईड्रोजन की काली रेखाएँ बहुत चौड़ी और स्पष्ट होती हैं। लुब्धक [Sirius], अभिजित [Vega] और मघा [Regulus] इसके उदाहरण हैं। मालूम होता है, यह सितारे हाईड्रोजन के वातावरण से घिरे हुए है। यह भी ख्याल किया जाता है, कि इस प्रकार के सितारे शेष तमाम सितारों की अपेक्षा अधिक गर्म हैं; और इस विचार का समर्थन इस बात से होता है कि उनके रश्मि चित्रों में मेगनेशियम की एक ऐसी रेखा पाई जाती है, जो साधारण तापमान पर तो मेगनेशियम के रश्मि चित्र में पाई नहीं जाती पर जब मेगनेशियम का तापमान बहुत ऊंचा होता है, तो उसके रश्मि चित्र में वह दिखलाई देने गती है।

२—इनके रश्मि चित्रों में कुछ धाती रेखाएँ भी हाईड्रोजन की रेखाओं के समान चौड़ी-चौड़ी और स्पष्ट होती हैं; और मेगनेशियम की वह रेखा, जिसका जिक्र ऊपर किया गया है, सब से अधिक स्पष्ट होती है; इससे मालूम होता है कि यह सितारे भी बहुत गर्म हैं। इन सितारों में हेलियम भी पाई जाती है। रीजल [Rigel] तारा और ओराईन [Orion] तारा मण्डल के कई तेजस्वी सितारे, इसी श्रेणी से सम्बन्ध रख ते हैं।

३—इनके रश्मिचित्रों में हाईड्रोजन की प्रकाशित रेखाएँ और हीलियम की प्रकाशित रेखा [D_3] पाई जाती है। इस प्रकार के सितारों में लीरा [Lyra] तारा मंडल का मनोरंजक परिवर्तन शील सितारा बीटा लीरी [B Lyrae] और कश्यप तारा मंडल [Cassiopeia] का सितारा न्यू कश्यप [V Cassioapeia] भी सम्मिलित है। इनके रश्मि चित्रों में बहुत सी ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जिनकी व्याख्या अभी तक नहीं हो सकी है, इसलिये इनकी प्राकृतिक अवस्था को ठीक ठीक जान लेना कठिन है। ख्याल किया जाता है कि यह सितारे उप-श्रेणी सं० १ व २ के सितारों की अपेक्षा कम गर्म हैं।

द्वितीय श्रेणी—इस श्रेणी के सितारे हमारे सूर्य्य के समान पीत वर्ण सुनहरी रंग के होते हैं। इनके रश्मि-चित्रों से धाती रेखाएँ स्पष्ट होती हैं; बनफशी भाग प्रथम श्रेणी की अपेक्षा मध्यम होता है और कभी-कभी लाल सिरे की तरफ काली पट्टियाँ भी पाई जाती हैं।

इस श्रेणी के सितारे दो भागों में बाँटे गये हैं :-

१—इसमें वह सितारे सम्मिलित हैं जिनके रश्मि चित्रों में धाती रेखाएँ बहुत गहरी, स्पष्ट और संख्या में अधिक होती है, हाईड्रोजन की रेखाएँ भी, यद्यपि बहुत स्पष्ट नहीं होती, किन्तु पहचानी जाती हैं। इस प्रकार के सितारे संख्या में बहुत अधिक है। ब्रह्म हृदय [Capella], रोहिणी [Aldebaran], स्वाती [Arcturus] और पुनर्वसु [Pollax] इसी प्रकार के सितारे हैं। पोटसडम [Potsdam] की वेधशाला के डाक्टर शेनर [Dr. Scheiner] ने ब्रह्म हृदय [Capella] के रश्मि चित्र का सूर्य्य के रश्मि चित्र से मिलान किया तो दोनों को लगभग समान पाया। इससे स्पष्ट है, कि इन सितारों की प्राकृतिक दशा हमारे सूर्य्य के समान ही है।

२—किन्तु, दूसरी प्रकार के सितारे ऐसे नहीं हैं। उनके रश्मि-चित्र बहुत पेचीदा हैं। प्रत्येक सितारे का एक तो लगातार रश्मि-चित्र होता है, जिसके ऊपर से अनेक बारीक-बारीक कृष्ण रेखाएँ गुजरती हैं; और उसके ऊपर प्रकाशित रेखाओं वाला एक और रश्मि-चित्र होता है। इस प्रकार के ७० से ऊपर सितारे हैं, उनमें से केवल एक सितारा अधिक प्रकाशित है, जो तीसरी श्रेणी का है और अगस्त्य [Argus] नामी तारा मंडल में है। रश्मि-चित्र पर जो प्रकाशित रेखाएँ पाई जाती है, उनमें से कुछ तो हाईड्रोजन और हीलियम से सम्बन्ध रखती हैं; किन्तु शेष प्रकाशित रेखाओं की असलियत का अभी तक कुछ पता नहीं लगा। इस प्रकार के सितारों की प्राकृतिक अवस्था के बारे में ठीक-ठीक निश्चय करना तो कठिन है, किन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि यह सितारे एक कम गर्म वातावरण से घिरे हुए अवश्य हैं जिनमें प्रकाश की किरणें चूसी जाने के कारण कृष्ण रेखाओं वाला लगा तार रश्मि-चित्र उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त उस वातावरण के गिर्द हाईड्रोजन का भी एक आवरण अवश्य है।

तृतीय श्रेणी—इस श्रेणी में लाल तथा परिवर्तनशील सितारे सम्मिलित हैं। इनके रश्मि चित्र भी लगातार होते हैं और उनमें कृष्ण रेखाओं के अतिरिक्त छायादार बन्द भी पाये जाते हैं। बनफशी भाग बहुत मध्यम होता है. इसी कारण से उनका रंग न्यूनाधिक लाल प्रतीत हुआ करता है। बहुत सी कृष्ण रेखाएँ सूर्य्य के रश्मि चित्र की कृष्ण रेखाओं के साथ समानता रखती हैं, और उनमें से बहुत सी तो सूर्य्य की कृष्ण रेखाओं से भी अधिक स्पष्ट प्रतीत होती हैं। कुछ रेखाएँ नवीन भी पाई जाती हैं।

रश्मि चित्र के लाल, पीले तथा हरे भागों से धातुओं से सम्बन्ध रखने वाली रेखाओं के ऊपर काली पट्टियां भी दिखाई देती हैं, जिनकी बनफशी रंग की तरफ वाली सीमा तो साफ और स्पष्ट होती हैं, किन्तु लाल रंग की तरफ वह क्रमशः मध्यम होती जाती हैं। इस प्रकार की पट्टियाँ रासायनिक सम्मेलनों (Chemical compounds) से सम्बन्ध रखती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन सितारों के वायुमण्डल में कहीं न कहीं ताप इतना कम है कि वहाँ रासायनिक सम्मेलन बन रहे हैं। इस प्रकार का बहुत प्रसिद्ध सितारा आर्द्रा (Betelgeuze) वा अल्फा ओराईन (A Orion) है, जो ओराईन के कन्धे पर प्रथम श्रेणी का एक लाल सितारा है। जिन सितारों का प्रकाश बहुत समय में परिवर्तित होता है, वह भी इसी प्रकार के हैं।

चतुर्थ श्रेणी—इस श्रेणी में बहुत से मध्यम सितारे सम्मिलित हैं जिनमें से कोई भी इस श्रेणी से अधिक प्रकाशित नहीं हैं। इनके रश्मि-चित्रों के ऊपर भी काले बन्द खूब स्पष्ट होते हैं, जो रश्मि-चित्र के लाल रंग की तरफ तो गहरे और स्पष्ट होते हैं और बनफशी रंग की तरफ क्रमशः फीके पड़ते जाते हैं; अर्थात् इस श्रेणी के बन्दों का बिल्कुल उलटा। ऐसा प्रतीत होता है कि यह बन्द हाइड्रोजन गैस में जो सितारों के वातावरण में उपस्थित है, प्रकाशित किरणों के चूसे जाने के कारण

उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी कृष्ण-रेखाएँ भी दिखाई देती हैं, जिनसे मालूम होता है कि वहाँ धातुओं की वाष्प भी पाई जाती हैं और एक धातु-सोडियम तो निसन्देह वहाँ उपस्थित है। इन सितारों का रंग भी लाल होता है। ख्याल किया जाता है कि यह सितारे अपने जीवन के अन्तिम श्वास पूरे कर रहे हैं—अर्थात् वह बहुत कुछ ठंडे पड़ चुके हैं और शीघ्र ही बुझ जाने को हैं।

प्रो० पिकरिङ्ग (Prof. Pickering) ने सितारों की एक पाँचवी श्रेणी भी तजबीज की है जिसमें ७० के लगभग बहुत मध्यम सितारे सम्मिलित हैं। इनके रश्मि-चित्रों में काली लकीरों के अतिरिक्त प्रकाशित रेखाएँ भी पाई जाती हैं। इस श्रेणी का एक प्रसिद्ध सितारा गामा कश्यप (r-Cassiopeiae) है। इसके रश्मिचित्र में हाइड्रोजन की काली रेखा की C और F की जगह $H\alpha$ लाल रंग की $H\beta$ हरयावल लिये नीले रंग की प्रकाशित रेखाएँ पाई जाती हैं। कभी-कभी नवीन गैस हीलियम (Helium) की लकीर D_3 भी देखने में आती है।

सेकी (Secchi) के इस श्रेणी बन्धन में सितारों के विकास का विचार नहीं किया गया है—अर्थात् जिन सितारों का ताप लगभग समान है उनको एक ही श्रेणी में सम्मिलित कर लिया गया है। यह नहीं देखा गया है कि उनकी उष्णता आगे बढ़ने को है या घटने को। प्रो० लोक्यार (Lockyer) ने इस बात को विचार में रखते हुये एक और श्रेणी बन्धन किया है, जिसमें कुल सितारों को सात श्रेणियों में विभक्त किया गया है। लोक्यार की सम्मति में समस्त प्रकाशित आकाशीय पिंड उल्का कणों वा उल्का वाष्प का ढेर है, जो विकास के भिन्न-भिन्न दर्जों में पाये जाते हैं। उनके प्रकाश का कारण वह उष्णता है जो उनके कणों के परस्पर टकराने वा केन्द्र बिन्दु की तरफ गिरने से उत्पन्न होती है। वह नीहारिकाओं से आरम्भ करता है, जिन्हें वह बिखरे हुये उल्का कणों का बड़ा ढेर ख्याल करता है। आकर्षण शक्ति के कारण वह कण जितने अधिक समीप आते जाते हैं, उतनी ही उनमें परस्पर टक्करों की संख्या बढ़ती जाती है और इससे ताप और प्रकाश भी अधिक बढ़ता जाता है; यहाँ तक कि उष्णता के बहुत बढ़ जाने से उल्का कण वाष्प में तबदील हो जाते हैं, इसके पश्चात् उष्णता पैदा तो कम होती है और उसका व्यय अधिक होता है, अतएव सितारा ठंडा होने लगता है और अन्त में बिलकुल बुझ जाता है।

लोक्यार का श्रेणी बन्धन

लोक्यार के प्रथम श्रेणी बन्धन में उल्का कणों के एक बड़े ढेर के आरम्भ करके नीहारिकायें और ऐसे सितारे सम्मिलित किये गये हैं जिन्हें केवल उल्का कणों का एक ढेर ही ख्याल किया जा सकता है। इनमें उत्ताप और प्रकाश दोनों बहुत कम होते हैं और उनके रश्मिचित्रों में प्रकाशित रेखायें और प्रकाशित-बन्द [Bands) दिखाई दिया करते हैं। पुच्छल तारे भी इसी श्रेणी में हैं। बीटा लीरा [B Lyrae] और गामा कश्यपि [r-Cassiopeiae] इसके उदाहरण हैं।

द्वितीय श्रेणी में वह सितारे सम्मिलित हैं जिनमें उल्का कण प्रथम श्रेणी की अपेक्षा अधिक निकट आ गये हैं; और वह उल्का वाष्प से जो उनके बार-बार टकराने से पैदा हो गई है, घिरे हुये हैं। उनके रश्मिचित्रों में कार्बन की प्रकाशित रेखायें और बन्द तथा मेगनेशियम, मेंगनीज, सीसा और लोहे की कृष्ण रेखायें पाई जाती हैं। बहुत से परिवर्तनशील सितारे और नवीन सितारे इस श्रेणी में सम्मिलित हैं। अल्फा ओराइन [आर्द्रा] और सेटी मीरा इसके उदाहरण हैं।

तृतीय श्रेणी में घनत्व और उष्णता और भी बढ़ जाती है और उल्का कणों की वाष्प बन जाती है। रश्मिचित्र में बहुत सी धातुओं की कृष्ण रेखायें खूब स्पष्ट होत हैं।

चतुर्थ श्रेणी में उष्णता अपनी पूर्णता को पहुँच जाती है। रश्मिचित्र में हाइड्रोजन की रेखायें खूब गहरी तथा चौड़ी दिखाई देने लगती हैं और धातुओं

की रेखायें बारीक और मध्यम हो जाती हैं। यह सितारे अत्यन्त गर्म और सघन गैसों के पिण्ड होते हैं। अभिजित [Vega] और लुब्धक [Sirius] इसी श्रेणी में सम्मिलित हैं।

पञ्चम श्रेणी—यहाँ तक उष्णता बढ़ती रही है। किन्तु इससे आगे सितारों की सघनता तो बराबर बढ़ती जाती है, पर उष्णता कम होने लगती है। फलतः पञ्चम श्रेणी के सितारे चतुर्थ श्रेणी के सितारों से कम गर्म होते हैं। सितारों का पिंड इतना सघन हो चुका होता है कि अब उसमें सुकड़ने की बहुत कम गुञ्जाइश रह जाती है। बीच का भाग तो प्रायः कठोर वा तरल पदार्थों तथा कुछ सघन [गाढ़ी] गैसों का अत्यन्त तप्त पिंड होता है और वह प्रकाश रश्मियों को चूसने वाली विभिन्न तत्वों की गैसों से घिरा रहता है। हमारा सूर्य्य इसी श्रेणी में है। ब्रह्म हृदय [Capella] और पुनर्वसु [Pollux] भी इसी प्रकार के सितारे हैं; इनके रश्मि चित्रों में कृष्ण रेखायें बहुत होती हैं।

षष्ठ श्रेणी में गहरे लाल रंग के सितारे सम्मिलित हैं। उनका तापमान बहुत कम होता है और बीच का पिण्ड गाढ़ा होकर ठोस वा द्रव अवस्था को पहुँच गया होता है, तथा उसको एक ठंडे वातावरण ने घेरा हुआ होता है जिसमें कार्बन की बहुतायत होती है। इसी कारण इस श्रेणी के सितारों के रश्मि-चित्रों में कार्बन की कृष्ण रेखायें स्पष्ट दिखाई देती हैं। इस श्रेणी में पञ्चम श्रेणी से अधिक प्रकाशित कोई सितारा नहीं है।

सप्तम श्रेणी में ग्रहों के समान बिल्कुल ठंडे सितारे सम्मिलित हैं। लुब्धक [Sirius] और अल्गोल के साथी इसके उदाहरण हैं।

सोंठ

[ले०—श्री० रामेश वेदी, आयुर्वेदालङ्कार]

(गतांक से आगे)

एक माशे[1] से एक तोला[2] तक सोंठ का चूर्ण कांजी के साथ रोज़ खाने से आमवात में लाभ करता है, यह कफ और वायु का नाशक है। सोंठ के कल्क को चौगुनी सौवीर कांजी में डाल कर सिद्ध किया घी आमवात में सेवन करते हैं, यह भूख को भी चमकाता है।[1] चार सेर गौ के घी में एक सेर सोंठ का कल्क और सोलह सेर सोंठ का क्वाथ या केवल पानी ही डाल कर बनाया घी कमर की दर्द, आमवात, वायु तथा कफ का शमन करता है और अग्नि प्रदीप्त करता है।[2] सोंठ एक माशे और गोखरू तीन माशे का

१ माष नागर चूर्णस्य काञ्जिकने पिबेत्सदा।
आमवात प्रशमनं कफवातहरं परम्॥
भै० र०, आमवाता; १५।

२ कर्ज नागर चूर्णस्य काञ्जिकेन पिबेत्सदा।
आमवातप्रशनं कफवातहरं हरम्॥
भा० प्र०, म० ख०, आमवाता; ४८।
भ० द०, आमवात चि०; १२।
सि० पो०, आमवाता; ११।

१ सर्पिर्नागर कल्केन सौवीरं तच्चतुर्गुणम्।
सिद्धमग्निकरं श्रेष्ठमामहरं परम्॥
भा० प्र०, म० ख०, आमवाता; २०।
सि० पो० आमवता; ४८

२ नागर क्वाथ कल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
चतुर्गुनेन तेनाथ केवलेन जलेन वा॥
वातश्लेस्म प्रशयनंमग्निसन्दीपनं परम्।

क्वाथ प्रातःकाल सेवन करने से आमवात तथा कटि-शूल दूर हो जाते हैं।[१] सोंठ के गरम कषाय के साथ अरण्ड तेल पीने से कुक्षिशूल, बस्तिशूल तथा कमरदर्द शान्त होते हैं।[२] सोंठ के चूर्ण में अरण्डमूल का रस मिलाकर चटनी कूटें। रस का गोला बना कर पुट-पाक की विधि से पका लें और रस निचोड़ लें। आमवात की तीव्र पीड़ा में इसे शहद मिला कर देने से लाभ होता है।[३] चौबीस तोले सोंठ और आठ तोले धनियें के कल्क को चौसठ तोले घी में चौगुना पानी डाल कर पकाया घी अग्नि को दीपन करता है, बल बढ़ाता है, रंग निखारता है, वायु और कफ प्रधान आमवात, बवासीर, दमा और खांसी को दूर करता है। पुष्टि के लिए यह घी बनाना हो तो इसे पानी के स्थान पर दूध में पकाना चाहिए, मल तथा मूत्र के अवरोध में देना हो तो दही से पकाना चाहिए, अग्निदीपन के लिए दही के पानी में घी पकाया जा सकता है।[४] और कपूर के एक माशा चूर्ण को पुनर्नवा क्वाथ के साथ आमवात में सात दिन तक सेवन करने से आम रस का परिपाक होता है।[१] सोंठ, तिल और गुड़ की चटनी में दूध मिला-कर पीने से परिणामशूल और आमवात नष्ट होते हैं।[२] यवकुट की हुई एक तोला सोंठ को डेढ़ छटांक उबलते पानी में डाल कर बन्द कर दें। आग पर से उतार लें और आधा घण्टा पड़ा रहने के बाद छान-कर शहद मिला गरम-गरम ही पी लें और अच्छी तरह कपड़े ओढ़ कर लेट रहें। इससे पसीना खूब आकर शरीर के मल पसीने के द्वारा बाहर निकल जाते हैं। गठिया के पुराने रोगियों को इससे लाभ होता है। सरदी लग जाने और जुकाम में भी यह शहद मिला शुण्ठी लाभ करता है।

शोथ रोगियों के लिए सोंठ का प्रयोग हितकर होता है।[३] सोंठ और कुलत्थ को गोमूत्र में पा जल में पकाकर श्लैष्मिक शोथ में सूजे हुए भाग को धोना चाहिए।[४] सोंठ, पुनर्नवा और मोथे के कल्क को चार माशे की मात्रा में दूध के साथ वात युक्त शोथ

नागरं घृतयित्युक्तं कटिशूलायनाशम् ॥
भा० प्र०, आमवाता; ८१-८२।
सि० यो०, आमवाता; ४१-४२।
भै० र०, आमवाता; १२३-१२४।

१ शुण्ठीगोक्षुरकक्वाथः प्रातःप्रातर्निषेवितः।
सामवाते कटीशूले पाचनो रुक् प्रणाशनः ॥
भ० द०, आमवातभि०; ९।
भै० र०, आमवाता; २८।

२ ·········पिबेद्वा नागराम्भसा।
कुक्षिबस्ति कटीशूले तैलमेरण्डसम्भवम् ॥
भै० र०, आमवाता; ११।

३ शुण्ठीकल्कं विनिःसिच्य रसैरेरण्डमूलजैः।
विपचेत्पुटकेन तद्रसः क्षौद्रसंयुतः।
आयतसमूद्भूतां पीडां जयति दुस्तराम् ॥
शा० सं०, ख० २, स० १; ४०।

४ शुण्ठीनां षट्पलं पिष्ट्वा धान्याकं उपलं तथा।
चतुर्गुण जले दत्वा कृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
वातश्लेष्मायपाण्डुघ्नमग्नि वृद्धिकरं परम्।

दुर्नामश्वासकासघ्नं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥
पुष्ट्यर्थं पयसा साध्यं दध्ना विभूत्रसंग्रहे।
दीपनार्थं मतिमतां मस्तुना च प्रकीर्तितम्।
भा० प्र०, आमवाता; ७७-७९।

१ शटीविश्वौषधकल्कं वर्षाभूक्वाथ संयुतम्।
सप्तरात्रं पिबेज्जन्तुराम वातविपाचनम् ॥
भै० र०, आमवाता; २९।

२ शुण्ठीतिलगुडैः कल्को दुग्धेन सह योजयेत्।
परिणामभवं शूल्यामवातं च नाशयेत् ॥
शा० सं०, ख० २, अ० ५; १८।

३ विश्वं वा शोथरोगिणाम् ॥
सि० यो० शोथा; ११।

४ कके तु·························।
कुलत्थशुण्ठीजलमूत्रसेकः·········॥
भ० चि० अ० १२; ६८।

में पीना चाहिए।[1] सोंठ और चिरायते के कल्क को कोसे पानी के साथ लेने से तीनों दोषों की पुरानी शोथ मिट जाती है।[2] शोथ में मल अनपचा, दोष-युक्त और कठिन हो तो सोंठ और गुड़ खानी चाहिए।[3] अदरक के रस में गुड़ मिला कर खाने से सब प्रकार की शोथ दूर हो जाती है।[4] ताजे अदरक को समान भाग गुड़ के साथ मिला कर चार तोला शोथरोगी को पहले दिन दें। प्रतिदिन चार-चार तोला बढ़ाते जायं। दसवें दिन चालीस तोला अर्थात् आध सेर खिलायें। एक महीने तक इस कल्प का सेवन करना होता है। इसलिए दस दिन के बाद शेष बीस दिनों तक इसी मात्रा में खिलाते जाना चाहिए। औषध पच जाय तब दूध, रस या मांस के शोर्वे के साथ रोगी को अन्न का सेवन कराना चाहिए। पेट के रोग, गोला, बवासीर, प्रमेह, अलसक, कामला, शोथ, पागलपन, मृगि आदि मनोविकार, श्वास प्रणाली के रोग, जुकाम, खांसी और कफ आदि अनेक विकारों में चरक इसे सेवन कराते हैं।[5]

वृन्दमाधव[1] ने निम्नलिखित रोगों में भी इसके प्रयोग से लाभ देखा है, अरुचि, ग्रहणी, जीर्णज्वर, पीनस, गले और मुख के रोग तथा वात-कफ के रोग। इस प्रयोग में जो मात्रा कही गई है वह आजकल के लोगों के लिए बहुत अधिक होगी। चक्रपाणि ने चिकित्सा सार संग्रह में एक तोला से प्रारम्भ कर बल के अनुसार पन्द्रह दिन में या एक महीने में चौबीस तोले तक बढ़ाने को कहा है।[2] चक्रपाणि की मात्रा भी बहुत अधिक है। आजकल तो एक माशे से आरम्भ करके क्रमशः बढ़ाते हुए पन्द्रह दिन या महीने भर में अधिक से अधिक बीस माशे की मात्रा में दे सकते हैं। इस प्रयोग में ताजी अदरक की जगह सोंठ और गुड़ का प्रयोग भी किया जा सकता है।[3] और अदरक की तरह उसके ताजे रस[4] के प्रयोग से भी यही लाभ प्राप्त किया जा

१ पुनर्नवा नागरयुक्त कल्का अरथेन धीरः
समसोऽशमात्रन्।
·········प्रपिवेत्सवांते॥
भ० चि० अ० १२; २१।

२ हन्वालिदोषं चिरजं च शोथं कल्कश्च
चूनिम्बमहौध धस्य।
भ० चि० अ० १२; ४०।

३ ······गुडनागरं षा सादोषभिन्नमविबद्धवर्चाः॥
भ० चि० अ० १२; २६।

४ आर्द्रकस्य रसः पीतः पुराणगुडमिश्रित।
अजाशीराशिनां शीघ्रं सर्वशोथहरो यवेत्॥
च० द०, शोथ चि०; ११।
सि० पो०, शोथा; ७।

५ प्रयोजपेदार्द्रकनागरं वा तुल्यं गुडेनार्ध पलामि वृद्ध्या।
मात्रा परं पञ्चपलानि मासं जीर्वे पयोपूषरसान्न भोक्ता॥
गुल्योदरार्शः शामकुप्रमेहान् श्वासप्रतिश्यापलिख कानिपाकान्।
सकामकलान शोषमनोविकारान्कासं कफं चैष जपेत्प्रयोगः॥
भ० चि० अ० १२; ४५-४६।

१ शोथ प्रतिश्यापगलास्यरोगान्श्वासकासारुचि पीनसादीन्।
जीर्णज्वरार्शोग्रहणी विकारान्हप्रान्तथाऽन्यान्कफ-वातरोगान्॥
सि० पो०, शोथा; १३।

२ अगदर्कं का············।
कर्षाभिवृद्धया त्रिपलप्रमाणं श्वादेन्नरः पक्षयथापि मासम्।
चि० सा० स०।
सि० पो०, शोथा; १२।

३ अगदर्कं वा गुडनारं वा······।
सि० पो०, शोथा; १२।

४ रसस्तथैवार्द्रकनागरस्य पेपोऽथ जीर्गे पयसाऽन्न-मघत्।
भ० चि० अ० १२, ४७।

सकता है। चरक तो इसको भी चार तोलेसे क्रमशः बढ़ाकर चालीस तोले तक दे दिया करते थे। यह प्राचीन मात्रा आजकल के लोगों को हानि पहुँचा सकती है। इसलिए रस को भी एक माशे से आरम्भ करके बीस माशे तक ही दिया जाना चाहिए।

मोटापा कम करने के लिए रोगी को वातनाशक, कफ और चरबी को छांटने वाले तीक्ष्ण, रूक्ष और उष्ण सोंठ से युक्त भोजन और पेय दिये जाते हैं।[१]

श्लीपद में सोंठ का कषाव पिलाया जाता है।[२]

बवासीर के जिस रोगी को मल बहुत सख्त आता हो उसे सोंठ डाली हुई राब खिला कर घी वाले सत्तू देने चाहिए। या सोंठ और माठे को चूर्ण करके गुड़ के साथ मिला लें और जरा सा अनारदाना मिला कर दें।[३] अथवा शीघ्र मध में सोंठ और गुड़ डाल कर या जौ की कांजी में सोंठ और गुड़ का प्रक्षेप देकर पिलायें।[४] अर्शरोगी की अग्नि मन्द हो तो सोंठ और धनियें से पकाया पानी पीने को देते हैं। इससे वायु और मल का आनुलोमन होता है।[१] रोगी की शाक सब्जियों में और मांस के शोर्वे में सोंठ और धनियां मसाले के रूप में बुरक देते हैं।[२] सोंठ, भिलावा और विधारा बीज प्रत्येक का चूर्ण समभाग और सम्पूर्ण चूर्ण से दुगुना गुड़ लें। विधिपूर्वक पका कर मोदक बनाएँ। डेढ़ से तीन माशे तक ठण्डे पानी के साथ सब प्रकार की बवासीर में दिया जाता है।[३]

वात कफ जन्म मलबन्ध में अदरक का रस पिलाया जाता है।[४] चिरस्थायी मलबन्ध में और गुदा की बीमारियों मलबन्ध में दूर करने के लिए प्रतिदिन गुड़ के साथ अदरक खानी चाहिए।[५]

दाढ़ के दर्द में सोंठ के कषाय से कुल्ले करने चाहिए या सोंठ के चूर्ण को खोखली दाढ़ में रखना चाहिए। इससे वेदना शान्त होती है। स्पञ्जी और जिनमें से पीप आती है ऐसे मसूड़ों में रस के फाण्ट के कुल्ले लार को अधिक निकालते हैं जिससे मुख की शुद्धि हो जाती है। मसूड़ों से ख़ून निकलवाने

---

१ वतधान्यन्नपानानि श्लेश्मघेदोहराणि च।
रूक्षोस्ण बस्तयस्तीक्ष्ण रूक्षाण्युद्वर्तनानि च॥
······नागरं·····························।
·········श्रेष्ट उच्यते॥
भ० चि० अ० २१, २० और २२।

२ पिवेद्देव·········नागरं·········।
सि० पो०, श्लीपया; १०।

३ येऽत्यर्थं गाशठक्तस्तेषां वक्ष्यामि भोजम्।
सस्नेहैः शक्तभिपुक्तां प्रसन्नां लवणकृताम्॥
दधान्मत्स्पण्डिकां पूर्वं यशपित्वासनागराम्।
गुड़ सनागरं पाठां फलाढ्यं पापमेञ्जतम्॥
भ० चि० अ० १४, ९७-९८।

४ ·········शिघं सौवरकं तथा॥
गुडनागरसंयुक्तं पिवेद्वा पौर्वभक्तिकम्।
भ० चि० अ० १४; १०२-१०३।

१ ·········शृतं नागरधान्यकैः।
अनुपानं भिषग्दद्याद्वातवर्चोऽनुलोनम्।
भ० चि० अ० १४; १२९-१३०।

२ धान्यनागरयुक्तानि शाकान्येताति दायपेत्।
गोधाश्वाविरसलोपाकिमजीरोष्ट्रगवामपि॥
कूर्मशल्लकपोश्चैव साधमेद्धाकवद्रसान्।
भ० चि० अ० १४; १२६-१२७।

३ सनागरासस्करवृद्धदासकं गुडेन योदकमन्युदारकम्।
अशेषदुर्नामकरोगदारकं करोति वृद्धं सहसैव दारकम्॥
भ० द०, अर्शोरोग चि०; २७।
भै० र०, अर्शोरोगा; ३५।

४ वातश्लेस्मविवन्धेचु रसस्तस्योपदिश्यते।
भ० सू० अ० २७; १६३।

५ गुडेन शुण्ठीम्·········।
······गुदाममेषु नर्चोविवन्धेषु नित्यमघात्॥
सि० पो० अजीर्णधः; १३।

के बाद सोंठ और सरसों के कषाय के गण्डूष धारण करने चाहिए। दांतों में ठण्डा पानी लगने से वेदना होती हो तो इससे दूर हो जाती है।[1] शूलनिवारण के लिए चूर्ण को पानी में पीस कर मस्तक, पेट या कनपटी पर लेप किया जाता है।

एक माशा सोंठ और दो रत्ती सेन्धानमक को आंख के वातिक रोगों में लेप करते हैं।[2] लेप देर तक नहीं रखना चाहिए क्योंकि त्वचा लाल होकर छाले पड़ने का अन्देशा रहता है। सोंठ और नीम के पत्ते को पीस कर उसमें थोड़ा सा सेन्धा नमक मिला कर चिपटी टिकिया बना लें जरा गरम करके इसे आंखों पर बांधें तो आंखों की सूजन, खुजली और पीड़ा शान्त होती है।[3] सोंठ और गेरू को पानी में पीस कर आंखों के बाहर लेप करने से नेत्र रोग नष्ट होते हैं।[4] सीसे को तपा कर सोंठ के कषाय या अदरक के रस में सात बार बुझा लें। इस सीसे की सलाई बनाकर आंखों में आँजने से आंखों के सब रोग दूर होते हैं।[5]

सुनने की शक्ति कमजोर हो जाने पर अदरक के रस में गुड़ मिलाकर नस्य देने की सिफारिश की जाती है।[1] कान के दर्द में अदरक का कोसा रस कान में डालते हैं।[2] रस में शहद, नमक या तेल घी मिला लिया जा सकता है।[3] अदरक के रस या कल्क में तेल पका कर कोसा-कोसा कान में डालने से कान की पीड़ा शान्त होती है।[4] सोंठ और गुड़ के कषाय को अदरक के रस में गुड़ मिला कर नस्य देने से आंख, कान, नाक और सिर के रोग तथा गरदन, ढोड़ी, गला, बाहु और पीठ के रोग भी नष्ट होते हैं।[5]

अभ्रक की भस्म बनाने में अभ्रक से एक-तिहाई सोंठ भी मिलाई जाती है।[6]

---

१ शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्षपान्।
निःक्वाथ्य···कुर्याद् गण्डूषधारणम्॥
भा० प्र० अ० ख०, मुखरोगाधि; ३८।

२ नागरं सैन्धवं सर्पिर्मण्डेन च रसक्रिया।
निघृष्टं वातिके·····················॥
भ० चि० अ० २६; २३०

३ शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डी सुखोष्णा स्वल्पसैन्धवा।
धार्या चक्षुषि संयोगाच्छोथकण्डूव्यथापहा।
शा०, ख० ३, अ० १३; ३०।

४ ······तथा नागरगैरिकैः।
शा०, ख० ३, १३; ३४।

५ ·········शुण्ठीनां रसैः·········॥
············सि-तो नागः प्रतापितः।
तच्छलाका हरत्येव सर्वान्नेत्रभवान् गदान्॥
शा०, ख०, अ० १३; ११४-११८।

१ गुडनागरतोयेन नस्यं स्याद्······।
सि० पो०, कर्णरोगा; २७।

२ क शृङ्गवेररसः·········।
कदुष्णं कर्णयोर्दद्यादेतद्वा वेदनापहम्॥
सि०, कर्णरोगा; २।

ख ······अर्द्रक··············।
······स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे॥
सि० पो०, कर्णरोगा; ३।

३ मधु सैन्धव तैलमताः पृथगुष्णमः कर्णशूलहराः॥
सि० पो०, कर्णरोगा; ४।

४ भृङ्गवेरं··· ····················।
············तैल···············॥
कदुष्णं कर्णयोर्दद्यादेतद्वा वेदनापहम्॥
शा०, ख० ३, अ० ११; १३५।

५ नस्यं स्याद गुडशुण्ठीभ्यां·········॥
······तेनाक्षि कर्णनासाशिरोगदाः।
मन्याहनुगलोद्भूता नश्यन्ति भुजपृष्ठजाः॥
शा० ख० ३, अ० ८; १६।

६ देखें: शा०, अ० ११; ६६।

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक प्रश्नोतर

१. श्रीमती सुशीला माथुर नाखून की पालिश बनाने की विधि जानना चाहती हैं।

१—नाखूनों को अक्सर फ्रेंच-चाक से पालिश किया जाता है। अकसर इसमें जरासा किरमिज का रंग (कारमाइन) मिलाकर नाखून-पालिश के नाम से बेंचा जाता है।

२—मुल्तानी मिट्टी	८ भाग
ईंगुर	१ भाग
३—टिन ओलिएट	१ औंस
पुट्टि पाउडर	७ औंस
कारमाइन	इच्छानुसार
इत्र गुलाब	८ बूँद
इत्र नीबू	५ बूँद

सावधानी से हल करो। टिन ओलिएट न भी डाला जाय तो कोई हर्ज न होगा।

२. श्री कामता नारायण मिश्र सागर, यूडिक्लोन बनाने की बिधि पूछते हैं।

यह प्रसिद्ध सेंट पहले-पहल क्लोन में बनाया गया। इसका नुसखा बहुत दिनों तक गुप्त रक्खा गया और अन्यत्र कहीं भी उतना अच्छा सेंट न बन सका। बढ़िया यूडि क्लोन बनाने के लिये अच्छे से अच्छे मेल के इत्रों का प्रयोग करना चाहिये। और अंगूरी शराब से बने ऐलकोहल को काम में लाना चाहिये। अंगूरी शराब में कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ रहते हैं जिनसे नीबू, संतरे आदि के इत्र खिल उठते हैं। नीचे तीन नुसखे दिये जाते हैं।

१—इत्र बरगमोट	३½ औंस
इत्र नीबू	५ औंस
इत्र निरोली	३½ औंस
इत्र खट्टा संतरा (बाइगराडे)	१¾ औंस
इत्र रोजमैरी	२½ औंस
ऐल कोहल	३० क्वार्ट

रोजमैरी एक पौधा है जो दक्षिणी और मध्य यूरोप में होता है इसकी पत्तियों से इत्र निकलता है। इत्र सस्ता बिकता है।

३. श्री प्रेमचन्द्र गुप्त कानपूर; बालोंके झरने को रोकने की बिधि पूछते हैं।

१—साबुन से बाल धोकर निम्न मिश्रण लगाओ।

सैलिसिलिक ऐसिड	१ औंस
प्रेसिपिटेटेड सलफर (शुद्ध बारीक गंधक)	२½ औंस
गुलाब जल	२५ औंस

बालों की जड़ों में अच्छी तरह रगड़ो। पहले बाल अधिक झड़ते हुये जान पड़ेगे, क्योंकि रगडने से कमजोर बाल टूट जायेगें। परन्तु एक सप्ताह में बालों का झड़ना बहुत कुछ बन्द हो जायगा।

२—रिसोरसिन	५ भाग
टिंकचर कैप्सिकम	१५ भाग
रेंड़ी का तेल	१० भाग
ऐलकोहल	१०० भाग
इत्र गुलाब	इच्छानुसार

टिंकचर कैप्सिकम बनाने के लिये लाल मिरचे १ भाग को ऐलकोहल १० भाग में डाल दो। काग बन्द रक्खो। कभी कभी झकझोर दिया करो ३-४ दिन बाद छान डालो।

४. श्री वेद प्रकाश आर्यन जोधपूर व मोहनसिंह आर्यन जोधपूर कोई ऐसा उपाय जानना चाहते हैं कि नींद न आये और उसका स्वास्थ पर भी प्रभाव न पड़े।

मनुष्य के जीवन में सोना उतना ही आवश्यक है जितना कि खाना पीना या अन्य और आवश्यक कार्य करना। प्रत्येक मनुष्य को कम से कम ६ घंटा सोना आवश्यक है। कम सोने से स्वास्थय पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। आप पढ़ने के लिये जगना चाहते हैं परन्तु यह बात न भूल जाइये कि ६ घंटा सो कर बाकी समय में आप जितना कार्य कर सकते हैं, ६ घंटे से कम सो कर आप उतना न कर सकेंगे।

५. श्री रेवेन्द्र सिंह जी लाखन शुष्क बरफ़ के सम्बन्ध में मालूम करना चाहते हैं।

अगस्त मास के विज्ञान में इस सम्बन्ध में एक लेख छप चुका है, कृपया उसे देख लें।

६. श्री श्याम सुन्दर जी कानपुरसे ब्रिलियनटाइन बनाने की विधि पूछते हैं।

ब्रिलियनटाइन के इस्तेमाल से बाल नरम और चमकीले हो जाते हैं। दो नुसखे नीचे दिये जाते हैं।

१—ग्लिसरीन	२ पौंड
एक्सट्रैक्ट चमेली या कोई अन्य सेंट	१ पाईंट
२—ग्लिसरीन	४ पौंड
रेंड़ी का तेल	४ पौंड
इत्र सन्तरा या बरगमोट	३/४ औंस
इत्र नीबू	३/४ ,,
इत्र फूल संतरा	१५० ग्रेन

७. श्री शम्भूनाथ शर्मा गोंडा से आंवले का तेल बनाने की विधि जानना चाहते हैं।

१—पके परन्तु ताजे आँवले को थोड़ा कूटो, बीज निकाल डालो। गूदे को भली भाँति कूटो, फिर मज़बूत कपड़े में बाँध कर रस निचोड़ लो। दो भाग तिल के तेल में १ भाग इस रस को लोहे की कड़ाही में मिलाओ और मंद-मंद आँच लगाओ। जब पानी सब जल जाय उतार लो। ठंढा होने पर इच्छानुसार खुशबू मिलाओ।

२—आँवले का स्वरस ऽ॥ तिल का तेल ऽ१ नमक सेंधा ऽ~ मुलेठी का रस ऽ। (ऽ। मुलेठी लेकर अठगुने पानी में काढा बना कर चौथाई पानी बचने पर छान लेना चाहिये। यही मुलेठी का रस है।

तिल का तेल और सब दवायें मिला कर धीमी आँच पर पकाओ। जब पानी जल जाय केवल तेल रह जाय उतार कर छान करलो। फिर हरा रंग मिला कर थोड़ा सा यूकेलिप्टस आयल मिला दो। और कोई खुशबू डाल दो।

८. श्री सत्यपाल उन्नाव अमृत धारा बनाने की विधि पूछते हैं।

सत अजवाइन	१ तोला
कपूर	१ ,,
सत पुदीना	१ ,,

प्रथम सत पुदीना और कपूर मिला कर धूप में रख दो। बाद में सत अजवाइन पीस कर डाल दो, जब सब जल जाय तो इसमें लौंग का तेल ६ माशा और दालचीनी का तेल २ माशे मिला दो।

वैज्ञानिक समाचार

१. विज्ञान परिषद् प्रयाग का ३४वाँ वार्षिक अधिवेशन—विज्ञान परिषद् का ३४वाँ वार्षिक अधिवेशन १४ दिसम्बर '४७ को भौतिक व्याख्यानालय में डा० ताराचन्द्र जी के सभापतित्व में हुआ। हमें खेद है कि आचार्य नरेन्द्र देव जी आकस्मिक अस्वस्थता के कारण उद्घाटन कार्य के लिए पधारने में असमर्थ रहे। हम माननीय पुरुषोत्तमदास जी टंडन के अत्यन्त आभारी हैं कि उन्होंने अपने व्यस्त कार्य-क्रम में से कुछ समय देकर इस कार्य को सम्पन्न करने की कृपा की। डाक्टर श्री रंजन ने 'कृषि व्यवसाय की समस्याओं पर बड़ा ही रोचक भाषण दिया। अधिवेशन की कार्यवाही के पहिले श्री हरिमोहन दास जी टंडन के सौजन्य से अतिथियों का चाय तथा जलपान से स्वागत किया गया।

इस वर्ष का वार्षिक अधिवेशन अन्य वर्षों से अधिक सफल रहा और इस सफलता का मुख्य कारण यह था कि हमारे बीच में हमारी परिषद् के बहुतसे पुराने सभ्य तथा अन्य विद्वान उपस्थित थे। प्रिंसिपल हीरालाल जी खन्ना जो कि परिषद् के संस्थापकों में से एक हैं, इस अधिवेशन के समय उपस्थित थे और उन्होंने अधिवेशन के अंत में सभापति तथा उपस्थित सज्जनों को धन्यवाद देते हुए परिषद् के आरम्भिक काल की सेवाओं की सुन्दर विवेचना की। उनके अतिरिक्त श्रीयुत् ओंकार नाथ शर्मा, डा० दौलत सिंह कोठारी, डा० ब्रजराज

किशोर, श्री जस्टिस हरिशचन्द्र, श्री परमानन्द सेठ हजारी लाल, श्री मनमोहन दास टण्डन, ने अपनी उपस्थिति से हमारे अधिवेशन की शोभा बढ़ाई और हमें प्रोत्साहन दिया।

पाठकों के लिए विज्ञान के अगले (जनवरी '४८) अंक में वार्षिक अधिवेशन पर दिये गये भाषणों का वृत्तान्त तथा परिषद् का वार्षिक कार्य विवरण उपस्थित किया जायेगा।

२—हिन्दी साहित्य सम्मेलन—हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन इस वर्ष बम्बई में २७ दिसम्बर से आरम्भ होने जा रहा है। हमारे देश के प्रसिद्ध विद्वान श्री राहुल सांकृतायन जी इस वर्ष के लिए सभापति चुने गये हैं, हमें है कि उनके सभापतित्व में सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन सफल होगा। हर्ष का विषय है कि सम्मेलन के विज्ञान विभाग के सभापति इस वर्ष डा० ब्रजमोहन जी चुने गये हैं। डा० ब्रजमोहन की हिन्दी के लिए सेवाएं सर्वविदित हैं और विज्ञान के पाठक तो लगभग प्रति मास ही उनके विद्वतापूर्ण लेखों से लाभ उठाते रहते हैं।

३—नेशनल एकाडेमी आफ साइंसेज—का वार्षिक अधिवेशन २२ तथा २३ नवम्बर को म्योर सेंट्रल कालेज, प्रयाग में मनाया गया। माननीय श्री गोविन्दवल्लभ पंत ने अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए आज के वातावरण में वैज्ञानिक के उत्तरदायित्व की ओर ध्यान दिलाया। डा० ताराचन्द जी स्वागतकारिणी समिति के अध्यक्ष थे और एकाडेमी के सभापति प्रो० ए० सी० बनर्जी ने सभापति के आसन से भाषण देते हुए नेशनल साइंटिफिक फाउन्डेशन के स्थापना की अपील की। २३ नवम्बर को विभिन्न विभागों की सभाएँ हुईं और विभागों के सभापतियों के भाषण हुये तथा बहुत से अनुसन्धान लेख वैज्ञानिकों द्वारा पढ़े गये।

४—प्रयाग विश्वविद्यालय की हीरक जयन्ती

प्रयाग विश्वविद्यालय की हीरक जयन्ती इस मास के द्वितीय सप्ताह में बड़े समारोह से मनाई गई। इस अवसर पर भारत के कई लोकप्रिय नेताओं तथा प्रतिष्ठित विद्वानों को डाक्टरेट की उपाधि दी गयी। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के लिए चन्दे का कार्य्य बहुत ही संलग्नता से किया गया और लगभग २२-२३ लाख रुपये विभिन्न कार्यों के लिए विश्वविद्यालय को मिला। हर्ष का विषय है कि हमारे दानवीर पूँजी पति तथा सरकार भी विज्ञान के महत्व को समझने लगी है और इस रक़म का अधिकांश भाग वैज्ञानिक विषयों के लिए ही दिया गया है। सर पद्म पति सिंहानिया ने ५ लाख रुपया व्यवहारिक भौतिक शास्त्र के लिए दिया है और केन्द्रीय सरकार ने १० लाख रुपया व्यवहारिक विज्ञान की उन्नति के लिए विश्वविद्यालय को प्रदान किया है।

५—नोबुल पुरस्कार

चिकित्सा शास्त्र के लिए नोबुल पुरस्कार का आधा भाग इस वर्ष डाक्टर कार्ल एफ० और श्रीमती कोरी को दिया गया है। डाक्टर कोरी वाशिङ्गटन विश्वविद्यालय में चिकित्सा शास्त्र तथा जीव रसायन के प्रोफ़ेसर हैं और श्रीमती कोरी विश्वविद्यालय में भी उनकी सहकारी प्रोफ़ेसर हैं। डाक्टर तथा श्रीमती कोरी ने शर्करा पाचन तथा पशु तंतुओं की इन्जाइमों पर कार्य्य किया है; अभी तक यह स्पष्ट नहीं है कि यह पुरस्कार आपको अपने किस विशेष कार्य्य पर मिला है।

ब्यूनस एरिस के डाक्टर बर्नारडो ए० हाउसे को बाक़ी आधा पुरस्कार मिला है।

रसायन शास्त्र के लिए नोबुल पुरस्कार इस वर्ष प्रसिद्ध रसायनज्ञ सर राबर्ट राबिन्सन को प्रदान किया गया है।

भौतिक शास्त्र का नोबुल पुरस्कार इस वर्ष सर एडवर्ड एपिल को मिला है।

६—वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए योजना

मौलाना अबुल कलाम आजाद जी की अध्यक्षता में भारतीय सरकार के शिक्षा विभाग ने देश में वैज्ञानिक अनुसन्धान क्षेत्र में उन्नति करने तथा देश की समस्त वैज्ञानिक शक्ति का पूरा पता लगाने के लिए एक योजना बनाई है।

इस योजना का प्रथम भाग कार्यवाही में आ गया है। इस के अन्तर्गत 'वैज्ञानिक मानविक शक्ति समिति ने अपना कार्य्य आरम्भ कर दिया है। देश को चार भागों में विभक्त करके प्रत्येक भाग का एक अध्यक्ष बना दिया गया है, जो विभिन्न अनुसन्धान केन्द्रों में घूम कर वहाँ की स्थिति का अवलोकन करेगा और कुछ समय बाद केन्द्रीय समिति को अपनी रिपोर्ट देगा और इन रिपोर्टों की जाँच के बाद आगे की योजना निर्धारित की जायेगी।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुखपत्र

भाग ६६] सम्वत् २००४, जनवरी, १९४८ [संख्या ४

प्रधान संपादक

श्री रामचरण मेहरोत्रा

विशेष सम्पादक

डाक्टर सत्यप्रकाश — डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव

डाक्टर गोरख प्रसाद — श्री श्रीचरण वर्मा

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद ।

वार्षिक मूल्य ३) — प्रति अंक ।)

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्यसे स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषदके सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहने का तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

विषय-सूची

विज्ञान

विज्ञान-परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।।तै० उ० ।३।५।

भाग ६६ | सम्वत् २००४, जनवरी, १९४८ | संख्या ४

विज्ञान परिषद् के ३४ वें वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर

परिषद् के सभापति डाक्टर श्रीरञ्जन जी का भाषण

कृषि व्यवसाय की समस्याएँ

मनुष्यों की सब से प्राचीन कला कृषि कला है और भारत संसार का सब से प्राचीन तथा प्रधान कृषि देश है। यदि इस प्राचीन कला के सम्बन्ध में भारतीय और दूसरी प्राचीन जातियाँ पुनीत विचार रखती हैं तो आश्चर्य का विषय नहीं।

परन्तु कृषि एक कला ही नहीं वरन् विज्ञान भी है और इस में भी अन्य विज्ञानों की भांति, कुछ वर्षों से बहुत वृद्धि और उन्नति हुई है। कोई भी देश अपने प्राचीनतम रीतियों से ही इसे नहीं चला सकता। विशेषरूप से इस समय सारा संसार भोजन की कमी से त्रस्त है और भारत अत्याधिक कठिनाइयों से चल रहा है; इसलिये हमें इस ओर प्रयत्नशील होना चाहिये और अपने देश की कृषि-कला को समुन्नत करने में भरसक प्रयत्न करना चाहिये।

प्रायः कहा जाता है कि जब इस देश में राम-राज्य था, यहाँ पय और पीयूष की नदियाँ बहती थीं और भोज्य पदार्थ का बाहुल्य था। यह सत्य है कि हमारी बहुत सी कठिनाइयों का कारण शताब्दियों का विदेशी प्रभुत्व है। परन्तु हमें न भूलना चाहिये कि हमारी जन संख्या बीस वर्ष से प्रति वर्ष पचास लाख के हिसाब से बढ़ती रही है। यद्यपि जनवृद्धि का अनुमान प्रायः पिछली शताब्दियों में बहुत कम रहा है किन्तु अनुमानतः पाँच सौ वर्ष पीछे देश की जन संख्या दस बारह करोड़ से अधिक न रही होगी। इस का अर्थ यह है कि उस समय प्रत्येक मनुष्य के लिये कृषि भूमि आज की अपेक्षा चौगुनी थी। प्राचीन काल में यातायात भी बहुत सीमित था और उपज का अधिकांश यहीं रहता था। इसलिये प्राचीन ढंग से जोतने तथा बिना खाद दिये हुए भी भव्य-भूमि जनावश्यकता से कहीं अधिक उत्पन्न करती थी।

आज का चित्र दूसरा ही है। प्रत्येक ओर विशेष जनवृद्धि है। संयुक्त प्रान्त को ही लीजिये, गत जन-

गणना के समय में यह भोज्य-बाहुल्य प्रान्त था किन्तु आज यह भोज्याल्प प्रान्त हो गया है। भारत में जन संख्या का घनत्व प्रतिवर्ग मील २९८ है जब कि अन्य देशों में, जैसे रूस और अमेरिका में वह प्रति वर्ग मील ८.२ और १.९ है। इस भोज्याल्पता का मूल कारण जन वृद्धि है और जब तक उपज में वृद्धि नहीं होती हमें कष्ट का ही सामना करना पड़ेगा। कन्ट्रोल या प्रतिबन्ध भोज्याल्पता की समस्या को बिना उपज-वृद्धि के नहीं सुलझा सकता क्योंकि यह माँग और पूर्ति के सुपरिचित नियमों पर आधारित है। चार वर्षों से अधिक समय से मूल्य नियंत्रण चला आ रहा है, किन्तु परिणाम क्या हुआ? प्रतिवर्ष कमी बढ़ती ही जाती है और सरकारी राशनिंग प्रणाली की भयानक असफलता उपस्थित होती जाती है। जब कन्ट्रोल आरंभ हुआ तो हर मनुष्य को तीन पाव आटा मिलता था। दूसरे साल घट कर आधा सेर हुआ। फिर ६ छटाँक और अब चार छटांक रह गया है। अगले वर्ष खाने वाले तो पचास लाख अधिक बढ़ जावेंगे, किन्तु यदि भोज्य पदार्थों में इस अनुमान से वृद्धि न हुई तो समस्या कठिनतर हो जावेगी और यदि कहीं सरकार घबराहट और निराशा में कन्ट्रोल उठा ले तो लाखों की मृत्यु हो जावेगी। इस वर्ष कन्ट्रोल उठा लेना तो इतना भयानक नहीं होगा जितना अगले साल होगा। इसलिये सरकार से मैं निवेदन करूँगा कि वह जितना प्रयत्न कन्ट्रोल को चलाने में कर रही है उससे अधिक अन्न की उपज बढ़ाने में करे। इस समय हम लोग बाहर से भोज्य पदार्थों को मँगाने में सारा मूलधन व्यय करते चले जा रहे हैं।

कृषि की उन्नति के लिये तीन चीजों की विशेष आवश्यकता होती है, सिंचाई के लिए पर्याप्त जल, यथोचित खाद और पुष्ट बीज। मुझे प्रसन्नता है कि क्रमोन्नति के सचिव माननीय मालवीय जी ने, जो प्रयाग विश्वविद्यालय के एक समय प्राणि विज्ञान के विद्यार्थी रहे हैं सारे प्रान्त में मिश्रित खाद के लिये ज़ोर दिया है। यद्यपि मिश्रित खाद ही प्रति एकड़ उपज बढ़ाने में बहुत कुछ सहायक होगी, किन्तु सरकार के सिंचनार्थ जल की समस्या पर भी ध्यान देना चाहिये। प्रायः अकालों का कारण अनुपयुक्त समय में वृष्टि अथवा अपर्याप्त वृष्टि है। किसी भी सभ्य देश के लिये प्रकृति का ही भरोसा घातक है, इसलिये सरकार को इस समस्या को प्रधानता देना चाहिये। युक्त प्रान्त के १२०,००० ग्रामों में पर्याप्त संख्या में कुँओं का खुदाना कठिन नहीं है। यदि इन कुँओं में रहट आदि पानी निकालने के यंत्रों का प्रबन्ध कर दिया जाय तो यह तत्कालिक उपज संकीर्णता, कुछ उपज वृद्धि में रूपान्तरित हो जायगी।

अच्छे बीजों की समस्या कठिन है। पर्याप्त पानी और खाद देने से भी देशी गेहूँ पूसा गेहूँ का सा अच्छा नहीं हो सकता। अच्छे बीज की उत्पत्ति यथार्थतः वैज्ञानिक विषय है। रूस ने इस क्षेत्र में अच्छा कार्य किया है। वहाँ ३०,००० प्रकार के गेहूँ उगाए जा रहे हैं। हमने १९३९ में नव बीजांकुरों को 'एक्सरे' में रखकर गेहूँ के पौधों को समुन्नत करने का कार्य आरम्भ किया। आकस्मिक नव-परिवर्तन (mutant) के उत्पन्न करने का यह एक प्रभावपूर्ण साधन है। इस प्रकार के ११ नवीन परिवर्तित बीजांकुर उगाए गये, इसमें से कुछ तो रेशेदार बालों वाले थे और कुछ बिना रेशेदार बालों के थे। रेशेदार बालों के रेशे अपने मूलबीजों के रेशों से, जो संकुचित थे, भिन्न थे। इनके रेशे संकुचित न होकर फैले हुए थे। कुछ में परिवर्तन की क्रिया प्रथम उपज के बाद स्थगित हो गई और अग्रिम उपज में वह ज्यों के त्यों बने रहे। कुछ में परिवर्तन की क्रिया प्रथम उपज के बाद स्थगित हो गई और अग्रिम उपज में वह ज्यों के त्यों बने रहे। कुछ में परिवर्तन की क्रिया प्रत्येक वार्षिक उपज में बराबर चलती रही और छः सात वर्ष के बाद उसमें स्थायित्व आया। मैंडल महोदय के पैत्रिक गुण ग्रहण सम्बन्धी नियम उक्त आकस्मिक परिवर्तन पर चरितार्थ नहीं होता। मेरे सहयोगी डा० नैथानी की

गवेषणाओं ने यह सिद्ध किया है कि बीजों के अन्तरालयों में पैत्रिक-गुण प्रकाशक तत्वों (क्रोमोजोम्स) की संख्या में अन्तर नहीं हुआ। किन्तु उसके आन्तरिक सूक्ष्मांश तत्वों (जीन्स) में परिवर्तन हुआ है और यही परिवर्तन उक्त नवाकस्मिक परिवर्तन का कारण है। यह भी प्रयोग से प्रगट हुआ है कि जो उक्त पैत्रिक गुण-प्रकाशक तत्व बड़े थे, उनके बीज भी बड़े हुए।

कृषक के लिये अत्यन्त आवश्यक विषय उपज है। उस उपज का अध्ययन आँकड़ों के आधार पर प्यू महोदय ने किया, जो नैनी के कृषिशाला में कार्य करते थे और मेरे मित्र और सहयोगी थे। उनसे मुझे इस अध्ययन में बड़ी सहायता मिली। गेहुँओं के जिन ग्यारह प्रकारों का उल्लेख पहले किया गया है उनमें से नवें प्रकार का गेहूँ, जिसका नाम श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित के नाम पर 'विजया' रक्खा गया है, कम खाद और कम-सिंचन के होने पर भी अन्य प्रकार के गेहुँओं की अपेक्षा, जिन्हें भी कम खाद और कम सिंचन दिया गया है, भली भांति बढ़ता और अच्छा उपजता है। किन्तु प्रथम प्रकार का गेहूँ अधिक जल और अधिक खाद के पाने पर अन्य प्रकार के गेहुँओं की अपेक्षा, जिन्हें भी अधिक जल और खाद दी गई है, अच्छी उपज देता है। सुना जाता है कि प्रान्तीय सरकार कृषिकों के लिये वैज्ञानिक रीति से बनी हुई नवीन प्रकार की खाद और जल देने की व्यवस्था कर रही है। ऐसी अवस्था में हमारे वैज्ञानिक विभाग का कार्य यह होगा कि वह कृषकों को, सरकार के द्वारा यह परामर्श दें कि जल और खाद की सुविधा के आधार पर किस प्रकार का गेहूँ वे बोने के काम में लावें और एक ही प्रकार का गेहूँ जल और खाद की सुविधा होने पर भी सभी अवस्थाओं में न बोया करें, जैसा कि अभी तक होता आया है। इस प्रकार यदि कार्य किया जायगा तो उपज में निश्चय ही वृद्धि होगी। जब कि खाद और पानी कम दिया जाता था, तब एक बीघे में विजया १८ मन और प्रथम प्रकार का गेहूँ १५ मन होता था, किन्तु अधिक खाद और पानी देने पर यही दोनों गेहूँ क्रमशः २३ और २४ मन प्रति बीघे के हिसाब से उत्पन्न हुए।

दूसरा आवश्यक विषय कृषकों के लिए कृषि को 'गिरवी' (rust) से बचाने का है। यह कई प्रकार की होती है। भिन्न भिन्न प्रकार के गेहुँओं को भिन्न-भिन्न प्रकार की गिरवियों से अप्रभावित होने की शक्ति रहती है। अब वैज्ञानिकों को यह बताना है कि किस प्रकार का गेहूँ किस प्रकार की गिरवी से प्रभावित या अप्रभावित रहता है। गिरवी इस प्रांत में प्रायः फरवरी में लगती है, यदि जनवरी में वर्षा हो गई। गिरवी का प्रभाव गेहूं की दूधिया अवस्था में ही होता है किन्तु जब वह प्रौढ़ होकर पकने लगता है तब बहुत कम या बिलकुल नहीं होता। इस विचार से हम लोग अपने विभाग में यह खोज कर रहे हैं कि अधिक उपजने और शीघ्र पकने वाला गेहूँ निकाला जाय।

अन्त में मुझे यह और कहना है कि इस समय जब अन्न वितरण का कार्य सरकार अपने हाथ में लिए है सरकार ही गेहूँ की सब से बड़ी ख़रीदार है। वह गेहूँ की एक बहुत बड़ी राशि को अपने हाथ में पहले ही कर लेती है और उसे रखने के लिये प्रान्त के विविध स्थानों में राशि केन्द्र स्थापित किये हैं वहां गेहूँ इकट्ठा कियाजाता है। किन्तु थोड़े ही समय में उस एकत्रित राशि में घुन, सीड़न इत्यादि की बाधा उपस्थित होती है जिस से बहुत अन्न नष्ट हो जाता है। सरकार से हमारा यह निवेदन है कि इस क्षति को दूर करने के लिए वैज्ञानिक गवेषणा केन्द्र स्थापित करे। आशा है कि हमारी सरकार का ध्यान इस ओर शीघ्र आकर्षित होगा।

बम्बई के ३५वें हिन्दी साहित्य सम्मेलन

के

विज्ञान परिषद् के सभापति

डा० ब्रजमोहन एम० ए०, एल० एल० बी०, पी एच० डी० (लिवरपूल)

का

भाषण

विज्ञान परिषद् के इस अधिवेशन का विशेष महत्व है। क्योंकि स्वतंत्र भारत में इस परिषद् का यह पहला ही अधिवेशन है। इस परिषद् के पिछले अधिवेशन तक हम लोग एक परतन्त्र देश के निवासी थे। आज १००० वर्ष के पश्चात् पहली बार हम लोग स्वाधीन भारत में श्वास ले रहे हैं। देश की स्वतन्त्रता से हम सब लोगों का, विशेष कर वैज्ञानिकों का, उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। हमारे वैज्ञानिक कल तक जो अनुसंधान करते थे वह अधिकतर "स्वान्तः सुखाय" के हेतु ही होता था। हमारे अनुसंधानों का कोई बर्हिमुखी लक्ष्य कदाचित ही कभी होता हो। परन्तु अब स्थिति बदल गई है। हममें से प्रत्येक को अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में यह अनुभव करना चाहिये कि हम देश के एक अंग हैं और महत्वपूर्ण अंग हैं। यदि हम देश की आध्यात्मिक अथवा भौतिक किसी प्रकार की उन्नति में थोड़ी बहुत सहायता भी दे सकें तो उससे कदापि मुँह न मोड़ें। आज से देश के वैज्ञानिकों का जीवन देश के लिये है। अभी थोड़े ही दिन की बात है हम देख चुके हैं कि पश्चिमी देशों पर जब कभी युद्ध के बादल मँड़राते हैं तो देश के सारे वैज्ञानिक अपनी निजी गवेषणा छोड़ देते हैं और देश हित के अनुसंधानों में संलग्न हो जाते हैं। मुझे आशा है—आशा ही नहीं, विश्वास भी है कि यदि कभी—ईश्वर न करे—हमारे देश पर कोई संकट आया और देश को वैज्ञानिकों की सेवा की आवश्यकता हुई तो इस देश के वैज्ञानिक किसी देश के वैज्ञानिकों से पीछे नहीं रहेंगे। हम संसार को यह दिखा देंगे कि स्वतन्त्र भारत के वैज्ञानिक यदि सामान्य समय में अपनी प्रयोगशाला में शांतिपूर्वक, निश्चिन्त, अदृश्य रूप से अपना गवेषणा कार्य कर सकते हैं तो सङ्कट काल में देश के लिये प्राण भी दे सकते हैं। यदि हमने संसार के सब से समृद्धिशाली साम्राज्य को धराशायी करना सीखा है तो अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग और संरक्षण करना भी सीखा है।

विज्ञान का महत्त्व

इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रत्येक समय में विज्ञान ने संसार की संस्कृति पर अपना प्रभाव डाला है और उसकी सभ्यता का मार्ग प्रदर्शन किया है। एक समय था जब हमारे पूर्वज अपने जीवन के अधिकांश कार्यों में पत्थर से काम लेते थे। एक के ऊपर एक रखकर पत्थरों से मकान बनाते थे, पत्थर के उपकरणों से मछलियों का शिकार करते थे और पत्थर से पत्थर रगड़कर आग उत्पन्न करते थे। प्रस्तर युग के पश्चात् एक समय आया जब हमारे पूर्वज धातु से काम लेने लगे। वे धातु के बर्तन बनाने लगे, धातु के तीरों से मृगया करने लगे, और धातु के सिक्के भी

बनाने लगे। इस धातु युग का ही परिष्कृत रूप यन्त्र युग कहलाया जिसमें हमारे जीवन के छोटे बड़े सहस्त्रों कार्य यन्त्रों द्वारा होने लगे। नाज पीसने के लिये यन्त्र बने, यातायात के लिये यन्त्र बने, युद्ध के लिये यंत्र बने। जब हमारा वैज्ञानिक ज्ञान और विकसित हुआ तो हमने विद्युत् युग में पदार्पण किया। विद्युत हमारे दैनिक व्यवहार की वस्तु बन गयी। आज विद्युत् हमारे लिए रोटी पकाती है, पुस्तक छापती है, प्रकाश करती है। हमारी दैनिक आवश्यकताओं में से अधिकांश की पूर्ति विद्युत् द्वारा होती है। परन्तु अब विद्युत्-युग को भी गया ही समझिये। अब परमाणु युग का आविर्भाव हो रहा है। कुछ लोग कहते हैं कि विज्ञान का ध्येय ध्वं-सात्मक है, विज्ञान हिंसा सिखाता है। यह तो केवल समझ का दोष है। हम किसी वस्तु का उपयोग कर सकते हैं, दुरुपयोग भी कर सकते हैं। हम उस वस्तु से कैसा काम लेते हैं, यह हमारी बुद्धि पर निर्भर है। शराब बहुत सी औषधियों में डाली जाती है परन्तु वही मदिरा, अधिक मात्रा में पीकर, मनुष्य नालियों में लोटने लगता है। इसे आप मदिरा का दोष नहीं कहेंगे। यह पीने वाले का दोष है। जिस चाकू से हम शाक बनाते हैं उसी से एक कुशल डाक्टर फोड़े में चीरा लगाता है। परन्तु उसी चाकू से कसाई बकरी का गला काटता है और गुण्डा एक निर्दोष व्यक्ति की जान लेता है। चाकू में न बुराई है न भलाई। बुराई और भलाई उसके प्रयोग में है। यदि अत्यल्प मात्रा में और उचित मिश्रण में संखिया का सेवन किया जाय तो वह शक्ति वर्द्धक होती है परन्तु अधिक मात्रा में अथवा नासमझी से खाने में वही संखिया विष का काम करती है। इसमें संदेह नहीं कि परमाणु शक्ति का पहला प्रत्यक्ष प्रयोग हमने विनाशात्मक कार्य में किया है, परन्तु यह भी निश्चित है कि शीघ्र ही हम उसी शक्ति का प्रयोग रचनात्मक कार्य में करेंगे। जिस प्रकार संसार परमाणु की ध्वं-सात्मक शक्ति देखकर आतंकित हो गया था उसी प्रकार उसकी रचनात्मक क्षमता देखकर चकित रह जायगा और कुछ ही वर्षों में वह दिन आयेगा जब परमाणु शक्ति उसी प्रकार हमारे घरेलू कार्य किया करेगी जैसे आज विद्युत् शक्ति करती है।

वैज्ञानिक साहित्य

यह बात तो अब प्रायः सभी विद्या विशारदों ने मान ली है कि इस देश में विज्ञान का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक हमारे विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम देशी भाषायें न हो जायँ। इस हेतु हमें सबसे पहले देशी भाषाओं में, विशेष कर राष्ट्र भाषा हिंदी में, वैज्ञानिक साहित्य तैयार करना होगा। अभी तक हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य का अभाव ही रहा है। इस दिशा में छोटे मोटे उद्योग तो कई स्थानों पर हुए हैं परन्तु यदि उन उद्योगों को पश्चिम की किसी भी सम्पन्न भाषा के वैज्ञानिक साहित्य से तुलना की जाय तो वह उद्योग नगण्य ही दिखाई देंगे। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि दोनों की तुलना हो ही नहीं सकती क्योंकि बाहुल्य और शून्य में कोई समानता नहीं है।

इस परिस्थिति के कई कारण हैं। एक प्रत्यक्ष कारण तो यह है कि अभी तक हमारे देश में शिक्षा का माध्यम एक विदेशी भाषा रही है। जब कभी शिक्षा के माध्यम का प्रश्न उठाया जाता था, हमें यह टकसाली उत्तर दिया जाता था कि शिक्षा का माध्यम हिंदी कैसे हो सकती है जब हिंदी में वैज्ञानिक और पारिभाषिक विषयों का साहित्य ही उपलब्ध नहीं है। यह कितना लचर बहाना है। यह तो ऐसा ही है जैसे कोई यह कहे कि "मैं तब तक नदी में पैर नहीं रखूँगा जब तक मुझे तैरना न आ जायगा।" वैज्ञानिक अथवा पारिभाषिक विषयों की पुस्तकें आकाश से नहीं टपका करतीं। प्रकाशक उसी प्रकार की पुस्तकें प्रकाशित करते हैं जिसकी मांग हो। जब तक हिंदी शिक्षा का माध्यम

न हो जायेगी तब तक वैज्ञानिक विषयों की हिंदी पुस्तकों की माँग ही बाज़ार में उत्पन्न नहीं होगी। हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य का सृजन हिंदी को शिक्षा का माध्यम बनाने का परिणाम होगा न कि कारण। परन्तु अब तो देश की बागडोर हमारे ही हाथों में आ गई है। परिणाम स्वरूप देश की कई प्रांतीय सरकारों ने इस दिशा में पग बढ़ाया है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि आज से कुछ ही वर्षों में हिन्दी में वैज्ञानिक और पारिभाषिक विषयों की पुस्तकें प्रचुर मात्रा में तैयार हो जायेंगी।

वैज्ञानिक शब्दावली

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के अभाव का दूसरा कारण यह है कि अभी तक हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली बन नहीं पायी है। पिछले ६० वर्षों में इस दिशा में थोड़े बहुत छिट फुट प्रयत्न होते रहे हैं। परन्तु अभी तक हमारी शब्दावली न प्रचुर है न उपयुक्त न सम्पूर्ण। मैं यह मानता हूँ कि यह एक वास्तविक कठिनाई है जिसके कारण हमारे वैज्ञानिक साहित्य की गाड़ी रुकी पड़ी है। शब्दावली निर्माण का कार्य जितना महत्वपूर्ण है उतना ही कठिन। दूर से देखने में जितना सुगम है, वास्तव में उतना ही कंटकाकीर्ण। यह कार्य ऐसा नहीं है जिसे कोई एक दो या दो चार व्यक्ति मिलकर एक दो वर्ष में भी पूरा कर सकें। इस कार्य के लिये एक विस्तृत आयोजन चाहिये। एक सार्वदेशिक प्रामाणिक संस्था बनाई जाय जिसमें प्रत्येक वैज्ञानिक विषय के दो २ चार २ विशेषज्ञ रखे जायँ जो अपना पूर्ण समय इसी कार्य को दें। इस संस्था में प्रचुर संख्या के हिन्दी और संस्कृत के विद्वान मनोनीत किये जायं। इसके अतिरिक्त संस्था को पर्याप्त मात्रा में सहायक, लिपिक (क्लर्क) और अन्य कर्मचारीगण दिए जायं। संस्था को द्रव्य और अन्य साधनों की कोई कमी न हो। यह कार्य लाख दो लाख रुपये में नहीं हो सकता। इसके लिये प्रचुर मात्रा में धन चाहिये। जब इस प्रकार की संस्था बने और उसे पूरे साधन उपलब्ध हों तब यह आशा की जा सकती है कि सारे वैज्ञानिक विषयों की एक प्रामाणिक हिन्दी शब्दावली १० वर्ष में तैयार हो जाय। यह विषय बड़ा महत्वपूर्ण है और मैं स्वयं भी कई वर्षों से इसी दिशा में अपनी तुच्छ क्षमता के अनुसार कार्य कर रहा हूँ। अतएव इसी विषय को मैं अपनी वार्ता का केन्द्र बिन्दु बनाना चाहता हूँ।

शब्दावली की आवश्यकता

कुछ लोगों का मत है कि हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली बनाने की आवश्यकता ही क्या है? इन लोगों के विचार में अंग्रेजी की वैज्ञानिक शब्दावली अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण करती जा रही है। क्यों न हम उसी को अपना लें। यदि हम अपनी एक नई शब्दावली बनाने का प्रयास करेंगे तो देश की बहुत सी शक्ति उस कार्य में लग जायगी। क्यों न इस शक्ति को बचा लिया जाय और रचनात्मक कार्य में लगाया जाय। दूसरी बात यह है कि हमारे विद्यार्थियों और अध्यापकों को, जो अंग्रेजी शब्दावली के अभ्यस्त हैं, एक नई शब्दावली सीखनी पड़ेगी जो उनके मस्तिष्कों पर मृतभार हो जायगी। हिन्दी शब्दावली के निर्माण से तीसरी हानि इन लोगों के विचार में यह होगी कि हम लोग वैज्ञानिक दौड़ में पश्चिम से पीछे रह जायँगे। यदि हम लोग दस बीस वर्ष शब्दावली के बनाने में लगा देंगे तो आज का विज्ञान दस बीस वर्ष आगे बढ़ जायगा। जब तक हम विज्ञान की नयी खोजों से सम्बद्ध नए शब्दों के लिए हिन्दी पर्याय निर्माण करेंगे तब तक वैज्ञानिक विषय दस बीस वर्ष और आगे बढ़ जायेंगे। वैज्ञानिक ज्ञान के साथ २ हम कभी चल ही न सकेंगे। पश्चिमी देशों के वैज्ञानिकों से हमारा सम्पर्क टूट जायगा और हम कूप मण्डूक बन जायेंगे।

मुझे इस प्रकार के तर्कों में तनिक भी तथ्य

दिखाई नहीं देता। मेरी तो निश्चित धारणा है कि ऐसे तर्क अधिकतर वही लोग उपस्थित करते हैं जिन्होंने शब्दावली की समस्या पर तनिक भी समय न लगाया हो। मुझे विश्वास है कि जो कोई व्यक्ति भी व्यवहारिक रूप से इस प्रश्न पर विचार करेगा वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि अंग्रेजी की शब्दावली से हमारा कार्य एक दिन भी नहीं चल सकता। उदाहरणार्थ मैं दो एक वाक्य रसायन से लेता हूं।†

Ethyl alcohol occurs naturally in the form of its *esters* with *organic acids* in many *essential* oils and fruits.

यदि इस वाक्य में हम पारिभाषिक शब्दों को ज्यूँ का त्यूँ रहने दें तो इसका अनुवाद इस प्रकार होगा—

Ethyl alcohol प्रकृति में esters के रूप में बहुत से essential तेलों और फलों में organic acids के साथ पाया जाता है।

आप लोग कहेंगे कि मैं कदाचित वाक्य को जानबूझ कर बिगाड़ रहा हूँ। परन्तु मैं कहता हूँ कि मैं वाक्य को यथा साध्य संभालने का उद्योग कर रहा हूं। इस वाक्य में मैंने केवल उच्च पारिभाषिक शब्दों को ही अंग्रेज़ी रूप में रक्खा है। शेष शब्दों में कई ऐसे हैं जो अर्धपारिभाषिक कहे जा सकते हैं। यदि उन्हें भी ज्यूँ का त्यूँ रखा जाय तो अनुवाद इस प्रकार होगा:—

Ethly alcohol प्रकृति में esters के form में बहुत से essential oils और fruits में Organic acids के साथ पाया जाता है।

मैं अपना तात्पर्य स्पष्ट करने के लिये एक वाक्य और लेता हूँ।

The *aqueous* layer which still contains *acetone* and other impurities is mixed with powdered *anhydrous calcium chloride* whereby a *crystalline compound* of the composition $Ca\ Cl_2\ 4CH_3\text{-}OH$ separates out.

इस वाक्य में भी यदि तिरछे लिखे हुये शब्दों को ज्यों का त्यों ही रखा जाय तो इसका अनुवाद इस प्रकार होगा:—

Aqueous परत में, जिसमें अब भी Acetone और अन्य अशुद्धियां विद्यमान हैं, पिसा हुआ Anhydrous Calcium Chloride मिला दिया जाता है जिससे एक Crystalline Compound जिसकी रचना $Ca\ Cl_2\ 4CH_3\text{-}OH$ है, अलग हो जाता है।

इस वाक्य में भी कई शब्द और भी ऐसे हैं जो वास्तव में पारिभाषिक हैं—जैसे—

Layer, impurities, mixed, powdered, composition.

यदि इन शब्दों को भी ज्यूँ का त्यूँ रखा जाय तो हमारा हिन्दी अनुवाद और भी भद्दा हो जायगा।

अब तनिक इन दोनों वाक्यों के यथाकथित हिन्दी अनुवादों पर विचार कीजिए। क्या इस ढंग की भाषा से कभी भी हमारे वैज्ञानिक साहित्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है? पहला प्रश्न तो मैं इस ढंग की भाषा के समर्थकों से यह करना चाहता हूँ कि "आप लोग अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्द रोमन लिपि में ही अपनाना चाहते हैं या उन्हें नागरी लिपि में लिखेंगे।" यदि रोमन लिपि में ही अपनायेंगे तो इसका अर्थ यह होगा कि हमारे विद्यार्थियों को नागरी लिपि के अतिरिक्त एक अन्य लिपि सदैव सीखनी होगी। तनिक

† मेरी समझ में हम को अंग्रेजी शब्द भी नागरी लिपि में ही लिखने चाहिये परन्तु इस विशिष्ट प्रसङ्ग में रोमन लिपि में ही लिखना वांछनीय दिखाई देता है। यह बात आगे चलकर स्पष्ट हो जायगी।

सोचिए कि हमारे भविष्य के विद्यार्थियों के मस्तिष्क पर कितना अनावश्यक बोझ यह लोग डालना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त हमारे मुद्रणालयों में सदैव रोमन लिपि की मुद्रायें भी रखनी पड़ेंगी। हिन्दी की छपाई तो यूँ ही कठिन है। एक बड़ी भारी कठिनाई यह और भी बढ़ जायगी। बहुत से कार्यालयों में हिन्दी मुद्रलिख (टाइपराइटर) के अतिरिक्त अंग्रेजी मुद्रलिख भी रखने पड़ेंगे। प्रेस के कम्पोजिटरों और कार्यालयों के बहुत से क्लर्कों को दोनों लिपियाँ सीखनी पड़ेंगी। इसमें देश की धन, जन शक्ति का कितना ह्रास होगा, कदाचित इसका अनुमान इन लोगों ने नहीं लगाया है।

अब मान लीजिए कि हम अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्द नागरी लिपि में लिखना स्वीकार कर लें, तो उपरिलिखित दूसरा वाक्य इस प्रकार का हो जायगा—

एक्वियस परत में, जिसमें अब भी ऐसीटोन और अन्य अशुद्धियाँ विद्यमान हैं, पिसा हुआ ऐन्हाइड्रस कैल्शियम क्लोराइड मिला दिया जाता है, जिससे एक क्रिस्टैलाइन कम्पाउण्ड, जिसकी रचना सी-ए सी-एल$_2$ ४सी एच$_3$-ओ-एच है, अलग हो जाता है।

इस ढंग की भाषा हमारे भविष्य के कितने विद्यार्थियों के गले के नीचे उतर सकेगी? एक ऐसे विद्यार्थी को जो रोमन लिपि और अंग्रेजी भाषा नहीं जानता, हम किस प्रकार समझायेंगे कि सी-ए का क्या अर्थ हुआ और सी-एल का क्या अर्थ हुआ यदि हम विद्यार्थियों को नागरी लिपि में ही रोमन वर्णमाला का ज्ञान भी करा दें तो भी यह तथ्य उसे कैसे हृदयंगम होगा कि सी-ए का अर्थ है 'कैल्शियम' और सी एल$_2$ का अर्थ है 'क्लोरीन'। एक बात और भी है। आज हमारे विद्यार्थी इण्टर-मीजियेट तक अंग्रेजी भाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करके उच्च वैज्ञानिक विषयों में पदार्पण करते हैं, तो भी वैज्ञानिक विषयों के सहस्रों नहीं लाखों पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं जिनका मूल वह लोग समझ नहीं पाते। अंग्रेजी की वैज्ञानिक शब्दावली के अधिकांश शब्द लैटिन और ग्रीक से लिए गए हैं। यही कारण है कि ये शब्द अंग्रेजी भाषियों को भी अपरिचित लगते हैं। अपने परिचितों में से प्राणिकी (जूआलोजी) के किसी एम-एस-सी के विद्यार्थी अथवा किसी अध्यापक को पकड़ लीजिए और उससे पूछिये कि कितने प्रकार के प्राणि परिवारों के पारिभाषिक नाम उनको याद हैं। मुझे विश्वास है कि ऐसे शब्दों की संख्या ५ प्रतिशत भी न निकलेगी। फिर उससे यह पूछिए कि जो शब्द उनको स्मरण भी है उनमें से कितने ऐसे हैं जिनकी मूल उत्पत्ति वह समझता है। ऐसे शब्द और भी कम निकलेंगे। जब आज यह दशा है तो भविष्य में, जब हमारे विद्यार्थी सारी वैज्ञानिक शिक्षा हिन्दी में प्राप्त करेंगे और उनका अंग्रेजी भाषा का ज्ञान बहुत कम अथवा नगण्य होगा, तब उनके शब्दावली सम्बन्धी ज्ञान की क्या दशा होगी, इसका अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है।

मैं एक छोटा सा उदाहरण लेता हूँ। एक कहार, एक नाई और एक धोबी के बच्चे को ले लीजिए, और उन तीनों को निम्नलिखित तीनों शब्द बताइए—

ट्रायंगिल, हाइड्रोजन, प्वाइंट

और फिर इन्हीं तीनों के हिन्दी पर्याय

त्रिभुज, उदजन, बिन्दु

बताइए। अगले दिन देखिये कि उन बच्चों को हिन्दी शब्द अधिक याद हैं या अंग्रेजी शब्द। मुझे पूरा विश्वास है कि उन तीनों को, चाहे वह सर्वथा अशिक्षित हों, हिन्दी शब्द ही अधिक याद होंगे। और जब हमारे विद्यार्थी हिन्दी शिक्षा-प्राप्त होंगे और अंग्रेजी से अपेक्षाकृत अनभिज्ञ होंगे तब तो उनकी हिन्दी-अंग्रेजी शब्द-ग्रहण शक्ति में आकाश

पाताल का अन्तर पड़ जायगा। एक हिन्दी का विद्यार्थी 'त्रिभुज' का अर्थ जानने से पहले भी 'त्रिभुज' शब्द से सर्वथा अपरिचित नहीं होगा। क्योंकि वह जानता है कि 'त्रि' का क्या अर्थ है और 'भुज' का क्या अर्थ है। यदि उसने 'उद्जन' शब्द पहले न भी सुना हो तो भी 'उद' और 'जन' के उच्चारण से वह सर्वथा अपरिचित नहीं है। क्योंकि वह हिन्दी के बहुत से शब्दों में इस प्रकार के उच्चारणों का प्रयोग कर चुका है। जैसे 'उदास' और 'राजन' में। परन्तु Hydro और gen के उच्चारण से वह सर्वथा अपरिचित है। अतएव अंग्रेजी शब्दों की अपेक्षा हिन्दी शब्द उसे अधिक सुगम, बोधगम्य और ग्राह्य होंगे।

अब मैं दूसरे तर्क पर आता हूँ। यह कहना तथ्यहीन है कि हमारे विद्यार्थी और अध्यापक अंग्रेजी शब्दावली तो पढ़ ही चुके हैं। उनके ऊपर एक दूसरी शब्दावली का बोझ क्यों डाला जाय! प्रश्न केवल विद्यार्थियों और अध्यापकों की वर्तमान पीढ़ी का ही नहीं है। प्रश्न भविष्य की असंख्य पीढ़ियों का है। किसी राष्ट्र के इतिहास में एक या दो पीढ़ियों का महत्व नगण्य है। यदि हम किसी उपाय से आगामी पीढ़ियों का मार्ग सरल और प्रशस्त कर सकें तो क्यों न कर दें? यदि इस उद्योग में वर्तमान पीढ़ी को असाधारण भार उठाना पड़े तो कोई चिन्ता नहीं। जो लोग परिवर्तन काल में रहते हैं, उन्हें तो थोड़ा बहुत असाधारण कष्ट झेलना ही पड़ता है। अतएव इस तर्क को तो मैं यहीं छोड़े देता हूँ।

अब प्रश्न रह गया अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क का। सारे देश के निवासियों में से कितने ऐसे हैं जो विश्वविद्यालयों की ऊच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। इन उच्चशिक्षा प्राप्त मनुष्यों में से भी कितने ऐसे हैं जो उच्चतम उपाधि प्राप्त करके अनुसन्धान कार्य करते हैं। किसी भी देश में ऐसे अनुसन्धानकर्त्ताओं की संख्या पूरे देश की जन-संख्या का एक प्रतिशत भाग भी न होगी। इन थोड़े से व्यक्तियों को ही अन्य राष्ट्रों के वैज्ञानिक साहित्य के अध्ययन को अवश्यकता पड़ती है। क्या हम इन एक प्रतिशत व्यक्तियों के कारण देश के ९९ प्रतिशत निवासियों पर एक जटिल विदेशी भाषा की दुरूह वैज्ञानिक शब्दावली लाद दें? यह कहाँ की बुद्धिमानी होगी। देश की शिक्षा नीति ९९ प्रतिशत जनता की सुविधा पर आधारित होनी चाहिए, न कि १ प्रतिशत की।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। हमारे अनुसन्धान छात्रों का कार्य आजकल भी केवल अंग्रेजी से नहीं चलता। उनमें से बहुतों को फ्रेंच और जर्मन पढ़नी पड़ती है। और देश के कुछ वैज्ञानिक रशन और इटैलियन का भी अध्ययन करते हैं, और विज्ञान के अनुसन्धान छात्रों के लिए कई यूरोपीय भाषाओं का अध्ययन आवश्यक बताते हैं। भविष्य में इस स्थित में थोड़ा सा ही अन्तर पड़ेगा। हमारे गवेषणा छात्रों को, जैसे आज फ्रेंच और जर्मन पढ़नी पड़ती है, वैसे ही अंग्रेजी भी पढ़नी पड़ेगी। इसके अतिरिक्त हम यह तो नहीं कहते कि अंग्रेजी को देश से बोरिया बँधन निकालकर बाहर फेंक दिया जायगा। हमारे देश की उच्च शिक्षा में अंग्रेजी का कोई न कोई स्थान अवश्य ही रहेगा, चाहे अनिवार्य रूप में अथवा वैकल्पिक रूप में। यदि हम चाहें तो यह नियम बना सकते हैं कि उन्हीं छात्रों को गवेषणा करने की अनुज्ञा दी जायगी जो कालिज की कक्षाएँ अंग्रेजी लेकर पास करेंगे। इस प्रकार ऐसे छात्रों की आवश्यकता की पूर्ति हो जायगी और देश की साधारण जनता पर इसके कारण कोई अनावश्यक बोझ भी नहीं पड़ेगा।

शब्दावली का इतिहास

जहाँ तक मुझे पता है एक भारतीय भाषा में वैज्ञानिक साहित्य निर्माण करने का प्रथम प्रयास सन् १८८८ में बड़ौदा में हुआ था। महाराजा सयाजी राव गायक्वाड़ ने इस कार्य के लिए ५००००) का दान किया था। कला-भवन, बड़ौदा के कार्यकर्त्ता प्रो० गज्जर ने कई वर्ष यह कार्य किया और कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित कीं। परन्तु जैसा उन्होंने कला-

भवन के वर्षिक विवरणों में स्वीकार किया है, भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्दों के अभाव के कारण उस संस्था की गाड़ी ठप हो गई। उन्होंने भारतीय भाषाओं में एक शब्द कोष बनाने का उद्योग भी किया परन्तु उसमें उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली।

वैज्ञानिक शब्दावली सम्बन्धी दूसरा प्रयोग कलकत्ते के बंगीय साहित्य परिषद ने किया। इस संस्था ने रसायन, भूगोल और खगोल की शब्द सूचियाँ प्रकाशित कीं। परन्तु थोड़े ही समय पश्चात् इस संस्था का कार्य मन्द पड़ गया और इसी प्रकार शब्दावली सम्बन्धी प्रयास भी समाप्त हो गया।

हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली निर्माण का प्रथम प्रयास काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने किया। उक्त सभा ने सन् १८९८ में एक पारिभाषिक शब्दावली समिति बनाई। इस समिति को पं० सुधाकर द्विवेदी का सहयोग प्राप्त था। द्विवेदीजी इससे पूर्व भी वर्षों से हिन्दी में गणितीय विषयों की पुस्तकें लिख रहे थे। आपने बहुत से प्राचीन गणितीय शब्दों को खोजकर अपना लिया था और कुछ नये शब्द भी बनाये थे।

इस शब्दावली समिति ने ८ वर्ष के परिश्रम के पश्चात् एक हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली प्रकाशित की जिसमें गणित, दर्शन, भौतिक (Physics) अर्थ शास्त्र, भूगोल और खगोल के विषयों का समावेश था। इस शब्दावली का सम्पादन प्रसिद्ध हिन्दी सेवी स्वर्गीय डा० श्यामसुन्दरदास ने किया था। सन् १९३० में सभा ने शब्दावली की पुनरावृत्ति के लिए एक समिति बनाई जिसके अधिकांश सदस्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक विषयों के अध्यापक थे। इस समिति ने वैज्ञानिक शब्दावली को परिष्कृत रूप में सन् १९३१ में प्रकाशित किया। यह शब्दावली बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है और अभी तक भारत के हिन्दी भाषी वैज्ञानिकों में प्रमाणिक मानी जाती है।

सन् १९४४ में प्रयाग के भारतीय हिन्दी परिषद ने विज्ञान के छः मुख्य विषयों की शब्दावली के निर्माण में हाथ लगाया। गणित, भौतिक, रसायन, खगोल औद्भिदी (Botany) और प्राणिकी। यह शब्दावली हस्तलिपि रूप में तैयार हो गई है और शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

इस दिशा में प्रयाग के विज्ञान परिषद का कार्य भी उल्लेखनीय है। इस परिषद ने पिछले ३४ वर्षों में हिन्दी की बड़ी सेवा की है। इसने इस अवधि में सरल विज्ञान और उद्योग धन्धों पर ३० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित की हैं और एक रसायन शब्द सूची का भी निर्माण किया है।

परन्तु इस दिशा में पिछले पाँच छः वर्षों में जो कार्य सरस्वती विहार, लाहौर के अधिष्ठाता डा० रघुवीर (जो आजकल नागपुर में हैं) ने किया है, विशेष रूप से प्रशंसनीय है। उक्त डाक्टर-जी ने 'आँगल भारतीय महाकोष' का निर्माण किया है। आपका उद्देश्य है ज्ञान के समस्त विषयों—लगभग६००—में एक सम्पूर्ण पारिभाषिक कोष का निर्माण करना। अभीतक आपने उसके दो ही भाग प्रकाशित किए हैं—भाग १ 'अप्रांगारिक रसायन' (Inorganic Chemistry) का, और भाग २ रासायनिक साधित्र (Chemical Apparatus) का। इस महाकोष की दो विशेषतायें हैं:—

१—इसमें केवल मौलिक शब्दों के ही पर्याय नहीं दिए गए हैं वरन् ऐसे शब्दों से उत्पन्न समस्त शब्दों के पर्यायों का भी समावेश है।

२—इस प्रयास का उद्देश्य है भारत की समस्त भाषाओं के लिए एक ही शब्दावली का निर्माण करना। और इस हेतु इस महाकोष में समस्त शब्द शुद्ध संस्कृत से लिए गए हैं।

यह महाकोष अपने ढंग का अनूठा है। यदि यह कहा जाय कि हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली के क्षेत्र में यह प्रथम पद्धतिशील, विस्तृत और आत्म-सम्पूर्ण प्रयास है तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति न होगी। देखना है वैज्ञानिक जगत इसका कहाँ तक स्वागत करता है।

मेरा सुझाव

शब्दावली का विषय बहुत ही विस्तृत है। समय के अभाव के कारण मैं इस विषय के बहुत ही थोड़े अंगों पर अपने विचार व्यक्त कर पाया हूँ। अन्त में मैं केवल एक सुझाव देकर इस वार्ता को समाप्त करता हूँ। मेरा विचार है कि इस सम्मेलन के विज्ञान परिषद् की ओर से एक वैज्ञानिक शब्दावली समिति बनाई जाय। इस समिति में काशी नागरी प्रचारणी सभा का सहयोग भी प्राप्त करने का उद्योग किया जाय। यह समिति देश की समस्त वर्तमान हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावलियों का अध्ययन करे और इस बात पर अपना निश्चित मत दे कि उनमें से किसी भी शब्दावली की पद्धति वैज्ञानिक, सम्पूर्ण और पर्याप्त है या नहीं। यदि समिति के विचार में ऐसी कोई शब्दावली हो तो सम्मेलन उसी को आधिकारिक रूप से प्रमाणिक घोषित कर दें। यदि कोई भी शब्दावली इस परीक्षा में उत्तीर्ण न निकले तो एक नई शब्दावली का निर्माण का प्रयास किया जाय। ऐसी दशा में हमें इस कार्य के लिए एक विशाल सामूहिक योजना बनानी होगी जिसका संकेत मैंने अपने भाषण के मध्य में किया है।

विज्ञान तथा आत्म विजय‡

डा० राजेन्द्र प्रसाद

मौजूदा दुनियाँ की प्रधान विशेषता, ऐसी विशेषता जिसकी तरफ से कोई भी प्राणी उदासीन नहीं हो सकता, है प्रकृति पर मनुष्य की प्रभुता। युगों तक मानव प्रकृति का खिलौना मात्र था। उस काल में उसकी बेबसी और गरीबी की कोई हद न थी। जीवन एक भार था और पृथ्वी एक कारागार। उस समय मानव की तीव्रतम् आकांक्षा यही थी कि वह इस कारागार से जल्द से जल्द छुटकारा पा जाय। उसके स्वप्न की दुनियाँ और उसकी कल्पना का जगत एक ऐसा लोक था जिसमें न किसी प्रकार का अभाव था और न कोई रोग और न संताप। उसके जीवन का साध इसी स्वर्ग लोक की प्राप्ति थी। यह बात सत्य थी कि उसे यह स्वर्ग मर कर ही प्राप्त हो सकता था पर अपनी इसी आशा पर वह जीवन के भारी बोझ को ढो लेता था।

आज मनुष्य की स्थिति बदल गई है। अब प्रकृति उसकी स्वामी न रह कर दासी बन गयी है। आज वह न तो असहाय है न दुर्बल और न निर्धन। विज्ञान ने उसे ऐसा गुरुमंत्र दे दिया है कि जिससे कुदरत के बहुत छुपे हुये खज़ानों के दरवाज़े सहज में ही खुल जाते हैं और देवताओं के हथियार उसे सहज में मिल जाते हैं। आज कामधेनु और कल्प वृक्ष कल्पना ही न रह कर बहुत कुछ वास्तविक सत्य बन गये हैं। आज समुद्र मन्थन केवल देवताओं और असुरों की एक काल्पनिक कहानी नहीं बल्कि यह आदमियों का रोजमर्रा का काम बन गया है। आज मनुष्य ने पैदावार के इतने साधन इकट्ठा कर लिये हैं कि किसी भी व्यक्ति को भूखा-नंगा बे घरबार रहने की मजबूरी नहीं रह गई है। यदि इन साधनों का उचित प्रयोग हो तो संसार से गरीबी हमेशा के

‡ प्रयाग विश्वविद्यालय की हीरक जयन्ती के अवसर पर दिये गये दीक्षान्त भाषण का एक अंश।

लिये मिट जाये। मनुष्य की इस वस्तु सम्पन्नता की वजह से स्वर्ग केवल कल्पना और स्वप्न का लोक ही नहीं रहा बल्कि मनुष्य के वास्तविक जीवन के बहुत पास आगया है। आज यह मुमकिन है कि इस पृथ्वी पर इसी जीवन में प्रत्येक मानव स्वर्ग के सब सुखों का उपयोग कर सके।

आधुनिक दुनियाँ में दूसरी खूबी है मनुष्य जीवन की सार्वभौमिक एकता। पुराने जमाने में सबसे ऊँचा आदर्श यही माना जाता था कि व्यक्ति बसुधा भर के प्राणियों को अपने कुटुम्बियों के समान ही माने, पर यह बसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श आधुनिक जीवन की पहली सीढ़ी बन गया है। विज्ञान ने दूरी को इतना जीत लिया है कि वह अब आदमी-आदमी में, जाति-जाति में और देश-देश में कोई दीवार नहीं खड़ी कर पाती, उनके आपसी व्यवहार में कोई रुकावट नहीं डाल पाती।

इसके फलस्वरूप दुनिया की शान्ति, स्वतंत्रता, शक्ति, सम्पन्नता, समृद्धि, वैभव सब कुछ एक है, अखंडित है और अखंडित अवस्था में ही रह सकती हैं। इसी लिए आज बिना बसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श को माने मनुष्य जीवन का आगे चलना असम्भव होगया है।

तीसरी खूबी जो मौजूदा जिन्दगी में पायी जाती है वह है उसकी तेज रफतार। आज मनुष्य जिस तेजी से अपना काम सम्पादन कर रहा है, उसकी तुलना में आँधी और तूफान की रफ्तार न कुछ के बराबर ठहरती है। इस तेज रफतार की वजह से आज वह कुछ लहमों में इतना काम पूरा कर लेते हैं जितना उसके पुरखा वर्षों से नहीं कर पाते थे। एक तरह से उसने वक्त को अपना गुलाम बना लिया है और आज उसकी आयु के दस वर्ष उसके पुरखाओं की आयु के सौ वर्षों के बराबर हैं।

पर किस्मत की कैसी मार है कि देवताओं की यह ताकत हासिल करके भी आदमी न तो सुखी है और न सुरक्षित। उसकी यह ताकत ही उसके लिये दुश्मन बन गयी मालूम होती है। दुनियाँ में लड़ाई है, अशान्ति है, भूख है, महामारी है, बेघरबारी है और हर तरह की कमी है। आज योरोप और एशिया में करोड़ों आदमी भर पेट खाना नहीं पाते और तन ढकने को कपड़ा नहीं ले सकते। ऐसे लाखों ही आदमी औरत हैं जिनको सोने के लिये केवल सड़कें हैं या स्टेशनों के प्लेटफार्म। यह शोचनीय हालत संसार के और देशों की ही नहीं हमारे देश की भी है।

मन में यही विचार उठता है कि यह सब क्यों है जब प्रत्येक के लिए पर्याप्त धन दौलत है, सामग्री है तो फिर यह लूट पाट क्यों? देश देश की, श्रेणी श्रेणी की, व्यक्ति व्यक्ति की इस प्रकार शत्रुता क्यों? क्या मानव पागल है, क्या वह भी अपनी भलाई बुराई नहीं समझता, क्या वह जङ्गली जानवरों की तरह विवेकहीन है? ऐसा तो नहीं। फिर यह व्यर्थ की लड़ाई क्यों?

वर्तमान युग का यही सबसे महत्वपूर्ण सवाल है। इसका जवाब जान लेना आप सब का कर्तव्य है। मेरे विचार में यह विषम अवस्था इसलिये पैदा हुई है कि मानव ने प्रकृति विजय की धुन में अपनी आत्मा को भुला दिया है और उसने दौलत इकट्ठी करने में धर्म को तिलांजलि दे दी है और शक्ति संचित करने में स्नेह का परित्याग कर दिया है।

प्रकृति विजय कोई बुरी बात नहीं। बल्कि यह कहना गलत न होगा कि बिना प्रकृति विजय किये मनुष्य आत्मा की पुकार भी पूरी तरह से नहीं सुन सकता। पर प्रकृति विजय जब मनुष्य जीवन का पूरा ध्येय बन जाती है तो यह बहुत हानिकार हो जाती है। ज्ञान जीवन के लिये है न कि जीवन ज्ञान के लिए। दूसरे लफ्जों में ज्ञान केवल एक साधन है जिसके जरिये आत्मा अपनी असली शक्ति को पहिचानती है। आम जिन्दगी की भाषा में हम इस सचाई को यों बयान कर सकते हैं कि

मनुष्य का सारा ज्ञान उसके जीवन को सत्यम् शिवम् सुन्दरम् बनाने का केवल एक साधन है। यदि ज्ञान स्वयं ध्येय बन जाय तो वह मृत्यु और अन्धकार की ओर ले जाता है। इसी सचाई की ओर उपनिषद् में यह कह कर संकेत किया गया है कि अविद्या और विद्या दोनों ही मानव को ऐसे अन्धकार मय लोक में ले जाती हैं जहां वह कुछ नहीं देख सकता केवल आत्म विद्या अथवा परा विद्या ही उसको सच्ची मुक्ति दे सकती है। आज की दुनिया पर दृष्टि डालने से यह सचाई भली भांति जाहिर हो जाती है। आज विज्ञान ने आत्मा से सम्बन्ध विच्छेद कर रक्खा है। वैज्ञानिक का काम है केवल प्रकृति सम्बन्धों का अन्वेषण। उन सम्बन्धों का मानव जीवन में अच्छा प्रयोग होता है अथवा बुरा इससे वैज्ञानिक को कोई मतलब नहीं। इस दृष्टिकोण का नतीजा यह है कि वैज्ञानिक अपनी अन्वेषण बुद्धि को रुपये पैसे के लिये बिना पाप पुण्य का ध्यान किये बेचने को तैयार है। इसका परिणाम तो आप सब के सामने ही है। आज वैज्ञानिक खोजों का ठग और साधु दोनों अपने कार्य सिद्धि में इस्तैमाल कर रहे हैं पर ज्यादा फायदा विज्ञान से ठगों को हो रहा है। हिरोशिमा के ध्वंशावशेषों से आज भी उन लाखों निरपराध नर नारियों की आह की ध्वनि आती है, जिनका जीवन असमय में ही विज्ञान की सबसे बड़ी विजय 'परिमाणु बम' ने समाप्त कर दिया। आज जमीन पर ऐसा कोई जगह नहीं, कोई कोना नहीं, जहां विज्ञान के दिये हुए अस्त्रों से मनुष्य की आत्मा का हनन न हुआ हो। विज्ञान के कारण मनुष्य की आत्मा का जीवन हर क्षेत्र में नाश हो रहा है। उस के दिए हुए कल मशीनों से अस्त्र शस्त्रों से मनुष्य मनुष्य का शोषण कर रहा है, हनन कर रहा है। सच ही आज इस विद्या ने मानव को ऐसी अन्धेरी दुनिया में पहुँचा दिया है, जहां उसको अपना फैलाया हुआ हाथ भी नहीं दिखाई देता। यदि इस विज्ञान ने मनुष्य की आंखों पर अहंकार की मोटी पट्टी न बांध दी होती तो क्या यह सम्भव होता कि परमाणु बम के घातक परिणामों को जानते हुए भी प्रत्येक राष्ट्र इन्हीं बमों के बनाने में प्रत्येक दिन करोड़ों रुपये खर्च करता होता और वह भी उस वक्त जब लाखों ही नर नारी भूख से तड़प तड़प कर जानें दे रहे हों।

प्रकृति विजय में वही जड़ता है जो प्रकृति में है। वहां न हृदय को स्थान है और न मनुष्यता को। वहां तो मनुष्य मशीन बन कर रह सकता है, मशीन मनुष्य का गुलाम बन कर नहीं। आप प्रकृति विजयिनी सभ्यता के प्रतिनिधि देशों को देख लीजिये, वहां कहीं भी मनुष्यता पर, स्नेह पर, सेवा भाव पर क्या कोई भी संस्था अथवा संगठन कायम है? हर स्थान में मनुष्य के प्रति संदेह है और सब साधन तानाशाही के मातहत हैं चाहे फिर वह तानाशाही किसी व्यक्ति की हो अथवा किसी समूह की।

हमारी सभ्यता ने प्रकृति को इतनी प्रधानता कभी नहीं दी, उसने प्रकृति को आत्मा का साधन जरूर माना पर कभी यह स्वीकार न किया कि आत्मा प्रकृति का एक हीन अङ्ग है अथवा प्रकृति की एक तुच्छ दासी। इसी लिए हमारे यहां जगत के सम्राट का स्थान कर्म योगी के नीचे माना गया है। यहां लंगोटी की इज्जत तख्त व ताज से हमेशा ज्याद रही है। और धर्म को राज्य के ऊपर रक्खा गया है। संसार को इसी दृष्टिकोण को अपनाने की जरूरत है।

आज की सभ्यता में शक्ति का संग्रह बिना उद्देश्य के किया जा रहा है। शक्ति सेवा का साधन है न कि स्वयं जीवन का ध्येय। जब शक्ति को स्वयं ध्येय मान लिया जाता है तो मनुष्य सफल चीता तो हो सकता है पर सच्चा मानव कभी नहीं बन सकता। आज हमारे देश में इसी शक्ति संचय के पागलपने ने लाखों नर नारियों को बे घर बार का कर दिया है, बच्चों को माता पिता से बिलग कर दिया है और आदमी को जानवर बना दिया है।

यही शक्ति का प्रेम आज एक देश को दूसरे देश का शत्रु बना रहा है। कोई भी देश नहीं चाहता कि शक्ति कम हो और इसलिए शक्ति की दौड़ चल उसकी रही है जिससे मनुष्य की आत्मा की हत्या हो रही है। आज के इतिहास के पन्ने पलट जाइये, आपको यही शक्ति पूजा मिलेगी। यही परिमाणु बम और बड़ी नौशक्ति की भावनायें मिलेंगी और यही मनुष्य की आत्मा की हत्या मिलेगी।

यह है वह दुनिया जिसमें प्रवेश करने आप जा रहे हैं। आप शिक्षित हैं, युवक हैं, हृदयवान हैं। आपका फर्ज है कि आप इन्सान को बरबादी के रास्ते से हटा कर रचनात्मक पथ पर अग्रसर करें।

वह पथ है आत्म विजय का पथ, वह पथ है भारत की प्राचीनतम संस्कृति का पथ। वह पथ है त्याग और सेवा का पथ।

यह आत्म विजय क्या है। मैं इस विषय में आप के सामने कोई निगूढ़ अध्यात्मिक तत्वों का प्रतिपादन न करूंगा। मैं तो आत्म विजय के इसी पहलू पर विचार करूंगा जिसका सम्बन्ध सामाजिक जीवन से है। मैं यह पहले ही बता चुका हूँ कि मनुष्य और पशु में दो बातों का भेद है। एक तो मनुष्य में सृजन प्रेरणा है और दूसरी धर्म प्रेरणा। इन्ही दोनों प्रेरणाओं से मनुष्य पशु से बहुत भिन्न और बहुत ऊँचा प्राणी बन जाता है। इन्हीं दोनों प्रेरणाओं के पूर्ण विकास को मैं आत्म विजय समझता हूँ।

पहिली भावना को लीजिये। सजन प्रेरणा मनुष्य को असुन्दरता से, असामन्जस्य से, कठोरता से, क्रूरता से दूर हटाती है। उसके अन्तर में है कलाकार की कोमलता और सहानुभूति। अतः सृजन प्रेरणा का मूल तत्व अहिंसा सिद्ध होती है और यही अहिंसा है धर्म का मूल तत्व। अहिंसा का अर्थ केवल प्राणनाश न करना ही नहीं है। अहिंसा का अर्थ है वह कोई भी कार्य न करना जिससे सृजन में, धर्म में सहायता न मिलती हो। ईषोपनिषद् में कहा है......

ईशावास्थामिदं सर्वं यत्किंच जगत्यांजगत्
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।

यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि यही अहिंसा की सच्ची परिभाषा है। मानव को यह मान लेना है कि जो कुछ भी उसके पास है वह केवल साधन है, ऐसा साधन जो उसको आत्म दर्शन के लिये मिला है और इससे अधिक ना उसे चाहना है और न यह सोचना है कि दूसरे के पास अधिक क्यों है। प्रत्येक को अपने कर्तव्य को पूर्ण करने में लगे रहना है और वह कर्तव्य है, दुनिया के सारे इन्सानों की जिन्दगी को खूबसूरत और खुशहाल बनाना। इसलिए आत्म विजय का पथ है सहयोग का, सेवा का, त्याग का, रचना का पथ। उसमें किसी व्यक्ति से, किसी जाति से, किसी श्रेणी से द्वेष अथवा दुश्मनी करने की जगह नहीं। यह कथन केवल कोरा हवा में उड़ान ही नहीं बल्कि ठोस सत्य है। यह कभी न भूलिये कि मनुष्य जीवन में यदि कोई शक्ति है, कोई सौन्दर्य है तो उसका आधार मनुष्य की सृजन शक्ति है, धर्म भावना है, अहिंसा है। याद रखिये कि शेर और चीते मनुष्य से पैने पंजे और अधिक शक्ति रखते हुये भी मनुष्य से इसलिए पीछे रह गये हैं कि वह मनुष्य की धर्म भावना और सृजन शक्ति नहीं रखते। यह कभी कभी हो जाता है कि शेर मनुष्य को खा लेता है! पर जीवन के इतिहास में शेर मानव के सामने बड़ा हेय है। हो सकता है कि इसी प्रकार कभी कभी आततायी और अनाचारी, तलवार पर विश्वास रखने वाले, अहिंसा पालन करने वालों की हत्या कर दें पर अन्त में विजय अहिंसा की ही होगी क्योंकि अहिंसा मनुष्यता का दूसरा नाम है। यह भी याद रखिये कि तलवार का आधार भी मनुष्यों का आपसी सहयोग है और सहयोग निर्भर करता है मनुष्य की सृजन शक्ति पर और धर्म भावना पर। समाज की, राज की बुनियाद अहिंसा ही है तलवार और तोप नहीं। अतः यदि राज्य और समाज को कायम रखना है तो अहिंसा का धर्म ही पालन करना है।

इसी सचाई को पहिचान कर तो अशोक ने पत्थर की शिलाओं पर खुदवा दिया था कि धर्म विजय ही सच्ची विजय है।

यदि मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनना है, यदि संसार में सत्य की विजय होनी है और मानव जीवन शान्ति और सुख मय बनना है तो मनुष्य को अपने पर विश्वास रख कर सच्चे अर्थों में मनुष्य बनना होगा, उसे सचमुच स्रष्टा बनना होगा।

आज रक्तरंजित दुनिया की आपको पुकार है कि आप, जिनको इस विद्यालय ने सत्य की झांकी दी है और मनुष्य बनाया है, दुनिया में घुसें और उसको अमरता के पथ पर लायें। आपका यौवन आपकी शिक्षा, आपके आदर्श तभी सफल और सार्थक होंगे। आपके देश की पुकार है कि आप भारत की प्राचीन संस्कृत को जिसने दधीचि, शिव, हरिश्चन्द्र, राम और भरत को आदर्श माना पुन: जागृत करें। आपका धर्म है कि आप भागीरथ की तरह अपनी इस तपस्या की अहिंसा रूपी गंगा बहा कर इस देश के करोड़ों नर नारियों के हृदय को फिर से आशान्कुरित कर सार्थक करें। आपका अतीत, आपका भविष्य, आपका वर्तमान सभी इसी पुकार को बार बार दोहरा रहे हैं। पथ सामने हैं ..प्रशस्त और सीधा...बढ़िये। इसी में आपके जविन की सार्थकता, और इसी में आपकी आत्मा की उन्नति।

वैज्ञानिक और राष्ट्रीय समस्याएँ

विज्ञान ने आधुनिक युग में असाधारण प्रगित की है यह निस्संकोच स्वीकार किया जायगा। किन्तु यह पूर्णतया संदिग्ध है कि हम—विज्ञान का उपयोग करने वाले—भी उसी अनुपात से ऊपर उठ रहे हैं या नहीं। नागासाकी और हिरोशिमा चिरकाल तक साक्षी देती रहेंगी कि बुद्धिका दुरुपयोग करके मानव अपना, अपनी सभ्यता और संस्कृत का, अनायास ही कैसा विनाश कर सकता है। विज्ञान के सहारे मनुष्य ने ऐसे साधन प्राप्त कर लिये हैं जिनके द्वारा वह, जब चाहे तब, तत्क्षण आत्म हत्या कर सकता है। सामूहिक विध्वंस इतना सरल पहले कभी भी नहीं था जितना आज बन गया है। किन्तु, यदि सद्विवेक से काम लिया गया और विश्व में स्नेह और सौ-हार्द्र बरता गया तो, यह भी निश्चित है कि, जितने अल्पकाल में सुपरिणाम आज निकल सकते हैं उतना यह कभी भी सम्भव नहीं था कि निकल सकते। गत दो जनवरी को पटना में दिये गये अपने भाषण में सुप्रसिद्ध विज्ञानाचार्य प्रो० मेघनाद साह ने स्वयं कहा है: "अणुशक्ति के मुक्त हो जाने से हमें ऐसी शक्ति का स्रोत मिल गया है जिसकी मात्रा निःसीम है, जिसका प्रत्येक प्रदेश के लिये स्थानान्तरण संभव है और जिसका मनुष्य की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति के लिये उपयोग किया जा सकता है। इस दैवी उपहार को पाकर हम वसुधा में प्रत्येक स्थान पर एक ऐसे पैमाने पर प्रत्येक व्यक्तिके लिये स्वर्गोपम स्थितियों की सृष्टि कर सकते हैं जिसकी कल्पना हमारे पूर्वकालीन योगियों तक ने भी नहीं की थी।" निस्सन्देह, यह एक ज्वलन्त आशावादी दृष्टिकोण है। इसमें निर्माण और नवविकास की भावना सर्वोपरि हो कर बोल रही हैं। हमारा विश्वास है कि इसमें भारतीय वैज्ञानिक की भाव-प्रवण वाणी अनुगुञ्जित हुई है।

किन्तु प्रश्न यह है कि अभी तक हमारा वैज्ञानिक अपनी योजनाएँ, अपने प्रयत्न, अपने साथ लेकर हमारे सम्मुख क्यों नहीं आया? सम्भवत: इसीलिए कि वह आ ही नहीं पाया। विदेशी शासन

सत्ता को भारतीय वैज्ञानिक कब सुहाया ? 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्सेज' के वार्षिक अधिवेशनान्तर्गत प्रदत्त अपने अध्यक्षीय अभिभाषण में सर शान्ति स्वरूप भटनागर ने बतलाया है कि अंग्रेजी सरकार अपने कतिपय कार्यों के सुभीते के लिए ही वैज्ञानिकों की सेवाओं को नियोजित करती थी, उदाहरणार्थ—रेलों और सड़कों की रक्षा और रचना, यातायात के आधुनिक साधनों की व्यवस्था करना, सेनाओं का शस्त्रीकरण। हमारे यहाँ की विपुल भू-गर्भनिहित सम्पति की खोज करवाना और फिर उसका स्वायत्तीकरण कर लेना — इस कार्य में भी वैज्ञानिकों की पूछताछ हो जाती थी। भला ऐसी पामर स्वार्थ-वृत्ति को ले कर चलने वाली सरकार हमारे वैज्ञानिकों को क्या प्रोत्साहन और सत् नेतृत्व देती ? किन्तु फिर भी, पिछले २०—२५ वर्षों से जो कुछ हमारे वैज्ञानिक कर सके हैं—अपने वैयक्तिक तपश्चरण के रूप में—वह नितान्त स्तुत्य है। किन्तु आज स्वतन्त्रता के साथ नई मांगें भी आ उपस्थित हुई हैं और वैज्ञानिक उनसे आंखें नही चुरा सकते। विज्ञान को आज हमारा हित विधायक होना पड़ेगा, हमारे जीवन की विडम्बनाओं, अप्रिय प्रहेलिका का समाधान देना पड़ेगा। सर शान्ति स्वरूप भटनागर के शब्द हैं, "यद्यपि वैज्ञानिक अनुसन्धान स्वयं अपने लिए की जाने वाली सत्य की खोज है किन्तु यदि इसके फलस्वरूप व्यावहारिक उपयोगिता की बातें नहीं निकलतीं अथवा यदि दुःख दैन्य में कमी नहीं पड़ती तो इसको एक व्ययसाध्य विलासिता समझी जायगी और इसके लिए कोई सहायता या कोष भी नहीं दिया जायगा।" संक्षेप में, आज वैज्ञानिक के समक्ष जन-सामान्य का भाग्य सुधारने का, उसके स्तर को ऊंचा उठाने का प्रश्न है। निःसंशय, ऐसा हो सकने के पूर्व यह सुतरां अपेक्षित है कि सरकार के प्रतिनिधियों, उद्योगपतियों, एवं अन्य उत्तरदायी जनों का वैज्ञानिक को पूर्ण सहयोग उपलब्ध हो। इसी रूप रेखा को लक्ष्य में रखते हुए सर चद्रशेखर वेंकट रमन ने अभी दूसरे दिन कहा है: "मेरा विचार है कि भारत में एक ऐसा संगठन स्थापित किया जाय जो वैज्ञानिक अनुसन्धान के फलों को देश की अर्थ-व्यवस्था की उन्नत करने के लिए सुलभ बना सके।"

और यह कोई बात नहीं जो कार्यान्वित न की जा सकती हो। हमारे राष्ट्र के उद्योगीकरण में जहाँ पूंजीपतियों की सहायता की एक ओर आवश्यकता है, वहाँ दूसरी ओर वैज्ञानिकों के उद्योग की भी। आई हुई स्वतन्त्रता को स्थायित्व देने के लिये हमें अपने सीमान्तों पर सुदृढ़ एवं दुर्जेय मोर्चा तैयार करना है, आत्म-रक्षण के लिये अद्यतन अस्त्र-शस्त्रों से सर्वथा, सर्वदा सुसज्जित रहना है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपना अस्तित्व निरापद, निश्शंक बनाये रखना है ताकि हम अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व के अनुरूप बनाई गई वैदेशिक नीति का निर्वाध अनुकरण कर सकें। आधुनिक जीवन की समस्त आवश्यक और उपयोगी वस्तुएँ अपने देश में ही प्रस्तुत कर लेना है। और यह सब बिना वैज्ञानिकों के समुचित सहयोग के कैसे हो सकता है ?

आज के युग में, कौन जानता है, कब, कहाँ युद्ध की ज्वाला प्रकठ हो जाय ! शांति और मंगल की कामना करते हुए भी हम इस कलह-उन्मथित विषाक्त वातावरण में साक्षात् आग्नेय विस्फोट की प्रतिक्षा करते हुए अकर्मण्य बने बैठे नहीं रह सकते। वह तो 'प्रदीप्तेकूप खननम्' के सदृश उपहासास्पद दृष्टान्त उपस्थित करने की बात होगी। अतएव राष्ट्रीय सरकार को चाहिए की वह वैज्ञानिकों को सुसंघटित करे और उनको अपना कार्य करने का अवसर दे। इस दिशा में रूस का उदाहरण श्लाघ्य है। जैसा सर रमन ने कहा है कि प्रयोगशालाओं, विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थाओं में निकाले गये निष्कर्षों को विकसित करने में रूस की सरकार सक्रिय रुचि और उत्साह दिखाती रही है अस्तु आज हमारे देश में भी ऐसा

प्रयत्न होना चाहिए कि विशुद्ध सत्य की गवेषणा के साथ ही वैज्ञानिक लोग व्यावहारिक उपयोगिता के प्रति पूर्णतया पराङ्मुख न हो जांय।

अपने सहकर्मियोंका उद्बोधन करते हुए सर शान्तिस्वरूप ने जो शब्द कहे हैं, वे निम्नतया माननीय हैं; "विदेशी शासन काल में भारत के वैज्ञानिकों को यह भी अधिकार नहीं था कि वे युद्ध कार्यालय के भेदों की ओर ताक भी सकते। किन्तु अब हम वैज्ञानिकों का यह कर्तव्य है कि हम सावधान होकर ऐसी चेष्टा करें कि विज्ञान-कौशल और वैज्ञानिकों के अभाव के कारण हमारा आत्म-रक्षा पूरक यत्न शिथिल न पड़ने पाये।"

विज्ञान को हम वस्तुतः राष्ट्र की सीमा तक ही अवसित नहीं मानते। किन्तु इस समय तो यह अपरिहार्य आपद्धर्म हो ही रहा है। सम्भव है, आगे चल कर यह सार्वभौम, व्यापक, सार्वदेशिक रूप में निर्मल, निष्कलंक, रूप में प्रस्फुटित हो।

[साप्ताहिक प्रताप से उद्धृत]

विज्ञान और सत्य की खोज

राजकुमार जैन

(हरसदन मेरठ)

जैसे २ विज्ञान ने उन्नति की, मनुष्य की विचार धारा में परिवर्तन हुआ, पर इस पिछले युद्ध के बाद से तो विज्ञान की उन्नति ने संसार को चका-चौंध कर दिया और जनता में एक अविश्वास सा उत्पन्न हो गया। हम में से बहुत से लोगों के हृदयों में भ्रम पैदा हो गया कि वैज्ञानिक एक सत्य का पुजारी है या वह भी औद्योगिक आन्दोलन की आंधी में बह चुका है और उसका लक्ष्य भी औद्योगिक विकास हो गया है। इस संशय का सही उत्तर पाने के लिये हमें विज्ञान के इतिहास की ओर देखना पड़ेगा।

जब मनुष्य पृथ्वी पर आया तो वह प्रकृति की विराट माया के बीच एक साधारण जीव था, प्राकृतिक शक्तियों का एक गरीब शिकार। तूफानों की झंकार, बिजली की कड़कड़ाहट, बादलों की गरज, उसका दिल दहला देते थे। चारों ओर एक वीभत्स दृश्य था और उसके बीच वह निपट अज्ञानी। वह कांपा और हताश होकर चिल्लाया 'दैव' यह मैं क्या देख रहा हूँ? यह मेरे चारों ओर क्या है? ......और वहीं पर विज्ञान का जन्म हुआ। मनुष्य की जिज्ञासा से प्रेरित होकर, हजारों कर्मवीरों की प्रयोगशाला के शान्त, गम्भीर वाता-वरण में की हुई घोर निस्वार्थ तपस्या के अनन्तर वह नन्हा सा अंकुर आज एक विशाल वृत्त के रूप में फैल चुका है जिसके नीचे बैठा मानव प्रकृति को नित्य नये २ नाच नचाता है, पर...पर देखो! उसकी चोटी पर बैठा हुआ वैज्ञानिक अब भी केवल सत्य की धुन में ऊपर की ओर देख रहा है।

इस ध्येय से आरम्भ होकर विज्ञान ने प्रगति पाई और इसका प्रकाश भारत, यूनान, मिस्र, आदि देशों में फैला। यहाँ के वैज्ञानिक इसके द्वारा केवल सत्य तक पहुँचने और ईश्वर को पहचानने का प्रयत्न करते थे। सत्य उनकी साधना थी और इस मार्ग में डाली हुई बाधाओं का वे साहसपूर्वक मुकाबला करते थे। आरकिमिडीज़, अरस्तु, गैलीलियो आदि की सेवायें हमारे सामने आदर्श हैं। हममें से प्रत्येक जानता है कि १६वीं शताब्दी तक विज्ञान ने जो उन्नति की वह केवल सत्य की

प्रेरणा से की थी वैज्ञानिक केवल अपनी आध्यात्मिक और मानसिक भूख मिटाने के लिये ही विज्ञान का सहारा लेते थे। केवण्डिश, बायल, केपलर आदि का ध्यान विज्ञान की ओर केवल मनः प्रेरणा से आकर्षित हुआ। हां, उसके बाद के युग में धीरे २ भ्रम बढ़ता जाता है और उसके कई कारण भी हैं।

पहिली बात जो अधिकतर जनता के ऊपर इस भ्रम को प्रभावित करती है वह यह है कि पहिले तो विज्ञान की उन्नति की गति बहुत मन्द थी पर अब तो वह आश्चर्यजनक गति से अग्रसर हो रहा है और इस बात को वे उद्योग और व्यापार के कारण समझते हैं। वास्तव में विज्ञान घटनाओं के इकट्ठा करने और उनके एकीकरण का ही दूसरा नाम है और यह बात इस भ्रम का पूरा २ सही उत्तर दे देती है। विज्ञान के प्राथमिक युग में घटनाओं की संख्या थोड़ी थी और इस कारण उस युग के वैज्ञानिकों का प्रधान कार्य घटनायें एकत्रित करने का रहा, पर धीरे २ एकीकरण किया जाने लगा। आज की विज्ञान की गति का कारण वह शान्त परिश्रम है जो पुराने वैज्ञानिकों ने घटनाओं को एकत्रित करने में लगाया और अभी वह समय भी आने वाला है जब हम और आपभी दांतों तले उँगली दबायेंगे।

दूसरी बात यह है कि हम चारों ओर व्यापार और विज्ञान की घनिष्ठता का अनुभव करते हैं पर इससे पहिले हमें दो तीन प्रश्नों पर सोचना चाहिये। "क्या गणित के क्षेत्र में जो कि आधुनिक विज्ञान की जड़ है कभी किसी व्यापारिक लक्ष्य से खोज की भी जा सकती है? क्या शुद्ध विज्ञान में कभी कोई आविष्कार किसी भी स्वार्थमई भावना को लेकर किया गया है? और जितने भी लाभदायक आविष्कार विज्ञान ने किये हैं वे किस मनःस्थिति में खोजे गये? और इनका उत्तर ही हमें विज्ञान का वास्तविक रूप दिखला देगा।

जिन लोगों ने विज्ञान का अध्ययन किया है वह जानते हैं कि जब एक विद्युतधारा के चक्र (circuit) का गणित ने विश्लेषण किया तो गणितज्ञ इस सिद्धान्त पर पहुँचे कि शक्ति में भी भार की तरह Inertia है और इसी ने आगे चलकर Maxwell से विद्युत-चुम्बकीय लहरों का रूप पाया। न्यूटन का एक शीशे के टुकड़े से प्रकाश को सात रंगों में बाट देने में कोई स्वार्थ नहीं था। हर्टज़ ने विद्युत चुम्बकीय लहरों की वास्तविकता को प्रयोगशाला में दर्शाते हुए कभी विचार भी नहीं किया था कि वह रेडियो व्यापार को जन्म दे रहा है। रुदरफोर्ड को एटम की बनावट पर प्रयोग करते समय स्वप्न में भी विचार न आया था कि वह आगे चलकर एटामिक बम बनेगा। श्रीमती क्यूरी की केवल एक सत्य के लिए की हुई निष्कपट और निर्मल तपस्या संसार को वैज्ञानिक की आत्मा का सदा दिग्दर्शन करती रहेगी। एडिन्गटन, जीनस और डारविन की अमूल्य खोज कोई सहज ही नहीं भूल सकता है।

यह मैं मानने को तैयार हूँ कि रेडियो आदि कुछ आविष्कारों की खोज हो जाने के बाद उनको उनके वर्तमान रूप में लाने का श्रेय अवश्य औद्योगिक विकास को है, पर क्या यह गिने चुने आविष्कार ही विज्ञान का अन्त है और क्या इन की वर्तमान अवस्था से वास्तविक विज्ञान को कोई विशेष प्रगति मिली है इसका निर्णय आप स्वयं कर सकते हैं, इस विषय में मैं केवल एक दृष्टान्त देना चाहूंगा। जगदीश बसु के एक बार अमरिका जाने पर उनसे कई एक कम्पनियों ने कहा "कि वे रेडियो के ऊपर किये हुए बहुमूल्य आविष्कारों को पेटेन्ट करालें तब उन्हों ने यह उत्तर दिया, "इसी प्रकार मैं अपनी स्त्री को भी बेच सकता हूँ, क्या आप इस बात का भी परामर्श देंगे" सब चुप हो कर मुंह ताकते रह गये, क्या यह शब्द ही वैज्ञानिक की अन्तरात्मा खोल कर नहीं रख देते। कारनो (carnot) को कोई जानता भी न था पर जब लार्ड केलविन (Lord Kelvin) ने उसके कार्य को

कुरेद कुरेद कर संसार के सामने रक्खा तब हमने उसे पूजा। इसी प्रकार आप किसी भी वैज्ञानिक को ले लीजिये, किसी भी खोज का अध्यन कीजिए तो सबके पीछे एक ही धारा होगी और वह रहस्य है "सत्य की खोज।"

मेरे कुछ मित्रों ने पूछा कि आप सत्य, सत्य तो बहुत कहते हैं पर क्या आप बतला सकते हैं कि विज्ञान ने इतने वर्षों बाद कौन सा महान सत्य खोज निकाला। तब मैं ने उत्तर दिया कि हमारे चारों ओर की वस्तुऐं और शक्तियां क्या है, कैसी हैं और कैसे बनीं? यह सब बातें सत्य ही तो हैं, पर इसके अलावा एक महान सत्य और है।

विज्ञान की उन्नति का प्रधान कारण यह है कि वैज्ञानिक को दृढ़ विश्वास है कि प्रकृति कुछ बंधे हुए ईश्वरीय या प्राकृतिक नियमों पर चलती है। हमारे चारों ओर बिखरी हुई नाना प्रकार की विभिन्न वस्तुऐं केवल एक आदेश पर चल रही हैं और सबके पीछे केवल एक रहस्य है और वह है सत्य। हम अपनी खोजों से इस सत्य के बहुत निकट पहुँच गये हैं। हम आज जानते हैं कि यह भौतिक जगत चार तत्त्वों का बना है, पदार्थ, शक्ति, आकाश, और काल। पर क्या यह चारों तत्त्व विभिन्न हैं या यह भी किसी एक या अधिक आदि तत्त्वों के रूप हैं? और इस शताब्दी के आरम्भ में हमें इसका एक उत्तर आइन्स्टीन ने दिया। उसने अपनी खोज से यह सिद्ध किया कि पदार्थ और शक्ति एक ही चीज के दो रूप हैं। पदार्थ से शक्ति बन सकती है और शक्ति के लोप से पदार्थ भी बन सकता है। इसी प्रकार आकाश और काल भी एक ही आदि तत्त्व के विभिन्न रूप हैं। सापेक्षता का सिद्धान्त इसी खोज पर अवलम्बित है।

इस से एक पग आगे सर ओलीवर लॉज (Oliver Lodge) ने रक्खा। उन्हों ने परमाणु की बनावट पर खोज करते हुए वह परिणाम निकाला कि पदार्थ के कण ऋणाणु आदि आकाश से बने हैं और इन पर जो आजकल खोज की जा रही हैं उनसे यह सिद्ध भी हो चुका है कि इन कणों में आकाश के बहुत से गुण मौजूद हैं। इससे यह कल्पना की जा सकती है कि वह समय भी दूर नहीं जब कि वैज्ञानिक वास्तव में उस वैज्ञानिक तत्त्व पर पहुँच जायें जिसकी विभिन्न रचनाऐं यह भौतिक जगत है। वही सत्य का नग्न रूप होगा। वह कैसा होगा और क्या होगा यह तो कुछ नहीं कहा जा सकता पर क्या यह एक महान सत्य नहीं है।

आप सोचेंगे कि ऐसी ही बहुत सी बातें हमारे शास्त्रों में, धर्म पुस्तकों में लिखी हुई है। हां, बिलकुल ठीक है और इन्हीं की सत्यता की खोज ही तो विज्ञान ने की है। उन जटिल विचारों की वास्तविकता को जन साधारण के आगे खोल कर रख दिया है। और यही विज्ञान की उज्वलता को बिलकुल स्पष्ट कर देता है कि विज्ञान सदा सत्य की खोज करता रहा है और इस मायावी औद्योगिक विज्ञान के चोले के पीछे अब भी वही शान्त सत्य के पुजारी की आत्मा है।

विज्ञान परिषद् के ३४वें वर्ष अक्टूबर १९४६ से सितम्बर १९४७ का कार्य विवरण

विज्ञान परिषद् प्रयाग के ३४ वें वर्ष का कार्य भी गत वर्ष के कार्य जैसा ही असंतोषजनक रहा। कागज़ नियंत्रण के कारण नयी पुस्तकों का प्रकाशन हो ही नहीं सका। बड़ी कठिनाइयों से केवल एक पुस्तक जिल्दसाज़ी प्रकाशित हो सकी। पुरानी पुस्तकों का भण्डार भी समाप्त हो रहा है और

घरेलू डाक्टर, मधु मक्खी पालन, ताप आदि पुस्तकों की एक प्रति भी शेष नहीं हैं, सूर्य सिद्धान्त का प्रथम खंड भी प्रायः समाप्त ही हो चुका है। इसके अतिरिक्त नयी पुस्तकें रेड़ियो, सांपों की दुनियाँ अभी तक प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं। पर्याप्त सामग्री के अभाव तथा छपाई की मंहगाई के कारण हम बिना सरकार की विशेष सहायता या विशेष चन्दे के इन कठिनाइयों का सामना करने में सफल नहीं हो सकते और उपरोक्त पुस्तकों का दूसरा संस्करण या नयी पुस्तकों का प्रकाशन कठिन दीखता है।

यह बताते हुये हमें अवश्य हर्ष होता है कि साम्प्रदायिक झगड़ों तथा अन्य कठिनाइयों के होते हुये भी विज्ञान को हम नियमित समय पर प्रति मास निकालने में सफल रहे और इसका श्रेय हमारे प्रधान सम्पादक श्री रामचरण जी मेहरोत्रा को है।

इस वर्ष निम्नांकित सज्जन परिषद् के पदाधिकारी रहे।

सभापति—डा० श्री रंजन
उपसभापति—प्रो० सालिगराम भार्गव
　　डा० धीरेन्द्र वर्मा
प्रधान मंत्री—डा० हीरालाल दुबे
मन्त्री—श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव
　　डा० रामदास तिवारी
कोषाध्यक्ष—श्री हरिमोहन दास टंडन
स्थानीय अंतरंगी—प्रो० ए० सी० बैनर्जी
　　डा० बी० एन० प्रसाद
　　डा० गोरख प्रसाद
　　डा० सन्त प्रसाद जी
प्रधान संपादक—श्री रामचरण मेहरोत्रा
बाहर अंतरंगी—श्री बेङ्कट लाल ओझा (हैदराबाद दक्षिण)
　　श्री हीरा लाल खन्ना (कानपुर)
　　डा० ओंकार नाथ परती, सागर (सी० पी०)
　　श्री छोटू भाई सुथार (अणाद, गुजरात)
　　डा० दौलत सिंह कोठारी
आयव्यय परीक्षक—डा० सत्य प्रकाश

सितम्बर १९४७ तक परिषद के आजीवन सभ्यों की संख्या ४६ तथा साधारण सभ्यों की संख्या ६६ हैं। इस वर्ष नीचे लिखे सज्जन परिषद के अजीवन सभ्य और साधारण सभ्य हुये।

आजीवन सभ्यः—

१—लाइब्रेरियन, भारती भवन लाइब्रेरी, प्रयाग।
२—पं० जनार्दन प्रसाद शुक्ला, एम० एस सी० रामपूर।
३—डा० हीरालाल दुबे, रसायन विभाग, इलाहबाद यूनिवर्सिटी, इलाहाबाद,

साधारण सभ्यः—

१—श्री मदन मोहन पाठक, एडवोकेट, प्रतापगढ़ (राजपूताना)
२—श्री श्रीनिवासदास वैद्य, जीरापुर (होल्कर स्टेट)
३—श्री सुरेन्द्र प्रसाद जी, लहरिया सराय, दरभंगा
४—श्री बट्टन लाल गुप्ता, उरई
५—श्री मोहन लाल लाढ़ा, १८० हरिसनरोड, कलकत्ता
६—श्री भगवान जी० डी० सोढ़ा, बम्बई
७—डा० एस० पी० मुशरान, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

इस वर्ष के आय व्यय का लेखा इस प्रकार है:—

आयः—

आजीवन सभ्यों से	१४१)
साधारण सभ्यों से	३२५≡)
पुस्तकों की बिक्री से	१३५०।=)।
विज्ञान के ग्राहकों से	८१५-)
व्याज से	८।-)१०
संयुक्त प्रांतीय सरकार से	१६००)
गत वर्ष की रोकड़ बाक़ी से	१६६०॥-)॥
	५९०९॥-)७

व्यय	
लेखक का वेतन	१९२॥।)॥
चपरासी का वेतन	२६६॥।-)
गोदाम का किराया	१८०)
स्टेशनरी	७॥)॥
एक्के ठेले का किराया	६।≡)
साइकिल की मरम्मत में	२८॥≡)।
पार्सल आदि का खर्च	१२।=)॥
विज्ञान की छपाई	१२६३)
पुस्तकों की छपाई	३०५॥=)
अन्य पुस्तकों के खरीदने में	७१)
टिकट आदि में (पोस्टेज)	३२०।-)।
जिल्द बंधाई	३५५)
फुटकर खर्च	६॥।-)॥
सम्पादक जी को (प्रूफ़रीडिङ्ग और अन्य पुस्तकें खरीदने के लिये)	२००)
कागज खरीदने में	५७०॥।≡)॥।
ब्लाक बनवाने में	१५९॥।=)
बैंक कमीशन	४॥।≡)
रोकड़ बाकी	१९५१।-)४
	५९०९॥-)७

विज्ञान के सम्बन्ध में आय व्यय का व्योरा इस प्रकार है:—

आय	
ग्राहकों से	८१५-)
सभ्यों से	३२५≡)
सरकार से	६००)
	१७४०)
घाटा जो पुस्तकों की आय से दिया गया।	५०३॥-)॥।
	२२४३॥-)॥।

व्यय	
कागज	३१०॥≡)॥।
प्रूफ दिखाई	२००)
ब्लाक में	९०॥)
छपाई	१२६३)
डाक खर्च	१४०)
लेखक का वेतन	९२॥।)॥
चपरासी „ „	१४०)
फुटकर खर्च	६॥।-)॥
	२२४३॥।-)॥।

उपरोक्त खर्च में सम्पादन का खर्च तथा लेखकों का पुरस्कार जो अबतक अवैतनिक ही रहे हैं शामिल नहीं है यदि यह भी देना पड़ता तो हमारा घाटा कहीं अधिक होता किन्तु अब यह अनिवार्य है और बिना लेखकों को उचित पुरस्कार और सम्पादन का खर्च दिये काम सुचारुरूप से नहीं चल सकता और विज्ञान अपने मुख्य धेय को सफलता पूर्वक नहीं प्राप्त कर सकता है विज्ञान को उपयोगी तथा सफल बनाने के लिये अच्छे लेखकों की सहानुभूति की हमको अत्यंत आवश्यकता है और यह आवश्यकता बिना रुपये के पूरी नहीं हो सकती। इसके लिये हमने युक्त प्रान्तीय सरकार से १७०००) रुपया वार्षिक सहायता के लिये प्रार्थना की है और हमको पूरी आशा है कि सरकार हमारी सेवाओं की उपयोगिता पर ध्यान रखते हुये हमको उचित सहायता अवश्य देगी। और जब विज्ञान अधिक उपयोगी सिद्ध होगा तो ग्राहकों की संख्या भी बढ़ सकने की संभावना है और इस प्रकार हमको घाटा का भय भी नहीं रहेगा। इस दृष्टि से आगामी वर्ष का अनुमान पत्र उपस्थित किया गया है:—

लगभग ४०० ग्राहकों से	१२००)
„ ५० सभ्यों से	२५०)
सरकार से	६००)
घाटा	१३६६)
	३४१६)

व्यय :—

३२ पेज का विज्ञान ५५०-२४ रीम	३५०)
३ रीम कवर का दाम	६०)
छपाई	१२००)
रैपर की छपाई	३०)
ब्लाक	१००)
डाक खर्च	२००)
लेखक का वेतन (कुल का आधा)	१८०)
चपरासी का वेतन कुलका ⅓	९६)
सम्पादक की भेंट ५०) प्रतिमास	६००)
लेखकों को पुरस्कार "	६००)
	३४१६)

अन्य कामों के लिये शेष अनुमान पत्र यह है।

पुस्तकों की बिक्री से	१२००)
रोकड़ बाकी	१९५११-)४
	२९५११-)४

व्यय

पुस्तकों के लिये ब्लाक	१६०)
स्टेशनरी पैकिंग आदि	३०)
डाक व्यय	१००)
इक्का ठेला आदि	२०)
रेल भाड़ा आदि	१०)
साइकिल की मरम्मत	३०)
बैंक इंसीडेन्टल चार्ज	१०)
दफ्तर गोदाम का किराया	१८०)
लेखकका वेतन आधा	१८०)
चपरासी का वेतन	१९२)
पुस्तक की जिल्द बंधाई	६००)
नयी पुस्तकों की छपाई	१४३०१-)४
	२९५११-)४

अन्त में मेरा कर्तव्य है कि जिन सज्जनों के सहयोग से परिषद् का कार्य वर्षभर सफलता पूर्वक चलता रहा उन्हें धन्यवाद दूँ। विशेष धन्यवाद के पात्र हैं हमारे प्रधान संपादक श्री रामचरण मेहरोत्रा जो साम्प्रदायिक झगड़ों तथा अन्य असुविधाओं के होते हुए भी 'विज्ञान' को नियमित समय पर निकालते रहे। कोषाध्यक्ष श्री हरिमोहन दास टंडन तथा आय-व्यय परीक्षक डा० सत्यप्रकाश ने परिषद् का हिसाब जांचने में बहुत परिश्रम किया इसलिये परिषद् उनका बहुत आभारी है।

३४वें वार्षिक अधिवेशन का कार्य विवरण

विज्ञान परिषद् का ३४ वां वार्षिक अधिवेशन १४ दिसम्बर सन् १९४७ को ४ बजे संध्या समय प्रयाग विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान के व्याख्यानालय में हुआ। प्रयाग विश्वविद्यालय के कुलपति डा० ताराचंद ने सभापति का आसन ग्रहण किया और श्री पुरुषोत्तम दास टंडन ने अधिवेशन का उद्‌घाटन किया। इसके पश्चात् परिषद् के सभापति डा० श्री रंजन ने 'कृषि व्यवसाय की समस्याओं' पर सचित्र तथा शिक्षाप्रद व्याख्यान दिया।

परिषद् का उद्‌घाटन आचार्य नरेन्द्रदेव जी करने वाले थे परंतु उनके एकाएक अस्वस्थ्य हो जाने के कारण वे इस अवसर पर न पधार सके। इसका हमें बहुत दुःख है। परंतु हम आशा करते हैं कि अगले वार्षिक अधिवेशन का उद्‌घाटन आचार्य जी के द्वारा ही होगा।

अधिवेशन का उद्‌घाटन करते हुए माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन ने विज्ञान परिषद् ने जो वैज्ञानिक साहित्य की जो सेवा की है उसका उल्लेख

किया। उन्होंने कहा कि इस संस्था ने हिन्दी में वैज्ञानिक ज्ञान का प्रचार किया है और हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तों में केवल यही एक संस्था ऐसी दीख पड़ती है जो कि इस कार्य को बड़े लगन के साथ कर रही है। परिषद् को हिन्दी में बहुत काम करना है और वैज्ञानिक पाठ्य पुस्तकें भी लिखना है। उन्होंने यह भी आश्वासन दिलाया कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन यथासम्भव आर्थिक सहायता भी दे सकता है।

डा० ताराचंद ने अपने भाषण में कहा कि प्रजातंत्रराज्य (democracy) और विज्ञान की वृद्धि में बहुत सम्बन्ध है। जहां पर जनता का राज्य होगा वहां पर विज्ञान भी फले फूलेगा। उन्होंने रूस का उदाहरण लेते हुए बतलाया कि ज़ारशाही में विज्ञान की दशा बहुत खराब थी परन्तु उसके बाद ही रूस में विज्ञान की बढ़ती दिन दूनी और रात चौगुनी होने लगी। डाक्टर साहब ने कहा कि अब भारत स्वतंत्र है और विज्ञान की वृद्धि अवश्यमेव होगी और इस वातावरण में विज्ञान परिषद् सरीखी संस्था बहुत ही अच्छा काम कर सकती है।

इस अवसर पर श्री कन्हैयालाल मुंशी, डा० अमरनाथ झा, डा० सीताराम, माननीय कृष्णदत्त पालीवाल, डा० शान्ति स्वरूप भटनागर और डाक्टर कृष्णन ने अपने शुभ संदेश भेज कर हमें उत्साहित किया।

अन्त में श्री हीरालाल खन्ना ने माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन, डा० ताराचंद तथा अन्य उपस्थित सज्जनों को धन्यवाद दिया और इसके पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

इसके पश्चात् विज्ञान परिषद् के सभ्यों की बैठक हुई। हमें लिखते हुए हर्ष होता है कि इस बैठक में अजमेर, कानपुर, रींवा और बनारस के सभ्य उपस्थित थे। गत वार्षिक कार्य विवरण पढ़े जाने और स्वीकृत होने के बाद आगामी वर्ष के लिए निम्न पदाधिकारी चुने गये।

सभापति—डाक्टर श्री रंजन
उप-सभापित—प्रो० सालिगराम भार्गव
डा० धीरन्द्र वर्मा
प्रधान मंत्री—डा० हीरालाल दुबे
मंत्री—डा० रामदास तिवारी
श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव
कोषाध्यक्ष—श्री हरिमोहन दास टंडन
स्था० अन्तरंगी—प्रो० ए० सी० बैनर्जी
डा० बी० एन० प्रसाद
डा० गोरख प्रसाद
डा० सन्त प्रसाद टंडन
प्रधान सम्पादक—श्री रामचरण मेहरोत्रा
बाहरी अंतरङ्गी—श्रीवेंकटलाल ओझा, हैदराबाद
श्री नन्द कुमार तिवारी, काशी विश्वविद्यालय
प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा
श्री छोटू भाई सुथार (आणद)
डा० ओंकारनाथ परती, सागर
आय व्यय परीक्षक—डा० सत्यप्रकाश

इस अवसर पर श्री हरिमोहन दास टंडन ने अतिथियों को विश्वविद्यालय के बनस्पति विभाग के सुन्दर उद्यान में जलपान कराया। इसके लिए परिषद् उनका बहुत आभारी है

हीरालाल दुबे
प्रधान मन्त्री
१४-१२-४७

वैज्ञानिक समाचार

विश्व खाद्य परिषद् की पहली बैठक

पिछले दिनों वाशिंगटन में विश्व खाद्य परिषद् की पिछली बैठक हुई थी जिसमें भारत के प्रतिनिधि ने भी भाग लिया था। इसमें जो बड़े बड़े निर्णय किये गये वे ये हैं:—

फरवरी १९४८ में चावल सम्मेलन या तो बेंकाक में या शंघाई में किया जाय। अन्तर्राष्ट्रीय संकटकालीन खाद परिषद् का तथा जिन्स समितियों का काम इस परिषद् को ले लेना चाहिये।

विश्व खाद्य परिषद्, खाद्य और कृषि संगठन की प्रबन्धक परिषद् है। परिषद् की इस बैठक में खाद्य और खाद निर्धारण सम्बन्धी कई प्रश्नों पर तथा कृषि उन्नति की कई दीर्घकालीन योजनाओं पर भी विचार किया गया। अतिरिक्त अनाज का वितरण, उत्पादन के साधन, विभिन्न देशों में उत्पादन वृद्धि की योजनाओं आदि परस्पर-सम्बंध विषय पहली बार एक संगठन के अन्तर्गत आ गये हैं।

गत बैठक में परिषद की दो विशेष समितियां बनाई गयी हैं। पहली समिति अनाज प्राप्त करने, मुद्रा विनिमय की कठिनाइयों को दूर करने, फालतू अनाज वाले देशों से अनाज प्राप्त करने, खाद उत्पादन में वृद्धि करने के उपाय सोचेगी। दूसरी समिति का सम्बन्ध विभिन्न देशों की कृषि उत्पादन की योजनाओं से तथा उनके क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक टेक्निकल कारीगर प्राप्त करने से है। भारत भी इस समिति काल का सदस्य है।

विधान-परिषद के नियामक अधिवेशन की ३ दिसम्बर की बैठक में एक प्रश्न का लिखित उत्तर देते हुए, भारत सरकार की स्वास्थ्य मंत्राणी माननीया राजकुमारी अमृत कौर ने कहा कि जब तक "डी० डी० टी०" को मिट्टी के तेल में घोलकर इस्तेमाल न किया जाय, उससे पेड़ पत्तों को नुकसान नहीं पहुँचता। आपने यह भी कहा—कीटाणु नाशक रासायनिक द्रव्यों से युक्त धूल का प्रयोग कभी-कभी पौधों की रक्षा के लिए किया जाता है। पर यह मालूम करने के लिए काफी अधिक प्रयोगात्मक कार्य की आवश्यकता है कि परागकिरण की शक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ने के कारण इस प्रकार के प्रयोग से बनस्पति-जीवन को क्या कोई क्षती पहुँचती है और यदि पहुँचती है तो कितनी।

मध्यप्रान्त में बिजली सम्बन्ध नया प्रयोग

किसी प्रदेश में विशाल पैमाने पर बिजली उत्पन्न करने की योजना अमल में लाने से पूर्व उस प्रदेश की जनता में बिजली की मांग तथा रुचि उत्पन्न करने के लिए एक छोटी योजना कार्यन्वित की जाती है। भारत में इस प्रकार की योजना सब से पहले मध्यप्रान्त में कार्यान्वित की जायगी।

केन्द्रीय सिंचाई बोर्ड की पत्रिका के हाल के एक अंक में प्रकाशित हुआ है, जिस में इस योजना की रूपरेखा दी गई है। यह योजना १,०९ वर्ग मील भूमि में कार्यान्वित की जायगी। इस क्षेत्र में ३,९०,००० व्यक्ति लगभग ८०० गावों में रहते हैं। इस योजना के परिणाम स्वरूप १५ कस्बे और ४३ बड़े गांव में बिजली आ जायगी। योजना के क्षेत्र को तीन भागों में विभाजित कर दिया गया है। यद्यपि तीनों भाग बिजली की उपलब्धि के विषय में आत्मभरित होंगे, फिर भी इस बात का प्रबन्ध किया गया है कि आवश्यकता पड़ने पर पड़ोसी प्रदेश से अतिरिक्त बिजली ली जा सके।

विज्ञान परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१—**विज्ञान प्रवेशिका, भाग १**—विज्ञान की प्रारम्भिक बातें सीखने का सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़, एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव, एम० एस-सी० ।

२—**चुम्बक**—हाईस्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—लेखक० प्रो० सालिगराम भार्गव, एम० एस-सी०; सजिल्द ॥=)

३—**मनोरञ्जक रसायन**—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यास की तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी०, १॥),

४—**सूर्य सिद्धान्त**—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४, १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद, सजिल्द; दो भागोंमें, मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—**वैज्ञानिक परिमाण**—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी, डी० एस सी०; ॥।),

६—**समीकरण मीमांसा**—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १॥), द्वितीय भाग ॥=),

७—**निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)**—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी० ॥)

८—**बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित**—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियों के लिये—ले० डा० सत्य प्रकाश, डी० एस-सी०; १।)

९—**गुरुदेव के साथ यात्रा**—डाक्टर० जे० सी० बासू की यात्राओं का लोकप्रिय वर्णन; ।=),

१०—**केदार-बद्री यात्रा**—केदारनाथ और बद्रीनाथ के यात्रियों के लिये उपयोगी, ।)

११—**वर्षा और वनिस्पति**—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी, ।)

१२—**मनुष्य का अहार**—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=)

१३—**सुवर्णकारी**—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचोली; ।)

१४—**रसायन इतिहास**—इन्टरमीडियटके विद्यार्थियों के योग्य—ले० डा० अत्माराम डी० एस-सी०; ॥।)

१५—**विज्ञान का रजत-जयन्ती अङ्क**—विज्ञान परिषद के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह, १)

१६—**फल-संरक्षण**—दूसरा परिवर्धित संस्करण फलोंकी डिब्बाबंदी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक २१२ पृष्ट; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०; २)

१७—**व्यङ्ग-चित्रण**—(कार्टून बनाने की विद्या) ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ, सैकड़ों चित्र, सजिल्द; २)

१८—**मिट्टी के बरतन**—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द, १॥)

१९—**वायुमंडल**—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र, सजिल्द; १॥)

२०—**लकड़ी पर पॉलिश**—पॉलिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामरत्न भटनागर, एम०, ए०, २१८ पृष्ट; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥),

२१—**उपयोगी नुशखे तरकीबें और हुनर**—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्य प्रकाश। आकार बड़ा विज्ञान के बराबर २६०, पृष्ठ, २००० नुसखे, १०० चित्र, एक एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २॥),

२२—**कलम-पेबन्द**—ले० श्री शंकरराव जोशी, २०० पृष्ट ५० चित्र, मालियों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥)

२३—**जिल्दसाज़ी**—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाजी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०, १८० पृष्ठ, ६२ चित्र, सजिल्द २)

२४—**त्रिफला**—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ, ३ चित्र, एक रङ्गीन, सजिल्द २।),

२५—**तैरना**—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगों को बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद, पृष्ठ १०४ मूल्य १);

२६—**अंजीर**—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद-वर्णन और उपयोग करनेकी रीति पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ।।), यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के शिक्षा पटल में स्वीकृत हो चुकी है।

२७—**सरल विज्ञान सागर प्रथम भाग**—सम्पादक डा० गोरख प्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़पौधों की अचरज भरी दुनियां, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञान के आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६)

२८—**वायुमण्डल की सूक्ष्म हवायें**—ले० डा० सन्त प्रसाद टंडन, डी० फिल०, मूल्य ।।।)

२९—**खाद्य और स्वास्थ्य**—ले० डा० ओंकार नाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल०, मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—**विज्ञान हस्तामलक**—ले०—स्व० रामदास गौड़ एम० ए०, भारतीय भाषाओं में अपने ढंगका यह निराला ग्रन्थ है। इसमें सीधी सादी भाषा में अठारह विज्ञानों की रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन, पौने दो सौ चित्रों से सुसज्जित है, आजतक की अद्भुत बातों का मनमोहक वर्णन है, विश्व विद्यालयों में भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञान की एक समूची लैब्रेरी है। मूल्य ६)

२—**सौर-परिवार**—लेखक डाक्टर गोरख प्रसाद डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२)

३—**भारतीय वैज्ञानिक**—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ—ले० श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ, सजिल्द, मूल्य ३॥) अजिल्द ३)

४—**वैक्युम ब्रेक**—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों इञ्जन-ड्राइवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्जामिनरों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रङ्गीन हैं, २),

विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक तथा प्रकाशक—ए० बी० वर्मा, शारदा प्रेस, नया कटरा—प्रयाग।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र

भाग ६६] सम्वत् २००४, फरवरी, १९४८ [संख्या ४

प्रधान संपादक

श्री रामचरण मेहरोत्रा

विशेष सम्पादक

डाक्टर सत्यप्रकाश

डाक्टर गोरख प्रसाद

डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव

श्री श्रीचरण वर्मा

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद।

वार्षिक मूल्य ३) प्रति अंक ।)

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्यसे स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञा के अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहने का तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके विना मूल्य पाने का—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

विषय-सूची

★ बापू का प्रिय गीत ★

राष्ट्र पिता

वैष्णव जन तो तेने कहिए,
जे पीर पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तोए,
मन अभिमान न आणे रे।
सकल लोकमां सहुने वंदे,
निन्दा न करे केनी रे।
वाच काछ मन निश्चल राखे,
धन धन जननी तेनी रे।
समदृष्टी ने तृष्णा त्यागी,
पर-स्त्री जेनी मात रे।

जिह्वा थकी असत्य न बोले,
परधन नव झाले हाथ रे।
मोह माया व्यापे नाहिं जेने,
दृढ़ वैराग्य जेनो मन मां रे।
राम नाम शुं ताली लागी,
सकल तीरथ तेना मन मां रे।
वण लोभी ने कपट रहित छे,
काम क्रोध निवार्या रे।
भणे 'नरसैयो' तेनूं दर्शन करतां,
कुल एकोतेर तारया रे।

★ ★

हमारा पथ-प्रदर्शक

बापू का निधन

३० जनवरी १६४८ की संध्या भारतवर्ष के इतिहास में अत्यन्त ही अन्धकार मय रहेगी। बापू भारत के ही नहीं वरन् समस्त संसार के सर्वप्रिय निधि थे। जिस महान आत्मा ने अपने जीवन का उत्सर्ग कर एक बिलकुल नवीन प्रणाली से भारत को स्वतन्त्रता दिलवाई, उसी महापुरुष की हम में से एक अविवेकी नवयुवक ने ३० जनवरी को हत्या करदी। यह समाचार संसार के समस्त क्षेत्रों में बड़े ही दुख के साथ सुना गया।

अन्य क्षेत्रों की भांति वैज्ञानिकों में भी बापू की बड़ी प्रतिष्ठा थी। उनकी ७५ वीं वर्ष गाँठ के दिन प्रोफेसर आइनस्टाइन ने अपनी श्रद्धाञ्जलि भेंट करते हुए कहा था, "बिना किसी वाह्य सत्ता के गांधी जी जनता के नेता हैं; उनकी राजनैतिक सफलता किसी प्रकार की कूट नीति की विशेषज्ञता पर नहीं वरन् उनके व्यक्तित्व की प्रभाविकता पर आधारित है। वे एक विजयी योद्धा हैं, जिन्होंने सदैव ही पाशविक शक्ति का मखौल उड़ाया है। वे दृढ़ता और अडिग सिद्धान्त से युक्त एक ज्ञानी तथा विनम्र पुरुष हैं, जिन्होंने अपनी समस्त शक्ति अपने देशवासियों की उन्नति तथा जीवनोद्धार में लगा दी है। उन्होंने योरप की बर्बरता का सामना सरल मानव के गौरव से किया है और इस प्रकार प्रत्येक अवसर पर वे श्रेष्ठ सिद्ध हुए हैं।

आने वाली पीढ़ियाँ शायद ही इस बात पर विश्वास करें कि इस प्रकार का अस्थि पञ्जर कभी इस पृथ्वी पर जन्मा भी था।"

गांधी जी 'सत्य' के सब से बड़े पुजारी थे। उनके सांसारिक कार्य्यों में भी बड़ी ही उच्च कोटि की वैज्ञानिकता थी। अपनी आत्म कथा को उन्होंने 'सत्य के प्रयोग" कह कर पुकारा है। इन प्रयोगों के बारे में वे लिखते हैं" मैं यह नहीं कहता कि मेरे प्रयोग सब तरह संपूर्ण हैं। मैं तो इतना ही कहता हूँ कि जिस प्रकार एक विज्ञान-शास्त्री अपने प्रयोग को अतिशय नियम और विचार पूर्वक सूक्ष्मता के साथ करते हुए भी उत्पन्न परिणामों को अन्तिम नहीं बताता, अथवा जिस प्रकार उनकी सत्यता के विषय में यदि सशंक नहीं तो तटस्थ रहता है, उसी प्रकार मेरे प्रयोगों को समझना चाहिये।

हाँ, एक दावा अवश्य करता हूँ कि वे (परिणाम) मेरी दृष्टि से सच्चे हैं और इस समय तक तो मुझे अंतिम जैसे मालूम होते हैं।"

कितनी विनम्रता परन्तु फिर भी दृढ़ता के साथ गांधी जी ने अपने प्रयोगों के परिणामों में विश्वास प्रकट किया है। हम भारतीय वैज्ञानिकों को उनसे बहुत कुछ सीखना है। हमारा पुरातन वैज्ञानिक इतिहास तो उज्जवल रहा ही है परन्तु पिछले २५-३० वर्षों में भी भारतीय वैज्ञानिकों ने प्रतिकूल अवस्थाओं में भी जो कार्य किया है, वह प्रशंसनीय है। उच्च कोटि के कार्य्य के होते हुए भी संसार के वैज्ञानिकों में हमारे परिणामों की पर्याप्त प्रतिष्ठा नहीं है। इसका कारण यह है कि इने गिने व्यक्तियों को छोड़ कर विज्ञान का अध्ययन तथा अन्वेषण हमारे लिये केवल 'सत्य की उपासना' नहीं रहा है। हमें इस प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए अपने प्रयोगों के परिणामों के बारे में गांधी जी की तरह तटस्थ रहना होगा। हमें यह सीखना है कि विज्ञान की उपासना सत्य की उपासना है और उसमें स्वार्थ तथा पारस्परिक द्वेष का कहीं स्थान नहीं है।

किसी भी देश का वैज्ञानिक जीवन भी उसकी राजनैतिक परिस्थितियों के ऊपर निर्भर रहता है। १५ अगस्त के पहिले हम वैज्ञानिक भी कितनी दासता अनुभव करते थे। यह गान्धी जी के ही प्रयत्नों का फल है कि आज हम उस दासता से मुक्त हैं। उस महान आत्मा का आदर और प्रतिष्ठा करने की सर्वोत्तम विधि यही है कि हम इन नवीन अवस्थाओं के कारण अपने नये उत्तरदायित्व को समझें और सत्य के उस महान पुजारी का अनुकरण कर उसके प्रिय देश की उन्नति के लिए प्रति क्षण प्रयत्नशील रहें।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६६ | सम्वत् २००४, फरवरी, १९४८ | संख्या ५

अणु शक्ति का नियन्त्रण

(Control of atomic energy)

प्रोफेसर सूरजभान गर्ग, भौतिक विज्ञान विभाग, मेरठ कालिज

पिछले महायुद्ध की याद कुछ फीकी न पड़ी थी कि एक महायुद्ध और समाप्त हुआ—पहिले से कहीं अधिक भयानक और विनाशकारी। इस समय भी, युद्ध के बाद, संसार की दशा क्या है? सभी बड़े बड़े राष्ट्र सिर से पांव तक अस्त्र शस्त्रों से लदे खड़े हैं। अपने अपने स्वार्थ की ओट में एक दूसरे पर भीषण से भीषण प्रहार करने में वह चूकने वाले नहीं। आज कौन देश अपने आप को सुरक्षित कह सकता है? क्या वह कि जिसके पास अणु-बम का भेद छिपा है? नहीं। अस्त्र-शस्त्र के भेद कुछ अधिक दिनों छिपने वाले नहीं। आज नहीं तो कल उनका प्रकटीकरण हो ही जावेगा। परन्तु उसके बाद आवेगा, पहिले से भी अधिक तीक्ष्ण शस्त्र।

मनुष्य जाति ने हज़ारों वर्षों के कठिन परिश्रम से, अपनी पूरी बुद्धि लगाकर कुछ वैज्ञानिक उन्नति की। उसे आज का मानव समाज अपनी ईर्षा, द्वेष, कुवासनाओं को तृप्त करने, दूसरों पर अत्याचार करने, और भले बुरे सभी प्रकार से धन एकत्र करने में लगा रहा है। एक राष्ट्र आज स्वयं के लिये इतना चिन्तित है कि दूसरों के बारे में सोचता ही नहीं। राष्ट्रों के नागरिक अपने राष्ट्रों के लिये तो सब कुछ न्यौछावर करने को तत्पर हैं। परन्तु समस्त मानव जाति का हित सोचने वाले उनमें से विरले ही होंगे। यह हमारे नैतिक पतन का द्योतक है।

परन्तु क्या हमने कभी सोचा भी कि आखिर यह सब हुआ कैसे? कुछ लोग विज्ञान को इसका कारण बतलाते हैं। परन्तु ऐसा कहने वाले यह भूल जाते हैं कि विज्ञान एक साधन मात्र है, लक्ष्य नहीं। किसी भी साधन का प्रयोग कल्याणकारी होगा अथवा विनाशकारी, यह उसके प्रयोग करने वालों की नीति, नियत, आदर्श और प्रणाली पर निर्भर करेगा। इन सब बातों का निर्णय कैसे हो? यह बात स्पष्ट है कि समाज का नियन्त्रण करने के लिये यह निश्चय कर लेना पड़ेगा कि उस समाज के घटक किन आदर्शों से प्रेरित होकर काम करें। आदर्शों को पूरा करने के लिये नीति और साधनों को काम में लाया जाता है। पाश्चात्य सभ्यता में विज्ञान को साधन न मानकर आदर्श से ऊपर रखा गया क्यों कि विज्ञान उनको अपनी इच्छाओं को यथा सम्भव पूर्ण करने के साधन दे देता था—इसलिये पाश्चात्यों

ने इसको ही अपना सब कुछ मान लिया। जैसे जैसे उनकी इच्छायें पूरी होती गईं, वैसे वैसे उनकी यह माँगे भी बढ़ती गईं। कहना न होगा कि उनकी यह माँगें विश्राम और उन्नति की ओट में अपनी कुवासनाओं, ईर्षा, द्वेष और स्वार्थों को पूरा करने के बारे में होती थीं। फलतः मानसिक स्तर नीचे गिरता गया। एक ओर तपस्वियों की भाँति वैज्ञानिक सत्य की खोज में रत रहते थे तो दूसरी ओर उनके परिश्रम का अनुचित उपयोग होता था। विज्ञान ने हमें अपने सम्वाद को क्षणभर में पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने तक भेजने का साधन दिया। इतना ही नहीं, करोड़ों मील दूर, समुद्र पार, होने वाले दृश्य को हम अपने सामने देख सकें, यह विज्ञान ने सम्भव कर दिया। परन्तु बेतार के तार का क्या उपयोग किया गया? विनोद के नाम पर नर्तकियों के घूंघरों की भनकार और बाजारू गानों को संसार में सुनाया गया। जहाँ एक ओर विज्ञान की उन्नति के कारण रोगियों की चिकित्सा के लिये नये नये विस्मयकारी साधन एवं औषधियों का आविष्कार हुआ, वहाँ दूसरी ओर भीषण मनुष्य संहारकारी अणु-बम भी हमारे सामने आया।

तो क्या वैज्ञानिकों को अपने काम से रोक लिया जाये? क्या यह सम्भव भी है? जब तक मनुष्य में अपने चारों ओर होने वाली बातों के प्रति उत्सुकता बनी रहेगी, विज्ञान निरन्तर उन्नति करता रहेगा। मानव-हित को देखते हुये भी विज्ञान की उन्नति होनी ही चाहिये। तो फिर समस्या का हल क्या है? आज हमारे सामने समस्या नव-निर्माण की है। अब तक की समाज-व्यवस्था अपने को राष्ट्र के संकुचित स्तर से ऊँचा नहीं उठाती। यदि समस्या को सफलता से हल करना है तो राष्ट्रीयता की भावना को अन्तर्राष्ट्रीयता से नीचा रखना पड़ेगा। पिछले युद्धों से यदि हम कोई शिक्षा लें तो यही कि मनुष्य अथवा राष्ट्र आपस में फटकर नहीं रह सकते। जब पास पास रहना है तो मिलकर, एक दूसरे का ध्यान रखकर क्यों न रहा जाये। सुख, शांति, परस्पर सहानुभूति तथा सेवा हमारे आदर्श क्यों न बने?

मानवता के इस पुनर्स्थापन में वैज्ञानिकों को भी अपना पूरा योग देना है। अब उन्हें यह दृढ़ निश्चय कर लेना है कि जो कुछ खोज वह करेंगे, मानव कल्याण के लिये करेंगे। साथ ही उसका उपयोग ठीक प्रकार से हो रहा है, यह देखना भी उनका कर्तव्य होगा। पीछे कुछ भी हुआ हो, अब वैज्ञानिकों को तानाशाही और राजनीतिज्ञों के गुलाम बनकर नहीं रहना है। अपने राष्ट्र के स्वार्थ भी उन्हें अपने इस दृढ़ निश्चय से विचलित न कर सकेंगे। वैज्ञानिक सत्य का पुजारी है, शब्द के सच्चे अर्थ में पूर्ण योगी है। अपने ज्ञान से, अपनी योग्यता तथा कला से, सभी वर्गों को, चाहे वे साम्राज्यवादी हों, पूंजीवादी हों अथवा और कुछ, वह मजबूर कर देगा कि यदि उन्हें उसके ज्ञान का उपयोग करना है तो वे मानव-हित ही करेंगे। जो कुछ खोजा जा रहा है, वह उनके पास एक अमूल्य धरोहर के समान है। उसका कैसा उपयोग होगा यह उनके दृढ़ निश्चय पर निर्भर करेगा।

हर्ष का विषय है कि प्रमुख राष्ट्रों के वैज्ञानिक तथा राजनीतिज्ञ ऊपर लिखी बातों के तथ्य को पहचान गये हैं। इसलिये सब मिलकर इस बात की चेष्टा कर रहे हैं कि संसार के सारे राष्ट्रों के बीच ऐसा सम्बन्ध स्थापित किया जाये कि भविष्य में किसी युद्ध की सम्भावना ही न रह जाये। लीग ऑफ नेशनस् की असफलता के बाद संयुक्त-राज्य-परिषद् (United Nations Organisation) निर्माण हुआ। प्रमुख राष्ट्रों ने अपने को इस परिषद् के नियन्त्रण में रहने के लिये प्रतिज्ञा-पत्र भरा, केवल कागज पर ही नहीं, हृदय से। मानव के जन्म सिद्ध मूल अधिकारों की रक्षा, अत्याचार का विरोध और साधारणतः मानव-कल्याण करने के लिये सभी राष्ट्र वचन बद्ध हुये।

वैज्ञानिक खोजों का नियन्त्रण करने के लिये भी राष्ट्रों के सम्मुख संयुक्त-राज्य-परिषद् से अच्छा

कोई दूसरा साधन न था। फलतः यू० एन० ओ० की सुरक्षा कौंसिल के सामने दो प्रमुख योजनायें रखी गईं। एक योजना barauch plan अमेरिका की ओर से रखी गई और दूसरी रूस की ओर से Gromyoko plan। कुछ लोगों का विचार है कि दोनों योजनाओं में बहुत अन्तर है। परन्तु दोनों योजनाओं का अध्ययन कर लेने पर निम्न बातें स्पष्ट हो जाती हैं :—

(१) वैज्ञानिक खोज का नियन्त्रण और उचित उपयोग करने के लिये सभी राष्ट्रों को मिलाकर अणु विकास अधिकार कमेटी (Atomic Development Auhority) बनाई जावे। सभी राष्ट्रों को इसका निर्णय मानने पर बाध्य किया जावे। यू० एन० ओ० के सभी सदस्य राष्ट्र इस संस्था के भी सदस्य माने जायें। यह संस्था सुरक्षा-कौंसिल के नीचे काम करे। सदस्य राष्ट्रों से जन-संहार (mass destruction) करने वाले अस्त्र-शस्त्रों के पूरे भेदों को A. D.A. के अधीन करने को कहा जावे।

(२) यह सभी मानते हैं कि अणु बम का उचित उपयोग संसार में नवीन व्यवस्था लाने में बहुत लाभदायक सिद्ध होगा। केवल थोड़ी सी अणु-शक्ति द्वारा बड़े बड़े कारखाने चल सकेंगे। विद्युत शक्ति का स्थान अणु-शक्ति ले लेगी। और भी न जाने कितने विस्मयकारी कार्य इस अणु-शक्ति द्वारा पूरे किये जा सकेंगे। इसलिये केवल उसके संहारकारी परिणाम को ही दृष्टि में रखकर, अणु-शक्ति बनाने वाली सभी वस्तुओं को नष्ट कर देने का रूसी प्रस्ताव कुछ ठीक नहीं जँचता। लेकिन दूसरी ओर अमेरिका अथवा किसी भी एक राष्ट्र का प्रभुत्व दूसरे देशों को क्यों स्वीकार होने लगा ? अमेरिका की योजना में यह महत्वपूर्ण अड़चन है।

(३) समस्या का हल इस प्रकार हो सकता है कि A. D. A. सभी राष्ट्रों से अपने अपने यहाँ पर मिलने वाले यूरेनियम इत्यादि उन पदार्थों का जिन से जन-संहारकारी अस्त्र-शस्त्र बन सकते हैं, पूरा पूरा विवरण देने को कहे। राष्ट्र यह भी बतावे कि इन पदार्थों का उपयोग किस प्रकार और कितनी मात्रा में किया जा रहा है। इससे सभी राष्ट्रों में आत्म-विश्वास बढ़ जावेगा। आत्म-विश्वास को और भी अधिक बढ़ाने के लिये अणु-शक्ति को तैयार करने वाले कच्चे पदार्थ कुछ छोटे छोटे और पिछड़े हुये राष्ट्रों को दिये जा सकते हैं। इस प्रकार जिन राष्ट्रों के पास यह पदार्थ नहीं हैं वे भी वैज्ञानिक खोजों में भाग ले सकेंगे।

(४) योजना को कार्य रूप में परिणित करने के लिए सर्व प्रथम कच्चे माल का नियन्त्रण करना आवश्यक है। संसार के विभिन्न भागों में होने वाली वैज्ञानिक खोजों के प्रमुख फल सभी राष्ट्रों को बता दिये जावें तो अच्छा रहेगा। फलों को जितना ही अधिक छिपाया जावेगा, दूसरे राष्ट्र उनको उतनी ही तत्परता से जानने का प्रयत्न करेंगे। फलतः परस्पर कलह और द्वेष घर कर लेंगे। इस सम्बन्ध में यदि सम्भव हो सके तो वैज्ञानिक एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र को भेजे जावें।

(५) साधारण जनता को भी अणु-शक्ति पर होने वाली खोजों के प्रमुख फलों से वञ्चित न रखा जावे। इससे नयी नयी खोजों को वह भय से न देखेगी। अणु-बम का भेद गुप्त रखा गया। इस लिये आज का साधारण मनुष्य उसके संहार कारी प्रभाव को केवल याद करके ही सिहर उठता है।

(६) वैसे तो A.D.A. सभी बातों में यू० एन० ओ० की संरक्षा में काम करेगी। यू० एन० ओ० की नीति उस की भी नीति होगी। परन्तु नियन्त्रण इत्यादि के इसे भी कुछ कार्यवाहक अधिकार दिये जावें। यदि कोई राष्ट्र A.D.A. के निश्चय को मानने से मुकरता है तो यू० एन० ओ० उसे दण्ड देगा।

(७) संसार में उपलब्ध वह सब साधन और सामग्री और वैज्ञानिक खोजें जिनसे जन संहार होना सम्भव है, A.D.A. के नियन्त्रण में रहेंगी। कोई भी देश बेजा तरीके से बिना A.D.A. की आज्ञा के कच्चे अथवा पक्के माल का स्टाक न बढ़ा

सकेगा। समय समय पर भिन्न भिन्न देशों के स्टाकों का निरीक्षण, A.D.A. द्वारा निर्धारित निरीक्षण बोर्ड द्वारा हुआ करेगा।

(८) A.D.A. स्वयं अपनी ओर से भी गवेषणा करा सकती है। इस गवेषणा में सभी राष्ट्रों के वैज्ञानिक भाग लेंगे। प्रत्येक देश में भी वैज्ञानिक खोज की जा सकेंगी। परन्तु ये खोजें खुले तौर पर होनी चाहिए। और उनका फल A.D.A. को अवश्य भेजना पड़ेगा।

(९) वह राष्ट्र जो A.D.A. के आधीन नहीं रहेंगे उनको कोई दूसरा सदस्य राष्ट्र कच्चा अथवा पक्का माल नहीं दे सकेगा।

योजनाओं का इस प्रकार अध्ययन कर लेने पर हम देखते हैं कि यदि संसार के सभी राष्ट्र मिलकर इस समस्या को हल करने का दृढ़ निश्चय करलें तो कोई कारण नहीं कि अणु-शक्ति का पूर्ण नियन्त्रण और उचित उपयोग न हो सके। प्रारम्भ में तो इस ओर काफी तेजी से कदम उठाया गया था। प्रमुख राष्ट्रों में निरीक्षण-बोर्ड भी गया। परन्तु अब कुछ दिन से मामला ढीला पड़ गया है। इसका कारण दो प्रमुख राष्ट्र रूस और अमेरिका में मन मुटाव है। अमेरिका साथी देशों की ओर से अणु-बम का पूरा भेद बतलाने को तैयार नहीं है। तो रूस भी न तो अपनी तैयारी का पता बतलाता है और न अणु-शक्ति नियन्त्रण की योजनाओं में सक्रिय सहयोग ही देता है। प्रत्येक को एक दूसरे के प्रति सन्देह है। इसलिए अणु-शक्ति के नियन्त्रण की समस्या का हल भविष्य के गर्भ में है।

गणित शब्दावली की समस्यायें

[डा० ब्रज मोहन]

[५]

(३६) *सीमित*—ना. प्र. सभा की वैज्ञानिक शब्दावली के पृष्ठ ७० पर निम्नलिखित शब्द दिए हैं:—

Definite Integral	सीमित अनुकल
Indefinite Integral	असीमितअनुकल
Corrected Integral	सीमित अनुकल
Uncorrected Integral	असीमित अनुकल

यदि इस शब्दावली को चलने दिया जाय तो किसी स्थान पर यह पता चलाना कठिन होगा कि 'सीमित अनुकल' दोनों में से किस अर्थ में आया है, और इन दोनों अर्थों में वास्तविक अन्तर क्या है। दूसरी बात यह है कि उसी शब्दावली में अन्य स्थलों पर ये पर्याय भी दिए हैं:—

Definite निश्चित
Indefinite अनिश्चित[1]

'Definite Integral' में 'Definite' का वही अर्थ है जिसका द्योतक 'निश्चित' है। इसी प्रकार 'Indefinite Integral' में Indefinite का अर्थ 'अनिश्चित' के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसके विपरीत 'असीमित' का अर्थ है Unlimited अर्थात् Infinite. अतएव इस शब्दावली में परिवर्तन करना ही होगा। हम इस शब्दावली का संशोधन इस प्रकार कर सकते हैं:—

Definite Integral	निश्चित अनुकल
Indefinite Integral	अनिश्चित अनुकल
Corrected Integral	शोधित अनुकल १
Uncorrected Integral	अशोधित अनुकल

(३७) *अचल*—यह शब्द Constant और Invariant दोनों के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है। ऐसी अवस्था में इस प्रकार के वाक्य का अनुवाद करना कठिन हो जायगा:—

The invariant involves three contants.

इसके अतिरिक्त 'समीकरण का अचल' का क्या

१ सभा की शब्दावली में पृष्ठ ३२ पर यह पर्याय दिया भी है।

अर्थ निकलेगा :—

Constant of the Equation अथवा Invariant of the equation ?

हम इस ढंग के शब्दों के पर्याय इस प्रकार निश्चित कर सकते हैं :—

Constant (N. and Adj) अचल
Constant Quantity अचल राशि
Invariant निश्चल
Covariant सहचल (र)
Constravariant प्रतिचल

(३८) **उत्क्रम, व्युत्क्रम**—ये दोनों शब्द Inverse और Reciprocal दोनों के अर्थों में आ रहे हैं। Reciprocal का अधिक प्रचलित अर्थ तो वह है जो इस वाक्य से स्पष्ट है :—

The reciprocal of 3 is $\frac{1}{3}$.

यह अर्थ 'Reciprocal Root' और 'Reciprocal ratio' में निहित है। परन्तु कभी२ Reciprocal का अर्थ होता है एक विशेष क्रिया द्वारा निकाला हुआ परिणाम' जैसे 'Reciprocation' और Reciprocity Theorem' में। यदि इन दोनों अर्थों के लिए एक ही शब्द 'व्युत्क्रम' से काम लें तो भ्रम की संभावना अधिक नहीं है। परन्तु Inverse का भी कभी कभी वही अर्थ होता है जो Reciprocal का पहिला अर्थ है, जैसे 'Inversely proportional' में। ऐसे स्थलों पर Inverse के लिए भी 'व्युत्क्रम' का ही प्रयोग करना होगा। Inverse का दूसरा अर्थ भी एक विशेष क्रिया का परिणाम है; परन्तु यह 'विशेष क्रिया' Reciprocation की विशेष क्रिया से सर्वथा भिन्न है। अतएव हमें अपने पर्याय इस प्रकार निश्चित करने होंगे कि इन क्रियाओं में परस्पर भ्रम की सम्भावना न रह जाय। मेरा विचार है कि इस ढंग की शब्दावली से हमारा काम चल सकता है:—

Inverse उत्क्रम
Inverse function उत्क्रम फलिन
Inverse curve उत्क्रम वक्र
Inversely proportional व्युत्क्रमानुपाती
Inversely varies व्युत्क्रमतःविचरता है
Inverse notation उत्क्रम संकेतलिपि
Inverse point उत्क्रम बिन्दु
Inverse probability उत्क्रम सम्भाव्यता
Inverse process उत्क्रम विधा
Inverse proportion व्युत्क्रमानुपत
Inverse ratio व्युत्क्रम निष्पत्ति
Inverse variation व्युत्क्रम विचरण
Inversion उत्क्रमण
Inversion of order. क्रम का उत्क्रमण
Reciprocal व्युत्क्रम
Reciprocal curve व्युत्क्रम वक्र
Reciprocal determinant व्युत्क्रम सारणिक
Reciprocal Equation व्युत्क्रम समीकरण
Reciprocal Function व्युत्क्रम फलिन
Reciprocally Proportional व्युत्क्रमानुपाती
Reciprocal operation व्युत्क्रम क्रिया
Polar Reciprocal कोणीय व्युत्क्रम
Reciprocal Ratio व्युत्क्रम निष्पत्ति
Reciprocal Root व्युत्क्रम मूल
Reciprocant व्यतिहारिक
Reciprocation व्युत्क्रमण
Reciprocity व्युत्क्रमता

(३६) **गतिविज्ञान**—ना.प्र.सभा की शब्दावली में यह शब्द Dynamics और Kinematics दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। अवश्य ही यह युक्ति संगत नहीं है क्योंकि Kinematics तो Dynamics की एक शाखा है। मेरे तत्सम्बन्धी प्रस्ताव ये हैं—

Dynamics गतिविज्ञान
Kinematics गतिगणित
Kinetics गतिशास्त्र
Kinetic energy गतिशक्ति

(४०) **मध्यमान**—इस शब्द के सम्बन्ध में मैं

अपने विचार पिछले एक लेख[1] में व्यक्त कर चुका हूँ।

(४१) रूपान्तर—यह शब्द Modification और Transformation दोनों के अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है। ऐसी दशा में इस वाक्य का अनुवाद करना कठिन होगा :—

This transformation is only a modification of the previous one.

अतएव इस शब्दावली में कुछ परिवर्तन करना अनिवार्य है। एक प्रस्ताव यह है :—

Modification रूपभेद, संशोधन

Modified संशोधित

Transform परिवर्त

Transformation रूपान्तर, परिवर्तन

Affine transformation परिमिती रूपान्तर

Conformal transformation समगुणी-रूपान्तर

Congruent transformation एकात्मक-रूपान्तर

Conjunctive transformation संयुति-रूपान्तर

Contact transformation सम्पर्क रूपान्तर

Isothermal transformation समतापी-रूपान्तर

Linear transformation एकघात रूपान्तर

Normal transformation प्रकृत रूपान्तर

Transformation of axes अक्ष परिवर्तन

Orthogonal transformation समकोणीय-रूपान्तर

Projective transformation विक्षेपी रूपान्तर

(४२) मात्रा—इस शब्द से सम्बद्ध शब्दावली इस प्रकार है:—

Mass मात्रा

Mass (Dyn.) जाड्य

A mass (body) of 10 lbs. १० पौण्ड का एक पिण्ड (काय) (ख)

Quantity मात्रा, राशि, परिमाण

यदि हम 'मात्रा' को Mass और Quantity दोनों के अर्थ में चलने दें तो इस परिभाषा का अनुवाद कर ही न पायेंगे,

Mass is the quantity of matter contained in a body.

क्योंकि इस प्रकार इसका अनुवाद होगा:—

किसी काय के द्रव्य की मात्रा को मात्रा कहते हैं।

हम यह भी नहीं कर सकते कि quantity के लिए 'राशि' को निश्चित कर दें क्योंकि Quantity के लिए कहीं पर मात्रा लिखना आवश्यक होगा, कहीं पर 'राशि'। इस वाक्य

There are two unknown quantities in the equation. का अनुवाद होगा:—

समीकरण में दो अज्ञात राशियां हैं।

परन्तु quantity of matter के लिए हमें 'द्रव्य की मात्रा' ही कहना होगा, 'द्रव्य की राशि' नहीं कह सकते। अतः Quantity के लिए यथा-स्थान दोनों शब्दों का प्रयोग होता ही रहेगा और Mass के लिए कोई और पर्याय निश्चित करना होगा। इस सम्बन्ध में डा० रघुवीर का प्रस्ताव

Mass पुंज

स्तुत्य है। इस शब्द के दो अन्य पर्याय (क) और (ख) जो ऊपर दिए हैं, ज्यूं के त्यूं रहने दिए जायं तो कोई हानि नहीं है।

(४३) घनफल—यह शब्द Volume और Cube (third power) दोनों के लिए प्रयुक्त हो रहा है। यदि यह प्रयोग चलने दिए जायं तो वाक्य

The cube of the volume of the solid is 125. का अनुवाद होगा—

ठोस के घनफल का घनफल १२५ है।

स्पष्ट है कि इस शब्द के दोनों अर्थ चल नहीं सकते। हम अपने पर्याय इस प्रकार निश्चित कर सकते हैं :—

[1] लौगैरिथ्म का पर्याय—विज्ञान ६५ (२००४)१०—३.

Bulk आयतन
Volume परिमा (र)
Cube (third power) घनफल, घन

'घनफल' अन्तिम अर्थ के लिए ही उपयुक्त है क्योंकि इसका शाब्दिक अर्थ है 'Result of cubing'

(४४) सीमा–इस शब्द के दो प्रयोग हैं Limit और Range। इन दोनों अर्थों में विवेचन करना होगा अन्यथा

Limit of the Range

का अनुवाद किस प्रकार होगा ?

'Range' के भी कई अर्थ हैं। अतएव इस शब्द के लिये एक ही पर्याय से काम नहीं चलेगा। मेरा तात्पर्य इस शब्दावली से स्पष्ट हो जायगा :

Range of points बिन्दुमाला
Range of circles वृत्तमाला
Range of conics शांकवमाला
Harmonic Range हरात्मक बिन्दुमाला
Hormographic Range एकैकीसंगत बिन्दुमाला
Range of Involution समुत्क्रमण बिन्दु-माला
Range of projectile प्रक्षेप्य की मार
Maximum Range महत्तम मार
Range of stability स्थापित्व की अवधि
Range of values मानों की अवधि

इस प्रकार 'सीमा' Limit के लिये ही रह जाता है।

(४५) रेखावली–यह शब्द Pencil of Lines के लिये प्रयुक्त हो रहा है। 'अवली' का अर्थ है 'समूह'। यही अर्थ अंग्रेजी के 'System' से व्यक्त होता है। अतएव 'रेखावली' का अर्थ हुआ 'System of Lines' परन्तु 'Pencil of Lines' में केवल 'समूह' का भाव नहीं है। Pencil रेखाओं के ऐसे समूह को कहते हैं जो संगामी (concurrent) हों। यह अर्थ 'सूची' से व्यक्त हो सकता है।

System के भी कई अर्थ हैं। यह अर्थ निम्नलिखित शब्दावली से स्पष्ट हो जायंगे :—

System व्यवस्था, पद्धति, संहति, अवली
Systematic व्यवस्थित, पद्धतिशील
Cartesian System कार्तीय पद्धति
Decimal system दशांशिक पद्धति
Metric system मीटरी पद्धति
Adjoint system संलग्न संहति
Conjugate system अनुबद्ध संहति
Coplanar system समतली संहति
Equivalent system तुल्य संहति
Identical system एकात्मक संहति
Normal system प्रकृत संहति
System of bodies काय संहति
System of circles वृत्तावली, वृत्त संहति
System of equations समीकरण संहति
System of forces बल संहति
System of involution समुत्क्रमण संहति
System of Lines रेखावली, रेखा संहति
System of Particles कण संहति
System of pulleys घिरनी संहति
Null system मोघ संहति
Pencil of Lines रेखा सूची (र)

(क्रमशः)

प्रतिध्वनि

[राज कुमार जैन हरसदन, मेरठ]

मेरठ कालिज विज्ञान परिषद् की सभा में डा० नेहरू का लेक्चर सुनने पहुँचा तो वहाँ के हाल की गूँज से परेशान होकर उठकर चला आया क्योंकि कुछ सुनाई न पड़ता था। क्या इस गूँज से कुछ लाभ भी है, या यह केवल मनुष्य को दुःख देने के लिये है? बार बार यह प्रश्न सामने उठ खड़ा होता। और इस के उत्तर में जो कुछ समझ पाया हूँ वह आप तक पहुचाये देता हूँ।

बचपन में आपने भी प्रतिध्वनि का अनुभव किया होगा। पक्के कुओं में बोलने पर वैसी ही ध्वनि थोड़ी देर बाद आने पर आप को भी आश्चर्य हुआ होगा। हममें से जिनको पर्वतीय भागों में रहने का सौभाग्य मिला है वे जानते हैं कि एकान्त घाटी में किसी निस्तब्ध सन्ध्या को एक जोर की आवाज़ किस भयानक तरह से घंटों तक गूँजती है। क्रिकेट खेलते समय भी कभी-कभी स्कूल-भवन की ओर से गूँज सुनाई देती है, तो बालक सोचा करते हैं, इस का क्या कारण है?

बच्चों को समझाने के लिये बड़े बूढे प्राय: कह दिया करते हैं, कि ध्वनि किसी चीज—दीवार, पहाड़ी या जलसे टकराकर गूंजती है। हां, ठीक है, पर वैज्ञानिक की जिज्ञासा इस उत्तर से शान्त नहीं होती, वह तो 'क्यों', 'क्या' और 'कैसे', का पूर्ण उत्तर जानना चाहता है, और उसके अनवृत परिश्रम और साधना का फल भी मिला है उसे। आप में से अधिकतर जानते होंगे कि ध्वनि एक स्थान से दूसरे तक लहरों के द्वारा जाती है और यह लहरें किसी माध्यम में चलती हैं जैसे वायु आदि। प्रत्येक प्रकार की लहरों का, चाहे वह ध्वनि की हों, या प्रकाश की या रेडियो की, यह गुण है कि चलते चलते जब वे किसी दूसरे माध्यम की सीमा पर पहुँचती हैं तो उन में से कुछ आगे चली जाती हैं और कुछ वापस लौट पड़ती हैं और यही वापस आने वाली तरगें प्रतिध्वनि पैदा करती हैं। मानवी ध्वनियों की प्रतिध्वनि कान ही सुन लेते है, पर अन्य प्रतिध्वनि विशेष प्रकार के यन्त्रों से सुनी जाती हैं। पर प्रतिध्वनि कैसी ही तरंग में हो सकती है। यह जानकर आप शायद आश्चर्य करें कि हम अपने जीवन में इस साधारण सिद्धान्त का प्रयोग कितनी जगह करते हैं। इसका एक सूक्ष्म उल्लेख नीचे दिया गया है

सब से साधारण उपयोग, किसी दूर की वस्तु की दूरी नापना है। हम जानते हैं कि ध्वनि एक स्थिर-गति से चलती है (११०० फीट प्रति सेकण्ड)। इस कारण हम ध्वनि और प्रतिध्वनि का समयान्तर किसी घड़ी से ठीक २ निकाल लेवें तो प्रतिध्वनि करने वाली वस्तु की दूरी साधारण गणित से निकाली जा सकती है। बिलकुल यही सिद्धान्त समुद्र या गहरे जलाशयों की गहराई मापने के काम में आती है केवल ध्यान इस बात का रखना पड़ता है कि ध्वनि वायु में नहीं जल में चलती है जिसमें ध्वनि की गति दूसरी है।

प्रतिध्वनि इस विशेष प्रकार की लहरों में ही नहीं बल्कि हर प्रकार की लहरों में पाई जाती है। रेडियो में आप फर्मायशी प्रोग्राम के आते ही सब कुछ भूल जाते हैं, पर आप ने कभी सोचा है कि देहली से इतनी दूर बैठे हुए कैसे रसास्वादन करते हैं? पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए, सत्तर अस्सी मील की ऊचाई पर प्रकृति की एक बिजली के गुण वाली कम्बल सी परत है। जब देहली के रेडियो स्टेशन से चलने वाली तरंगें इस परत से प्रतिध्वनित होकर आप के रेडियो पर आती हैं तो वही स्वर लहरी पैदा कर देती हैं क्योंकि यह लहरें १८६००० मील प्रति क्षण की आश्चर्यजनक गति से चलती हैं इस कारण

कई बार प्रतिध्वनित होने के बाद भी एक क्षण के हज़ारवें भागमें आपके पास पहुँच जाती हैं।

वैज्ञानिक के लिये तो इस प्रतिध्वनि का महत्व अनुमान के बाहर है। इसी के द्वारा वह किसी भी प्रकार की लहरों का विश्लेषण उतने ही सुभीते से कर सकता है जैसे कि "आपके अध्यापक वाक्य विग्रह कर लेते हैं। इसी सिद्धान्त की सहायता से उसने वायुमण्डल की बिना उड़ान लगाये सैर कर ली है और वहां पर पाई जाने वाली अनोखी स्थितियों का ज्ञान पा लिया है। खैर, वैज्ञानिक को तो छोड़िये उसकी प्रयोग शाला में, अब युद्ध भूमि पर उतर आइये और वहां पर इस के नये उपयोग देखिये।

युद्ध समाप्त होने के बाद आपने समाचार पत्रों के पन्ने राडर नाम की अनोखी खोज की आश्चर्य जनक सफलताओं से रंगे देखे होंगे। उत्तरी प्रदेशों में कोहरा इतना गहरा और घना पड़ता है कि प्रकाश भी उसको नहीं भेद सकता और अपने से चार पाँच फ़ीट की दूरी की वस्तु भी सुझाई नहीं पड़ती है। हम और आप इस कठिनाई का अनुमान ही नहीं लगा सकते। युद्ध में इस कठिनाई का सामना करने का कोई उपाय ही न समझ पड़ता था। क्योंकि वायुयान बिना दिखाई दिये देश में आकर अपनी कारगुजारी दिखाकर वापस सफलता पूर्वक जा सकते थे। इसलिये इन्हीं रेडियो की लहरों का प्रयोग अपने मार्ग में रुकावट डालने वाली वस्तुओं का पता लगाने को किया गया क्योंकि इनकी विशेष कम्पन गति† की लहरें वस्तुओं से प्रतिध्वनित होती थीं। ऐसे केन्द्रों से एक चक्कर लगाने वाला लहरों का पुञ्ज निकलता था जैसा कि हवाई अड्डों के पास रहने वाले प्राय: देख सकते हैं।

अब आपको एक दो युद्ध के गुप्त शास्त्रों के बारें में भी बतादूँ। जापानी फौज रात्रि में गुप्त रूप से आगे बढ़ने में विशेष दक्ष थी और इसकारण सफलता पूर्वक विजय करती जाती थी। अंग्रेज सेना के वैज्ञानिकों ने इस को रोकने के लिये एक नये प्रकार की रायफल सैनिकों को दी। इस में से अदृश्य अतिलाल १ लहरों का समूह नली के समानान्तर स्विच दबाने पर निकलता था और शत्रु या किसी भी वस्तु के मार्ग में आने पर प्रतिध्वनित होता था। ये वापस आने वाली प्रतिध्वनिएँ एक विशेष पर्दे पर टेलीस्कोप द्वारा प्रतिविम्बित की जाती थीं। इस पर्दे पर से बिजली के अणु निकलते थे जो दूसरे पर्दे पर एक हरा सजीव चित्र बनाते थे जिसको देखकर सैनिकों को वही सुभीता था जो दिन में हो सकता था।

ऐसे ही अन्य अनेकों आविष्कार सबमेरीन आदि का पता लगाने में प्रयोग हुए जिनमें प्रमुख एसडिक (ASDIC) है। इससे समुद्र में डूबे हुए कोषों का भी पता लगाने में सहायता ली गई है।

यह वही साधारण प्रतिध्वनि है जिसने कालिज के अन्दर मनोरंजन में तङ्ग कर दिया था।

† कम्पन गति (Frequency)

१ अति लाल (Infra Red)

यांत्रिक चित्रकारी

[लेखक ओंकारनाथ शर्मा]

यन्त्र निर्माण कला में नक़शों का उपयोग

जब कि किसी नये यंत्र अथवा औज़ार का आविष्कार अथवा किसी पुराने ढंग के यंत्र अथवा औज़ार में सुधार किया जाता है तब निमाण कार्य आरम्भ करने के पहिले उस के नकशे बना लेना अत्यंत आवश्यक है। उक्त यंत्र अथवा औज़ार के आविष्कारक अथवा सुधारक के दिमाग़ में तो उक्त

यंत्र अथवा औजार की बनावट और सिद्धान्त स्पष्ट होते ही हैं और यदि वह चाहे तो अपने मानसिक चित्रानुसार सरल आकृति और बनावट के यंत्र अथवा औजार को स्वयं भी बना सकता है लेकिन अपने विचारों को किसी दूसरे कारीगर को जबानी समझा कर उसे बनवालेना बड़ा ही कठिन है और विशेष कर उन कारखानों में जिनका कि व्यापार ही यंत्रनिर्माण करना है उनका तो इस प्रकार से काम चल ही नहीं सकता अतः यांत्रिक को अपने उस मानसिक चित्र को कागज पर उतार लेना अत्यंत आवश्यक है। इस लिये यंत्र निर्माण कला की उन्नति के साथ साथ यांत्रिक चित्रकारी नामक विज्ञान की भी उचित उन्नति की गई। इस पुस्तक के प्रथम भाग में बताया गया था कि यांत्रिक चित्र क्या होते हैं और उन्हें किस प्रकार पढ़ना चाहिये। इस द्वितीय भाग में बतावेंगे कि उन्हें किस प्रकार से बनाना चहिये और आधुनिक नकशे-घरों में किस प्रकार से काम होता है।

ड्राफ्टस्मैन अर्थात् यांत्रिक चित्रकार का काम

यंत्रों के निर्माण का कार्य निम्नलिखित चार विभागों में बाँटा जा सकता है (१) पूर्ण अथवा आंशिक आविष्कार करना और सिद्धान्तों का निश्चय करना। (२)—उक्त निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार उस यंत्र और उसके पुर्जों की रचना करना और उनके प्रत्येक अंग को इतना मजबूत बना देना कि जिससे वे उसपर पड़ने वाले चाँप (Stresses) को भलीभांति सहलें। (३) -कारखाने के उपयोग के लिये उक्तपुर्जों के निर्माण चित्र (Working-Drawings) बनाना। (४) उक्तनिर्माण चित्रों के अनुसार उक्त पुर्जों को ढालना, गढ़ना, खरादना और फिट कर यंत्र को खड़ा करना। यांत्रिक चित्रकारी के विद्यार्थियों को, उक्त चारों विभागों में आपस में क्या सम्बन्ध है, भली-भांति समझ लेना चाहिये। क्योंकि कुछ ड्राफ्टस्मैनों को तो दूसरों के विचारों के अनुसार आविष्कृत यंत्र की आकृति को विकसित कर उस के प्रत्येकभाग की रचना करनी पड़ती है, कुछ ड्राफ्टस्मैनों को नवीन आविष्कार के ऊपर विवेचना करनी होती है और उसकी योजना को स्थूल रूपदेना होता है, कुछ ड्राफ्टस्मैनों को उक्त आविष्कृत यंत्र अथवा औजार के पुर्जों को निर्माण करने की विधि पर ध्यान देना होता है और उस के अनुसार उसकी रचना की छान-बीन रकनी पड़ती है, कुछ ड्राफ्टस्मैन उपरोक्त बातों के निश्चित होजाने पर प्रत्येक पुर्जे और सम्पूर्ण यंत्र के निर्माण चित्र ही बनाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक यंत्रकार (Designer) आविष्कारक हो सकता है और अविष्कारक यंत्रकार भी हो सकता है और आविष्कारक और यंत्रकारों को यांत्रिक चित्रकार होना सदैव ही आवश्यक है जिसमें कि वे अपने यंत्र की आकृति सम्बन्धी मानसिक चित्र को कागज पर स्थूल रूप दे सकें। लेकिन प्रत्येक यांत्रिक चित्रकार को आविष्कारक और यंत्रकार अथवा यांत्रिक होना आवश्यक नहीं, क्योंकि यांत्रिक चित्रकारी आज कल एक स्वतंत्र विद्या बन गई है जिसे प्रत्येक नौसिखिया भी सीखना आरम्भ कर सकता है और फिर धीरे धीरे कोशिश करने पर आविष्कारक, यंत्रकार अथवा यांत्रिक भी बन सकता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि जो आदमी यन्त्र शास्त्र और यंत्रविज्ञान की जितनी ही अधिक योग्यता रखता हुआ मौलिक आविष्कार, यन्त्र रचना और विकाश कर सकता है उतना ही अधिक वह यंत्र रचना विभागके लिये उपयोगी समझा जाता है। यह भी जानना चाहिये कि "यांत्रिक चित्रकार" (ड्राफ्टस्मैन) शब्द का अर्थ भी बहुत विशद है। यथा हस्त चित्र (Free hand) द्वारा पैमाने का चित्र नकशा बनाने वाले से लेकर स्वयं चालक यन्त्रों की रचना करने वाले तक को ड्राफ्टस्मैन अर्थात् यांत्रिक चित्रकार ही कहते हैं। वास्तव में हस्त चित्र से पैमाने का चित्र बनाने वाला ही यांत्रिक चित्रकार कहलाना चाहिये और यन्त्र की रचना (Design)

करने वाला यन्त्रकार (Designer) कहलाना चाहिये लेकिन अक्सर नकशे-घरों में इस प्रकार का भेद नहीं किया जाता। यह भेद केवल उनके वेतन से ही प्रकट होता है और जो व्यक्ति पैमाने के चित्रों से ट्रेसिंग बनाता है वह ट्रेसर कहलाता है। प्रत्येक यन्त्रकार अपने अपने विषय के विशेषज्ञ हुआ करते हैं। एक ही यंत्रकार सब प्रकार के यंत्रों की रचना नहीं कर सकता, क्योंकि किसी भी यन्त्र की रचना करने वाले को उस यन्त्र में निहित सिद्धान्त का बड़ा गहरा अध्ययन, अनुभव और यन्त्र निर्माण-कला का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये। जैसे कि गणित और अर्थशास्त्र का कोई भी स्वतंत्र रूप से पुस्तकों द्वारा अध्ययन कर सकता है वैसे ही सब प्रकार के यन्त्रों की रचना करना केवल पुस्तकों द्वारा ही हर कोई नहीं सीख सकता जब तक कि उस औद्योगिक क्षेत्र का पूरा अनुभव न प्राप्त करले।

यांत्रिक चित्रकार को किन किन बातों का ज्ञान होना चाहिये ?

जो लोग यांत्रिक चित्रकार बन कर यंत्र सम्बन्धी वास्तविक मौलिक रचनायें करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे ट्रेसरों की भांति लकीर पर लकीर मारकर अथवा दूसरों की यांत्रिक रचनाओं के नकशे बनाकर ही संतोष नहीं करलें, बल्कि यंत्र विज्ञान और यंत्र निर्माण कला का पूर्ण ज्ञान धीरे धीरे प्राप्त करते रहें और सचेत दृष्टि से देखते रहें कि उनसे ऊँचे दरजे के यन्त्रकार किस प्रकार से यंत्र शास्त्र के साधारण से साधारण सिद्धान्तों का उपयोग कर के आश्चर्यजनक रचनायें प्रस्तुत कर देते हैं। वे व्यवहार में देखेंगे कि एक ही साधारण सी प्रयुक्ति कई प्रकार के नतीजे प्राप्त करने के लिये काम में लाई जाती है और कई बेर एक ही प्रकार के नतीजे को प्राप्त करने के लिये भिन्न भिन्न प्रयुक्तियां काम में लाई जाती हैं, लेकिन कहां पर किस प्रयुक्ति का उपयोग करना श्रेय होगा इसी बात का उचित निश्चय करने में यंत्रकार की चतुराई समझी जाती है। वास्तव में अधिकतर जितने भी यन्त्र हमारे देखने में आते हैं उनमें से एक भी ऐसा नहीं मिलेगा जो कि किसी व्यक्ति विशेष के दिमाग की विशुद्ध उपज हों बल्कि वे सब अपने पूर्ववर्त्ती यंत्रों के परिष्कृत स्वरूप हैं। व्यवहार में किसी यंत्रिकार अथवा यांत्रिक चित्रकार से यह आशा नहीं की जाती कि वह जो कुछ भी रचना करेगा वह सर्वथा मौलिक ही होगी, बल्कि उससे केवल यही आशा की जाती है कि जो कुछ भी वह बनावे वह सर्व सम्मत वैज्ञानिक सिद्धान्तों और अनुभवों द्वारा परिपुष्टित हो। इसका मतलब यह नहीं है कि कोई यंत्रकार किसी प्रकार का मौलिक आविष्कार करे ही नहीं अथवा सदैव दूसरों के विचारों का अपहरण ही करता रहे बल्कि इसका मतलब यह है कि जो कुछ भी वह रचना करे वह वैज्ञानिक सिद्धान्तों और अनुभवों द्वारा प्रमाणित हो।

यांत्रिक चित्रकार को यंत्र निर्माण कला का ज्ञान क्यों होना चाहिये ?

कागज पर लकीरें खींच देना तो बहुत आसान है लेकिन उन लकीरों के अनुसार लकड़ी, लोहा, इस्पात या पीतल का सामान बना डालना ही अधिक कठिन है। अनुभव हीन यांत्रिक चित्रकारों के बनाये हुए नकशे और रचनायें जब कारखाने में बनने के लिये जाती हैं तब कई बेर मालूम होता है कि उनके बनाये नक़शे के अनुसार कोई फरमा नहीं बनाया जा सकता, यदि फरमा बन भी जाता है तो सांचा बनाते समय मिट्टीटूटती है या उस की हवा नहीं निकलने पाती जिससे ढलाई में ऐब रह जाता है, अथवा वह अदद गढ़ा नहीं जासकता अथवा उसकी खराद वगैरा में किसी प्रकार की बेजा दिक्कतें पेश आती हैं जिन दिक्कतों के कारण उस पुर्जे या अदद का बनाना असम्भव अथवा बड़ा खर्चीला हो जाता है। यदि उस रचना में थोड़ीसी कोई तब्दीली या सुधार कर दिया जाय तो उपरोक्त सब दिक्कतें दूर हो सकती हैं। अतः एक होशियार

यांत्रिक चित्रकार को फरमे बनाने का, उनसे ढलाई करने का, और लुहारी के काम का अच्छा अनुभव होना चाहिये। बहुत अधिक खराद किये जाने वाले अदद, अथवा विशेष औज़ार, जिग अथवा फिकश्चरों की रचना करने वालों को यंत्रघर के काम का अच्छा अनुभव होना चाहिये। सर्वोत्तम रचना वही समझी जाती है जिसमें प्रत्येक अदद की आकृति यथासम्भव बहुत सरल, पेचिदगियों और उलझनों से रहित हो और जिस का निर्माण बहुत सस्ते में हो सके। अतः योग्य यांत्रिक चित्रकार स्वरचित यंत्र अथवा औजार की कार्यप्रणाली का ही केवल ध्यान नहीं रखते बल्कि उसको बनाने वाले फरमागर (Pattern Maker), सांचागर (Moulder), लोहार (Black smith), खरादी (Machinist) और मिस्त्री (fitter) आदि सब प्रकार के कारीगरों का ध्यान रखते हैं। इसलिये जिन यांत्रिक चित्रकारों को कारखाने के काम का प्रयोगिक अनुभाव नहीं उन्हें आवश्यक बातों में उपरोक्त कारीगरों और उनके फोरमैनों की सलाह लेते रहना चाहिये। विशेष औजार जैसे कि जिग, फिक्श्चर, जिनका मुख्य उद्देश्य काम को सस्ता और अच्छा करना ही है, उनकी रचना करते समय कारीगर और फोरमैनों को केवल सलाह ही न ली जाय बल्कि उनकी राय को मान कर उसपर अमल भी किया जाय, क्योंकि वे ही लोग तो उन औजारों के उपयोग करने वाले होंगे अतः उनकी अच्छाई और बुराई के विषय में उन से अधिक यांत्रिक चित्रकार नहीं जान सकते।

करीगर और फौरमैन लोग जो कि हमेशा निर्माण कार्य में ही लगे रहते हैं भली-भांति जानते हैं कि किन किन क्रियाओं के करने में क्या क्या दिक्कतें पेश आती हैं और कौन कौन सी क्रियायें विशेषखर्चीली पड़ती हैं जिनका निवारण रचना में थोड़ा सा हेर फेर करने से हो सकता है। यंत्र निर्माण करने वाले कई बड़े-बड़े कारखानों में ऐसा रिवाज होता है कि प्रत्येक फोरमैन और जिम्मेदार मिस्त्रियों के पास एक एक कोरी कापी रहती है जिस में वे अपनी दिक्कतें और उन्हें दूर करने के उपाय ज्यों ही उनके काम के सिल-सिले में आते हैं लिखते जाते हैं। इस कापी में एक दिक्कत और उसे दूर करने के उपाय को एक ही पन्ने में लिखा जाता है। उन पन्नों पर हेडिंग आदि सब छपे रहते हैं और एक छोड़ एक पन्ना छिदा हुआ रहता है जिससे कि वह उचित स्थान से फाड़ा जासके। अतःप्रत्येक प्रस्ताव की दो लिपियां तैय्यार करके एक लिपि का पन्ना फाड़कर चीफ ड्राफ्टस्मैन (मुख्य यांत्रिकचित्रकार) को भेज दिया जाता है। उन प्रस्तावों को पाते ही वह अफसर आवश्यक और जल्दी के प्रस्तावों पर तो फौरन उचित कार्यवाही करवाता है और शेष को उचित अवसर आने पर विचार करने के लिये छोड़ देता है। कई कारखानों में कारीगरों को केवल सुझाव रखने के लिये ही प्रोत्साहन और आज़ादी नहीं दी जाती बल्कि निर्माण करते समय किसी भी प्रकार के ऐब को न प्रकाशित करने के लिये जिम्मेदार भी ठहराया जाता है।

यांत्रिक चित्रों का वर्गीकरणः— यांत्रिक चित्रों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो रूपरेखा चित्र (Outline drawing) और दूसरे निर्माण चित्र (Working drawing)। रूपरेखा चित्रों में तो चित्रित वस्तु की साधारण आकृति और समाहृत नाप (Overall dimensions) ही दिये जाते हैं जिनकी कि अक-सर सूचीपत्र आदि में आवश्यकता पड़ती हैं। निर्माण चित्रों में चित्रित वस्तु की भीतरी और बाहरी सही सही आकृति, उसके सब नाम और सूचनायें दी जाती हैं जिनकी कि उक्त वस्तु का निर्माण करते समय फरमाघर, ढलाई खाना, लुहार खाना और खरादखाने आदि में आवश्यकता पड़ती है। निर्माण चित्र भी दो प्रकार के होते हैं, एक तो सङ्गम चित्र (Assembly Drawing) जिसमें पूरे यन्त्र के सब पुर्जों को यथास्थान लगा हुआ बताया जाता है और उनकी आपेक्षिक स्थिति

प्रदर्शित करने वाले सब नाप दिये जाते हैं जिनकी फिटरों और यन्त्र को जोड़कर खड़ा करने वाले मिस्त्रियों को आवश्यकता पड़ती है। दूसरी प्रकार के निर्माण चित्रों को विवरण चित्र(Detail Drawing) कहते हैं, जिनमें प्रत्येक पुर्जे की पूरी बनावट, सब नाप और सूचनायें दी जाती हैं जिनकी सहायता से वह पुर्जा बनाया जा सकता है। रूपरेखा और सङ्गम चित्र अक्सर छोटे पैमाने पर बनाये जाते हैं क्योंकि उनमें नाप और सूचनायें बहुत थोड़ी दी जाती हैं और विवरण चित्र या तो पूरे पैमाने पर बनाये जाते हैं या जितना हो सके उतने बड़े पैमाने पर बनाये जाते हैं। यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि यांत्रिक चित्रों को देख कर साधारण व्यक्ति जिनको इस विद्या का ज्ञान नहीं है प्रदर्शित वस्तु की आकृति उसी प्रकार सरलता से नहीं देख और समझ पाते जैसी की दृश्य चित्र अथवा फोटो में देखकर समझ सकते हैं, बल्कि उन्हें तो रेखाओं का एक जाल सा दिखाई देता है। वास्तव में, यांत्रिक चित्रों में बनी हुई प्रत्येक रेखा, प्रत्येक बिन्दु अथवा अक्षर या चिह्न कोई विशेष अर्थ रखता है और वैज्ञानिक रीति से उस वस्तु की सही बनावट, आकार, धातु और निर्माण विधि पर कोई न कोई निश्चित बात बताता है। इसके विपरीत दृश्य चित्र, प्रदर्शित वस्तु की बाहरी आकृति का ज्ञान तो करवा देते हैं लेकिन उसके विविध भागों के आपेक्षिक सही नाप, भीतरी बनावट और निर्माण सम्बन्धी कुछ भी सूचना नहीं दे सकते। अतः यांत्रिक चित्रकारों को सूचीपत्रों के उपयोग के अतिरिक्त दृश्य चित्र कभी भी बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके आकृति और सूचनायें व्यक्त करने के तरीके इस प्रकार के होते हैं जिनके अनुसार चित्र बनाने में थोड़ा से थोड़ा समय लगे और आकृति और निर्माण विधि सम्बन्धी विशुद्ध सत्य व्यक्त किया जासके। अतः यांत्रिक चित्रकारों को इस कला का इसी दृष्टिकोण से अध्ययन करना चाहिये।

बिहार की खनिज सम्पत्ति

लेखक—श्री डी० पी० ठेक्कर, भूतपूर्व अध्यक्ष, बिहार चेम्बर आफ कामर्स

बिहार प्रान्त खनिज पदार्थों में धनी है, जिसमें प्रधान कोयला, लोहा, ताम्बा, अबरख, बौकसाइट, कारनाइट, सिलिमैनाइट, इलमेनाइट, चूने का पत्थर आदि हैं।

कोयला—

इस प्रान्त में कोयले का अपरिमित भंडार है। विभिन्न धातु-जनित कार्यों में काम आने वाला कोयला इस प्रान्त में पाया जाता है। निकास के विचार से यह भारत के अन्य कोयला निकालने वाले क्षेत्रों में सबसे बड़ा है। बिहार को ही सारे भारत के कोयले-निकास का आधा श्रेय प्राप्त है। भारत के उत्तम धातु-कार्योपयोगी कोयलों का अधिकांश झरिया क्षेत्र से ही प्रप्त होता है। सिलेक्ट ग्रेड तथा नम्बर १, २, ३ ग्रेड कोयलों की राशिभरी पड़ी हैं। यद्यपि इन उच्च ग्रेड कोयलों का उपयोग केवल धातु शुद्धि कार्यों में होना चाहिये, पर अभी ये नाना प्रकार के अन्य उपयोगों में लाये जाते हैं। कोयले का उपयोग अभी प्रधानतः जलवाष्प बनाने तथा अन्य उद्योग उदाहरणतः कुम्भकारी गूना,पत्थर तथा घरेलू काम में (निम्नकोटि कोयले से साफ्ट कोक बनाने की विधि द्वारा) ही सीमित है। तथापि कुछ फैक्ट्री हैं जो हार्ड कोक (खनिज कोयले में से

गैस निकाल लिये जाने पर अवशिष्ट रहने वाला अंश) तैयार करती हैं तथा कुछ उपफल भी रख छोड़ते हैं। यह अत्यन्तावश्यक है कि साफ्टकोक और हार्डकोक बनाने में कोयले को खुली जगह में जलाने की विधि से जो महत्व पूर्ण अवयवों की इतनी बड़ी हानि होती है, तुरन्त रोकी जाय और उद्योग के इस क्षेत्र की ओर अधिक ध्यान दिया जाय।

भारत का कोयला उत्पादन प्रायः ३० लाख टन प्रति वर्ष धीरे धीरे बढ़ता, पर समय समय पर व्यापार की मन्दी से उद्योग की उन्नति मारी गयी जिस से कि उसकी एक रूप वृद्धि में बाधा पहुँची। प्रांत के प्रधान उत्पादन केन्द्र झरिया कोयलाक्षेत्र के अतिरिक्त और क्षेत्र भी हैं जो विकास का मुँह जोह रहे हैं। कालान्तर में यातायात की सुविधायें प्राप्त होने पर यह क्षेत्र भी विकसित होंगे तथा देश के कोयले-उत्पादन में भरपूर ठोस भाग लेंगे।

कच्चा लोहा—

उत्तम प्रकार के सैकड़ों वर्ष के उपयोग के लिये पर्याप्त कच्चे लोहे का असीम भण्डार प्रांत में भरा है। लोह उद्योग यहीं पनपा और विकसित हुआ है। यहीं अर्वाचीन प्रकार के अवे हैं और स्टील वर्क्स द्वारा प्रायः सभी कोटि तथा विविध आकार-प्रकार स्टील प्लेट तैयार किये जाते हैं। जमशेदपुर के, जो भारत का पिट्सवर्ग कहलाता है, इर्द-गिर्द कई उपकम्पनियां पनप आई हैं।

लोह और कोयले के कारण ही ब्रिटेन को यूरोप तथा अन्यत्र महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं। यह संयोग बिहार में उपस्थित है।

भारत का लोहा और इस्पात वर्त्तमान देश के क्षेत्रफल की हैसियत से अपेक्षाकृत न्यून है। जहाँ अमेरिका आधा टन लोहा और इस्पात प्रतिवर्ष प्रति जन उत्पादित करता है तथा जापान (युद्ध के पूर्व) टन का पंचमांश प्रति जन; ब्रिटेन टन का अष्टमांश १/८ प्रतिजन; वहां भारत टन का १/४०० प्रति जन लोहा उत्पादित करता है। अतः उसे यदि इतना उत्पादन करना पड़े जितना (युद्ध के पूर्व) करता था तो उसे अपने उत्पादन का अस्सी गुना बढ़ाना होगा। यह स्पष्ट है कि भारत का लोहा और इस्पात उद्योग अभी तक शैशवावस्था में है। इसका भविष्य अपरिमेय है तथा इसके विस्तार से दूसरे कई सम्बन्धित उद्योगों की वृद्धि उत्तेजित होगी। जमशेदपुर में नेशनल मेटलर्जिकल लेबोरेटरी (धातुशोधन प्रयोगशाला) स्थापित करने की भारतीय सरकार की योजना उपस्थित होना कोई नई बात नहीं है और यह आशा की जाती है कि भारत के धातु शोधन उद्योग के विकाश में यह विशिष्ट भाग लेगा।

तांबा—

घाटशिला में तांबा निकाला जाता है तथा सिंहभूमि में तांबा को विगलन क्रिया (खनिज), धातु-मिश्रणों को गला कर उनमें से शुद्ध धातु प्राप्त करने की क्रिया और पीतल-उद्योग पनप आये हैं। सारे भारत में यह अपने प्रकार के उद्योगों में एक ही है और बिहार का महत्व इससे सिद्ध होता है कि १६४४ में भारत के कुल खनिज तांबा का उत्पादन जो ६७ लाख रुपयों का था, बिहार की ही उत्पादन संख्या है।

अबरख—

सारे संसार के उच्चकोटि की अबरख-शीट और माइकेनाइट का ७० प्रतिशत उत्पादन भारत में होता है। कुल भारत का ७० प्रतिशत उत्पादन बिहार अबरख क्षेत्र से ही आता है जिसका क्षेत्रफल ६० मील × २० मील है। यह क्षेत्र गया जिला के पूर्वी भाग से लेकर हजारीबाग एवं मुंगेर तक विस्तृत है। अबरख-पार्थक्य क्रिया का उद्योग हजारीबाग जिले में होता है। इस उद्योग में दो लाख से कुछ अधिक लोग लगे हुये हैं। १६४४ में २·७५ करोड़ रुपये का अबरख निर्यात हुआ था।

समय समय पर इस उद्योग को व्यापार की भीषण मन्दियों से क्षति पहुँचती है। पर उपयोग में शीट अबरख और उसे तैयार करने की विधि में उन्नति हुई है। अबरख अधिकतर विद्युत यन्त्रों का

विशेष भाग तथा उपकरणों के बनाने में उपयोग होता है और जब तक विद्युत जनित उद्योग को भारत में वृद्धि नहीं होगी इसे विदेशी बाजार पर ही निर्भर करना होगा।

अल्युमीनियम—

खनिज बाक्साइट का अपरिमित भंडार भारत में भरा पड़ा है जिससे अल्युमीनियम निकाला जाता है। सारे भारत में प्राप्त अल्युमीनियम के यथेष्ट भाग का बिहार स्वामी है जो लोहरदग्गा के पश्चिम रांची और पलामू की चौरस चोटीवाली पहाड़ियों पर है। रांची के पूर्व सुवर्णरेखा नदी के तट पर मूरी नामक स्थान में विगलन क्रिया-उद्योग स्थापित किया जा रहा है। यहां बिहार बाक्साइट गला कर ऐलुमिना, जो आक्सिजन और अल्युमीनियम का यौगिक पदार्थ है, बनाया जायगा। इसे फिर अल्युमीनियम में परिणत किया जा सकेगा।

इस परिणितविधि में सस्ती जल विद्युत् शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी। चीनी मिट्टी के उद्योग को विकसित करने के लिये उद्यम हो रहे हैं।

चीनी मिट्टी भी अत्याधिक मात्रा में मिलती है और मिट्टी के बर्तन बहुतायत से तैयार किए जाते हैं। सारे भारत के कुल चीनी मिट्टी के उत्पादन में, जिसका मोल सवा दस लाख रुपयों का है, केवल बिहार की उत्पादन-संख्या आठ लाख रुपयों की कूती जाती है। इस प्रकार इस उद्योग का भी भविष्य उज्जवल है।

चूने के पत्थर की खानकारी भी विस्तृत रूप से होती है तथा सिमेन्ट उद्योग (Cement Industry) की स्थापना भी हुई है। काइनाइट और सिलिमैनाइट किरणवक्र-कारी खनिज, भी बहुतायत से प्रांत में मिलती हैं।

१६४० से १६४४ तक इन पाँच वर्षों में भारत के उत्पादन मूल्य की तुलना यदि की जाय, तो पता चलेगा कि जहां १६४० में भारत में कुल खनिज उत्पादन की संख्या का ३० प्रतिशत भाग बिहार से हुआ था, वहां १६४४ में यह संख्या प्रायः ४० प्रतिशत पर पहुँच गयी। यह एक महत्वपूर्ण प्रगति है। यह बिहार के खनिज उद्योग की महत्ता दिखलाता है और उस तथ्य को स्पष्ट करता है कि खनिज सम्पत्ति के दृष्टिकोण से बिहार भारत का सब से धनीप्रांत है।

यदि हम उन वस्तुओं का निरूपण करें, जो खनिजों से तैयार की जाती हैं तथा इस्पात, कच्चा लोहा, फेरो-मैंगनीज़ (एक प्रकार का इस्पात जिस में २० प्रतिशत भाग मैंगनीज का रहता है), पीतल, पृथक किया हुआ अबरख, तो बिहार का प्रतिशत भाग उपर्युक्त संख्या से भी अधिकतर होगा। यह खूबी की बात है कि ऐसा महत्वपूर्ण स्थान बिहार को, जो भारत के क्षेत्रफल का बीसवां भाग है, प्राप्त है।

[उदय से उधृत]

कृत्रिम वर्षा से सिँचाई

लेखकः—जान मेनर

सदियों से सिँचाई ने मनुष्य के भाग्य-निर्णय में अपना विशिष्ट स्थान रखा है; सिँचाई की उपयोगिता चार हज़ार वर्षों में वैसी ही रही है। भूमि की उपज बढ़ने के लिये सिँचाई की नई विधियों का प्रयोग अधिक से अधिक उपयोगी बनाया गया है। सिंचाई का काम प्रयोग की स्थिति से आगे उन्नति कर गया है; भारत में कृत्रिम वर्षा का विशेष महत्व है क्योंकि यहाँ की अर्थ-व्यवस्था का आधार किसान है।

कृत्रिम वर्षा से सिंचाई मनुष्यमात्र का सूखे और दुर्भिक्ष के विरुद्ध सबसे नया अस्त्र है। प्रमुख किसानों का कहना है कि साधारण ऋतु में भी

सिंचाई की इस विधि से खेतीबारी की उत्पत्ति दुगनी की जा सकती है। प्रयोगों ने यह दिखला दिया है कि दो इञ्चों की कृत्रिम बारिश से गाजर की उत्पत्ति ५०% तक बढ़ गई थी; चार इञ्चों की बारिश से उत्पत्ति की वृद्धि अस्सी प्रतिशत तक पहुँच जाती है। ऊपर से की जाने वाली इस सिंचाई का सावधानी से प्रयोग करने पर किसान निश्चित काम बँधे हुए समय के अनुसार कर सकता है; ऐसी ऋतु में जब सब्जियां साधारण साधनों से नहीं प्राप्त हो सकतीं वह इन्हें अधिक दामों पर बेंच सकता है। कृत्रिम बारिश में वह पौधों की खुराक नपी हुई मात्रा में मिला सकता है और फसल को कीड़ों से बचाने के लिए औषधियाँ भी।

घूमने वाले फव्वारे का अग्रभाग:—इस विधि के अनुसार सूराख वाली नलियों की एक कतार से पानी बाहर निकलता है, या घूमने वाले एक फौवारे के अग्रभाग से पानी को ऊपर फेंकते हैं; तब पानी बारिश के रूप में नीचे गिरता है। भूमि जल से पूरित कभी नहीं होने पाती। पानी में संकुचित वायु भी भरी जासकती है। इस प्रकार पानी की बौछार एक हल्के कुहरे का रूप धारण कर लेती है। प्राणवायु लिए हुए इस प्रकार का पानी निस्सन्देह लाभदायक हो जाता है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि पानी की बहुतायत और उसका बे रोक-टोक प्राप्त होना कितना आवश्यक है। यदि ऐसा न हो तो पानी का मिलना यकायक ऐसे समय रुक सकता है जब कि उसकी बड़ी आवश्यकता हो। यदि पानी को खींचना हुआ तो बिजली का उपयोग सबसे अच्छा है, क्योंकि इंजनों को बँधे हुए समय के अनुसार रात को चलाया जा सकता है ताकि वे जलाशयों को पानी से भर दें और नलियाँ पानी को अपने-आप खेत तक पहुँचा दें। कुशल इंजीनियरों की सहायता से आवश्यकता से अधिक पानी खींचने का काम और बिजली की फिजूलखर्ची रोकी जा सकती है।

विशेषताएँ:— सिंचाई की जाने वाली भूमि से कूड़ा-करकट पहले से निकाल देना चाहिये; यदि सिंचाई दूसरी फसल की तैयारी के लिये की जाती हो, तब उसे जुताई के पहले करनी चाहिये।

लगभग छः ब्रिटिश कारखानों ने इस प्रकार की सिंचाई को अपनी विशेषता बना लिया है। इनमें से कुछ ने अपने सिंचाई के यंत्र प्रत्येक महाद्वीप में एक से लेकर एक हजार एकड़ भूमि पर लगा रक्खे हैं। वर्षा के रूप में की गई इस प्रकार की सिंचाई खेत को जलपूर्ति करने से अधिक लाभदायक है। इसमें पानी का खर्च कम होता है; पानी के परिमाण की अच्छी देख-भाल की जा सकती है; पानी को बे रोक-टोक बहने का अवकाश मिलता है; यंत्र के लग जाने पर मनुष्य द्वारा किया जाने वाला काम कम हो जाता है; भूमि में गड्ढे नहीं बनने पाते; खाद-द्रव्य मिलाना सम्भव हो जाता है और भूमि पर पपड़ी नहीं पड़ने पाती

सूराख वाली नालियाँ:— ऊपर से सिंचाई की एक विधि में चलने फिरने वाले औजार काम आते हैं। पानी की धार छोटे पहियों पर पड़ती है जिस कारण पानी पतली बौछार की भाँति गिरने लगता है। दूसरी विधि में लगभग ३०० फीट लंबे सूराख वाले नलों का प्रयोग होता है। इन विधियों में नालियों को मिलाया और अलग किया जा सकता है। नलियों की कतार भूमि के ऊपर हल्के तिपायों पर बिछाई जाती है और काफी बारिश हो चुकने पर हटा दी जाती है।

तीन घण्टों में लगभग आधा इंच पानी बरसाया जा सकता है पर गति और बल आवश्यकतानुसार बदले जा सकते हैं। यदि पानी मिलता रहे तो इस विधि की सभी कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं।

अपने अन्न के शत्रु—चूहों से छुटकारा

लेखकः—रामचरण मेहरोत्रा

अभी कुछ दिन पूर्व समाचार पत्रों में यह समाचार छपा था कि संयुक्त प्रांत के एक पश्चिमी नगर में सरकारी गोदाम में बन्द दस बोरे गेहूँ चूहों के नज़र हो गए। पता नहीं कि समाचारमें सत्यता का अंश कितना था, क्योंकि ऐसा सन्देह किया गया था कि गेहूँ चूहों के पेट में नहीं वरन् चोर-बाज़ारी चूहों के पेट में चला गया। कुछ भी यथार्थता हो, हमारे देश में जहां कच्चे मकानों और खलिहानों की ही बहुतायत है, हमें इन दुष्ट कर्तदंतियों (Rodents) से बड़ा ही कटु अनुभव प्राप्त है। यह हमारे अनाज को किस बुरी तरह से फैला देते हैं और उसे कितना गन्दा कर देते हैं। यह हमारे लिये नित्य ही की चर्चा है। १९३९ में जब युद्ध आरंभ हुआ, तो अन्न की कमी की आशङ्का से प्रत्येक देश ने अनाज को इकट्ठा करके रखने का प्रयत्न किया, क्योंकि युद्ध काल में हर देश को यह आशङ्का थी कि पता नहीं किस दिन शत्रु उनके बाहर से आने वाली रसद को बन्द कर देने में सफल हो जाये। अधिक से अधिक अनाज खलिहानों में बन्द किया जाने लगा, परन्तु यहाँ उनको अपने घर में उपस्थित एक दूसरे शत्रु का सामना करना पड़ा और वे थे यह चूहे महाशय!

इस प्रकार चूहों से अनाज की रक्षा युद्ध के आरंभ में वैज्ञानिकों के लिए एक अनुसन्धान विषय बन गया। इङ्गलैण्ड के आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में महाशय चार्ल्स एलटन की सहायता से जीव-विज्ञान वेत्ताओं का एक समूह कई वर्षों से जङ्गली जानवरों के स्वभाव का अध्ययन कर रहा था; युद्ध के आरंभ होते ही यह समूह देश का इस नयी समस्या को हल करने में जुट गया। इस समय तक इस समस्या को किसी ने भी वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन नहीं किया था और चूहों के बारे में बहुत सी किम्वदन्तियाँ प्रचलित थीं। उदाहरण के लिए लोग यह कहा करते थे कि चूहेदानी को हाथ से नहीं छूना चाहिए, बल्कि दस्ताने पहन कर छूना चाहिए। उनकी यह धारणा थी कि चूहों की सूंघने की शक्ति बहुत तीव्र होती है और वे हाथ से छुए जालों में मनुष्य-गन्ध को पा उनके पास नहीं आते हैं। शीघ्र ही वैज्ञानिक अध्ययन ने यह स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया कि यह धारणा ग़लत है। इसका ग़लत सिद्ध करना बड़ा ही आसान कार्य था; उन्हीं दशाओं में आधे जाल नंगे हाथों से रक्खे गए और आधे दस्ताने पहिन कर। यदि उस धारणा में कुछ सत्यता होती तो दस्ताने पहिन कर रक्खे गए जालों में ज्यादा चूहे फँसते। प्रयोग करने पर दोनों प्रकार के जालों में सदैव लगभग बारबर ही चूहे फँसते थे। इस प्रकार एक अनावश्यक निर्मूल धारणा का अन्त हो गया।

इस प्रकार वैज्ञानिक अध्ययन ने बहुत सी किम्बदन्ती को निर्मूल सिद्ध कर दिया। अब मुख्य समस्या यह सम्मुख थी कि किस प्रकार किसी स्थान में चूहों को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये। किसी स्थन से चूहों को दूर करने के लिए दो मुख्य विधियाँ सदैव से प्रयोग होती रही हैं। (१) चूहेदानी से चूहों को पकड़ना (२) विषैले पदार्थों के उपयोग से चूहों को मार डालना। इन दोनों विधियों पर क्रमशः वैज्ञानिक ढङ्ग से प्रयोग आरंभ किये गये। शीघ्र ही इतना तो स्पष्ट हो गया कि प्रथम विधि से चूहे कभी भी पूर्णतया किसी स्थान से दूर नहीं किये जा सकते। आरंभ में तो चूहेदानी के प्रयोग से काफी सफलता मिलती है, परन्तु शीघ्र ही चूहे इनसे बचना सीख जाते हैं। इसके अतिरिक्त चूहों की वृद्धि बड़ी तेजी से होती है। एक बार में लगभग ८ बच्चे होते हैं और २२ दिन की गर्भावस्था के बाद वे पैदा होते हैं। लगभग ३ सप्ताह

घोंसलों में माँ बाप की देखरेख में पल कर वह स्वतन्त्र हो जाते हैं और लगभग ३-४ महीनों में उनमें उत्पादन शक्ति आ जाती है। इस प्रकार चूहों की आबादी बड़ी शीघ्रता से बढ़ती रहती है और जब किसी स्थान में चूहेदानियाँ काफ़ी समय तक लगातार प्रयोग में लाई जाती हैं तो शीघ्र ही चूहों के पकड़े जाने की गति और उनकी वृद्धि गति में एक साम्य स्थापित हो जाता है। प्रायः यह साम्य स्थापित होने पर चूहों की आबादी की संख्या आरंभ की आबादी की एक तिहाई होती है। इस प्रकार चूहेदानियों के प्रयोग से चूहों को पूर्णतया समाप्त करना असम्भव है।

दूसरी विधि विषैले पदार्थों से चूहों को मार डालने की है यद्यपि इस विधि में भी कठिनाइयां बहुत अधिक हैं। तथापि कार्यकुशलता से काम करने पर इस विधि से किसी स्थान को चूहों से पूर्णतया साफ़ किया जा सकता है। इस विधि के प्रयोग में प्रथम कठिनाई तो यह है कि स्वभावतः चूहे बड़े ही रूढ़िवादी होते हैं। उनके लिये यदि अस्वभाविक ढंग से कुछ विषैले पदार्थ खाने पीने की वस्तुओं, जैसे गुंधा आटा आदि में मिला कर उनके लिये डाल दिये जायें तो आरम्भ में तो वे उस प्रकार की वस्तु के पास आयेंगे ही नहीं। उनके इस व्यवहार को कुछ लोग उनकी कुशाग्र बुद्धि का परिचायक मानते हैं परन्तु यथार्थता में यह व्यवहार उनके स्वभाव की रूढ़िवादिता को प्रदर्शित करता है। क्रमशः वे उस नये वातावरण से परिचित हो उन वस्तुओं को चखेंगे भी, तो आरम्भ में प्रायः बहुत न्यून मात्रा में खायेंगे। इससे यह फल होता है कि थोड़ी सी मात्रा में विष खाने पर वह मरते तो नहीं और साथ ही साथ वह किसी प्रकार यह जान जाते हैं कि अमुक पदार्थ से उनको पीड़ा होती है या कष्ट होता है और वे उस विष तथा खाने पीने की उस वस्तु से बचने लगते हैं। इस प्रकार यदि वही विष उसी प्रकार काफ़ी समय तक उपयोग किया जाये तो चूहे उससे परिचित होकर उसके पास फटकते भी नहीं और इस प्रकार शीघ्र ही यह विधि असफल हो जाती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए आरम्भ में दो युक्तियां सोची गईं। पहिली युक्ति तो यह थी कि ज्यादा विषैले पदार्थ उपयोग किये जायें जिससे कम से कम मात्रा में भी वह अपना प्रभाव दिखा कर चूहों की जान ले सकें। इस विधि से मुख्य आशंका यह रहती है कि कहीं धोखे से घर के पालतू जानवर उसे खालें या वह किसी असावधानी से घर के खाने आदि में मिल जाय तो बहुत हानि पहुँच सकती है। दूसरी युक्ति यह थी कि जिस वस्तु में मिला कर यह विष डाले जायें वह चूहों को इतने प्रिय हों कि वे उनका लोभ संवरण न कर सकें, कम से कम युद्ध काल की खाद्य पदार्थों की तंगी के कारण यह युक्ति कभी भी प्रयोग में न लाई जा सकती थी। इसलिये इन युक्तियों से ज्यादा अच्छी किसी युक्ति की खोज में वैज्ञानिक लग गये और शीघ्र ही इस प्रयास में उन्हें सफलता भी मिल गई।

इस युक्ति के खोज में वैज्ञानिकों को चूहों के स्वभाव तथा आदतों का बड़ा गूढ़ अध्ययन करना पड़ा। इस अध्ययन से उन्हें मालूम हुआ कि चूहे अपने खाने की खोज में अपने घोसलों से प्रयः २-३ फर्लाङ्ग के फासले पर जाते हैं और ध्यान से देखने पर उनके मार्ग का पता लगाया जा सकता है। अब यदि इस मार्ग पर विषैले पदार्थ की गोलियां डाल दी जायें तो आरम्भ में तो वह इनसे बचते हैं, परन्तु बाद में इन्हें खाने का प्रयत्न करते हैं और जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कुछ चूहे तो इस प्रकार अवश्य मर जाते हैं, परन्तु शीघ्र ही और चूहे उस विष तथा जिस खाद्य पदार्थ में वह विष मिला था दोनों से बचने लगते हैं। इस प्रकार वह विष अब बेकार सा हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये उन्होंने यह युक्त निकाली कि चूहों के मार्ग में किसी खाद्य पदार्थ उदाहरणार्थ गुँदे आटे की गोलियाँ या रोटी आदि सादी बिना विष की डाल दी गई और चूहे इन्हें खाने लगे। कई दिन चूहों

को इस प्रकार के खाने से अभ्यस्त कर अब किसी दिन सहसा ही उनके उसी रोज के खाद्य पदार्थ में विष मिला दिया गया। चूहे इस खाने से अभ्यस्त होने के कारण उसे निसंकोच पर्याप्त मात्रा में खा जायेंगे और इस प्रकार उस आबादी के लगभग ८०-१००% चूहे समाप्त हो जाते हैं। इस विधि में तेज विषों की भी अवश्यकता नहीं पड़ती। साधारणतया जिंक फास्फाइड और संखिया दो विष मुख्यतः इस कार्य के लिये प्रयुक्त होते हैं।

इस प्रकार चूहों को समाप्त कर देने में वैज्ञानिकों को बड़ी सफलता मिली। शायद तुम यह सोच रहे होगे कि चूहों की आबादी मालूम किस प्रकार की जा सकती है कि यह कहा जा सके कि अमुक विधि से लग-भग ८०% चूहे मर गये। इस कार्य के लिय महाशय चिट्टी ने बड़ी ही साधारण विधि को प्रयोग किया। चूहों की जनसंख्या गिनने के लिये, उनके खाने के लिये कोई पदार्थ छोड़ दिया जाता है। साधारणतया इस कार्य के लिये गेहूँ का प्रयोग किया जाता है और चूहों को कई दिन तक उसे रोज खाने को दिया जाता है। धीरे-धीरे सब चूहे वह गेहूँ खाने लगते हैं और गेहूँ की खपत उच्चतम् शिखर पर पहुँच कर स्थिर हो जाती है। अब किसी प्रयोग के पहिले और बाद यदि इस स्थिर खपत को नाप लिया जाये, तो आसानी से यह बताया जा सकता है कि उस प्रयोग में आबादी के कितने प्रतिशत चूहे मरगये।

प्रसिद्ध निग्रो वैज्ञानिक—डाक्टर कार्वर

निग्रो जाति ने यदि प्रथम श्रेणी के प्रगतिशील साहित्यकारों को जन्म दिया है तो उसे इस बात का भी अभिमान है कि उसने संसार के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों में से एक को जन्म दिया है। अमरीका के सर्वश्रेष्ठ कृषि रसायनाचार्य डाक्टर जार्ज वाशिंगटन कार्वर एक गुलाम निग्रो माता-पिता की सन्तान थे। कृषि-रसायन में उनकी खोजों की आज सारी दुनिया में कद्र है। कृषि अनुसन्धान शाला में काम करते हुये डाक्टर कार्वर को अनेक अद्भुत बातों की जानकारी हासिल हुई। जिन चीज़ों को व्यर्थ समझ कर फेंक दिया जाता है उनसे अनेक उपयोगी वस्तुऐं बन सकती हैं इसका पता डाक्टर कार्वर ने लगाया।

डाक्टर कार्वर मूँगफली पर प्रयोग कर रहे थे। मूँगफली अतिरिक्त भोजन के रूप में इस्तेमाल होती है। किन्तु डाक्टर कार्वर ने उसकी ३०० प्रकार की उपयोगी वस्तुऐं बनाने की योजना बनाई। उससे उन्होंने पनीर, कैण्डी, काफी, अचार, तेल, शेविंग लोशन, रङ्ग, चरबी, लाइनोलिअम, आटा, नाश्ते के अनेक पदार्थ, साबुन, फेस पाउडर, शैम्पू, छापेखाने की स्याही और इञ्जनों का तेल आदि वस्तुऐं तय्यार करने के उपाय ढूंढ़ निकाले। शकरकन्द में से डाक्टर कार्वर की तीव्र बुद्धि ने १०० प्रकार की वस्तुऐं बनाने की कला खोज निकाली। इससे उन्होंने मैदा, लेई, सिरका, जूते की पालिश, स्याही रङ्ग, राब आदि पदार्थ तैय्यार किये। लकड़ी से डाक्टर कार्वर ने सङ्गमरमर बना लिया। काई और गिरी हुई पत्तियों से उन्होंने बड़ी उम्दा खाद बनाई। गोबर से वार्निश बनाने में सफल हुये। मिट्टी से उन्होंने कई प्रकार के फेस पाउडर बनाये।

अमरीकी गोरों का वश चलता तो डाक्टर कार्वर की अद्भुत खोजें दुनिया के सामने प्रकट ही न हो पातीं। सन् १८६४ में जब वे केवल छै सप्ताह के थे गोरे डाकू उन्हें और उनकी माँ को रात को उनके जर्मन मालिक के खेत से उठा ले गये। जर्मन ने एक हज़ार रुपये कीमत का एक रेस हार्स देकर माँ-बेटे को वापस प्राप्त किया। १० वर्ष की अवस्था में कार्वर ८ मील दूर एक स्कूल में जाकर पढ़ता था और अतिरिक्त घण्टों में मज़दूरी करके अपना पेट भरता था। मज़दूरी करते हुये आयोवा स्टेट कालेज से कार्वर ने २४ वर्ष की अवस्था में

एम० एस-सी० की डिगरी प्राप्त की। सन् १८९८ में उन्हें अलबामा में टस्केगी इंस्टीच्यूट में अध्यापक की जगह मिली। इस संस्था में वे अपनी मृत्यु के समय सन् १९४३ तक रहे।

डाक्टर कार्वर ने अलबामा की लाल मिट्टी से नीला, गुलाबी और लालरङ्ग बनाने की तरकीब निकाल ली। प्राचीन मिस्री जिस विधि से पक्के रङ्ग बनाते थे वह ज्ञान भी डाक्टर कार्वर ने खोज निकाला। अनेक कम्पनियों ने डाक्टर कार्वर को अपने यहाँ लाखों रुपये साल पर नौकर रखना चाहा, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया। वे अपनी सलाहें मुफ्त ही किसानों को दिया करते थे। सन् १९४० में उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति सार्वजानिक हित के लिये दान कर दी।

सन् १९१६ में वे रायल सोसायटी के सदस्य-बनाये गये और सन् १९३१ में उन्हें सर्वश्रेष्ठ रूज-वेल्ट मेडल प्रदान किया गया। सन् १९२५ में उन्हें डाक्टर आफ साइन्स की उपाधि मिली। कार्वर न केवल वैज्ञानिक ही थे बल्कि अपने समय के महान चित्रकार भी थे। यदि वैज्ञानिक अनुसन्धानों ने उनकी कीर्ति पर अधिकार न कर लिया होता तो वह अपने समय के सर्वश्रेष्ठ चित्र-कारों में होते। उन्होंने अपने चित्रों के लिये मूँग-फली के छिलकों का कागज, मिट्टी की स्याही और भूसे के फ्रेम बनाये।

गत ५ जनवरी सन् १९४८ को अमरीका के पोस्टल विभाग ने डाक्टर कार्वर की स्मृति में तीन सेण्ट का पोस्टल टिकट जारी किया था।

(विश्ववाणी से)

बाल संसार

प्राकृतिक राडर—चिमगादड़

राडर के युद्धकालीन उपयोगों ने उसका नाम हर कान तक पहुँचा दिया है। राडर का सिद्धान्त बड़ा ही सरल है। यदि हम किसी मैदान में खड़े हो कर चिल्लाएं तो हमको प्रतिध्वनि सुनाई देगी। अब यदि हम अपने चिल्लाने तथा प्रतिध्वनि के अपने कान तक आने का अन्तर्कालीन समय नाप लें और उस दिशा का पता चला लें कि जिससे प्रतिध्वनि आरही है, तो हम बतला सकते हैं कि वह पदार्थ जिससे गूँजकर हमारी आवाज लौटी है, कितनी दूर है और किस दिशा में है। दूरी की गणना, हवा में 'आवाज' की गति तथा अन्तर्कालीन समय की सहायता से की जा सकती है। राडर में भी इसी सिद्धान्त पर रेडियो-तरंगें फेंकी जाती हैं और उनके प्रतिध्वनि से आने वाले हवाई जहाज या और किसी वस्तु का पता लगाया जा सकता है।

क्या तुमने कभी यह देखने का प्रयत्न किया है चिमगादड़ निबिड़ अंधकार में भी किस प्रकार पतले पतले तारों से भी बिना लड़े उड़ते रहते हैं। वह अंधेरे में अपने सामने की रुकावटों का किस प्रकार पता लगा लेते हैं यह जीव विज्ञान-वेत्ताओं के लिए एक दीर्घकाल से कठिन समस्या रही है।

अन्धेरे में आँख का उपयोग असम्भव होने के कारण, शायद वह अपनी सुनने की शक्ति का ही उपयोग करते होंगे और राडर के सिद्धान्त ही पर किसी तरह से अपने मार्ग में आने वाली बाधा का पता पा जाते होंगे। इस स्पष्ट सुझाव को मान लेने में केवल एक ही कठिनाई है कि चिमगादड़ों की यह शक्ति इतनी तीव्र होती है कि वह एक मिलीमीटर मुटाई के तारों से भी बचकर निकल जाते हैं। स्पष्ट है कि जितनी भी पतली तथा सूक्ष्म वस्तु का पता लगाना हो, उतनी ही अधिक कम्पन-गति (Frequency) वाली ध्वनि चिमगादड़ को पैदा करना पड़ती होगी। पशुओं के कान की सुनने की शक्ति साधारणतया ३०–२०,००० कम्पनगति वाली ध्वनि

के लिए होती है। साधारण गणना से पता लगाया जा सकता है कि १ मिलीमीटर के तार का पता लगाने के लिए इससे कहीं अधिक, लगभग ५०००० कम्पन-गति वाली ध्वनि का प्रयोग करना पड़ेगा। इतनी अधिक कम्पनगति वाली ध्वनि मनुष्य भी अपने कानों से नहीं सुन सकते और मानविक कर्णशक्ति से ज्यादा कम्पन गति वाली ध्वनि को तीव्र-कम्पन (Ultrasonic) का नाम दिया गया है। अब यह प्रश्न उठता है कि क्या चिमगादड़ों में इस तीव्र कम्पित ध्वनियों को समझ लेने की शक्ति है और साथ ही साथ क्या वे इस प्रकार की ध्वनि पैदा भी कर सकते हैं ? इन सब प्रश्नों का अध्ययन कुछ ही वर्ष पहिले अमरीका में महाशय गैलमबोस तथा ग्रिफिन ने आरम्भ किया।

गैलमबोस तथा ग्रिफिन ने उड़ते हुए चिमगादड़ों के साथ माइक्रोफोन लगाया। माइक्रोफोन द्वारा ध्वनि के कम्पन को विद्युत् विधियों से कैथोडकिरण आस्सीलोग्राफ पर अङ्कित किया जा सकता है। इस प्रकार उन्होंने पता लगाया कि चिमगादड़ों में ३०००० से ७०००० कम्पन गति वाली ध्वनि पैदा करने की शक्ति होती है। अब तो इस विषय में आश्चर्य नहीं मालूम होता की वह ५०,००० कम्पन गति वाली ध्वनि के द्वारा १ मिलीमीटर मोटाई तक के महीन तार का पता चला लें। दूसरा प्रश्न उनके कान की शक्ति के अनुसन्धान के बारे में था कि क्या चिमगादड़ इन तीव्र कम्पित ध्वनियों को सुनने की भी शक्ति रखते हैं। यह तथ्य एक दीर्घकाल से मालूम था कि जब ध्वनि कान के पर्दे पर पड़ती है तो नसों में बिजली पैदा होती है। गैलमबोस ने चिमगादड़ को वेहोश करके उसके कान की सुनने वाली नस में बिजली का एक तार लगाया और दूसरा तार शरीर के किसी भी दूसरे भाग में, अब किसी दूसरे चिमगादड़ ही द्वारा या कृत्रिम रूप से तीव्र-कम्पित-ध्वनि पैदा की गई तो इस तार के घेरे में बिजली के उत्पादन से स्पष्ट हो गया कि चिमगादड़ तीव्र-कम्पित ध्वनि से भी प्रभावित होने की शक्ति रखते हैं।

इन वैज्ञानिकों ने चिमगादड़ों के स्वभाव तथा उनकी राडर शक्ति के बारे में और भी अनुसन्धान किये। बैठा हुआ चिमगादड़ इन तीव्र-कम्पित ध्वनियों को बहुत कम निकालता है; जब वह उड़ना आरम्भ करता है, तो शुरू में तो सेकिण्ड में २०-३० फिर ५०-६० बार तक ध्वनि पैदा करता है। ज्योंही उसे अपने मार्ग की किसी बाधा का पता चलता है वह तेजी से ध्वनि पैदा करने लगता है, क्योंकि जैसे-जैसे वह बाधा के निकट पहुँचता है, बाधा से प्रतिध्वनि के लौटने में कम समय लगता है और इस प्रकार तेजी से ध्वनि निकालने पर भी दो ध्वनियों में परस्पर विघ्न नहीं होता और इस प्रकार चिमगादड़ बाधा का ठीक से पता चला कर उससे अंधेरे में भी बच लेता है; ठीक यही विधि राडर में भी प्रयोगित होती है।

अब केवल एक प्रश्न रह जाता है कि यदि यह धारणा यथार्थ है तो चिमगादड़ों की बोलने या सुनने की शक्ति बन्द कर देने से उनकी यह शक्ति भी जाती रहना चाहिये। इस प्रश्न के हल करने के लिए प्रयोग किये गये हैं। यदि १ मिलीमीटर दूरी के कई तार केवल ३० सेण्टीमीटर की दूरी पर लगाये जायें तो देखा गया कि प्रत्येक १०० उड़ान में लगभग ६५ बार चिमगादड़ इन तारों को सफलता पूर्वक बचा कर निकल जाते हैं। अब यदि उनकी बोलने की शक्ति या कर्ण-शक्ति को बन्द कर दिया जाये तो प्रत्येक १०० उड़ान में वे केवल ३५ बार इन बाधाओं से बच कर निकल जाते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि चिमगादड़ों की इस शक्ति का रहस्य उनकी कर्ण-शक्ति से ही है। कितनी आश्चर्य की बात है कि चिमगादड़ ऐसे क्षुद्र प्राणी को प्रकृति ने कैसी अद्भुत शक्ति दी है! केवल एक प्रश्न रहा जाता है कि प्रकृति का कोई कार्य ध्येय रहित नहीं होता—चिमगादड़ों को इस विशेष शक्ति की क्या और क्यों आवश्यकता है, यह प्रश्न अभी तक हल नहीं हो पाया है।

प्रश्नोत्तर

श्री मोहनलाल मेहता, आगरा काड लिवर-आयॅल को सुगन्धित तथा स्वादिष्ट बनाने की विधि पूंछते हैं।

पहले तेल की बुरी बास नीचे लिखी विधि से निकाल देनी चाहिये:—१०० भाग तेल लेकर उसमें ५ भाग पिसी काफ़ी व ३ भाग ऐनीमल चारकोल मिलाकर १४०° फैरनहैट तक गरम करो। समय-समय पर हिलाते रहो और फिर ५ दिन तक रखा रहने दो और मोटे कपड़े से छान लो। इस प्रकार उसमें काफ़ी का स्वाद व बास आजायगी।

अब उसमें नीचे लिखी चीजें मिलाई जा सकती हैं जिसमें काड लीवर आयॅल स्वादिष्ट हो जायगा।

कुमारीन	०·०१ ग्राम
सैकरीन	०·०५ ग्राम
वेनीलीन	०·१० ग्राम
ऐलकोहल	५·४० ग्राम
नीबू का तेल	५·०० ग्राम
पिपर मेण्ट	१·०० ग्राम
निरोची का तेल	१·०० ग्राम
काड लिवर आयल	१०००·०० ग्राम

श्यामा चरणजी, कानपुर-सिगरेट पीने से हाथ में तम्बाकू के धब्बे पड़ जाते हैं उनको छुड़ाने की विधि पूछते हैं।

हाइड्रोजन पर ऑक्साइड	३¼ भाग
पानी	१¾ भाग
अमोनिया	½ भाग
पाइन नीडिल ऑयल	¼ भाग

पिछली दो चीजें मिलाकर हिलाइये और बाकी को फिर मिलादीजिये। अंधेरे स्थान में रंगीन बोतल में रखना चाहिये। इसको लगाने से दाग छूट जावेंगे।

श्याम सुन्दर जी गुप्त साइट्रिक व टारटेरिक ऐसिड की परीक्षायें पूछते हैं।

अम्ल के उदासीन घोल में कैलसियम क्लोराइड का घोल मिला कर कुछ देर हिलाने से टारट्रिक अम्ल में अवक्षेप आजायगा परन्तु साइट्रिक अम्ल में काफी देर उबालने से ही अवक्षेप आवेगा।

टारट्रिक अम्ल का उदासीन घोल सिलवर नाइट्रेट के अमोनिया युक्त घोल से चांदी पृथक करके एक शीशा सा बनादेगा।

महात्मा गाँधी का निधन

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के निधन पर विज्ञान परिषद्, प्रयाग ने निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत किया:—

"विज्ञान परिषद् प्रयाग का यह विशेष अधिवेशन राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के रोमाञ्चकारी निधन पर अत्यन्त खेद प्रकट करता है। महात्मा जी हमारे देश ही के नहीं प्रत्युत मानव जगत् की विभूति थे और उन्होंने हमारे परतन्त्र देश को स्वतंत्रता प्रदान की। सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों का उन्होंने राष्ट्रीय जीवन में प्रयोग किया जो संसार के इतिहास में एक नवीन एवं मौलिक प्रयोग था। महात्मा जी को हिन्दी भाषा और वैज्ञानिक साहित्य से प्रेम था। उन्होंने अपने जीवन में प्राकृतिक उपचारों के सम्बन्ध में अनेक प्रयोग किये। उनका समस्त जीवन ही सत्य का एक प्रयोग था और इस दृष्टि से ये उच्चकोटि के आदर्श वैज्ञानिक थे। उनके इस निधन के अवसर पर परिषद् के हम सब सदस्य उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि भेंट करते हैं और आशा करते हैं कि देश उनके प्रदर्शित सत्य और अहिंसा के मार्ग का अनुसरण करेगा।

विज्ञान परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१—**विज्ञान प्रवेशिका, भाग १**—विज्ञान की प्रारम्भिक बातें सीखने का सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़, एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव, एम० एस-सी० ।

२—**चुम्बक**—हाईस्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—लेखक० प्रो० सालिगराम भार्गव, एम० एस-सी०; सजिल्द ।=)

३—**मनोरञ्जक रसायन**—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यास की तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी०, १॥),

४—**सूर्य सिद्धान्त**—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४, १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद, सजिल्द; दो भागोंमें, मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

५—**वैज्ञानिक परिमाण**—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी, डी० एस सी०; ।॥),

६—**समीकरण मीमांसा**—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १॥), द्वितीय भाग ।=),

७—**निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)**—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी० ।)

८—**बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित**—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियों के लिये—ले० डा० सत्य प्रकाश, डी० एस-सी०; १)

९—**गुरुदेव के साथ यात्रा**—डाक्टर० जे० सी० बासू की यात्राओं का लोकप्रिय वर्णन; ।-),

१०—**केदार-बद्री यात्रा**—केदारनाथ और बद्रीनाथ के यात्रियों के लिये उपयोगी, ।)

११—**वर्षा और वनिस्पति**—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी, ।)

१२—**मनुष्य का अहार**—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=)

१३—**सुवर्णकारी**—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचोली; ।)

१४—**रसायन इतिहास**—इन्टरमीडियटके विद्यार्थियों के योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।॥)

१५—**विज्ञान का रजत-जयन्ती अङ्क**—विज्ञान परिषद के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह, १)

१६—**फल-संरक्षण**—दूसरा परिवर्धित संस्करण फलोंकी डिब्बाबंदी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०; २)

१७—**व्यङ्ग-चित्रण**—(कार्टून बनाने की विद्या) ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ, सैकड़ों चित्र, सजिल्द; २)

१८—**मिट्टी के बरतन**—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द, १॥)

१९—**वायुमंडल**—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र, सजिल्द; १॥)

२०—**लकड़ी पर पॉलिश**—पॉलिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामरत्न भटनागर, एम०, ए०, २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥),

२१—**उपयोगी नुशखे तरकीबें और हुनर**—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्य प्रकाश। आकार बड़ा विज्ञान के बराबर २६० पृष्ठ, २००० नुसखे, १०० चित्र, एक एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २॥),

२२—**कलम-पेवन्द**—ले० श्री शंकरराव जोशी, २०० पृष्ट ५० चित्र, मालियों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥)

२३—**जिल्दसाजी**—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाजी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०, १८० पृष्ठ, ६२ चित्र, सजिल्द २)

२४—**त्रिफला**—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ, ३ चित्र, एक रङ्गीन, सजिल्द २।),

२५—**तैरना**—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगों को बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद, पृष्ठ १०४ मूल्य १);

२६—**अंजीर**—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद-वर्णन और उपयोग करनेकी रीति पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ।।), वह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के शिक्षा पटल में स्वीकृत हो चुकी है।

२७—**सरल विज्ञान सागर प्रथम भाग**—सम्पादक डा० गोरख प्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़पौधों की अचरज भरी दुनियां, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञान के आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंमे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६)

२८—**वायुमण्डल की सूक्ष्म हवायें**—ले० डा० सन्त प्रसाद टंडन, डी० फिल०, मूल्य ।।।)

२९—**खाद्य और स्वास्थ्य**—ले० डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल०, मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—**विज्ञान हस्तामलक**—ले०—स्व० रामदास गौड़ एम० ए०, भारतीय भाषाओं में अपने ढंगका यह निराला ग्रन्थ है। इसमें सीधी सादी भाषा में अठारह विज्ञानों की रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन, पौने दो सौ चित्रों से सुसज्जित है, आजतक की अद्‌भुत बातों का मनमोहक वर्णन है, विश्व विद्यालयों में भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञान की एक समूची लैब्रेरी है। मूल्य ६)

२—**सौर-परिवार**—लेखक डाक्टर गोरख प्रसाद डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२)

३—**भारतीय वैज्ञानिक**—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ—ले० श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ, सजिल्द, मूल्य ३॥) अजिल्द ३)

४—**वैक्युम ब्रेक**—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों इञ्जन-ड्राइवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्जामिनरों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रङ्गीन हैं, २),

विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक तथा प्रकाशक—ए० बी० वर्मा, शारदा प्रेस, नया कटरा—प्रयाग।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

★ विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र ★

भाग ६६] सम्वत् २००४, मार्च, १६४८ [संख्या ६

प्रकाशक

★ विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद ★

विज्ञान

विज्ञान-परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६६] सम्वत् २००४, मार्च, १६४८ [संख्या ६

अनुसन्धान पत्रिकाओं की भाषा‡

[लेखक—श्री राहुल सांकृत्यायन]

साहित्य सम्मेलन बम्बई के अध्यक्ष श्री राहुल सांकृत्यायन जी ने भारतीय वैज्ञानिकों के अनुसन्धानों का वृतान्त हिन्दी तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं में छपने की आवश्यकता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। हिन्दी में एक वैज्ञानिक अनुसन्धान पत्रिका की बहुत ही आवश्यकता है। इस ओर साहित्य सम्मेलन का ध्यान-आकर्षित कर राहुल जी ने हिन्दी की बड़ी सेवा की है।

जहाँतक पढ़ानेका सम्बन्ध है, हिन्दी भाषा तो १६४८ से युनिवर्सिटियों में पढ़ाने का माध्यम बन सकती है। रही अनुसन्धान की बात, तो उसके लिये विश्वकी कोई एक भाषा पर्याप्त नहीं है। फिजिक्स में ही जो नये नये अनुसन्धान हो रहे हैं, वह सिर्फ अंग्रेज़ी ही में नहीं हैं, बल्कि फ्रेंच, जर्मन और रूसी भाषाओं में उनका बहुतसा भाग छपता है; जिसे जाने बिना कोई अनुसन्धानकर्ता अपने विषय का नवीनतम ज्ञान नहीं रख सकता और कितनी ही बार अनुसन्धान हो चुकी समस्यापर वृथा मत्था मारने की ग़लती कर सकता है। इसलिये जहाँतक अनुसन्धान का सम्बन्ध है; उसकेलिये तो हमारे विद्वानोंको अंग्रेज़ी ही नहीं; दो-एक और भाषाओं के समझने भर का ज्ञान होना आवश्यक है, जैसा कि दूसरे देशों में देखा जाता है।

यही नहीं, बल्कि हमारे यहाँ साइंसके सम्बन्धमें जो अनुसन्धान हों उनको विदेशी विद्वानों तक पहुँचाने का कोई प्रबन्ध करना होगा। इसपर शायद कोई कह उठे, कि तब तो अनुसन्धान की पत्रिकाएँ आजकी तरह अंग्रेज़ी में निकलती रहनी चाहिये। लेकिन मैंने तो किसी देश में नहीं देखा, कि वैज्ञानिक अनुसन्धान बाहरवालों के जानने के लिये किया जाय। आज दुनिया में सबसे अधिक वैज्ञानिक अनुसन्धान-सम्बन्धी संस्थाएँ और कार्यकर्ता सोवियत् रूसमें हैं, किन्तु वहाँ सभी प्रकारके अनुसन्धान सम्बन्धी लेख रूसी भाषा में छापे जाते हैं। पावलोफ़्ने

‡ अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन बम्बई के अवसर पर अध्यक्ष पद से दिये गए भाषण का अंश

कभी नहीं सोचा, कि अपने गवेषणा-सम्बन्धी पत्रों को रूसी छोड़ किसी अन्य भाषा में लिखे। आजभी वहाँ एक से एक दिग्गज पंडित साइंसकी हर शाखा में काम कर रहे हैं और उनके गवेषणात्मक लेख रूसी भाषामें ही छपते हैं। हाँ, किन्हीं किन्हीं लेखों का संक्षेप अंग्रेज़ी, फ्रेंच या जर्मन में से किसी एक में दे दिया जाता है, और किसी किसी लेख का बाहरवालों के फ़ायदे के लिये पूरा अनुवाद भी छपता है। लेकिन वहांवाले जानते हैं कि हमारा सब से पहला काम है, अपने देशवासियों में अधिकसे अधिक साइंसका प्रचार करना। आखिर १०० में से ६६ पाठक अपने देश के ही तो होते हैं। अंग्रेज़ीभाषा में लिखने पर हम एक विदेशी पढ़ने वाले के लिये लिखते हैं और ६६ का ख्याल छोड़ देते हैं। इसलिये मैं तो समझता हूं, कि अनुसन्धान पत्रिकाओं को हिन्दी में निकलना चाहिये, इसी तरह बंगाल आदि प्रान्तों में गवेषणापत्र वहाँ की भाषा में हों। यदि बँगला, उड़िया, पंजाबी, गुजराती और दक्षिण की भी भाषाएँ अपनी अनुसन्धान-पत्रिकाओंको अपनी भाषाओं और नागरी अक्षरोंमें निकालने लगें, तो इससे दूसरे भाषा-भाषी बहुत लाभ उठा सकते हैं। यदि ऐसा न भी हो सके, तो भी हिन्दी में ऐसी अनुसन्धान पत्रिका तो ज़रूर होनी चाहिये, जिसमें पृथक-पृथक् या अनेक साइंस-सम्बन्धी ऐसे महत्त्व-पूर्ण लेखोंको छापा जाय जो कि दूसरी भाषाओं की पत्रिकाओं में निकले हों। अनेक साइंस के अति महत्वपूर्ण लेखोंको रूसी, अंग्रेज़ी, जर्मन और फ्रेंच संस्करणों में निकाला जाय, जिससे कि हमारी गवेषणाओं को बाहर के विद्वान् भी जान सकें। मैं यह भी कहूँगा, कि गणित और साइंसके संकेत-चिह्न हमें अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकार करने चाहिये, जैसा कि रोमन लिपिसे भिन्न लिपि रखनेवाली रूसी भाषाने किया है।

आजकल की दुनिया में साइंस विधाता है। विधाता ही नहीं, वह कर्ता, धर्ता, हर्ता, त्रिमूर्ति है। परमाणु-बम्बने उसे त्रिशूलधारी शंकरसे भी अधिक भयानक सिद्ध कर दिया है। और भर्ता तो है ही। आज दुनिया का यह सारा वैभव साइंस का ही वरदान है। साइंस के भयंकर रूप को देखकर कितने निर्बल-हृदय घबड़ा उठे हैं और शाप दे देकर उसे शान्त करना चाहते हैं। भस्मासुर ने भी धोखा देकर वरदान लेलिया था, पर भस्मासुर को स्वयं भस्म होना पड़ा। साइंस के वरदानको दुरुपयोग किया गया है सही, किन्तु वही दुरुपयोग क्यों जापान के विरुद्ध किया गया? क्यों नहीं उसे जर्मनी के विरुद्ध किया गया? इसीलिये कि चर्चिल और ट्रूमेन दोनों जानते थे, कि जबतक उनके परमाणु-बम्ब जर्मनी के एक-दो नगरों को ध्वस्त करेंगे, तब तक जर्मनीके उड़न्तू-बम्ब बेक्टीरिया, गैस, और क्या-क्या बला लाकर इंगलैंड पर उड़ेल देंगे! इसी डरके मारे उन्होंने हिरोशिमा को पसंद किया, क्योंकि अमेरिका और इंगलैंडकी भूमिसे बहुत दूर रहने से जपान कोई वैसा भयंकर प्रतिशोध नहीं ले सकता था। और शायद ऊँच-नीच जातिका भी ख्याल काम कर रहा हो। कुछ भी हो परमाणु-बम्ब लड़ाईमें तभी व्यवहार में आयेगा, जब कि दुनिया पर प्रभुत्व जमानेकी इच्छावाले सत्ताधारियोंकी हियेकी फूट गई हो, और वह दूसरों के असगुनके वास्ते अपने सर्वनाशके लिये तैयार हों। भयंकर ज़हरीली गैसोंके निकलनेपर भी अभीतक इसी डरसे युद्धमें उनका प्रयोग नहीं किया गया—हिटलर जैसा नृशंस पागल भी नहीं कर सका; तो अब यह आशा नहीं रखनी चाहिये, कि पूँजीवाद परमाणु-बम्बकी सहायता से दिग्विजयकी तीसरी लड़ाई छेड़ेगा।

साइंस संहार से बहुत अधिक सृष्टि करने की क्षमता रखता है। ३०-३२ लाखकी आबादी के फिनलैंडके शहरों को उतने से ज़्यादा आबादी के मुज़फ़्फ़रपुर और दरभंगाके ज़िलोंसे मिलाइये, तो इस रहस्य को जान जायेंगे, कि कैसे इतनी थोड़ी आबादी के रहते भी पाँच-पाँच, छ-छ तल्लेकी अट्टालिकाओं वाले पचासों शहर वहाँ बसा लिये गये हैं और आज वहाँ बँगलों, सड़कों, रेलों, कारखानों आदि के रूप में

अपार सम्पत्ति सारे देशमें बिखरी पड़ी है। अगर केवल हाँथ और पुराने युगके हथियारों का सहारा लेना होता, तो वह भी हमारी तरह की झोपड़ियोंमें रहते। सच तो यह है, कि हमारे देशकी भी दरिद्रता दूर करने का एक ही रास्ता है, जिसे कि साइंस हमें बतलाता है। इसीलिये आज हिन्दी-साहित्यको अपने देशको साइंसके प्रशस्त पथपर चलने के लिए साधन बनकर आगे आना है।

हिन्दी भाषा और द्विनाम-पद्धति (Binomial Nomenclature)

[*लेखक— श्रीचम्पत स्वरूप गुप्त, गुरुकुल काँगड़ी, सहारनपुर*]

द्विनाम पद्धति तथा वर्गीकरण के शब्दों की हिन्दी भाषा में अनुवाद करने के विषय में आजकल बड़ा विवाद है। विद्वान लेखक ने इस विषय में अपने मत को व्यक्त किया है। वे लैटिन भाषा के शब्दों को ज्यों के त्यों लेने के पक्ष में नहीं हैं क्योंकि इससे रूपान्तरों के बनाने में कठिनाई होती है। लेखक आभारी होगा यदि इस बारे में पाठकगण अपने मत उसे भेजने की कृपा करें।

साधारण हिन्दुस्तानी मेंढक का जीव-विज्ञानीय नाम 'मण्डूक व्याघ्रीय' (Rana tigrina) है। साधारण अंग्रेजी मेंढक का नाम 'मण्डूक अशाश्वत' (Rana temporaria) है। 'मण्डूक भोज्य' (Rana esculenta) और 'मण्डूक श्यामल' (Rana cyanophilictis) मेंढक की अन्य जातियां हैं। नाम रखने की यह पद्धति जिसमें प्रत्येक जाति के जन्तु या पौदे का नाम वैज्ञानिक भाषा में दो पृथक शब्दों द्वारा सूचित किया जाता है द्विनाम-पद्धति कहलाती है। यह पद्धति स्वीडन के एक प्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ता लिनियस (Linnaeus)ने चलाई थी। इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक प्रकार के जीवित प्राणी के वैज्ञानिक भाषा में दो नाम होते हैं। एक उसका गणनाम (generic name)और दूसरा उसका जाति नाम (specific name) है। उसका पूरा नाम लिखने में गणनाम पहिले और जातिनाम बाद में लिखा जाता है।

पाश्चात्य भाषाओं में इन नामों के मूल स्रोत लैटिन या यूनानी भाषा हैं। उनमें गण और जाति नाम दोनों का रूप लैटिन के अनुसार तथा उद्भव लैटिन या यूनानी भाषा से होता है। कभी-कभी स्थानों या व्यक्तियों के नाम लैटिन प्रत्यय लगाकर रख दिये जाते हैं। गणनाम अधिकतर संज्ञा होता है और बड़े अक्षर (Capital letter)से लिखा जाता है। जाति-नाम अधिकतर विशेषण होता है और छोटे अक्षर से लिखा जाता है। उदाहरण के लिये राना टिग्रीना और राना टेम्पोरेरिया आदि नाम ऊपर दिये जा चुके हैं।

लैटिन या यूनानी भाषाओं से लिये गये वर्गीकरण के नामों के विषय में यह कहा जाता है कि वे अन्तर्राष्ट्रीय हैं। इसलिये बहुत से विद्वानों का मत है कि उनको ज्यों का त्यों ले लेना चाहिये। किन्तु हमारा इससे मत भेद है। पाश्चात्य भाषाओं में ये नाम अवश्य खप सकते हैं, क्योंकि उन भाषाओं के मूल स्रोत लैटिन और यूनानी भाषाएं हैं। परन्तु इन नामों को ज्यों के त्यों ले लेना हिन्दी भाषा की प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध है। हिन्दी भाषा का मूल स्रोत संस्कृत भाषा है, अतः अपनी भाषा के पूर्ण विकास के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम लैटिन या यूनानी भाषाओं को अपना स्रोत न बना

कर संस्कृत को ही यह स्थान दें।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। यदि वर्गीकरण के नामों के लिये अपनी भाषा के शब्द न रक्खे जायें तो बहुत से साधारण पारिभाषिक शब्दों को भी लैटिन या यूनानी भाषाओं के रूप में ही रखना पड़ेगा। ऐसा करने से हमारी भाषा में एक भयानक संकट उत्पन्न हो जायेगा जो कि किसी भी भाषा की उन्नति के लिए किसी प्रकार अभीष्ट नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ यदि अमीबा (Amoeba) के लिए 'विपर्यासी', अपोडा (Apoda) के लिए 'अपदी', कौडेटा (Caudata) के लिये 'सपुच्छी', इकुअस (Eques) के लिए 'तुरंग', कौरडेटा (chordata) के लिए 'लगुडी' आदि शब्दों को न रक्खा जाये तो हम विपर्यासीय गति (amoeboid-movement), मिथ्या-पाद (psuedopod), तुरंग पुच्छिका (Cauda equina), पृष्ठलगुड (noto Chord) आदि साधारण शब्दों का भी प्रयोग न कर सकेंगे।

इन सब कारणों से स्पष्ट है कि वर्गीकरण के नामों के लिए भी हमारी भाषा में अपने ही शब्द होने चाहिये।

प्रकृति में रसायन का महत्त्व

[*लेखक—डा० पृथ्वी नाथ भार्गव, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी*]

प्रकृति की क्रियाओं ने तथा मनुष्य की दिनचर्य्या में प्रयोगित वस्तुओं में रसायन शास्त्र का कितना महत्व है, इसे इस लेख में डा० पृथ्वी नाथ भार्गव जी ने दर्शाया है।

प्राचीन काल के रसायनज्ञ जल तथा वायु को मौलिक तत्त्व कहते थे तथा जीव जन्तुओं के हेतु इनकी बड़ी आवश्यकता समझते थे। किन्तु अब हम लोग इस बात से भलीभांति परिचित हैं कि जल तथा वायु तत्त्व नहीं हैं, परन्तु जल एक यौगिक है तथा वायु एक मिश्रण। इन दोनों से जीवन संबन्धी गति तथा पृथ्वी के धरातल पर होने वाले अन्य परिवर्तनों का घनिष्ट सम्बन्ध है।

यदि हम वायुमण्डल की वायु की ओर दृष्टि डालें तो हमें ज्ञात होगा कि इसमें लगभग $\frac{4}{5}$ भाग नाइट्रोजन (Nitrogen) है तथा $\frac{1}{5}$ भाग आक्सीजन (Oxygen) है। नाइट्रोजन एक अत्यन्त अक्रिय तत्त्व है इसलिये यह अन्य तत्त्वों से कम संयोजित होता है। श्वसन, दहन तथा गलने सड़ने में इसकी कोई क्रिया नहीं होती है। यह निश्चेष्ट होने पर भी भूमि के कीटाणुओं के प्रभाव से दूसरे तत्त्वों से संयोग कर वृक्षों के हेतु लाभदायक यौगिक बनाती है। यह केवल प्रणाली तथा उद्भिज् पदार्थ और उपजाऊ भूमि में ही किसी न किसी यौगिक के रूप में नहीं वरन् रङ्ग, विस्फोटक पदार्थ, सुगंधित वस्तुओं, औषधियों तथा अन्य यौगिकों में भी मिलती है।

इन दोनो गैसों के अतिरिक्त वायुमण्डल में और भी अन्य रसायनिक अक्रिय गैसें हैं। इनमें से प्रथम निष्क्रिय गैस आर्गन (Argon) है जो वायु की एक प्रतिशत मात्रा से तनिक ही अधिक है। यह गैस विद्युत् लट्टुओं के निर्माण में प्रयोग होती है। हीलियम (Helium) भी एक अन्य निष्क्रिय गैस है जो अभिज्वाल्य न होने के कारण अमेरिका में वायुयानों में भरी जाती है। इसकी मात्रा वायु और सूर्य में तथा पृथ्वी पर क्लीवाइट नामक दुर्लभ खनिज पदार्थ से सम्मिलित बहुत कम है, परन्तु कनाडा

तथा युनाइटेड स्टेट्स के ऊष्ण सोतों में अधिक है। यद्यपि यह हाइड्रोजन से भारी है किन्तु इसके अभिज्वाल्य न होने से और वागोलिक वस्त्र में से इसके न निकलने के कारण इसे वायुयानों को भरने में प्रयोग करते हैं। अब हमें नियान (Neon) नामक तृतीय निष्क्रिय गैस पर ध्यान देना चाहिये; वायु का १/१००,००० भाग नियान है। यह प्रकाश के नियन काँच ताल बनाने में प्रयोग की जाती है। विद्युत् संचालित नियन ताल में इसका प्रकाश लाल रङ्ग का होता है। इस रङ्ग के प्रकाश का उपयोग या तो सड़कों पर अथवा हवाई अड्डों में वायुयानों को उतारने के हेतु होता है। इस प्रकार आर्गन से परिपूर्ण ताल में पीले बैङ्गनी रङ्ग का प्रकाश होता है, हीलियम ताल में उज्जवल तथा पारद वाष्प नाल में नीला। इन अक्रिय गैस के अतिरिक्त वायु में दो और निष्क्रिय गैसें हैं—क्रिपटन (Krypton) तथा जीनन (Xenon)। ये भी वायु में अति सूक्ष्म मात्रा में हैं और इसलिए किसी उद्योग में इनका उपयोग नहीं हो सकता है।

वायु में क्रियाशील आक्सीजन की मात्रा उस के आयतन का पाँचवाँ भाग है। यह अन्य पदार्थों से शीघ्र संयोग करके उनके यौगिक बनाती है। मन्थर आक्सीकरण का उदाहरण लोहे पर जङ्ग लगने से ज्ञात होता है और शीघ्र जारण का दहन से। कोयला, लकड़ी तथा तेल इत्यादि के दहन से इनके मूलतत्त्वों के आक्साइड बनते हैं। मनुष्य तथा जीव जन्तुओं के श्वसन में इनका उपयोग होता है। अन्य यन्त्रों के समान जीव यन्त्र को भी भोज पदार्थ के ईंधन के रूप में जलने से कार्य शक्ति प्राप्त होती है। भोजन से हमारी शारीरिक ऊतियां बनती हैं और इनमें से कुछ का मन्थर दहन होता है। क्योंकि मांस में हाइड्रोजन तथा कार्बन है, इसलिये दहन से जल तथा कार्बन द्वि आक्साइड बनते हैं और हमारे फेफड़ों में से इनका निकास होता है।

यह तो हमें ज्ञात हो चुका है कि कार्बन द्वि आक्साइड श्वसन द्वारा वायु में प्रदान होती है। श्वसन क्रिया में आक्साइड फेफड़ों में से होकर रक्त द्वारा हमारे सारे शरीर में पहुँचती है और ऊतियों के आक्सीकरण से प्राप्त कार्बन द्वि आक्साइड फिर रक्त द्वारा फेफड़ों में से वापस होकर सांस द्वारा वायु में बाहर निकलती है। मनुष्य को आक्सीजन की सर्वदा आवश्यकता होती है और इसकी मात्रा उसकी पेशियों की कार्यन्वित शक्ति पर निर्भर है। परिश्रम के समय मनुष्य को प्रति मिनट एक गैलन आक्सीजन की आवश्यकता होती है, परन्तु विश्राम के समय केवल अर्द्ध गैलन ही। साधारण सांस में मनुष्य के फेफड़े में लगभग पाँच पिंट वायु रहती है और फेफड़े न तो अपनी धारिता तक सम्पूर्ण परिपूर्ण होते हैं न प्रति सांस में खाली ही। इस प्रकार प्रत्येक श्वास में एक पिंट से कम वायु शरीर में प्रवेश करती है और फेफड़े की गैस से मिश्रण होकर लगभग एक पिंट से कम गैस श्वास द्वारा निकलती है। यदि हम गहरी श्वास लें तो शरीर में तीन पिंट और अधिक वायु प्रचूषित की जा सकती है जिससे फेफड़े में नौ पिंट वायु हो जाय, परन्तु पूर्ण रूप से श्वास छोड़ने से केवल सात पिंट वायु निकाली जा सकती है और इस प्रकार फेफड़े में दो पिंट वायु रह जाती है। प्राकृतिक श्वास द्वारा निष्कासित गैस में कार्बन द्वि आक्साइड की मात्रा चार अथवा पाँच प्रतिशत होती है, परन्तु यह श्वास की गहराई, गति तथा रक्त द्वारा फेफड़े को प्राप्त कार्बन द्वि आक्साइड की मात्रा पर निर्भर है। विश्राम के समय जब पेशियों से कार्बन द्वि आक्साइड अधिक नहीं बनती है, लगातार श्वसन क्रिया से फेफड़े की गैस में इसकी मात्रा कम हो जाती है और इसके परिणाम स्वरूप निष्कासित गैस में भी। इससे अनिच्छाकृत श्वसन क्रिया से सम्बन्धित पेशियां अस्थायी रूप से क्रिया रोक देती हैं, जिससे थोड़ी देर तक श्वास रुक जाता है। इसलिये पनडुब्बे गहरी श्वास सम्बन्धित व्यायाम करते हैं।

वायु में कार्बन द्वि आक्साइड जीव जन्तुओं के श्वास से, दैनिक ईंधन जलने से तथा प्राणी और

उद्भिज् पदार्थों के गलने सड़ने से प्राप्त होती है। इसलिये पृथ्वी पर पदार्थों के गलने सड़ने से यह उपजाऊ भूमि में भी पाई जाती है। कहीं कहीं पृथ्वी के छिद्रों में से यह निकलती है और कहीं कहीं यह गढ़ों में एकत्रित होकर कण्ठरोध वायुमण्डल बनाती है। यह विषैली नहीं है किन्तु श्वास हेतु निष्फल है और दहन की पोषक भी नहीं है। ग्रोट्टो-डेलकेन में जहाँ यह गैस ठंढक के कारण दो तीन फीट के स्तर में जम जाती है, छोटे छोटे जीव जन्तु शीघ्र मर जाते हैं। मनुष्य के हेतु वहाँ कोई सङ्कट नहीं है जब तक वह भूमि पर न लेटे। वायु के दस सहस्र भागों में यह केवल तीन भाग है और अधिक नहीं बढ़ती है। इसका कारण यह है कि हरे हरे वृक्षों की पत्तियां क्लोरोफ़ील द्वारा सूर्य के प्रकाश में इसे निरन्तर लेती रहती हैं। कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन से रचित कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrates) वृक्षों में अधिकांश में होती हैं। कार्बोहाइड्रेट सेलूलोज़ (Cellulose), स्टार्च (Starch) तथा शर्करा (Sugar) के रूप में प्राप्त होते हैं। वृक्षों में इनके स्लेषण की विधि अभी हमें पूर्ण रूप से नहीं ज्ञात हुई है किन्तु इससे हम भली भांति परिचित हैं कि वृक्षों की जड़ द्वारा प्रचूषित जल तथा पल्लव द्वारा प्राप्त कार्बन द्वि आक्साइड के संयोग से पहिले जारक तथा फ़ारमलडीहाइड बनती हैं। इसके उपरान्त फ़ारमलडीहाइड के प्रभूजीन (Polymerisation) से कार्बोहाइड्रेट बनता है तथा शेष जारक वायु में मिल जाती है। इस संस्लेषण क्रिया में चाहे जो मध्यवर्त्ती विधि हो परन्तु इससे हम परिचित हैं कि सूर्य के प्रकाश में ही पत्तियों में स्टार्च की रचना होती है, न कि अन्धकार में तथा शेष आक्सीजन स्वतन्त्र रूप से वायु में मिल जाती है।

अस्वस्थ मनुष्य के कमरे में से रात्रि में पुष्पों के गमले हटाना आवश्यक नहीं है क्योंकि रात्रि में वृक्षों द्वारा वायु का प्रचूषण अत्यन्त तुच्छ होता है। इसलिये यह विचार निराधार है कि रात्रि-में वृक्षों में से एक विषैली गैस निकलती है। उदाहरणार्थ यदि कोई मनुष्य रोगी के कमरे में रहे और उससे कुछ मिनट तक बात करे तो वह रात्रि में रखे हुए पुष्पों के गमलों से अधिक आक्सीजन लेगा तथा श्वसन द्वारा कार्बन द्वि आक्साइड की अधिक मात्रा छोड़ेगा।

यदि हम पृथ्वी की चट्टानों की ओर ध्यान दें तो ज्ञात होगा कि इनका क्षय कार्बन द्वि आक्साइड के कारण ही होता है। कार्बन द्वि आक्साइड जल में अधिक विलेयशील है और इससे मन्द अम्लीय विलयन बनता है। जब यह विलयन शिलाओं पर से होकर बहता है तो इनका क्षय होता है। कार्बन द्वि आक्साइड साधारण ताप तथा दबाव पर जल में परिमाण के अनुपात में विलेय होती है। इसलिये जल जैसे जैसे वर्षा के रूप में गिरता है, इस गैस को विलेय करता है। जब यह जल ऐसी भूमि पर से होकर बहता है जहाँ प्राणि तथा उद्भिज् पदार्थों के सड़ने से कार्बन द्वि आक्साइड उत्पन्न होती है तो जल इस गैस को अधिक विलेय करता है और जैसे जैसे यह विलयन भूमि के आंतरिक भागों में से होकर नदी में बहता है, यह इस गैस से अनुविद्ध हो जाता है। ऐसे अम्लीय विलयन में शिलाओं के पोटेशियम (Potassium) तथा सोडियम (Sodium) कार्बोनेटों (Carbonates) के अतिरिक्त अन्य कार्बोनेट भी बाईकार्बोनेट (Bicarbonate) बनने के कारण घुल जाते हैं। यही कारण है कि शिलाओं के स्तर का भाग ऐसे विलयन में विलेय हो जाता है तथा विलयन दरारों में से बहकर गुफाओं का क्षय करता है। जब कैलशियम बाईकार्बोनेट का विलयन समुद्र में पहुँचता है तो सामुद्रिक जीव जन्तु इसे अपनी खोल बनाने में प्रयोग करते हैं। इन विगत खोलियों द्वारा सामुद्रिक भूतल पर कैलशियम छिलकों की कीचड़ जमने से ऐसा ज्ञात होता है कि आगामी भूतत्त्व सम्बन्धी युग में कभी न कभी सागर में कैलशियम पहाड़ी दृष्टिगोचर होंगी।

जब कैलशियम बाई कार्बोनेट विलयन शिला की दरारों में से टपकता है तो गुफाओं की छतों पर एक बूँद के वाष्पीभवन से कैलशियम कार्बोनेट का स्तर जम जाता है तथा शेष बूँदों के भूतल पर गिरने से भी स्तर बनता है। इस प्रकार एक स्तर के ऊपर दूसरा स्तर जम जाता है जिससे छत पर से निलम्बित तथा फ़र्श पर से चढ़ते हुए और पारस्परिक स्पर्श करते हुए स्कम्भ (Stalactite & Stalagmite) बन जाते हैं जिन पर छत सँभलती है। ये श्वेत स्कम्भ कैलशियम तथा मैगनीशियम (Magnesium) कार्बोनेट के बने होते हैं, परन्तु कहीं कहीं इनमें लोहा, ताम्र (Copper) तथा क्रोमियम (Chromium) के योगिकों का कुछ रङ्ग दृष्टिगोचर होता है। ऐसे स्कम्भ बेलजियम के ग्रोट्रोज आफ हान (Grottoes of Han) तथा इंगलैण्ड की चेडार (Cheddar) गुफाओं में अधिक हैं। इनकी उत्पत्ति की गति, कैलशियम बाई कार्बोनेट विलयन की मात्रा, संकेन्द्रण तथा वाष्पीवभन पर निर्भर है। यह तो भली भाँति ज्ञात है कि किसी स्तर की आयु उसकी आधुनिक उत्पत्ति की गति से नहीं ज्ञात हो सकती है परन्तु वैज्ञानिकों ने अनेक प्रयत्नों के उपरान्त यह परिणाम निकाला है कि कैलशियम स्तर दस वर्ष में एक इंच की गति से जमता है।

ठीक इसी प्रकार भाप उत्पन्न करने वाले इंजन में कैलशियम कार्बोनेट की पर्त जमती है। इञ्जन में कैलशियम बाई कार्बोनेट के विलयन का गरम होने पर विबन्धन होता है और इस प्रकार कार्बन द्वि आक्साइड स्वतन्त्र रूप में निकल जाती है तथा कैलशियम कार्बोनेट ब्वायलर अथवा भाप उत्पन्न करने वाले यन्त्रों में जम जाता है। पर्त के ताप के लिए कुवाहक होने के कारण इञ्जन में अधिक ईंधन का व्यय होता है और भाप भी यथेष्ट मात्रा में नहीं बनती है। पर्त के जमने से यन्त्र के नाल की आंतरिक परिधि कम हो जाती है। कभी कभी नाल पर्त के गरम होने पर बढ़ने से चटख जाता है अथवा पर्त के कारण बन्द होकर फट जाता है। इञ्जन में अस्थायी तथा स्थायी जल दोनों का उपयोग होता है। अस्थायी कठोर जल (Temporary hard water) से साबुन रगड़ने पर फेन शीघ्र नहीं बनता है। इसका कारण है कि ऐसे जल में विलेय कैलशियम तथा मैगनीशियम (Magnesium) बाई कार्बोनेट घुले होते हैं जिसके कारण साबुन के रगड़ने पर फेन शीघ्र नहीं बनता है। ऐसे जल को उबालने से यह लवण कार्बोनेटों में परिणित हो कर जल से प्रथक हो जाते हैं। यही कारण है कि जल शुद्ध करने के लिये पानी को उबालते हैं और इस प्रकार अस्थायी कठोरता हटाते हैं। जल की स्थायी कठोरता (Permanent hardness) जल में कैलशियम तथा मैगनीशियम (Sulphate) सलफ़ेट तथा क्लोराइड के कारण ही है। इससे प्रकट है कि इंजन में केवल अस्थायी कठोर जल से ही पर्त नहीं जमती है परन्तु स्थायी कठोर जल द्वारा भी क्योंकि कैलशियम तथा मैगनीशियम सलफेट उष्ण जल में कम विलेय होने से इंजन के नाल में अवक्षेप के रूप में जम जाते हैं।

कार्बन द्वि आक्साइड को दबाव के प्रभाव से जलमें विलेय कर वातीय जल (Aerated waters) बनाते हैं। दबावद्वारा प्रभाव युक्त जलसे परिपूर्ण और त्वचा (Cork) से बन्द बोतलों में वातीय जल बनाते हैं। बोतल की त्वचा हटाने पर दबाव के कम होने से गैस के बुलबुले तीव्रता से निकलते हैं। कार्बन द्वि आक्साइड से अनुविद्ध जल का उपयोग सोडा जल तैयार करने में होते है किन्तु इसमें सोडा नहीं होता है। उन्नीसवीं सदी के अन्त में सोडा जल दो लट्टूओं से बनी सेल्टजोजीन (Seltzogene) नामक बोतल में ऊपर के लट्टू में कैलशियम बाई कार्बोनेट तथा टारटैरिक अम्ल और नीचे के लट्टू में जल की क्रिया से बनाया जाता था। बोतल को उलटने पर इस क्रिया में कार्बन द्वि आक्साइड बनती थी। इस बोतल की शिखिपिधा (Stop cock) के लीवर को दबाने से गैस तरल को ऊपर ढकेल कर तीव्रता से बाहर निकलती थी। अधुनिक काल में

सीडलिटज (Seidlitz) सोद का प्रयोग करते हैं जो टारटैरिक अम्ल तथा क्षारातु बाई कार्बनेट से बनाया जाता है। यह गैस शर्करा से मदिरा बनाने के हेतु किण्वन विधि द्वारा आल्कोहल (Alcohol) में परिणित होते समय अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न होती है। यही कारण है कि जब मदिरा की बोतल की शिरिवपिधा खोलते हैं तो एकत्रित गैस तीव्रता से निकलती है।

कार्बन द्वि आक्साइड का उपयोग अग्नि बुझाने वाले यन्त्रों में भी होता है। यह ऐसे यन्त्रों में कैलशियम कार्बोनेट पर गन्धकाम्ल की क्रिया से तैयार होती है। आधुनिक यन्त्रों में इन पदार्थों के सङ्ग फेन उत्पन्न करने वाली साबुन तथा अन्य श्वेत तरल वस्तुएँ भी मिश्रित करते हैं जिससे इस गैस के सङ्ग उड़ती हुई तरल की बूँदें अग्नि पर फेन के रूप में जम जाती हैं और अग्नि बुझ जाती है।

कार्बन द्वि आक्साइड को—७८° श० तक ठंढा करने पर हम तरल में परिणित कर सकते हैं, किंतु साधारण तापक्रम पर तो केवल दबाव के प्रभाव से ही गैस को तरल में परिणित करने के लिए जितना ऊँचा तापक्रम होगा, उतनी ही अधिक दावब की आवश्यकता होगी। इस प्रकार १५° श० तापक्रम पर लगभग ५२ वायुमण्डल दबाव से गैस तरल में परिणित हो जाती है, परन्तु ३२° श० तापक्रम के उपरान्त चाहे जितना अधिक दबाव क्यों न हो, गैस तरल में कदापि परिणत न होगी। इस ३२°श० तापक्रम को इस गैस का सङ्कट तापक्रम (Critical Temperature) कहते हैं। आक्सीजन का सङ्कट तापक्रम ११९° श० है और नाइट्रोजन का—१४६°श०। हीलियम का सङ्कट तापक्रम—२६८°श० किन्तु हम इसे तरल में नहीं परिणत कर सकते हैं क्योंकि इतने नीचे तापक्रम तक हम इसे ठंढा नहीं कर सकते हैं। कार्बन द्वि आक्साइड, अमोनिया (Ammonia) तथा सलफर द्वि आक्साइड (Sulphurdioxide) ऊँचे सङ्कट तापक्रम वाली गैसें हैं और इनका उपयोग ठंढा करने के लिए उपयोगी प्रतिकर्त्ताओं के रूप में करते हैं। क्योंकि इनमें से कार्बन द्वि आक्साइड ही गंधहीन तथा अत्यल्प विषैली गैस है, इसलिए जहाँ गैस के चूने से श्वास घुटने का डर रहता है, इसे ही ठंडा करने के हेतु प्रयोग करते हैं। जब कार्बन द्वि आक्साइड तरल का धीरे धीरे वाष्पीभवन होता है तो प्रचूषित उष्मा से कुछ तरल हिम समान श्वेत ठोस पदार्थ में परिणत हो जाती है। इसी भाँति जब दबाव प्रभावयुक्त कार्बन द्वि आक्साइड तरल से परिपूर्ण लोह रम्भों (Cylinders) को उलटकर टोंटी द्वारा तरल को किरमिच के थैले में डालते हैं, तो थैले में हिम समान श्वेत ठोस पदार्थ जम जाता है। ठोस कार्बन द्वि आक्साइड के ठप्पे ठंढा करने के प्रतिकर्त्ताओं के रूप में बाजार में बिकते हैं। इनको 'शुष्क हिम' भी कहते हैं।

वायु में इन ठप्पों का वाष्पीभवन बिना पिघले ही हो जाता है। हम इन ठप्पों को बिना दबाव डाले सुगमता से स्पर्श कर सकते हैं। इसका कारण यह है कि इस गैस की कुवाहक झिल्ली हमारे चर्म को अधिक ठंड से बचाती है। इन ठप्पों पर हाथ से दबाव डालने पर झिल्लियां टूट जायंगीं तथा हाथ पर जले हुए घाव के समान छाले पड़ जायँगे।

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि प्रकृति में ही नहीं वरन् संसार की प्रत्येक क्रिया में रसायन का महत्व है।

★ नेत्र के कुछ रोग और उनकी चिकित्सा ★

[लेखक—कविराज वागीश्वरी प्रसाद पाठक बी० ए० एम० एस०]

नेत्र के पारदर्शी स्तरों में कनीनिका (Cornea) प्रथम स्तर है। इस स्तर का नामकरण भिन्न भिन्न आचार्यों ने स्वच्छ मण्डल या कर्णिका किया है। यह पटल (स्तर) स्वच्छ कांचवत् पारदर्शी है। प्रकाश की रश्मियाँ इस कनीनिका के माध्यम से गुजर कर तेज: पटल (Retina) तक जाती हैं। अत: यह प्रथम पटल दृष्टि शक्ति के लिये अत्यन्त आवश्यक है। श्वेतपटल (Conjunctiva) से यह दन्तुराकार पेशीमय जाल से संयोजित है। बाह्यत: इस पर दृष्टिपात करने से यह पटल कृष्ण या पिङ्गल वर्ण का अवभासित होता है, परन्तु वस्तुत: यह कृष्ण या पिङ्गल वर्ण का नही है वल्कि इस स्तर के नीचे का स्तर तारा (Pupil) और उपतारा (Iris) का वर्ण कृष्ण या पिङ्गल है, जो इसके पारदर्शित्व गुण के कारण इसी स्तर का वर्ण ज्ञात होता है, । अत: कनीनिका को कृष्ण वर्ण समझना भ्रम मात्र है। स्वस्थावस्था में कनीनिका गोलाकार और रक्त प्रणालीविहीन रहती है। इस पटल का निर्माण अत्यन्त सूक्ष्म चार स्तरों से हुआ है जो नग्न नेत्र से अदृश्य हैं, । यद्यपि यह पटल स्वयं शोणित प्रणाली रहित है तथापि इसका पोषण अपने आस पास में बिखरी हुई श्वेत पटलीय रसापनियों (Lymphatics) के पोषक रस के द्वारा होता है। शोणित प्रणाली के इस अभाव से लाभ व हानि दोनों ही हैं। लाभ यह है कि शोणित स्रोताभाव से पारदर्शकता विद्यमान रहता है। हानि यहहै कि शोणित स्रोताभाव से कनीनिकासदा घर्षण योग्य बनी रहती है, यथा-पोथकी (Trachoma) वर्त्मशर्करा (Granular lids) और अन्यान्य वर्त्म गत रोगों के कारण कनीनिका पर सदा घर्षण होने सेसव्रन शुक्र (Corneal ulcer), अव्रनशुक्र (Corneal opacity), धुमत्व (painnus) आदि उपद्रव सहज में प्रादुर्भूत हो जाते हैं। कनीनिका या कृष्ण गत रोगों के विषय में गतांक में प्रकाश डाला गया है। जिनमें सव्रन शुक्र (Corneal ulcer) प्रधान है। जिसके भेद निम्न हैं—

(1) (Slrumous ulcer) यह व्रण भी सव्रण शुक्र का प्रधान भेद है। इसके अनेक भेद लक्षणानुसार किये जाते हैं। इस सव्रण शुक्र को अत्यन्त संक्रामक माना जाता है। यह दीन परिवार के बच्चों को पाँच से दश वर्ष की अवस्था तक ज्यादा होता है जो सदा अस्वच्छ दशा में पालित होते हैं। बालकों की जल ग्रंथि बढ़ी हुई पाई जाती है। इस कनीनिका व्रण में नेत्रों में प्रकाशासहिष्णुता अत्यधिक होती है। नेत्रच्छदों में रक्तिमा, शोथ और उत्तेजना विहीनत्व दोष दर्शनीय हैं। बालक नेत्र खोलने का पूर्ण प्रयत्न करने पर भी नेत्र खोल नहीं पाता और बन्द नेत्रों में अश्रुस्राव या कीचड़ के अन्दर विद्यमान रहने से व्रण की दशा खराब होती जाती है। नेत्रच्छदोत्थापिका शलाका (Eyelet) से नेत्र खोलने पर कनीनिका के किसी भाग पर अपारदर्शी धब्बा या कहीं पर छालारूप व्रण मूल रक्तबाहिनियों के सहित देखा गया है।

चिकित्सा—बालक को जल्द से जल्द औषधालय में प्रवेश कराकर नेत्र विज्ञानवेत्ता की देख रेख में उचित उपाय करना चाहिये। नेत्रों को प्रतिदिन कृमिघ्न विलयन से प्रच्छालन कर मलहम का प्रयोग करना चाहिए। रोगी के पथ्य पर ध्यान रखते हुये मृदु विरेचन वलवर्द्धक द्रव्यों का प्रयोग लाभदायक है। आवश्यकतानुसार नेत्र को प्रतिदिन गरम स्नान कराया जाता है। चिकित्सक की राय से

आँखों पर पट्टी या हरा शेड व्यवहार में लावें। नेत्र को गरम स्नान कराने के लिये (चाय की चमचा से १ चममा सैन्धव लवण या बोरिक एसिड लेकर २२ औंस परिश्रुत जल मिलाकर क्रमिन्न विलयन बना लेवें), वक्र यन्त्राकार पात्र (Undine) को प्रयोग में लावें। यदि शोथ और वेदना का प्राबल्य हो तो बोरिक कौटन को गरम जल में डाल जल निचोड़ कर सेंक करना श्रेष्ट है।

Dendritic ulcer—यह सव्रण शुक्र कनीनिका पर वृक्ष की शाखा में प्रशाखा की तरह एक व्रण के बाद दूसरा व्रण सटा हुआ पाया जाता है। किसी संक्रामक ज्वर या अन्यान्य रोग की दौर्बल्यावस्था एवं अस्वच्छता के कारण यह आबाल वृद्ध को होता है। इसव्रण का मूल कारण फंगस नामक जीवाणु समूह हैं। इसके सभी लक्षय नेत्राभिष्यन्दवत् होते हैं।

औषधिः—व्रण के किनारे को नष्ट करने के लिए विशुद्ध मद्यसार का प्रयोग किया जाता है। प्रतिदिन नेत्र स्नान कराकर पीत मरहम (Yellow ointment) का व्यवहार श्रेष्ट माना गया है।

(Keratitis) कनीनिका शोथ— कनीनिका के सम्पूर्ण भाग में प्रदाह का होना कनीनि प्रदाह (Keratitis) कहलाता है। प्रदाह की अवस्था में व्रण नहीं होता। परन्तु प्रदाह के सभी लक्षण वर्तमान रहते हैं। कनीनिका प्रदाह का प्रधान भेद बाल्यावस्था में ज्यादा पाया जाता है। यह रोग बालकों की अपेक्षा बालिकाओं को अधिकतर होता है। कभी कभी यह एक परिवार के कई मनुष्यों को संक्रमित करता है। इस प्रदाह का प्रधान कारण पैत्रिक उपदंश (Conjenital syphilis) होता है।

(Symptom) लक्षण—कनीनिका प्रदाह के दो भेद प्रायः देखे जाते हैं; यथा तीव्र और माध्यम। तीव्र भेद में प्रदाह के लक्षण उग्ररूप धारण करते हैं। नेत्रों में वेदना का प्राबल्य, कनीनिका पर धुंधलापन और रक्त स्रोतों का वर्तमान हो जाना इसका खास दर्शनीय रूप है। रोगी चार से छै दिनों में पूरा अन्धा हो जाता है। माध्यम भेद में आँखें थकी हुई प्रतीतहोती है। कनीनिका पर भूरे रङ्ग के धब्बे दिखलाई पड़ते हैं और दृष्टि धुंधली हो जाती है।

औषधि—नेत्र परीक्षा कराकर रोगनिर्णय करना प्रथम कर्तव्य है। अविलम्ब योग्य नेत्र वैद्य की देख भाल में चिकित्सा होनी चाहिये। रोगी के रक्तको (W.R.) उपदंशोयरक्त परीक्षा कराकर सल्वार्सन (N.A.B.) का पूरा कोर्स देना आधुनिक मत से लाभप्रद माना गया है। रक्त परीक्षा पुनः पुनः कराकर उपदंश के विष को नष्ट करने का यत्न करना श्रेष्ट है। प्राचीन मत से इसके लिये अभी कोई फलदायक औपधि नहीं जंचती; यदि हो तो पाठक वृन्द बतलाने की दया दर्शावें। आयुर्वेदीय मत से सोमलयुक्त औषधियों का प्रयोग मैंने किया था जिससे उपदंशज विष नष्ट होने में सहायता मिली; परन्तु पूर्ण सफलता न होने से डाक्टर की शरण लेनी पड़ी।

क्रमशः

गणितीय शब्दावली की समस्यायें

[लेखक—श्री डा० ब्रज मोहन]

६

(४६) मूलबिन्दु—यह शब्द Origin और Pole (of Polar coordinates) दोनों के लिये प्रयुक्त हो रहा है! इस में भ्रम की संभावना तो बहुत नहीं है, परन्तु हम लोग Initial Line को आदि रेखा कहते हैं। अतएव, यदि Pole को 'आदि बिन्दु' कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा। इस प्रकार Origin और Pole के लिये दो पृथक शब्द निर्धारित हो जायँगे। Pole के भी कई अर्थ हैं जो निम्नलिखित शब्दों से प्रकट हो जायँगेः—

Pole (Measure)	पोल
Pole (Astronomy)	ध्रुव
Pole and Polar	ध्रुव और ध्रुवी
Pole (of a Function)	ध्रुवबिन्दु
Pole(of Polar coordinates)	आदि बिन्दु

इस सम्बन्ध में कुछ और भी शब्द ध्यान देने योग्य हैंः—

Polar Axis	ध्रुवी अक्ष
Polar coordinates	कोणीय नियामक
Polar Distance	कोणीय दूरी
Polar Equation	कोणीय समीकरण
Polarity	ध्रुवीयता
Polar pencil	ध्रुवी सूची
Polar plane	ध्रुवी समतल
Polar Row	ध्रुवी माला
Tangential Polar	स्पर्श ध्रुवी
Polar Tetrahedron	ध्रुवी चतुष्फलक
Polar Triangls	ध्रुव त्रिभुज

(४७), विस्तार—यह शब्द इन अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है:—

Size, Dimension, Expansion, Extension, Production

हमें बहुत बार ऐसे वाक्यों का प्रयोग करना होगा जिनमें उपरिलिखित एक से अधिक शब्दों का प्रयोग करना पड़े जैसे:—

A size of proper dimensions

We can extend the result to points outside the line by producing it.

अतएव, यदि उपरिलिखित शब्दों के लिये पृथक शब्द निर्धारित हो जायँ तो अच्छा होगा। पाठक इन शब्दों पर विचार करें:—

Dimension (of an equation) घात

Dimension (of space) विमा (र)

Three-dimensional space त्रैविमबरिमा (र)

Expand	विस्तारण
Expanded	विस्तृत
Expansible	विस्तार्य
Expansion	विस्तार
Extend	वितन् (र)
Extended	वितत
Extension	वितान
Extent	वितति
Produce	बढ़ाना, वर्धन
Produced	वर्धित
Size	परिमाण

(४८) आकाश—यह शब्द Space और Sky दोनो के लिये प्रयुक्त हो रहा है। इस प्रकार हम निम्नलिखित वाक्य का अनुवाद कर ही न पायेंगे:—

Does space extend beyond the sky?

इसके अतिरिक्त इस वाक्य 'आकाश गोल है,' का क्या अर्थ निकलेगाः—

The sky is round ?
अथवा Space is round ?

स्पष्ट है कि इन दोनों शब्दों के लिये पृथक पर्याय निर्धारित करने पड़ेंगे। एक प्रस्ताव इस प्रकार है :—

Sky	आकाश
Space	वरिमा (र)
Absolute space	परम वरिमा
Space charge	वरिमा निक्षेप
Space centrode	वरिमा केन्द्रपथ
Space current	वरिमा धारा
Space curve	वरिमा वक्र
Cyclic space	चक्रीय वरिमा
Dimension of space	वरिमा कीविमा
Hyper-space	परावरिमा
Space-like	वरिमा सदृश
Space locus	वरिमा निधि
Space time cuwe	वरिमा-काल वक्र
Space traversed	उत्तरित वरिमा

(४९) कुटिल—यह शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है।

Non-coplanar, Skew, Tortuous

प्रगट रूप से प्रथम दोनों अर्थों में कोई भेद नहीं दिखाई देता। परन्तु इनमें वास्तविक अन्तर है। जब हम कहते हैं।

A B and C D are two Skew lines

तो इस वाक्य में तो Skew के स्थान पर Non coplanar भी कह सकते हैं। इससे वाक्य के अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। परन्तु अब तनिक इस वाक्य पर विचार कीजिए:—

Let OA, OB, OC, OD be four concurrent, non-coplanar straight lines.

इसका अर्थ यह है कि चारों रेखायें एक ही समतल पर स्थित नहीं हैं। परन्तु इनमें से कोई सी भी दो रेखायें समतली होंगी क्योंकि वे संगामी (concurrent) हैं। अतएव, प्रत्यक्ष है कि इस वाक्य में हम Non-coplanar के स्थान पर Skew नहीं कह सकते। अतः इन दोनों शब्दों के लिये भिन्न पर्याय निर्धारित करने ही होंगे।

शब्द Tortuous तो एक दूसरी ही विचार-धारा का द्योतक है। अतएव इसके लिये भी एक भिन्न शब्द निश्चित हो जाय तो अच्छा है। मेरे तत्सम्बन्धी प्रस्ताव ये हैं:—

Non coplanar	असमतली
Skew	विषमतली
Tortuous	कुटिल
Tortuosity	कुटिलता

(५०) गोल—साधारण बोल चाल में इस शब्द के दो अर्थ हैं। जब हम कहते हैं 'कमरा गोल है' तो उसका अर्थ होता है 'कमरा वर्तुल है।' परन्तु जब हम कहते हैं कि 'दुनिया गोल है' तो उसका अर्थ 'वर्तुल' नहीं, 'गोलाकार' होता है। यह शब्दावली भ्रामक है। अंग्रेजी शब्द Round में भी यही दुविधा है। Round path का अर्थ है 'वर्तुल मार्ग' परन्तु Round Body का अर्थ है 'गोलाकार काय'।

एक बात और भी है। कुछ लोग 'गोल' का Sphere के अर्थ में संज्ञा रूप में भी प्रयोग करते हैं। संस्कृत में यह प्रयोग ठीक हो सकता है परन्तु हिन्दी में तो इस शब्द का प्रयोग विशेषण रूप में ही बहुप्रचलित है। इस शब्द का संज्ञा रूप 'गोला' है। उसी को चलने दिया जाय।

मैं तत्सम्बन्धी कुछ शब्द यही देता हूँ:—

Sphere	गोला
Spherical	गोलीय (of, or pertaining to a sphere) (र)
Spherical	गोलाकार (having the shape of a sphere)
Spherical Angle	गोलीय कोण
Spherical Body	गोलाकार काय
Spherical coordinates	गोलीय नियामक

Spherical Distance	गोलीय दूरी
Spherical Excess	गोलीय आधिक्य
Spherical Pendulum	गोलीय दोलक
Spherical Roulette	गोलीय लुण्ठज
Spherical Sector	गोलीय शकल (र)
Spherical Segment	गोलीय खंड
Spherical Shell	गोलाकार कवच
Spherical Trigonometry	गोलीय त्रिकोणमिति
Spherical Zone	गोलीय कटिबन्ध
Round Dance	मण्डल नाच
Goes Round	परिक्रमा करता है
Round Robin	मण्डल पत्र

अन्त में मैं कुछ शब्द अपने दृष्टिबिन्दु के सम्बन्ध में कहना चाहता हूँ। मेरा विचार है कि किसी भी पारिभाषिक विषय की शब्दावली एक दो दिन या एक दो वर्ष में नहीं बना करती, वरन् उसका क्रमिक विकास हुआ करता है। अंग्रेजी की वैज्ञानिक शब्दावली जिस रूप में आज हमें दिखाई देती है, दो चार वर्ष नहीं वरन् दशाब्दियों के विकास का फल है। मैं दो एक उदाहरण देकर अपना तात्पर्य पष्ट करता हूँ।

अंग्रेजी का एक शब्द Trapezium लीजिए। एक समय इसका अर्थ था 'एक ऐसा चतुर्भुज जिस की कोई भी दो भुजायें समानान्तर न हों।' आज भी अमरीका के कुछ भागों में इसका यही अर्थ लिया जाता है। परन्तु सारे ब्रिटिश साम्राज्य में और भारतवर्ष में इसका प्रचलित अर्थ है 'एक ऐसा चतुर्भुज जिसकी दो भुजायें समानान्तर हों'। राजनीति के क्षेत्र में शब्द Colony पर विचार कीजिए। आज से ५० वर्ष पहले इसका अर्थ था 'वह प्रदेश जहाँ अंग्रेज जाकर बस जायँ : 'अर्थात् जिसे हम हिन्दी में 'नई बस्ती' कहते हैं। परन्तु आज यह शब्द एक विशिष्ट प्रकार की शासन प्रणाली-का द्योतक हो गया है। जिन प्रदेशों को आज हम Dominion अथवा Colony के नामों से संबोधित करते हैं उन सब के लिए किसी समय अकेला शब्द colony प्रयुक्त होता था। परन्तु आज इन दोनों शब्दों के अर्थों में वास्तविक अन्तर पड़ गया है।

इसी प्रकार समस्त भाषाओं में औरसमस्त विषयों में शब्दों के अर्थों में हेर फेर होता रहता है। दीर्घ काल में ही इन अर्थों में सूक्ष्म भेद निश्चित हो पाते हैं। आज हमारी वैज्ञानिक शब्दावली अपने शैशव काल में है। कोई नहीं कह सकता कि प्रौढ़ावस्था प्राप्त करने में उसे कितना समय लगेगा। मैं यह कहने के लिए तैयार नहीं हूँ कि "गणितीय शब्दावली के विषय में मुझे जितना विचार करना था, कर चुका; अब मेरे विचारों में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता।" मैं यह बात सिद्धान्तों के विषय में नहीं कह रहा, वरन् विशिष्ट पर्यायों के विषय में कह रहा हूँ। मुझे शब्दावली पर कार्य करते हुए चार पांच वर्ष हो गए हैं। कुछ पर्यायों के विषय में मेरे विचार प्रति वर्ष बदल जाते हैं। जहाँ कहीं मुझे कोई पर्याय पिछले पर्याय से अधिक सुन्दर, सरल और उपयुक्त दिखाई देता है—यदि पिछला पर्याय बहुप्रचलित न हुआ तो—मैं उसे तुरन्त अपना लेता हूँ। यदि पिछला पर्याय बहुप्रचलित हुआ तो उस पर अधिक सोच विचार कर निर्णय करना पड़ता है।

मैं दो एक उदाहरण यहां देता हूँ। जब मैंने प्रयाग की 'भारतीय हिन्दी परिषद' के लिये गणितीय शब्दावली तैयार की थी तो निम्नलिखित पर्याय निश्चित किए थे :

Invariant	निश्चल
Covariant	समचल
Contravariant	प्रतिचल

डा० रघुवीर ने अपनी शब्दावली में इनमें से पहिले और तीसरे शब्दों के लिए तो यही पर्याय दिए हैं परन्तु दूसरे शब्द के लिए 'सहचर' निर्धारित किया है। मुझे यह शब्द 'समचल' से अधिक उपयुक्त दिखाई पड़ा। मैंने इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। अतएव इस लेखमाला के पाँचवें लेख में मैंने यही

शब्द 'सहचल' Covariant के लिए दिया है।

Pyramid के लिए प्राचीन शब्द था 'सूची स्तम्भ'। मुझे यह शब्द लम्बा और अनुपयुक्त दिखाई देता था। अतएव मेरा विचार था कि Pyramid के लिए अरबी शब्द 'हरम' अपना लिया जाय जो सरल और सुन्दर है। परन्तु पीछे से प्राचीन ग्रन्थों में ही एक अन्य शब्द 'स्तूप' दिखाई पड़ा जो मेरी समझ में उन दोनों शब्दों से अधिक उपयुक्त है। अतएव अब मेरा विचार है कि Pyramid के लिये यही शब्द निश्चित किया जाय। इस प्रकार के विचार परिवर्तन सदैव नहीं रह सकते। यह तो संक्रमण काल की ही विशेषता है। इस परिवर्तन युग में एक ही शब्द के लिए भिन्न-भिन्न लेखक भिन्न-भिन्न पर्यायों का प्रयोग करेंगे। वैज्ञानिक जनता उनमें से चुन-चुन कर उन्हीं शब्दों का प्रचलन करेगी जो अधिक उपयुक्त होंगे। अन्त में ऐसे ही शब्द रह जायेंगे। शेष पर्याय मृतप्राय हो जायेंगे। जब ऐसा समय आ जायगा, तत्पश्चात् पर्यायों में और कोई हेर-फेर करने का प्रश्न ही नहीं रहेगा।

अतः इस लेखमाला में दिए गए सारे शब्द प्रस्ताव मात्र हैं। मेरा यह दावा नहीं है कि यही पर्याय सर्वोत्तम हैं अर्थात् इनसे अच्छे पर्याय बन ही नहीं सकते। मैं तो इन्हें केवल प्रस्ताव रूप में गणितीय जनता के सम्मुख रखता हूं। पाठक गण अपनी पुस्तकों और लेखों में अन्य पर्याय अवश्य ही देंगे। मेरे और अन्य लेखकों के ऐसे समस्त पर्यायों में से जो अधिक उपयुक्त होंगे वही अधिक चालू होंगे और 'खरा सिक्का' कहलायेंगे। शेष सारे पर्याय 'खोटे सिक्के' की भांति छोड़ दिए जायेंगे। यदि ऊपर दिए हुए पर्यायों में से दो चार भी ऐसे निकले जिन्हें गणितीय जगत ने अपना लिया तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

यांत्रिक चित्रकला

नकशे घर की कार्यवाही

लेखक—श्री ओंकारनाथ शर्मा, आगरा,

नकशे घर में क्या होता है?—यंत्रों के आविष्कार और विकास से लेकर निर्माण चित्रों की तैयारी तक का काम नकशे घर में ही हुआ करता है। यंत्रों का आविष्कार अकसर कई व्यक्तियों की सम्मिलित प्रतिभा और प्रयत्नों का फल हुआ करता है और कभी-कभी किसी व्यक्ति विशेष का भी। बड़े कारखानों में होने वाले किसी आविष्कार का बुनियादी उसूल या तो कोई अनुभवी यांत्रिक चित्रकार को सूझता है, या मुख्य यांत्रिक, या फोरमैन अथवा व्यवस्थापक को और वे अपने विचारों को फ्रीहैण्ड चित्र द्वारा किसी कागज़ पर व्यक्त कर देते हैं। इस के बाद उस फ्रीहैन्ड चित्र के आधार पर औजारों द्वारा एक सही संगम (Assembly) चित्र बनाया जाता है जिससे भिन्न-भिन्न पुर्ज़ों के आकार और चाल आदि का उचित आपेक्षिक (Relative) ज्ञान हो सके और अंत में जब वह रचना (Design) मंजूर हो जाती है तब उसी नकशे के आधार पर उस यंत्र के निर्माण चित्र बनाये जाते हैं जिनकी सहायता से उस यंत्र का वास्तविक निर्माण किया जाता है। जो लोग उपरोक्त प्रकार की रचनायें और आविष्कार किया करते हैं और करने की योग्यता रखते हैं उनका समय बहुत कीमती होता है और वे स्वरचित और आविष्कारित यंत्रों के निर्माण चित्र बनाने के लिए भी समय नहीं दे सकते। अतः वे अपने विचार फ्रीहैन्ड चित्र बनाकर ही, अपने अधिकारस्थ यांत्रिक चित्रकारों को समझा देते हैं। और

वे यांत्रिक चित्रकार उक्त रचना का सर्वांगीय विकाश पूर्व निर्धारित सिद्धान्तों के आधार पर करते हैं। और वे भी फिर आवश्यकता पड़ने पर फ्रीहैन्ड निर्माण चित्र बनाकर औज़ारों द्वारा सही निर्माण चित्र बनाने और ट्रेस करने का काम छोटे दरजे के यांत्रिक चित्रकारों (Junior Draughtsman) को दे देते हैं।

नवीन यंत्र रचनाओं के विकास का प्राथमिक कार्यः-

किसी यंत्र का निर्माण किस उद्देश्य से किया जा रहा है और उसकी बनावट किस प्रकार की है' इन बातों पर ही उसकी रचना के विकास का कार्य निर्भर है। जिन यंत्रों और औज़ारों की बनावट, आकार और कार्य प्रणाली बहुत सरल होती है उनकी रचना करते समय बहुत थोड़ा सा ही समय और दिमाग खर्च करना पड़ता है। लेकिन उनको उपयोग में लाते समय उनके भिन्न-भिन्न भागों में कितना-कितना और कैसा चांप (stress) पड़ेगा और उनकी मजबूती किस प्रकार से की जावे इस बात का सही सही हिसाब लगाना आवश्यक होता है। बोझा उठाने का एक हाथ-क्रेन, जिसमें किराँ और धुरों की कई पंक्तियाँ लगी हुई होती हैं और जिनमें ऐंठाव और मुड़ाव (Torsional and bending) चांप पड़ते हैं, इस बात का एक अच्छा उदाहरण है।

एक दूसरी जाति के यंत्र वे हैं जिनमें पूर्वोक्त उदाहरण में बताये यंत्र की जैसी मज़बूती का हिसाब नहीं लगाना पड़ता, उन्हें चलाने में बहुत ही कम शक्ति खर्च होती है। अतः उसके भिन्न-भिन्न पुर्जों में इतना कम बल पड़ता है कि उनकी मज़बूती का हिसाब लगाना व्यर्थ सा है; लेकिन उनकी प्राथमिक रचना और कार्य प्रणाली को स्पष्ट करना बड़ी उलझन का काम होता है। उदाहरण के लिये जोड़ और बाकी करने के यंत्र को ही लीजिये। उनके पुर्जोंकी चाल और कार्य साधारण दिमाग वाले व्यक्तियों को काफी चक्कर में डालने वाला होता है।

शक्ति उत्पादन करने वाले यंत्रों की रचना के विकास को करते समय एक दूसरे ही प्रकार के प्रश्नों को हल करना पड़ता है। उदाहरण के लिये किसी बाष्प इंजन की रचना को ही लीजिये, उसमें सर्वोपरि इस बात पर ध्यान देना पड़ता है कि वह इंजन कम से कम इंधन और जल के खर्च में अधिक से अधिक शक्ति किस प्रकार उत्पादन करे अथवा प्रति अश्व सामर्थ्य कम से कम बाष्प किस प्रकार खर्च करे ?

यदि पानी उठाने वाले पम्प अथवा किसी प्रकार के हवा को संकुचित करने वाले यंत्रों की रचना करनी है तो देखना पड़ता है कि उनकी गतिविधि (operation) में जो जो भौतिक नियम अन्तर्हित हैं उन पर उचित विचार किया जावे।

यंत्र रचना का एक और विभाग है जो कि उपरोक्त विभागों से बिलकुल ही निराला है। इसमें हम उन यंत्र और औज़ारों का निर्देश करना चाहते हैं जो कि अकसर यंत्र निर्माण करने वाले कारखानों के काम में आते हैं जैसे खराद मशीन, टरेट खराद, चूड़ी काटनेकी मशीन, बरमा मशीन, मिलिंग मशीन इत्यादि और उनके साथ में काम आने वाले औज़ार इत्यादि। इस प्रकार के यंत्र और औज़ारों की रचना करने वाले को यंत्र निर्माण कला और विशेष कर यंत्र घर के काम का विशेषज्ञ होना चाहिये।

उपरोक्त वर्णन से पाठकों स्पष्ट हो जायगा कि कोई भी यांत्रिक चित्रकार यंत्र शास्त्र के सब विभागों में विशेषज्ञ नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्येक विभाग की कला का बहुत ही विस्तार हो चुका है और उस बिषय का विज्ञान उच्चकोटि पर इतनी जल्दी पहुँच जाता है कि साधारण मनुष्य के लिये बहुत ही गहन और दुरूह हो जाता है। इसी लिये जैसे कि डाक्टर लोग सरजरी अर्थात् चीर फाड़ के काम में किसी एक अंग के ही विशेषज्ञ हुआ करते हैं उसी प्रकार यांत्रिक चित्रकार और यंत्र-शास्त्री लोग भी किसी एक विषय के ही विशेषज्ञ हुआ करते हैं। उदाहरण के लिये, यदि कोई यांत्रिक चित्रकार स्वयंचालित यंत्रों (Automatic machinary) की रचना में निपुण है, तो कोई इंजन और शक्तिउत्पादन करने वाले यंत्रों की रचना में निपुण है, तो कोई विद्युत यंत्रों

में निपुण है तो कोई कारखाने के यंत्रों (Machine tools) की रचना में निपुण है और कोई जिग-फिक्श्चर और गेजों की रचना में निपुण है इत्यादि । अतः सब प्रकार के यंत्रों की रचना में कोई एक व्यक्ति कभी भी निपुण नहीं हो सकता और जो लोग अपने को ऐसा कहते और समझते हैं वे यंत्र रचना के विशेषज्ञ नहीं है बल्कि दूसरे यंत्र रचना विशेषज्ञों की बनाई हुई (डिजाइनों) रचनाओं की नक़ल करने वाले और उनके आदेशों के अनुसार रचनाओं का विकास और नकशे बनाने वाले हैं। इन लोगों को जूनियर ड्राफ्टस्मैन और ट्रेसर कहते हैं।

यांत्रिक चित्रों को बनाना और उन्हें समझना ऐसा ही है जैसा कि किसी भाषा को लिखना और पढ़ना सीखना। किसी भाषा को सीख लेने ही से कोई उस भाषा के विशाल ज्ञान भंडार और शास्त्रों का पंडित नहीं हो जाता । इसी प्रकार यांत्रिक चित्र बनाने और समझने की योग्यता प्राप्त करते ही कोई व्यक्ति यंत्र रचना में निपुण और यंत्र कला विशारद नहीं हो सकता। यह तो उस दरजे पर पहुँचने की एक प्राथमिक सीढ़ी है।

यंत्र रचना का आधारः— प्रत्येक यंत्र की रचना कुछ सूचनाओं, आँकडों (Data and figures) और कुछ यांत्रिक-प्रयुक्तियों के आधार पर हुआ करती है। यदि वह रचना सर्वथा मौलिक होती है तब तो उन यांत्रिक प्रयुक्तियों फ्रीहैन्ड चित्र ही मुख्य आधार होते हैं और यदि नवीन रचना किसी पूर्व रचित यंत्र क परिष्कृत स्वरूप होती है तो उक्त पूर्व रचित यंत्र के चित्र ही मुख्य आधार होते हैं।

कई बार ऐसे चित्र भी बनाये जाते है जिनके चित्र उपलब्ध नहीं हैं; उन यन्त्रों का निर्माण करते समय चित्र नहीं बनाये गये थे अर्थात् उन यंत्र का निर्माण बिना चित्रों के ही किया गया था। अतः इस प्रकार के यंत्र के पहिले फ्रीहैन्ड चित्र बना लिये जाते हैं और उन फ्रीहैन्ड चित्रों की सहायता से निर्माण चित्र सही-सही बना लिये जाते हैं। कई अनुभवी यांत्रिक चित्रकार बिना प्राथमिक फ्रीहैन्ड चित्र के ही, केवल अपने अफसर के आदेशानुसार कुछ यंत्र और औजारों की रचना कर डालते हैं। उदाहरण के लिये जिग और फिक्श्चरों की रचना को ही लीजिये। इस में केवल इतना ही बता देना काफ़ी है कि अमुक पुर्जा अमुक मशीन पर अमुक प्रकार से बनाया जायगा, बस इसी सूचना के आधार पर सब कुछ कर लिया जाता है।

यंत्रों की रचना के विकास का क्रमः— जब कि किसी नवीन यन्त्र की रचना का विकास किया जाता है; तब सब से पहिले उसका एक सङ्गम चित्र तैयार किया जाता है क्योंकि उसके द्वारा यांत्रिक को उसके भिन्न भिन्न पुर्जों और भागों का पारस्परिक सम्बन्ध, आकार और फासले आदि मालूम पड़ जाते हैं, जो कि उसकी तफसीलवार रचना में बड़ी सहायक होते हैं। यह सङ्गम चित्र यन्त्र की रचना के विकास की प्राथमिक सीढ़ी होता है, इसलिये यदि यन्त्र का वृहद आकार उसमें बाधक न हो तो जहां तक हो सकता है इस चित्र को पूर्ण आकार का ही बनाया जाता है।

पूर्ण आकार का सङ्गम चित्र (Assembly Drawnig) बनाने का खास फ़ायदा यह होता है कि इसकी सहायता से यन्त्र रचियता प्रत्येक पुर्जे की आपेक्षिक स्थिति और उनके बीच में रहने वाले फासलों को प्रत्यक्ष देख लेता है, और खास कर उन यन्त्रों में जिनमें कि कई पुर्जे एक दूसरे के आस पास चलते रहते हैं, इस चित्र से उसे अपनी रचना का विकास करने में बड़ी सहायता मिलती है। यदि यन्त्र इतना बड़ा हुआ कि वह पूर्ण आकार में एक कागज पर नही दिखाया जा सकता तो वह कई कागजों पर टुकड़ों में दिखाया जाता है, जब यह भी नहीं सम्भव होता तो लाचारी से पैमाने को आवश्यकतानुसार छोटा किया जाता है।

जब यह सङ्गम चित्र तैयार हो जाता है तब यन्त्र रचियता उस यन्त्र को और उसके प्रत्येक पुर्जे को बड़ी कड़ी आलोचनात्मक निगाह से देखता है और फिर प्रत्येक पुर्जे के निर्माण चित्र और विवरण चित्र तैयार करता है अथवा अपनी देख रेख में अपने सहकारियों से करवाता है।

यदि आवश्यकता समझी जाती है तो तैयारी विभाग के लिये नये संगम चित्र भी तैयार किये जाते हैं जिनमें स्पष्टतया दिखाया जाता है कि कौन से पुर्जे कहां कहां और किस प्रकार लगेंगे। इस उद्देश्य की पूर्त्ति करने के लिये पूर्वोक्त सङ्गम चित्र को ट्रेस कर के ही, जो कि अकसर पेन्सिल द्वारा बना रहता है, कारखाने में भेज दिया जाता है; लेकिन ऐसा करना सदैव सम्भव नहीं हो सकता क्योंकि एक तो वह सङ्गम चित्र बहुत बड़े पैमाने पर बनाया जाता है (पूरे पैमाने पर), जिसके कारण बहुत बड़े कागज़ों को कारखाने के तैयारी विभाग में सम्हालना बड़ी असुविधा जनक हो जाता है, वे नकशे जल्दी फट जाते हैं और अधिक काग़ज खर्च होने के कारण मँहगा भी ज्यादा पड़ता है। दूसरे वह चित्र यन्त्र रचियता के उपयोग के लिये ही बनाया जाता है अतः यह आवश्यक नहीं जो कुछ बातें उसमें दिखाई गई है सब की सब ही निर्माण विभाग के लिये उपयोगी हों अथवा जो जो बातें निर्माण विभाग के लिये आवश्यक और उपयोगी होती हैं वे सब ही इस चित्र में बताई गई हों। अतः निर्माण विभाग के लिये एक दूसरा ही संगम चित्र कुछ छोटे पैमाने पर बना दिया जाता है जो कि साधारण आकार के काग़ज पर बन सके और उसके सम्हालने में वहां कोई दिक्कत न हो। यह छोटे आकार का सङ्गम चित्र बनाते समय इसे भिन्न भिन्न पुर्जों के निर्माण चित्रों में दिये गये नामों के आधार पर बनाया जाता है और प्राथमिक सङ्गम चित्र की जहां तक हो सके सहायता नहीं ली जाती। ऐसा करने से निर्माण चित्रों की कई गलतियां मालूम हो जाती है क्योंकि गलती होने पर उनके आधार पर बनाये पुर्जों की आकृतियां नकशे पर एक दूसरे में भली भाँति नहीं बैठती इस प्रकार से उन गलतियों के सुधार का अच्छा अवसर प्राप्त हो जाता है।

तैयारी विभाग के लिये जो निर्माण चित्र बनाये जाते हैं उनमें अकसर मुख्य मुख्य नाम दिये जाते हैं। जैसे भिन्न भिन्न पुर्जों के शाफ्ट या पिनों के केन्द्रों का फासला, पुर्जों के बीच की आवश्यक छूट (Clearance) और समाहृत नाप (Over all dimensions) आदि जिनकी कि वास्तव में तयारी विभाग वालों को यन्त्र जोड़ कर खड़ा करने में आवश्यकता पड़ा करती है। इस प्रकार के चित्र बनाते समय चित्रकार को सब पुर्जों के सब छुपे हुये भागों को विंदु रेखाद्वारा प्रदर्शित करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये क्योंकि व्यर्थ की बहुत सी इस प्रकार की बातें दिखाने से नकशा दुसह हो जाता है। हां, यदि किसी ऐसे पुर्जे की स्थिति बताना आवश्यक हो जो कि साधारणतया दृष्टिगत नहीं हो सकता और उसका बताना तैयारी के दृष्टिकोण से अत्यन्त आवश्यक हो तो अवश्य ही बताना चाहिये। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि कोई पुर्जा मशीन के फ्रेम के खोखले में भीतर की तरफ लगा है। अब यदि उसे हम पूर्ण रेखा द्वारा स्पष्ट बतावें तब तो यन्त्र का एक दृश्य केवल उसी के लिए बनाना पड़ेगा और यदि किसी अन्य दृश्य में विन्दु रेखा द्वारा प्रदर्शित करदें तो वह फालतू दृश्य बनाने की व्यर्थ की मेहनत बच जावेगी।

सङ्गम चित्रों से मिलते जुलते ही रूपरेखा चित्र भी हुआ करते हैं जो कि सूची पत्रों में छापे जाते हैं। इन में भी खास खास नाप और कुछ पुर्जे दिखाये जाते हैं जिसका उद्देश्य ग्राहक को यह बताना है कि वह मशीन किस प्रकार से बैठाई जायगी और मशीन के कारखाने में पहुँचने के पहिले उसकी बुनियाद किस प्रकार और किस नाप में तयार कर लेनी चाहिये और बुनियादी बोल्ट किस किस जगह किस प्रकार लगाने चाहिये। रूपरेखा चित्र

बनाने का दूसरा उद्देश्य यह बताना भी होता है कि उस यन्त्र का उसके आस पास के सामान से क्या सम्बन्ध है और उस की क्या स्थिति है। इसका तीसरा उद्देश्य मशीन के उपयोग कर्त्ता को उस मशीन के भिन्न भिन्न पुर्जों के पहिचानने में सहायता देना है, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये पुर्जे पर चित्र में कोई संख्या अथवा संकेताक्षर लगा देते है, जिसे देख और पहिचान कर उपयोग कर्त्ता वही फालतू पुर्जे मँगवा सकें। मँगवाते समय लिखा पढ़ी में पुर्जे के नाम और पूर्ण विवरण देने की आवश्यकता नहीं होती बल्कि उसका नम्बर लिख देना ही काफी होता है।

निर्माण चित्र अथवा तफसील चित्रों के बनाने की कब आवश्यकता पड़ती है?— जब कि कोई मशीन या औज़ार इतने पुर्जों का मिल कर बनता है कि यदि उन सब को एक ही नकशे में एक साथ लगा हुआ बताया जाय तो वे सब घुल मिल हो जावें और प्रत्येक पुर्जे की बनावट जुदा जुदा समझना कठिन हो जाय तब प्रत्येक पुर्जे का निर्माण चित्र या तफसील चित्र जुदा जुदा बनाना आवश्यक हो जाता है। निम्नलिखित लाभों को दृष्टिकोण में रख कर यह चित्र बनाये जाते हैं :—

१—एक कागज पर एक ही पुर्जे का चित्र बनाना:—

(क) जब एक कागज पर एक ही पुर्जेका चित्र बनाया जाता है तब अक्सर उस कागज का आकार १२"×१८" अथवा ६"×१२" रखा जाता है ऐसा करने से उस कागज के पकड़ने और सम्हालने में आसानी पड़ती है।

(ख) साधारण पैमाने पर उस पुर्जे की सब बारीकियां साफ साफ दिखा दी जाती हैं। यह पैमाना अकसर पूरा या आधा हुआ करता है।

(ग) जब एक नकशे पर बहुत से पुर्जे दिखाये होते हैं तब कारीगर का ध्यान उनकी तरफ बँट जाता है, जिससे नकशे को पढ़ने में गलती होने की सम्भावना रहती है और जब एक नकशे पर एक ही पुर्जा दिखाया जाता है तब गलती होने की संम्भावना बहुत कम हो जाती है।

(घ) इन छोटे-छोटे नकशों कोपुट्ठे पर भी चिपका कर कारखाने में कारीगरों के उपयोग के लिये भेजा जासकता है और एक ही नकशा आदेश पत्र के साथ एक विभाग से दूसरे विभाग में और एक कारीगर से दूसरे कारीगर के पास चलता रहता है और उसे कारीगर लोग अपनी-अपनी मशीनों और मेजों पर रख कर स्वतंत्रता और आसानी से काम करते रहते हैं। यह सुविधा बड़े नकशे में कभी नहीं होसकती है।

(२) एक बड़े कागज पर पुर्जों के तफसील-चित्र प्रथक प्रथक बनाना— यह उस समय किया जाता है जब कि एक ही विभाग में निर्माणहोने वाले पुर्जे एक ही नकशे में दिखाये जावें। उदाहरण के तौर पर कहा जासकता है कि जैसे ढ़लाई खाने में ढ़ल कर तयार होने वाले लोहे के पुर्जे एक कागज पर दिखाये जावें, इस्पात के पुर्जे दूसरे कागज पर, पीतल के पुर्जे अलहदा कागज पर, तांबे के पुर्जे और पाइप आदि और कागज पर, टीन की चद्दर के पुर्जे अन्य कागज पर और गढ़कर बननेवाले पुर्जे अन्य कागज पर इत्यादि।

कई बार तयारी विभाग की सुविधा के लिये पुर्जे मध्य रेखाओं के हिसाब से भी एक ही नकशे परन्तु जुदा-जुदा तफसील वार बनादिये जाते हैं जैसे कि गीयर बकस की तफसील बनाते समय ऐसी जरूरत पड़ जाती हैं। अर्थात् विभिन्न पुर्जे उसी स्थिति में चित्रित किये जाते हैं जिस प्रकार से वे पूरी मशीन आदि पर फ़िट किये जाते हैं और उन की आपेक्षिक स्थिति वैसी ही होनी चाहिये जैसी की पूरी मशीन पर लगाते समय होती है। उदाहरण के लिये कह सकते हैं कि यदि कोई नट किसी बोल्ट या धुरी पर लगता है तो नकशे में उसे उसी

धुरी या बोल्ट की मध्य रेखा पर लगाना चाहिये और वह भी उसी सिरे की तरफ़ जिस पर कि वह लगाया जाता है। यदि कोई विशेष लाभ दिखाई दें तो इन नियमों को तोड़ा भी जा सकता है।

(क्रमशः)

निम्न श्रेणी के दो उपयोगी खनिज

(कमेड़ और गैरिक)

[*लेखक—श्री मकरन्द ढौंडयाल*]

प्रकृति की रसायन शाला-भूगर्भ में उत्पन्न हुई यह खनिज एक विशेष प्रकार की कोमल मिट्टी है जिसकी जननि केवल पर्वत-श्रेणियाँही हैं और न कि सम भूमि। यह प्रायः कुमाऊँ-प्रदेश की प्रत्येक पर्वत माला में उपलब्ध है। कदाचित अन्य गिरि-शृँखलाओं में भी प्राप्त हो।

रंग—इसका रङ्ग हलकी हरीतिमा लिये हुए अथवा कृष्ण आभायुक्त सफेद रजत के समान होता है। परन्तु जब जल में घोल कर उपयोग किया जाता है तो बिलकुल श्वेत दिखलाई पड़ता है।

कठोरता—इसको कठोरता न कह कर कोमलता कहना उपयुक्त होगा, क्योंकि यह खानों से निकलने पर प्रायः शीतऋतु के मक्खन से अधिक कठोर नहीं होता है। सूखने पर इसकी कठोरता०-५ से०-९ के अन्तर्गत रहती है।

पावस ऋतु में वर्षा की अधिकता से इसकी कोमलता मक्खन के समान हो जाती है जिसके कारण इसकी खान अपने ऊपर के महि-भार को नहीं सहन कर सकती है और इसी लिये बहुधा इसकी खानों के आस-पास की भूमि ऊबड़ खाबड़ रहा करती है और कतिपय स्थानों से इस ऊबड़ खाबड़ से इसकी खानें सदा के लिये लुप्त हो जाती हैं।

कमेड़में जल को अपने खींच कर समा लेने की शक्ति शक्ति होती है। यह बहुधा जल स्रोतों के पास या ऊँचे स्थान पर बहने वाली सरित तटों के ढलुए स्थानों में उपलब्ध होता है। बरसात में खानों से इसको हाथ ही से बिना किसी कुदाल के मजे से निकाला लाया जा सकता है, परन्तु गर्म-ऋतु में जब यह सूख जाता है तो अपने लिचलिचे गुण के कारण कुदाल या इसी प्रकार के अन्य खोदने के अस्त्र से ही निकाला जा सकता है।

रासायनिक संगठन—इसमें ससिलिकेट, कैलशियम, तथा कार्वन का मिश्रण मिलता है। परन्तु किस मात्रा में कौन तत्व मिलता है यह ठीक नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसकी अनेक प्रकारें मिलती हैं।

यद्यपि कमेड़की अनेक किस्में उपलब्ध हैं; परन्तु विशुद्ध और सत्य कमेड़,की खाने अधिक नहीं है। विशुद्ध कमेड़ रेत, लोह, कँकड़, अभ्रक आदि से रहित होता है। अंगुलियों से स्पर्श करने पर कोमल सा प्रतीत होता है।अंगुलियों के बीच रख कर मसल दीजिये, एक गुदगुदी सी अंगुलियों के अग्र पोर पर अनुभव करेंगे और मसलने में मानों गीला साबुन या मक्खन की टिकिया आप बिना प्रयास के मसल रहे हैं।

गन्ध—इसमें एक प्रकार की कार्बनीय गन्ध सी आती है जो चूने की भान्ति गले में खरखराहट पैदा करने वाली नहीं होती।

खान—बहुधा बड़ी नहीं होती है। कमेड़ पर्त से लगा हुआ मिलता है; क्रिस्टल रूप में नहीं।

यह एक उपेक्षित खनिज हैं अन्यथा मकानों की सफेदी के लिये यह एक सुन्दर वस्तु है। चूने में

चिपचिपाहट नहीं है परन्तु इसमेंचिपचिपाहट की एक मात्रा उपस्थित है।

उपयोग—पर्वतों में इसके मुख्य तीन उपयोग देखे गये हैं :—

(१) पट्टी पर लिखने वाले बाल कक्षा के बालक इसका गाढ़ा घोल बनाकर पट्टियों पर सुन्दरता से लिखते हैं। यद्यपि इस कार्य के लिये बालक किसी भी प्रकार के कमेड़ का उपयोग करते हैं; परन्तु जब अच्छे कमेड़ से पाटी पर लिखा जाता है तो अक्षर सरलता पूर्वक नहीं मिटते। जब उन्हें कपड़े या किसी वस्तु से रगड़ दिया जाता है तब वे मिट तो जाते हैं परन्तु उनकी छाप स्पष्ट तया पट्टी पर पड़ी ही रह जाती है।

(२) ग्राम निवासी अपने मकानों में चूने के बदले इससे सफेदी करते हैं। मकान पहिले मिट्टी से पोत दिये जाते हैं और मिट्टी के सूख जाने के पश्चात् कमेड़ की सफेदी कर दी जाती है जिससे मकान चूने सेपुते मकानों से कम सुहावने नहीं लगते हैं। गर्मी के दिनों में तो ये मकान अधिक ठण्डे रहते हैं। वर्षा-पानी अथवा अन्धड़ की चोटों को खाकर भी इसकी सफेदी एक साल तक टिक ही जाती है।

(३) **औषध**— के रूप में भी इसे बर्ता जाता है। पित्त विकार के कारण यदि कहीं पर सूजन अथवा फोड़ा हो गया हो तो उस स्थान पर वाह्य रूप से प्लास्टर आफ पेरिस की भाँति पट्टी बांध देने से ८० प्रतिशत लाभ दिखाई देता है और जब इसका प्रभाव ऐसे रुग्ण स्थान पर होने लगता है तो बहुत शीघ्र होता है। कहीं गिर कर चोट लग गई हो या किसी हल्के विषैले जन्तु ने काट खाया हो तो उस स्थान पर उक्त प्रकार की पट्टी बाँधने से आशा जनक लाभ मिलता है। पशुओं के ऐसे रोगों के लिये तो यह एक सुन्दर औषध है।

ग्रीष्म ऋतु में साधारण ज्वर में जब अधिक प्यास लगती है तो इसका जल निसार कर प्यास मिटाने के लिये कई ग्रामीण वैद्य देते हैं।

गैरिक (गेरू)

यह एक विशेष प्रकार की लाल मिट्टी है जो भूगर्भ में किन्हीं रसायन क्रियाओं से निर्माण होती है। गैरिक को प्रायः सभी लोग जानते हैं। हिन्दू योगी तो अपने वस्त्रों को इसी से रंगते हैं और उनको इन वस्त्रों को धारण किये हुए लगभग सबही ने देखा होगा।

जाति— यद्यपि गैरिक की कई जातियां मिलती हैं तथापि साधारणतया उनको दो प्रकारों में विभक्त कर देते हैं (१) कठोर प्रस्तर जाति और(२) कोमल सुनहली जाति। प्रथम कठोर जाति का गैरिक सेवनुमा, दानेदार अथवा बेडौल आकृति में पाया जाता है परन्तु कोमल जाति का गेरू पर्तदार मिलता है।

कठोरता— म्हो के पैमाने पर गेरू की कठोरता ५ से ६ तक चली जाती है और कोमल की १ से अधिक नहीं होती है। इसका घनत्व ४ से५ तक मिलता है।

रासायनिक संगठनः— गैरिक लोह जनित वस्तु है। भूगर्भ में किन्हीं अदृश्य रसायन क्रियाओं के द्वारा लोह आक्सिजन से मिल जाता है और वैज्ञानिकों ने इसके विश्लेषण करने पर प्रायः ७०% लोहा और ३०% आक्सिजन पाया है। लोह और आक्सिजन के इस मेल को कहते हैं गैरिक।

प्रायः दोनों जातियों में से कोमल गैरिक को अधिक मूल्यवान कहा जाता है। कहते है कि इससे कहीं कहीं लोहे के कारखाने शुद्ध लोहा भी प्राप्त करते हैं।

खानें—इसकी खानें बहुधा पर्वतों में पाई जाती हैं, परन्तु लोह खानों के पास भी इसकी उत्पति होती है। बहुधा पर्वतों में ऐसा देखा गया है कि छोटे छोटे जल स्रोतों के समीप यह बर्फ-ग्लेशियर के समान एक रेड़ में पर्वतों से बाहर छिलका रहता है, उस समय यह गीली अवस्था में होता है। सूखने पर भुरभुरा गैरिक प्राप्त होता है। दूसरे प्रकार की

खानें जो देखी गयी हैं वे भूमि की ४ से ५ गज गहराई में तब प्रकट हो सकती हैं जबकि उसके ऊपर की मिट्टी जल स्रोतों से कट-कट कर प्राय: नष्ट भ्रष्ट हो जाती है और तब यह अपने दर्शनों को दे सकती है। इस प्रकार की खानों के समीप बहुधा कृष्ण या साम्र वर्ण की चिपचिपी मिट्टी का बाहुल्य होता है और ऊपर का आवरण भी इसी प्रकार की मृतिका से बना होता है।

खानों में गैरिक दो प्रकार से पाया जाता है। एक तो पर्त पर पर्त लगी सी और दूसरा बेडौल अथवा सुडोल दाने या टुकड़े परस्पर जुड़े हुए एक मुंगरी का रूप धारण कर भूमि में धँसे हुए। दानेदार गैरिक की खान जब दिखलाई देती है तो ऐसा जान पड़ता है मानों वह गर्व में चूर अपने मस्तक को ऊंचा उठाए हुए इधर उधर झाँक रहो हो।

रङ्ग—गैरिक तीन रंगों में पाया जाता है: (१) कृष्ण-रक्त (२) गुलाबी-रक्त और (३) रक्त-वर्ण। पर्तदार अर्थात् कोमल गैरिक जल में शीघ्र घुल जाता है परन्तु कपड़े रंगने अथवा किसी अन्य वस्तु के रङ्गने पर वह रङ्ग शीघ्र धुल जाता है और टिकाऊ नहीं होता, परन्तु कठोर गैरिक जब घोट कर जल में समिश्रण कर कपड़े रङ्ग दिये जाते हैं अथवा किसी वस्तु को रङ्ग दिया जाता है तो वह रङ्ग कुछ दिनों को टिकाऊ होता है।

गैरिक का कोई ही अंश पारदर्शक मिलता है अन्यथा चमक दार होते हुए भी यह एक अपारदर्शक खनिज है। तोड़ने पर टूटा हुआ भाग अधिक चमकदार होता है परन्तु धीरे धीरे कुछ काल में उस चमक को खो देता है।

कठोर गैरिक के दानों के साथ कभी कभी बारीक अभ्रक की रेती सी मिली पाई जाती है यह विशुद्ध गैरिक नहीं है।

खुदान—कोमल गैरिक को किसी भी प्रकार के कुदाली से सरलता पूर्वक खोद कर टोकरियों में जमा किया जा सकता है परन्तु कठोर गैरिक के लिये बड़े पक्के कुदाल अथवा छेने की आवश्यकता पड़ती है। गाढ़ी अवस्था में बहते हुए गैरिक को यों ही बटोरा जा सकता है परन्तु इसके साथ मिट्टी और रेत का अधिक मिश्रण रहता है। खोदने में जितना अधिक नीचे खोदा जायगा उतनी ही सुन्दर और विशुद्ध वस्तु प्राप्त होगी।

उपयोग—गैरिक विविध प्रकार से उपयोग में लाया जाता है;

(१) वैद्यक चिकित्सा शास्त्र में गैरिक को ओषधि के लिये कार्य में प्रयोग किया जाता है। इसका गुण शीतल है और रक्त वाहिनी नसों को संकोच कर देने की शक्ति वाला है। इस हेतु इसको रक्तपित्त, वमन, हिचकी, शीतपित, वात-पित्तज रोग जैसे निमोनियाँ, रक्तार्श, कुष्ट और शरीरस्थ स्वल्प विष निवारण के हेतु विभिन्न अनुपानों के साथ और विभिन्न प्रकार से शोध कर देते हैं। ऐसे पित्त प्रकोप जनित ज्वरों में जिनमें रक्त कण नष्ट होते हैं और दाह अधिक रहती है चतुर चिकित्सक सुन्दरता से शोध कर प्रयोग करते हैं।

इसको शोधने की सरल रीतियाँ ये हैं कि गोदुग्ध में पर्तदार विशुद्ध कोमल गैरिक को दस बार भावना देते हैं (२) शुद्ध गौ घृत में गैरिक की लुगदी को हल्की आँच में भून देते हैं, परन्तु यह द्वितीय श्रेणी का शोधन शीघ्रता के लिये है अन्यथा यह अधिक प्रभाव शाली नहीं है।

(२) गैरिक को कपड़े रंगने के कार्य्य में भी उपयोग किया जाता है। हिन्दू-योगी इस कार्य के लिये कठोर गैरिक का प्रयोग करते हैं।

(३) गैरिक से पीत-रक्त रंग बनाया जाता है। इससे लोग कमरों की दीवारों को भी अंशत: पोत देते हैं। यह कार्य केवल सौंदर्यता के लिये किया जाता है।

(४) कतिपय लोहे के कारखाने गैरिक से लोहा निकालते हैं।

(५) शीशों के पृष्ट भाग में पालिस करने के काम में लाया जाता है।

(६) कपड़े के व्यापारी कपड़े के थानों पर मूल्य के चिन्ह को अंकित करने के लिये गैरिक पेन्सिल को बहुधा काम में लाते हैं।

(७) लकड़ी पर पालिस करने के लिए गैरिक को स्पिरिट अथवा तैल में मिलाकर प्रयोग में लाते हैं।

संख्याएँ

[लेखक—श्री चन्द्रिका प्रसाद]
(गणित विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय)

१

जब मानव-विकास प्रारंभिक अवस्था में था, उस समय भी मनुष्यों में "संख्या ज्ञान" अवश्य था। थोड़ी सी वस्तुओं में से एक कम करने से या एक बढ़ा देने से उन्हें पता चल जाता था। गिनने की क्रिया तो मनुष्य ने बहुत बाद में सीखी होगी, पर इतना ज्ञान उसे बहुत पहले ही था कि वस्तुएँ घट गई है वा बढ़ गई हैं।

यही ज्ञान कई चिड़ियों में भी पाया जाता है। पर वस्तुओं की संख्या अधिक हो जाने पर वे घटना-बढ़ना नहीं जान पातीं। अधिकतर देखा गया है कि चार अडों में से एक अंडा निकाल लेने पर उन्हें पता नहीं लगता। पर दो अंडे निकाल देने पर उन्हें पता चल जाता है और वे घोंसला छोड़ कर उड़ जाती हैं।

२

गिनने की क्रिया सीखने में हमें उँगलियों से कितनी सहायता मिली है, इस पर कदाचित ही आपका ध्यान गया होगा। अब भी छोटे मोटे हिसाब लगाने में हम उँगलियों की सहायता ले ही लेते हैं। बच्चे जोड़ बाकी सीखते समय उँगलियों पर ही आरंभ में प्रश्न हल करते हैं।

गिनने की क्रिया जब आरंभ हुई होगी, तब अवश्य ही उँगलियों की सहायता ली गई होगी। यही कारण है कि आजकल की संख्याओं का आधार १० है। संख्या १० को आधार मानने से गणित को कोई विशेष सुविधा नहीं है। इससे कहीं अच्छा होता कि आधार १२ होता। शायद गणितज्ञ चाहते कि आधार ७ या ११ हो, जो कि अभाज्य संख्याएँ है। पर विधाता को कुछ और ही पसंद था। इसीसे उसने मनुष्य को १० उँगलियाँ दीं।

१८ वीं शताब्दि के अंत में फ्रांसीसी वैज्ञानिक बुफ़न ने विज्ञान-संसार के सामने यह प्रस्ताव रखा कि सब साधारण संख्याओं को बदल कर १२ के आधार वाली संख्याएँ रक्खी जायें [इस प्रणाली में १२ को १० लिखा जायगा, २४ को २०,...१४४ को १००, इत्यादि]। इसमें सुविधा यह है कि १२ चार संख्याओं से विभाजित हो सकता है, जहाँ कि १० केवल दो ही संख्याओ से विभाजित हो सकता है। यही कारण है कि १ फुट में १२ इंच माने जाते हैं और गिनने में दर्जन का विशेष महत्व है।

दूसरी ओर विख्यात गणितज्ञ लेग्रांज का कथन था कि अभाज्य संख्या को आधार मानने से अधिक सुविधाएँ हैं। इस रीति से प्रत्येक भिन्न को एक ही रूप में लिख सकेंगे जैसे आजकल ०·३६ बराबर है ३६/१००, या १८/५० या ९/२५। यह कठिनाई अभाज्य आधार (७ या ११ लेने से बहुत कुछ दूर हो जायगी।

परन्तु चाहे कितनी ही सुविधाएँ इन नई पद्धतियों में हों, जनसाधारण को तो एक आधार से दूसरे आधार बदलने में कठिनाई ही होगी। क्योंकि उन्हें सब जोड़-बाकी, गुणा-भाग फिर से सीखना पड़ जायगा। कदाचित इसी कारण से अभी तक संख्याओं का आधार १० ही रह गया है।

(३)

आजकल करोड़ो की संख्या आप कुछ क्षणों में

लिखकर रख देते हैं, पर क्या कभी आपने यह विचारा है कि संख्याओं के लिखने की यह सुंदर विधि कब और कहाँ निकली, और कितनी कठिनाइयों के बाद । संख्या-लेखन की प्रचलित विधि के आविष्कार में भारतवर्ष का बहुत कुछ हाथ है। प्रसिद्ध गणितज्ञ लाप्लास ने लिखा है:

"दस चिह्नों द्वारा सब संख्याओं को लिखने की विधि निकालने का श्रेय भारतवर्ष को है। प्रत्येक चिह्न का एक अपना स्वयं का मान है और एक अपनी स्थिति का मान है। यह गूढ़ और प्रमुख विचार अब हमें इतना सरल लगता है कि हम इसकी विलक्षणता भूल जाते हैं। इसी सरलता के कारण ही गणित का उपयोगी आविष्कारों में प्रथम स्थान है । यह सोचकर कि आर्कमीडिस और अपोलोनियस जैसे विद्वानों को भी यह विधि नहीं सूझी, हम समझ सकते हैं कि यह कितना भारी आविष्कार था।"

४

संख्याओं को लिखने की आवश्यकता तभी से पड़ने लगी जब मनुष्य को अपनी संपत्ति का लेखा रखने की आवश्यकता पड़ी। पहले लोग मिट्टी, पत्थर या लकड़ी पर चिह्न बना कर काम चला लेते थे।

इङ्गलैण्ड में तो यह प्रथा बहुत दिनों तक चलती रही और १९वीं शताब्दि में जाकर समाप्त हुई। वहाँ हिसाब रखने के लिये लकड़ी की छड़ियाँ रखते थे। इन छड़ियों पर खांचे बना कर मूल्य अंकित करते थे। छोटे छोटे खाँचों से १ पाउंड की रकम सूचित करते थे, उससे बड़े चिह्नों से १० पाउंड, और बड़े चिह्नों से १०० पाउंड, इत्यादि।

हिसाब रखने की प्रचलित पद्धति के चल जाने के भी बहुत दिन बाद तक, लकड़ियों वाली यह पुरानी प्रथा इंगलैण्ड में चलती रही। पार्लियामेंट में भी इस पर प्रश्न उठा था। इसके बारे में अँग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक चार्ल्स डिकेंस ने बड़ा सुन्दर व्यंग किया है।

"बहुत समय पहले लकड़ी पर निशान करके हिसाब रखने का बिलकुल असभ्य तरीका सरकारी खजाने में चलाया गया; हिसाब ठीक वैसे ही रक्खा जाता था जैसे राबिन्सन क्रूसो अपना कैलेंडर रखता था। हजारों खजांची, मुंशी और आय-व्यय परीक्षक पैदा हुए और मर गये। फिर भी सरकारी कामों में ये निशान की हुई लकड़ियां चलती रहीं, गोया कि ये राज्य की नींव हों। आश्चर्य है कि जार्ज तृतीय के राज्य में कागज और कलम के युग में क्यों इस पुरानी रीति से हिसाब रखते हैं और क्यों नहीं इस विधि को बदल देते। सरकारी कर्मचारियों ने इसका बड़ा ही विरोध किया। सन् १८२६ में जाकर कहीं इस विधि को बन्द किया गया। १८३४ में लोगों ने देखा कि इन लकड़ियों की गिनती बहुत है, तो प्रश्न उठा कि इन पुरानी घुनी और सड़ी हुई लकड़ियों का क्या किया जाय। ये लकड़ियाँ वेस्ट-मिन्सटर में थीं और यदि आस पास के गरीबों को जलाने के लिये बांट दी जाती तो सबसे सरल उपाय होता। पर ये लकड़ियां न तो पहले कभी उपयोगी सिद्ध हुई थीं और न कभी बाद में होने को थीं। सरकारी हुक्म हुआ कि इन्हें गुप्त रूप से जला दिया जाय सो इन्हें हाउस आफ लार्ड्स के एक चूल्हे में जलाया गया। चूल्हे में इतनी अधिक लकड़ियाँ भर गई थीं कि अगल-बगल आग लग गई। यही आग बढ़ कर हाउस आफ कामन्स में भी लग गई। दोनों ही भवन जलकर राख हो गये उन्हें फिर से बनाने के लिये इंजिनियर बुलाने पड़े; और बीसलाख पौंड खर्च हो गये।

वैज्ञानिक समाचार

(१) प्रोफ़ेसर अ० ना० व्हाइटहेड (१८६१-१६४७)

दुख का विषय है कि प्रोफ़ेसर अलफ्रेड नार्थ व्हाइटहेड ओ० एम० का ३० दिसम्बर १६४७ को ८६ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया।

महाशय व्हाइटहेड का जन्म १५ फरवरी सन् १८६१ को रैम्सगेट में हुआ था। ट्रिनिटी कालेज कैम्ब्रिज से फेलोशिप प्राप्त कर वह वहाँ लेकचरर होगये। इस के बाद उन्होंने यूनीवर्सिटी कालेज लन्दन, इम्पीरियल कालेज आफ़ सांइस तथा हैवर्ड यूनीवर्सिटी में सेवाएँ कीं।

महाशय व्हाइटहेड ने विज्ञान तथा दर्शन के अध्ययन को समन्वय करने का जीवन पर्यन्त प्रयत्न किया। आज विज्ञान की बढ़ती हुई संकीर्णता में इस कठिन प्रयास के साधक इने गिने लोग ही रह गये हैं। हम भारतीयों को तो व्हाइटहेड जी का परिचय मुख्यत: उनकी पुस्तकों "Process and Reality, Science and the modern world, तथा Adventures of ideas "के द्वारा ही प्राप्त हुआ है।

(२) वनस्पति घी का खाद्य-मूल्यः— वनस्पति घी के खाद्य सूल्य पर यूनीवर्सिटी कालेज आफ सांइस, कलकत्ता, इंडियन इंस्टीट्यूट आफ सांइस बङ्गलौर, न्यूट्रिशन रिसर्च प्रयोगशाला कोनूर तथा औद्योगिक रसायन विभाग बम्बई में अनुसंधान करने के लिए एक विस्तृत योजना तैयार की गयी है। इस योजना को बोर्ड आफ सांइटिफिक तथा इंडस्ट्रियल रिसर्च ने स्वीकृत किया है और इसका अर्थिक भार वनस्पति मैन्यूफेक्चरर्स असोसियेशन ने अपने ऊपर लेना स्वीकार किया है।

(३) सिंचाई के स्रवित समुद्रजलः—

काठियावाड़, राजपूताना तथा सिन्ध के रेगिस्तानों में सिंचाई के लिए समुद्र के जल को सूर्य की किरणों से स्रवित कर उपयोग में लाने की एक योजना बनाई गई है।

नवानगर के जाम साहब ने पेरिस से 'पान रिसर्च इंस्टीट्यूट आफ एक्टीनालोजी' के डाइरेक्टर डा० जे० सैद्मान को इस कार्य्य के लिए निमंत्रित किया है। प्राथमिक प्रयोग नवानगर में ही वहाँ उपस्थित एक "सोलैरियम" की सहायता से किये जायेंगे।

इस योजना के अन्तर्गत 'सोलैरियम' की सहायता से समुद्र के जल को उबाला जायेगा और फिर स्रवित जल को पाइपों द्वारा सिंचाई के लिये भेजा जायेगा। डा० सैद्मान को विश्वास है कि यदि आवश्यक मशीन मिल सकी तो योजना १० वर्षों में पूर्णयता कार्यान्वित की जा सकेगी।

इस योजना में नमक भी बहुत बड़ी मात्रा में उपलब्ध हो सकेगा। यह खाने के योग्य तो होगा ही, परन्तु साथही साथ बहुत से रासायनिक पदार्थों के उत्पादन कार्य्य में भी लाया जा सकेगा।

(४) वैद्युत् रासायनिक अनुसन्धान के लिए दानः—

इंडियन रिसर्च कौसिल के अन्तर्गत दक्षिण भारत में एक वैद्युत् रासायनिक अनुसन्धान शाला खोलने के लिए डाक्टर आर० एम० अलगप्पा चेतियर ने १५ लाख रुपये का दान दिया है।

(५)अन्तराष्ट्रीय भूगर्भ-विज्ञान की कांग्रेस का १८वाँ वार्षिक अधिवेशन लन्दन में २५ अगस्त से १ सितम्बर सन् १६४८ तक होगा। इस अधिवेशन का सभापतित्व प्रोफेसर एच० एच० रीड करेंगे।

इस कांग्रेस का पूर्ण विवरण कांग्रेस के मंत्रियों से निम्न पते पर पूँछा जा सकता है: जियालाजीकल सर्वे एण्ड म्यूजियम, इक्जबीशन रोड, लन्दन एस० डबल्यू ७

★ विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम ★

परिषद्का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्यसे स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहने का तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

★ विषय-सूची ★

मुद्रक तथा प्रकाशक—ए० बी० वर्मा, शारदा प्रेस, नया-कटरा—प्रयाग।

★ विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र ★

भाग ६७] संवत् २००४, अप्रैल-मई, १९४८ [संख्या १-२

प्रधान संपादक

श्री रामचरण मेहरोत्रा

विशेष सम्पादक

डाक्टर सत्यप्रकाश
डाक्टर गोरख प्रसाद
डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव
श्री श्रीचरण वर्मा
डाक्टर ब्रज किशोर मालवीय

प्रकाशक

★ विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद ★

वार्षिक मूल्य ३) प्रति अंक ।)

☆ विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम ☆

परिषद्‌का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्यसे स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्‌का संगठन

२—परिषद्‌में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्‌की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषदके सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहने का तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्‌की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके विना मूल्य पाने का—यदि परिषद्‌के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्‌के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

★ विषय-सूची ★

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६७] सम्वत् २००५, अप्रैल-मई, १९४८ [संख्या १-२

गाँधी—एक महान वैज्ञानिक

(लेखक—श्री राज कुमार जैन बी० एस सी०)

गांधी जी की असामयिक मृत्यु पर संसार में एक अंधेरा सा छा गया। संसार ने अपने बीच में से एक देव दूत खोया, भारतीय जनता ने अपना हितैषी; मित्रों ने एक अमूल्य शिक्षक; और अहिंसा और सत्य ने अपना महान प्रचारक। पर एक बात शायद ही कुछ पुरुषों ने महसूस की हो कि विज्ञान जगत से एक सच्चा वैज्ञानिक रूठ गया। गांधी जी के जीवन को विविध दृष्टिकोण से जनता के सामने रक्खा गया है, कोई उन्हें केवल सर्वोच्च कोटि का धर्म प्रचारक समझता है, कोई उन्हे एक राजनीतिज्ञ के रूप में देखता है, कोई उन्हें पिछड़े हुए मनुष्यों का वकील, तो कोई उन्हें एक महान साम्यवादी—इत्यादि। पर मैंने उन्हें एक वैज्ञानिक के रूप में ही पाया है।

यह बात ठीक है कि विज्ञान जगत में गांधी जी का विशेष स्थान नहीं था, बल्कि बहुत से लोगों का तो यह विचार है कि वे विज्ञान की उन्नति के विरोधी थे। कारण इसका यह है कि वे हाथ की बनी हुई चीज़ों का ही उपयोग करते थे, एक लँगोटी और एक चादर यह उनकी पोशाक थी। विज्ञान के द्वारा खोजी गयी इतनी औषधियों को त्याग कर सदा प्राकृतिक चिकित्सा करते और करवाते थे। जहां तक हो सकता था बिजली के प्रकाश का निषेध करते थे। पर इन सब का उत्तर उन्होंने एक वैज्ञानिक के यह पूछने पर 'कि क्या आप बिजली आदि का प्रयोग इस कारण नहीं करते कि आप वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति को बुरा समझते हैं," यह दिया कि "नहीं, यदि आज विज्ञान इन चीज़ों को

इतने सुलभ और प्राप्त बना दे कि प्रत्येक पुरुष उनका उपयोग कर सके तो मैं उसका प्रयोग ही नहीं करूँगा बल्कि उनका हार्दिक स्वागत करूँगा।"

क्या यह उत्तर उनकी विज्ञान के प्रति घृणा प्रकट करता है। यह तो विज्ञान को और अधिक उत्तेजना देता है कि वैज्ञानिक को निश्चल हो कर नहीं बैठ जाना चाहिए क्योंकि जो कुछ उसने अपनी गवेषणा से खोज निकाला है उसे अभी संसार के प्रत्येक प्राणी के योग्य बनाना है।

यही नहीं, गांधी जी स्वयं भी एक वैज्ञानिक थे। वे स्वयं भी प्रयोग करते थे। और उनसे जनता के लिये लाभ दायक वस्तुऐं निकालते थे। यह अवश्य है कि उनके पास एक बहुत बड़ी और आलीशान प्रयोगशाला नहीं थी और न उनके पास बहुत सारा प्रयोग करने के लिए सामान था परन्तु उनके लिए एक गौरव की बात है कि फिर भी वे अपने प्रयोग करते रहते थे। उनका क्षेत्र था प्राकृतिक चिकित्सा। उन्होंने सूर्य, स्नान, गोबर आदि का चिकित्सा मूल्य निकाला और उनसे ही वे अपनी और अपने भाइयों का इलाज करते थे। 'बा' की मृत्यु होने पर उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा की उन्नति के लिये धन एकत्रित किया। डा० दिनशा मेहता बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि अब उन्होंने सोचा कि इस प्रयोगशाला में वे कार्य कर सकेंगे पर गांधी जी ने कहा कि वे एक प्रयोग शाला नहीं बनाना चाहते जिससे केवल गिने चुने लोग ही अपनी चिकित्सा करा सकें, वे तो यह चाहते हैं कि प्रत्येक कृषक तक इसकी पहुँच हो और प्रत्येक भारतीय इससे लाभ उठा सके और उसी दिन से आपने कीचड़ की पुलटिस, भोजन व्यवस्था, जल चिकित्सा, सूर्य स्नान, मालिश, व्यायाम तथा योग आदि के प्रयोगों में दूना उत्साह दिखाना आरम्भ किया। 'हरिजन' में उनकी इस विषय पर की हुई खोजें मिल सकती हैं।

यही नहीं, वे अपनी खोजों में समाज की अवस्था और आवश्यकताओं का सदा ध्यान रखते थे। जिस समय संसार में भोज्य पदार्थों का अकाल पड़ने लगा और उन्होंने देखा कि इसके कारण भारत को भी बड़ी कठिनाई सहनी पड़ेगी क्योंकि विदेशी प्रभुत्व के कारण यहां की पैदावार वैसे ही कम हो गई है, तो उन्होंने अपना ध्यान भोजन की सामग्री की ओर किया और इस विषय में उन्होंने गुठलियों पर अपनी खोज प्रारम्भ की। और उन्होंने देखा कि आम की गुठली का प्रयोग चूर्ण के रूप में रोटी बनाने के काम आ सकता है। यही नहीं उन्होंने मूंगफली और अन्य भिन्न चीजों पर प्रयोग किया और दिखाया कि किस प्रकार से वे वस्तुऐं उच्च भोज्य सामग्री के लिये प्रयोग की जा सकती है।

एक दूसरे रूप में गांधी जी तमाम वैज्ञानिकों से ही ऊँचे बैठते हैं। विज्ञान का लक्ष्य सत्य की खोज है और यद्यपि विज्ञान को संसार दूसरे रूप में देखने लगा है फिर भी वैज्ञानिक अब भी एक सत्य का पुजारी है। इस दृष्टिकोण से गांधी जी ही वैज्ञानिक की परिभाषा से पूर्ण रूप पूरे उतरते हैं। गांधी जी के जीवन के दिन सत्य के साथ प्रयोग करने में समाप्त हुए और उनकी आहुति ने भी अन्त में सत्य की विजय का डंका बजा दिया। उन्होंने सत्य का प्रयोग मानवीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में किया और सब जगह अपने प्रयोगों में सफल हुए। संसार के सामने उन्होंने सत्य और अहिंसा का आदर्श रक्खा।

गांधी जी प्रत्येक बात को बड़े सूक्ष्म रूप से देखते थे और यह लगभग असम्भव था कि उनकी पैनी दृष्टि से कोई भी कमजोरी या अच्छाई बच जाय। यही कारण था कि वे इतने महान मनोवैज्ञानिक हो सके। यदि उनके जीवन में वैज्ञानिक जीवन के बीज देखे जायें तो वह प्रत्येक प्रकार से एक महान वैज्ञानिक ठहरते हैं पर जैसा कि हम सब जानते हैं कि उनकी वैज्ञानिक दृष्टि भौतिक और

रासयिनिक विज्ञान की ओर न जाकर मानवीय विकास की ओर रही और इसी कारण इस बीसवीं शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक का नाम किसी वैज्ञानिक पत्रिका में नहीं देखा गया आइनस्टाइन का यह कहना बिलकुल ठीक है कि आगे आने वाली पीढियाँ यह विश्वास नहीं करेंगी कि ऐसा पुरुष वास्तव में कभी इस पृथ्वी पर जीवित रूप में चलता फिरता था।

सूर्य कलंक और विश्व-किरणें

श्री कुलदीप चन्द्र चड्ढा एम० एस० सी० (आनर्ज स्कूल)
भौतिक विज्ञान विभाग, डी० ए० वी० कालेज, होशियारपुर

आधुनिक विज्ञान की प्रगति, जहां संसार को एक महान् विस्मय में डाल रही है, वहां वह चुपचाप एक नया कथानक भी लिख रही है, जो उसके जिज्ञासुओं के लिए रोचकता का स्रोत है। विज्ञान ने जब अपने शैशव से यौवन में पदार्पण किया तो उसमें उन्माद की कुछ मात्रा थी जिसके कारण उसने कुछ प्रचलित धारणाओं का उन्हें अन्धविश्वास कह कर मखौल उड़ाया। पर आज जब वह यौवन से प्रौढ़ता की ओर अग्रसर है तो उसकी अपनी ही अनुसन्धान उसे इस बात पर बाधित कर रही है कि जिन वार्ताओं को वह कपोल कल्पित का नाम दे चुका है, उनका अब स्वयं प्रचार करें।

कुछ वर्ष पूर्व तक वैज्ञानिक की धारणा थी कि विविध ग्रहों और नक्षत्रों का पृथ्वी से केवल परस्पराकर्षण मात्र का सम्बन्ध है तथा वहां से कुछ प्रकाश रश्मियां पृथ्वी की ओर आती हैं। इसके विपरीत, ज्योतिषी लोग, पृथ्वी ही नहीं, पार्थिव मानवों का भी व्यक्तिगत रुप से विविध ग्रहों और नक्षत्रों से सम्बन्ध जोड़ते थे इस सम्बन्ध को वैज्ञानिक एक कोरी भ्रान्ति समझता था। पर अब स्वयं वैज्ञानिक के नवीनतम अवलोकनों ने सिद्ध कर दिया है कि कम से कम सूर्य का तो पृथ्वी पर, परस्पराकर्षण प्रकाश तथा ताप के अतिरिक्त, अन्य भी अनेक प्रकार से प्रभाव पड़ता है। सूर्य और पृथ्वी के इस सम्बन्ध का ज्ञान एक मनोरंजक सौर क्रिया की अनुसंधान से प्राप्त हुआ। यह क्रिया सूर्य कलंक (Sun Spots) के नाम से प्रसिद्ध है।

ये सूर्य कलंक क्या हैं और इनका पृथ्वी पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका सुपाठ्य विवरण लेखक के सरस्वती में प्रकाशित एक लेख "सूर्य कलंक" (१) में दिया गया है। यहां केवल स्वल्प परिचय के रूप में हम प्रकट करना चाहते हैं कि सूर्य कलंक, दीप्तिमान सूर्य के तन पर श्यामिल से चिन्ह हैं जिनकी संख्या तथा विस्तार ११ वर्षीय चक्र में घटते बढ़ते रहते हैं। विज्ञ पाठकों ने इस क्रिया के पृथ्वी चुम्बकत्व पर प्रभाव के विषय में अवश्य पड़ा होगा। इन कलंकों का एक अन्य क्रिया पर भी जो अणु शक्ति के पश्चात आज के वैज्ञानिक संसार में सबसे अधिक महत्त्व रखती है—प्रभाव देखा गया है। यह क्रिया है विश्वकिरणें।

विज्ञ पाठक जानते ही होंगे कि विश्व-किरणें (Cosmic Rays) अत्यन्त सूक्ष्म विद्युत्कण हैं जो विश्व के किन्हीं अज्ञात लोकों से हमारी पृथ्वी पर अवतरण करते हैं। जब ये कण पृथ्वी के धरातल से कुछ दूर ही होते हैं तभी से उन पर भू चुम्बकत्व (Earth's Magnetism) का प्रभाव पड़ना प्रारंभ हो जाता है। लम्बमान अवतरण करने वाले कणों पर भू चुम्बकत्व का प्रभाव भूमध्य रेखा के देश में सबसे अधिक होगा और क्रमशः घटता हुआ,

ध्रुवों तक पहुँचने पर नगण्य रह जायगा। किसी भी चुम्बकीय क्षेत्र का इससे समकोण बनाने वाले विद्युत्कण पर—यह प्रभाव होता है कि विद्युत्कण का पथ वक्रित हो जाता है। इस प्रकार के चुम्बकीय बल के क्रमशील प्रभाव से कम गति व शक्ति वाले विश्व किरण कण, पुन: वापिस लौट जाएंगे और केवल वही कण धरती तल को छू सकेंगे जिनकी शक्ति किसी परिमित शक्ति से अधिक हो। यह न्यूनतम शक्ति भी विभिन्न अक्षांशों के लिए भिन्न-भिन्न होगी यथा भूमध्य रेखा पर सबसे अधिक और क्रमशः घटती हुई ध्रुवों पर सबसे कम। "अतएव ध्रुवों पर तो नगण्य शक्ति के कण भी अवतरण कर सकेंगे पर भूमध्य रेखा की ओर बढ़ते हुए विश्वकिरणों का अल्प शक्तिक अंश अधिकाधिक कटता जायगा। इस प्रकार विश्व-किरणों की संख्या भी ध्रुवों से भूमध्य रेखा की ओर जाते हुए कम होती जायगी। अक्षांश और विश्व-किरणों के बाहुल्य के इस सम्बन्ध को साथ के चित्र की बिन्दुगत रेखा प्रकट करती है। पर
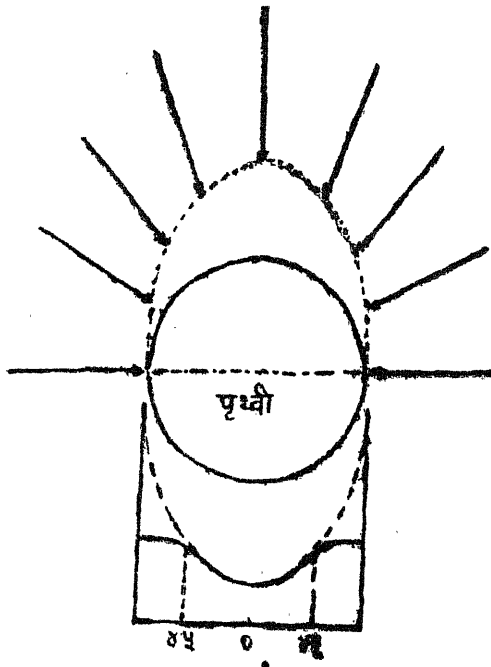
इस सम्बन्ध की जाँच करने के लिए जो प्रयोग किए गए, उनका परिणाम अभग्न रेखा प्रकट करती है। ४५° के पश्चात् प्रयोग और सिद्धान्त में जो अन्तर उत्पन्न हो जाता है उसके सम्बन्ध में दो सुझाव रखे जाते हैं। प्रथम सुझाव के अनुसार वायुमण्डल के प्रभेदन के लिए, विद्युत्कण में एक विशेष न्यूनतम शक्ति का होना परम आवश्यक है; और गणनाओं द्वारा इस न्यूनतम शक्ति का परिमाण ४५° की चरम शक्ति के बराबर है। अतएव इस शक्ति से कम शक्तिक कणों का वायुमण्डल में ही शोषण हो जायगा। इस प्रकार ४५° से पश्चात् सभी अक्षांशों के लिए चरम शक्ति बराबर है जिससे विश्वकिरणों की संख्या में कोई अन्तर उत्पन्न नहीं होता। दूसरे सुझाव के अनुसार, ४५° के अनुरूप चरम शक्ति से कम शक्ति वाले कण, सूर्य के चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा पथ से विचलित हो जाते हैं। दोनों में से किसी एक सुझाव को मान लेने से समस्या का हल हो जाता है। अस्तु।

इस प्रकार भू चुम्बकत्त्व विश्वकिरणों के अवतरण का विशेष प्रकार से नियन्त्रण करता है। यदि भू चुम्बकत्त्व, समस्त अक्षांशो पर, समान रूप से कम हो जाय तो विश्वकिरणों को पुनः प्रतिफलित करने वाला बल भी कम हो जायगा और विश्व-किरणों की संख्या में वृद्धि होगी। भू चुम्बकत्त्व के अधिक हो जाने पर कदाचित उल्टा प्रभाव होगा।

ऊपर हम निर्देश कर आए हैं कि सूर्य पर कलंकों के प्रकट होने पर भू चुम्बकत्त्व में भी परिवर्तन होते हैं। कभी-कभी तो वृहद् परिमाण में आकस्मिक परिवर्तन होते हैं। इन आकस्मिक परिवर्तनों को "चुम्बकीय तूफान" कहा जाता है।

विश्व-किरणों और भू चुम्बत्त्व के उपर्युक्त पारस्परिक सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए, यह स्वाभाविक ही था कि चुम्बकीय तूफानों के समय विश्वकिरणों की संख्या—परिवर्तन का पर्यवेक्षण किया जाता। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम १६३७ में

अवलोकन लिए गए। इन प्राथमिक अवलोकनों का श्रेय हैस व डैमलमेयर (२) तथा फोरवश (३) को है। दोनों वर्गों के परिणामों ने संकेत किया—और यह एक महत्व पूर्ण संकेत था कि चुम्बकीय क्षेत्र के घटने के साथ-साथ (अथवा अधिक पूर्णतया चुम्बकीय क्षेत्र का क्षति रेखा अंश) विश्व-किरणों की संख्या भी घटती है। यह निष्कर्ष साधारण धारणा के विरुद्ध था। क्योंकि जैसा हम ऊपर प्रकट कर चुके हैं, चुम्बकत्व के सामान्य रूप से कम होने पर विश्व-किरणों की संख्या बढ़नी चाहिए।

इन प्रयोगों से यह आशंका जागरित हुई कि विश्व किरणों के अवतरण पर चुम्बकीय तूफानों का सीधा नियन्त्रण नहीं। संभावित किया गया कि दोनों क्रियाएँ किसी अन्य समान क्रिया द्वारा प्रभावित होती हैं।

कुछ सैद्धान्तिक सूर्य कलंकों की उत्पत्ति के समय चुम्बकीय तूफानों के घटित होने का कारण ढूढ़ रहे थे। चुम्बकीय तूफानों के समय उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के प्रदेशों में, सुमेरु तथा कुमेरु ज्योतियां देखी जाती हैं। इन ज्योतियों की उत्पति उपरि-वायुमण्डल के वायव्य कणों की, शक्तिशाली कणों के सम्पर्क से उत्तेजित होने के कारण होती है इस आधार पर इनका सुझाव निर्धारित करने के लिए यह कल्पित करना आवश्यक समझा गया कि ध्रुवों पर ऋणाणुओं (Electrons) अथवा आयनों (Ions) के पुञ्ज अवतरित होते हैं। इन पुञ्जों या बादलों का सृजन सचेत सूर्य में होना माना गया है। इस सुझाव का उपयोग करते हुए चैपमैन (४) ने सिद्धान्त पेश किया कि पृथ्वी के चारों ओर इसी प्रकार के कणों की दोहरी तह लिपट जाती है। वाह्य और आन्तरिक तहों में चुम्बकत्त्व की दिशा परस्पर विपरीत होती है। जहां वाह्य तह विश्व-किरणों की संख्या पर प्रभुत्त्व रखती हैं, आन्तरिक तह भू चुम्बकत्त्व में परिवर्तन निर्धारित करती है।

हाल ही में स्वीडन के विज्ञ आल्फवीन (५) ने एक नया सिद्धान्त पेश किया है। उसकी धारणानुसार सचेत सूर्य के ऊपर से ऋणाणुओं आदि के बादल निकलते हैं और सौर चुम्बकत्त्व के कारण दिग्विशिष्ट (Polarized) हो जाते हैं। इस प्रकार बादल के अग्रगामी सिरे का आवेश (Charge) धनात्मक होता है और अनुगामी का ऋणात्मक। अग्रगामी धनात्मक सिरा पृथ्वी में ऋणात्मक आवेश प्रेरित (Induce) करता है। अनुगामी सिरा लगभग २०-२५ घण्टे पश्चात् अपना प्रभाव प्रकट करता है। इन दोनों स्थितियों में पृथ्वी क्रमशः धनात्मक और ऋणात्मक कणों को आकर्षित करती है। विश्व-किरणों में धनात्मक णों का बाहुल्यक है। अतएव प्रथम स्थिति में विश्व किरणों की संख्या में वृद्धि होगी और २०-२५ घण्टे पश्चात् इस संख्या में ह्रास होगा।

आल्फवीन का सिद्धान्त एक विचार से बड़ा महत्त्वपूर्ण हैं। सूर्यकलंकों की उत्पत्ति के कारण विश्व-किरणों की संख्या में जो परिवर्तन होते हैं, आल्फवीन उनके सूक्ष्म विवरण में जाने वाले प्रथम सैद्धान्तिक हैं। उनके विचारानुसार यह विवरण इस प्रकार है:—

प्रारम्भिक परिवर्तन	वृद्धि
अन्तिम ,,	ह्रास

इन दोनों परिवर्तनों में २०-२५ घण्टे का अन्तर होता है। यह विवरण अधिक नवीन अवलोकनों के परिणाम के अनुकूल बैठता है।

लेखक ने भी विश्व किरणों तथा सूर्यकलंकों में सम्बन्ध दर्शाने वाले यथासम्भव समस्त अवलोकनों का संकलन किया है। उनके अध्ययन से एक मनोरंजक परिणाम निकलता है और आल्फवीन के सिद्धान्त का एक निर्बल पक्ष सामने आता है। उसका दिग्दर्शन करवाने के लिए, लेखक दो विशिष्ट अवलोकनों का उल्लेख करने की याचना करता है।

प्रथम मार्च १६४२ को ७ घण्टे २७ मिनट पर (६) एक बृहद् चुम्बकीय तूफान का आकस्मिक

प्रारंभ हुआ । इधर २८ फरवरी १६४२ कवस्व-किरणों में वृद्धि अवलोकित हुई (७) और लगभग उसी समय जब कि चुम्बकीय तूफान घटित हुआ। विश्व किरणों में ह्रास देखा गया।

इसी प्रकार २५ जुलाई १६४६ को, डोलबियर व ईलियट ने (८) विश्व-किरणों में वृद्धि लक्षित की जो ग्रीनविच समयानुसार उस दिन १८ घन्टे के लगभग, अधिकतम अवस्था में पहुँची। अगले दिन, अर्थात् २६ जुलाई को, लगभग २४ घन्टे पश्चात् विश्व-किरणों में ह्रास लक्षित किया गया। उसी दिन, लगभग १६ घन्टे के समय आकस्मिक तूफान प्रारंभ हुआ (६)।

इस तरह, चुम्बकीय तूफान के समय विश्व किरणों से ह्रास लक्षित होता है और उसके लगभग २०-२५ घण्टे पूर्व वृद्धि। अतः यदि भू चुम्बकत्त्व तथा विश्व किरणों में परिवर्तन का कारण किसी सामान्य क्रिया को माना जाय तो प्रश्न उठता है कि चुम्बकीय परिवर्तन के लगभग २०-२५ घण्टे पूर्व घटित होने वाली विश्व किरण वृद्धि को किस आधार पर समझाया जाय ?

जिस समय सूर्य की काया पर कलंक प्रकट होते हैं, उस समय कलंकों पर रक्त वर्ण-व ह्नियां भी जिनकी ऊचाई कभी कभी एक लाख मील से भी अधिक होती है प्रकट होती है। प्रचलित धारणाओं के अनुसार ऋणाणुओं तथा आयनों के मेघ इन्हीं वह्नियों से उत्पन्न होते हैं। चुम्बकीय तूफान इन ज्वालाओं के लक्षित होने के प्राय: २०-२५ घन्टे पश्चात् घटित होते हैं। उपर्युक्त दो दृष्टान्तों में से, प्रथम वह्नि दर्शन २८ फर्वरी को ११ घं० ५४ मि० पर हुआ अर्थात् चुम्बकीय तूफान के घटित होने के १६ घण्टे २७ मिनट पूर्व (१०)। दूसरे दृष्टान्त के सम्बन्ध में सौर वह्नि का दर्शन २५ जुलाई को १६ घं० ३० मि० पर हुआ और तूफान इसके २६½ घण्टे पश्चात् (११)। इस प्रकार विभिन्न क्रियाओं का समय निम्न तालिका द्वारा प्रकट किया जाता है :—

	वह्नि-दर्शन	वि: कि: वृद्धि	वि: कि: ह्रास	चुम्बकीय तूफान
प्रथम दृष्टान्त	२८ फर्वरी ११ घं० ५४ मि०	२८ फर्वरी १४ घ० ३० मि०	१ मार्च लगभग ५ घ०	१ मार्च ७ घं० २७ मि०
द्वितीय दृष्टान्त	२५ जुलाई १६ घं० ३० मि०	२५ जुलाई १८ घं०	२६ जुलाई लगभग १८ घं०	२६ जुलाई १६ घं०

इस तालिका से यह स्पष्ट होता है कि विश्व किरणों की प्रारंभिक वृद्धि का आधार चुम्बकीय तूफानों को नहीं माना जा सकता। पृथ्वी से सूर्य का अन्तर ६ करोड़ मील से भी अधिक है। सामान्य गणनाओं के अनुसार ऋणाणु-बादल अथवा आयन बादल पृथ्वी तक पहुँचने में कम से कम २०-२५ घण्टे अवश्य लेंगे। विश्व किरणों में वृद्धि इससे कहीं पहिले घटित होती है।

आलफवीन के अतिरिक्त चैपमैन आदि सभी सैद्धान्तिकों की धारणाएं ऋणाणु-बादलों को ही आधार मानतीं हैं। अतएव उपरोक्त तर्क के अनुसार उनमें से कोई भी प्रारंभिक वृद्धि का सुझाव नहीं

रख सकती। निस्सन्देह इस वृद्धि का आधार कोई सौर क्रिया है और जिस साधन द्वारा इसका प्रभाव पृथ्वी पर पड़ता है, उसकी गति इतनी अधिक होनी चाहिये कि प्रारंभिक वृद्धि ठीक समय पर घटित हो। इस दृष्टिकोण से तो एक ही मान्य कल्पना शेष रह जाती है। वह यह कि इस वृद्धि का आधार पराकाशनी (Ultra voilet) किरणों को माना जाय। इस आधार पर लेखक की धारणा यह है:—

(क) प्रारंभिक वृद्धि, येन केन प्रकारेण, पराकाशनी किरणों द्वारा संचालित होती है।

(ख) तदनुगामी ह्रास, संभवतया ,सौर आयन-बादलों द्वारा ही उत्पन्न होती है।

यह धारणा कहां तक शुद्ध है, यह तो भविष्य में ली गई गणनाओं द्वारा ही निर्धारित किया जायगा। इन्हीं अवलोकनों के परिणाम इस धारणा की सूक्ष्म रूप रेखा खींच सकेंगे।

उल्लेख :—

(१) लेखक-सरस्वती-अक्तूबर १६४७-पृ० ३४१
(२) हैस व डैमलमेयर-नेचर (१४०,३१६,१६३७)
(३) फोरबश-फिजिकल रिव्यू (५१,११०८,१६३७)
(४) चैपमैन-नेचर (१४१,४२३,१६३७)
(५) आल्फवीन-नेचर (१५८,६१८,१६४६)
(६) डुपीरियर-नेचर (१४६,५७६,१६४२)
(७) डुपीरियर-प्रोसीडिंग्ज़ आफ दी फीज़िकल सोसाइटी (५७,४६४, १६४५)
(८) डोलबियर व ईलियट-नेचर (१५६,५८, १६४७)
(६) पब्लिकेशनज़ आफ दी एस्ट्रानोमिकल सोसाइटी आफ पैसिफ़िक (५८,३१५.१६४६)
(१०) नेचर (१४६,५७६,१६४२)
(११) आब्ज़र्वेट्री (दिसंबर १६४६)

विद्युत युक्त तथा कुछ चक्कर दार आँधियाँ

लेखक—श्री जगदेव सिंह; काशी-विश्व-विद्यालय

अभी कुछ ही समय पहिले इँगलैंड से समाचार मिला था कि २२ फीट ऊँची बर्फ गिरने से सैकड़ों मकान गिर गये और हजारों आदमियों की जानें गई। उसके कुछ ही समय बाद यह भी ज्ञात हुआ कि जोरों की आँधियों से, जिनका वेग ६६ मील प्रति घँटे से भी अधिक था, बहुत कुछ हानि हुई। इन विषयों का ज्ञान मनुष्य जाति के लिये बहुत ही आवश्यक है। यही सोच कर यह विषय इस बार चुना गया है।

पहिले लेख में फ्रांट तथा साइल्कोन के विषय में लिखते समय (विज्ञान) यह बतलाया गया था कि किसी भी साइल्कोन में हानि कारक भौतिक क्रियायें, अधिकतर केवल 'फ्राँटों' पर ही हुआ करती हैं। विशेष कर ठंढे फ्रांट पर वायु की गति घटती बढ़ती रहती है और ऐसी वायु को 'स्क्वाल' (Squall) कहते हैं। साइल्कोन जिस रास्ते से होकर जाता है, वह रास्ता विशेष कर वह भाग जिसमें कम दवाव वाला भाग जाता है, 'ट्रफ़' (Trough) कहलाता है। इसकी आकृति एक घाटी सी होती है घाटी के बीच का भाग तो कम दवाव दिखलाता है और ऊपर का भाग अधिक दवाव। उस रास्ते को जहां से होकर 'स्क्वाल' जाता है 'स्क्वाल-लाइन' कहते हैं। ठंडे फ्रांट पर जो निम्न-घन होते हैं उनमें विद्युत-घन बहुत ही महत्व रखता है। इसके कारण कभी-कभी वर्षा के साथ-साथ ओले भी गिर जाते हैं जो भारत वर्ष में बेचारे गरीब किसानों की खेती को बहुत हानि पहुँचाते हैं।

विद्युत-घन बहुत ही अस्थिर बादल है। यह पहिले ढेर- निम्न (घन राशि) (Cumulus) से आरम्भ होता है। इस अवस्था में इसके नीचे का भाग चौड़ा होता है और ऊपर का भाग गोभी के फूल की आकृति का (चित्र १)। इसमें कुछ ऊपर
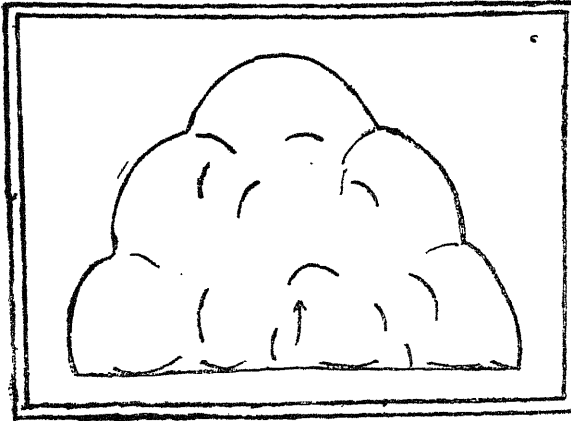
चित्र सं० १

की ओर सम्वाहक प्रवाह होता है, जिसके कारण इस की यह आकृति हो जाती है। कुछ समय के उपरान्त यह ऊपर की ओर और बढ़ कर लम्बा हो जाता है। इस अवस्था में इसको बृहत् घन राशि (Large Cumulus) (चित्र २) कहते हैं। इसी अवस्था में इसके अन्दर बिजली की क्रिया आरम्भ हो जाती है। इसमें धीरे-धीरे बिजली इकट्ठी होती जाती है। लोगों का अनुमान यह है कि ऊपर जाती हुई साम्वाहक धाराओं के कारण पृथ्वी के आकर्षण से नीचे गिरती हुई बड़ी-बड़ी बूँदें बिखर जाती हैं। इन बिखरे हुए कणों में बड़े कण तो धन विद्युत ले लेते हैं तथा छोटे कण ऋण विद्युत। साथ ही साथ वायु के कण भी ऋण विद्युत ले लेते हैं। इस प्रकार बादलों में दोनों प्रकार के विद्युत उपस्थित रहते हैं। जब विद्युत-घन पूर्ण रूप से तय्यार हो जाता है, तो इसका ऊपरी भाग फैल कर निहाय की आकृति का (चित्र ३) हो जाता है। सबसे ऊपर का भाग केश-उच्च घन (Cirrus) सा दिखलाई देता है। यद्यपि यह उच्च घन नहीं होता। इसी कारण से उस भाग को झूठा केश-उच्च घन (False Cirrus) कहते हैं।

जब दो भिन्न-भिन्न प्रकार की बिजली वाले बादल एक दूसरे के समीप आते है। तो एक दूसरे से मिल कर अपना दुख सुख की गाथा एक दूसरे को सुनाते हैं। और अपनी सम्पति का फिर से बटवारा करते हैं, जो हमें 'तड़क' तथा 'चमक' के रूप में दिखलाई देती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि धन-विद्युत वाले बादल पृथ्वी के समीप आते हैं। तो अपनी कुछ सम्पत्ति पृथ्वी को दे देते हैं। अथवा यों कहिये कि पृथ्वी इस सम्पत्ति को छीन लेती है। आखिर दूसरे से मिली हुई सम्पत्ति कब तक रक्खी जा सकती है। इस छीन झपट में हानि तो दूसरों की होती है। कभी-कभी ऊँचे नीचे वृक्ष
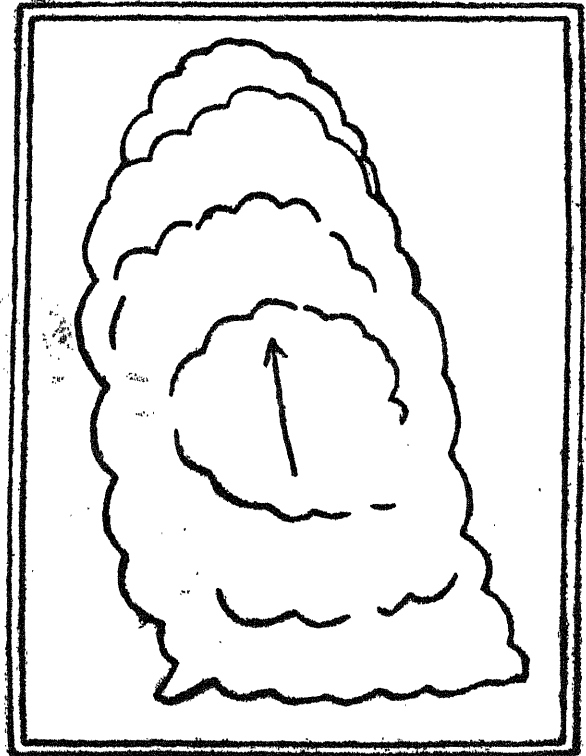
चित्र सं० २

तथा ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें इनके शिकार बनती हैं। वृक्षों में इतनी गर्मी पैदा हो जाती है कि वे जल कर गिर जाते हैं। कितने मनुष्यों पर भी इनका आक्रमण होता है। परन्तु इतनी बात अवश्य है कि अपने शिकार में जब तक इन्हें बड़ी-बड़ी वस्तुयें

चित्र सं० ३

मिलती रहती हैं, तब तक ये छोटों को हानि नहीं पहुँचाते। इसी कारण से ताड़ के वृक्ष के ऊपर बिजली अधिक गिरती है।

विद्युत-घन में जो चमक दिखलाई देती हैं, वह दो प्रकार की होती है। एक तो नदी की शाखाओं की भाँति (चित्र ४) तथा दूसरी चादर की भाँति फैली हुई। एक बार पहिली प्रकार की चमक का चित्र लेकर कुछ नदियों के चित्रों में मिला दिया गया था। किसी के लिए भी यह बताना बहुत कठिन था कि यह चित्र किसी नदी का है अथवा विद्युत की चमक का। दूसरी प्रकार की जो चमक होती है वह प्रकाश का बादलों से परावर्तन(reflections) के कारण है। यदि उस प्रकाश का रश्मि चित्र (Spectrum) लिया जाये तो उसमें वायु का रश्मि चित्र पाया जाता है।
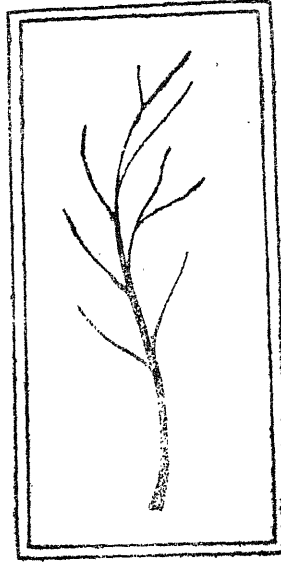
चित्र सं० ४

विद्युत-घन (Cumulo Nimbus) के ऊँचे भाग में कभी-कभी ताप इतना कम हो जाता है कि इसमें ओले बन जाते हैं। जब तक ताप—२०° से० से अधिक रहता है, तब तक ओले का भाग, जो उसमें बनता है, पारदर्शक (Transparent) होता है, परन्तु जब यह—२०° से० से भी कम हो जाता है, तब ओले का अर्ध भाग पारदर्शक हो जाता है। यदि बीचो बीच से किसी ओले को काटा जाय तो उसमें पारदर्शक तथा अर्ध पारदर्शक कुंडलियाँ मिलती हैं। चित्र ५ में यह दिखलाया गया है कि ये कैसे बनते हैं। अब रेखा —२०° से० का ताप दिखलाती है। जब वायु के वेग के कारण ओला ऊपर चला जाता है, तब उसका भाग अर्ध पारदर्शक बन जाता है और जब पृथ्वी के आकर्षण से नीचे चला आता है तो यह पारदर्शक हो जाता है। इस प्रकार इन कुंडलियों को गिन कर यह वह पता लगाया जाता है कि कितनी बार इनको अपने

पड़ोसियों से सँघर्ष करना पड़ा। ये मेले बादल के बीच वाले भाग में पाये जाते हैं, क्योंकि इसी भाग में सम्वाहक प्रवाह ऊपर की ओर होता है।
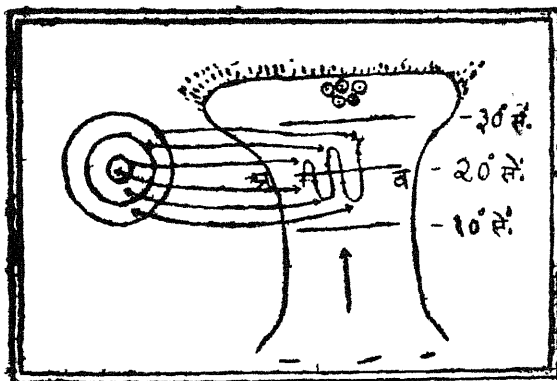
चित्र ५

वायुयान के चालकों को यह शिक्षा दी जाती है कि वे अपने वायुयानों को ऐसे बादलों में न जाने दें, क्योंकि ऐसा करने से सम्वाहक प्रवाह के कारण उनके पँखों के टूटने का भय रहता है। कभी-कभी कुछ बादल वायुयान चालकों के लिये उस समय लाभ दायक होते हैं, जब उनके दुश्मनों के ऊपर चढ़ाई करनी होती है क्योंकि ये अपने वायुयान को उन बादलों में छिपा सकते हैं। परन्तु एक बात याद रखने की है कि विद्युत्घन में विद्युत के कारण वायुयानों को कोई विशेष हानि नहीं होती। अधिक से अधिक यहीं देखा गया है कि उनके बे तार की तारवर्की (wireless) के कुछ तार जल गये हैं।

इस प्रकार की विद्युत युक्त जो आँधियाँ आती हैं, वे अधिकतर वायु में अस्थिरता के कारण बन जाती हैं। जब दो या अधिक प्रकार की वायु जो भिन्न-भिन्न, स्थानों से हो कर आती है और जिनके ताप दबाव तथा आर्द्रता भी भिन्न-भिन्न होते हैं एक दूसरे के ऊपर हो जाते हैं तो किसी किसी दशा में वायु में अस्थिरता आ जाती है और किसी भी ट्रिगर के प्रयोग से उस अस्थिरता से बादल बनाया जा सकता है। जैसे सूर्य की गर्मी अथवा किसी ठंडी वायु का आगमन ऐसे बादलों के बनने के काम में सहायक हो जाते हैं।

बंगाल में गर्मी के दिनों में एक इसी प्रकार की आँधी आती है, जिसको 'काल-वैशाखी' (Norwester's) कहते हैं। इससे बहुत कुछ हानि भी हो जाती है। यह दोपहर के बाद अक्समात आंधी और पानी के रूप में पाई जाती है। इसका नाम यह इसलिये रक्खा गया है कि बैशाख में ये एक प्रकार की आपत्ति मानी जाती है। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि हिमालय पर्वत की ओर से ठंढी तथा सूखी वायु आती है और बंगाल की खाड़ी से गर्म तथा नम। इन दोनों से वायु में अस्थिरता आजाती है। दोपहर के बाद सूर्य की गर्मी से पृथ्वी की सतह की वायु सम्वाहक प्रवाह के रूप में ऊपर चलती है जो ट्रिगर का काम कर देती है। दोनों वायुओं के मिलने से, (जो अब तक एक दूसरे के ऊपर थीं), यह भयंकर रूप प्रकट होता है। कभी कभी पर्वत की ओर से आई हुई ठंढी वायु (Catabatri Wind) भी ट्रिगर का काम कर देती है।

गर्मी के दिनों में गङ्गा जी की पेटी में अधिकतर धूल से भरी आँधियां आ जाती हैं। इनको अंग्रेजी में डस्ट स्टार्म (Dust Storm) कहते हैं। ये आँधियाँ दो प्रकार की होती हैं। कुछ तो एक मात्र दबाव की न्यूनता तथा अधिकता से पैदा होती हैं, और कुछ वायु में अस्थिरता से। वायु में अस्थिरता वाली आँधियाँ ठीक-ठीक काल बैशाखी की भांति होती हैं। इनमें धूल की मात्रा अधिक होती है तथा जल की मात्रा कम। इसी कारण इनसे आम तौर पर वर्षा नहीं होती, परन्तु कभी कभी कुछ बूँदें पड़ जाती हैं। इनमें धूल के कणों में भी बिजली आजाती है। जब कभी ये आंधियां दूर से दिखलाई पड़ती हैं तो पहिले क्षितिज धुंधला दिखलाई देता है। धीरे धीरे ऊँचाई बढ़ती जाती

है। इसके समीप आजाने पर सब कुछ धुंधला हो जाता है। कभी कभी तो धुंधलापन इतना अधिक हो जाता है कि एक गज से अधिक दूर की वस्तुएँ दिखलाई नहीं पड़तीं। यों तो ऐसी आंधियाँ हर साल आती हैं, परन्तु ऐसा कहा जाता है कि गाजीपुर के आसपास १६१६ ई० में एक बहुत बड़ी आंधी आई थी, जिसको आसपास के देहातों में "बड़की-आंधी" के नाम से पुकारते हैं।

कुछ विद्युत युक्त आंधियों से साथ साथ वाटर-स्पाउट (Water Spout) अथवा टारनेडो (Tornado) पाये जाते हैं। जो बहुत ही खतरनाक समझे जाते हैं। यह हम लोग अपने घरों में सुनते हैं कि कहीं कहीं कभी कभी वर्षा के साथ मछलियां भी गिरती हैं। कभी कभी यह भी सुनने में आता है कि कुछ बड़े-बड़े जीव (घोड़ा, बैल आदि) भी आंधियों में उड़ कर मीलों दूर जा गिरते हैं। इन सब बातों को समझने के लिये हमें टारनेडो के विषय में जानकारी कर लेना हित कर होगा। कुछ प्रकार के बादलों के साथ 'फनेल' की आकृति का बादल दिखलाई देता है, जिसके नीचे का भाग पतला तथा ऊपर का भाग चौड़ा होता है (चित्र सं६) यह पूरा बादल बहुत वेग से चक्कर काटता रहता है। इसके भीतर वायु का दबाव केवल १४ इञ्च के लगभग होता है। दबाव कम होने के कारण जहां कहीं भी इसे जल मिलता है, यह उसको खींच कर अपना पेट भर लेता है। जल के साथ साथ जल-जन्तुओं को भी निगल जाता है। यदि जल अथवा जल-जन्तु न मिले तो इसका प्रहार दूसरों पर भी हो जाता है। बैल, घोड़ा अथवा मनुष्य इसके इस प्रकोप के शिकार बनते हैं। कभी कभी तो मकानों के छत ही साफ हो जाते हैं। जब तक इसका प्रकोप शान्त नहीं होता यह कुछ भी करने को तय्यार हो
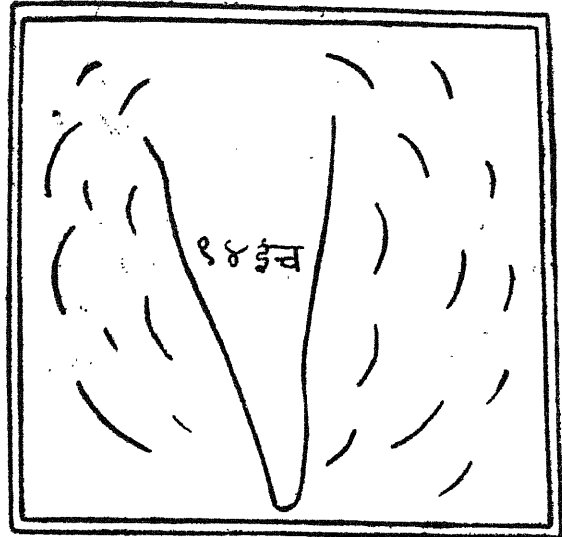
चित्र ६

जाता है। टारनेडो तथा वाटर-स्पाउट में अन्तर केवल यह होता है कि टारनेडो में वायु का दबाव बहुत ही कम होता है और यह अधिक हानि पहुँचाता है।

इस समय आवश्यकता इस बात की है कि इन भयङ्कर आंधियों की शक्ति विन्डमिल के द्वारा अथवा किसी दूसरे प्रकार से इकट्ठा कर लिया जाये ताकि उस शक्ति का उचित प्रयोग हो सके। ऐसा सम्भव है कि यदि उस शक्ति से जल उठा कर किसी स्थान में ऊपर इकट्ठा कर लिया जाये तो उस जल की शक्ति को कार्यान्वित कर सकते हैं।

काली मिरच

(रोचक ऐतिहासिक विवेचन)

ले० श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार, हिमालय हर्बल इंस्टीट्यूट, गुरुकुल काँगड़ी, हरिद्वार।

काली मिरच, सोंठ और पिप्पली ये तीन चरपरी चीजें त्रिकटु के नाम से भारतीय चिकित्सा में बहुत विस्तृत रूप से उपयोग में आती है। काली मिरच और पिप्पली के रंग और गुण में बहुत समानता है। ये दोनों चीजें मसालों में एक दूसरे के स्थान पर भारत में तथा भारत के बाहर भी प्रयुक्त होती रही हैं। बनस्पति शास्त्र की दृष्टि से भी ये दोनों एक ही गुण की दो जातियों के पौदे हैं। ये दोनों चीजें जब पहले-पहल विदेशों की मण्डियों में बिकने गईं तो लोगों ने समझा कि ये दोनों चीजें मिरच के दो भेद हैं, जिनमें से एक तो गोल है और दूसरी लम्बी। लाल मिरच का ज्ञान उस समय तक संसार को नहीं हुआ था। काली मिरच केवल भारत में ही पैदा होती थी। यहाँ से पिप्पली और और काली मिरच जिस-जिस देश को गई वहाँ के निवासियों ने संस्कृत के पिप्पली शब्द के आधार पर ही काली मिरच का नाम रख दिया। अरबी में उसे फिल-फिल कहते हैं। पुरानी अरबी में क्योंकि पे होता ही नहीं था इसलिये उस भाषा में पिप्पली का विकृत रूप फिल् फिल् बन गया। मलाबार के प्रदेश में काली मिरच बहुत पैदा की जाती थी इस लिये काली मिरच के नाम पर ही उस प्रदेश को, ईरानी और अरब लोग, 'बलाद-ए-फिल् फिल्' कहने लगे थे। लैस्सन (१,२७८) ने नोट किया था कि ग्रीक नाम पेपरी और लैटिन पाइपर सीधे भारतीय शब्द पिप्पली को ही ले लिया गया है। लैटिन में काली मिरच को पाइपर नाइग्रम (नाइग्रम-काली) और पिप्पली को पाइपर लौंगम (लौंगम-लम्बी) कहते हैं। समस्त संसार के वैज्ञानिकों में अब ये दोनों नाम अपना लिये गये हैं।

काली मिरच के व्यापार की प्राचीनता उतनी सम्पक्तया नहीं दिखाई गई जितनी दूसरे मसालों की। मिश्र के स्मारकों पर खुदी हुई चीजों में यह है कि नहीं यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। हिब्रू की पुस्तकों में यह अज्ञात है। न ही गॉस्पेह्स के पुदीना, सौंफ और सोये' में इसको कोई स्थान प्राप्त है। हेरोडोटस ने इसके साथ किसी प्रकार की लोक गाथा का सम्बन्ध नहीं दिखाया। थियोफ्रेस्टस चौथी शताब्दी पूर्व में इसे दवा के रूप में जानता था और डिस्चेस्कोरोयडिस तो यह भी जानता था कि काली, सफेद और लम्बी मिरच (पिप्पली) में भेद है। महा वग्ग (६/१६/१) ने इसे त्रिकटु के रूप में, ज्वर और अजीर्ण में प्रयोग किया है।

आजकल हम जैसे जहाज का परिमाण बताने के लिए कहते हैं कि यह जहाजइतने टन का है, उसी तरह पहले चीनी जहाजों की समाई को बताने के लिये यह बताया जाता था कि इस में मिरच की कितनी टोकरियां आ जाती हैं। मार्को पोलो ने ऐसे चीनी जहाज बताये हैं जिनमें पांच हजार से छह हजार तक मिरच के टोकरे रख लिये जाते थे।

मेसर मार्को (१२७१-१२६५) को चीन के चुगीं के एक उच्च राजकीय अधिकारी ने बताया था कि किन्से (Kinsay) के शहर में प्रतिदिन खर्च होने वाली काली मिरच का परिमाण तेंतालीस भार था। प्रत्येक भार २२३ पौण्ड के बराबर होता था।

इस पर टिप्पणी करते हुए कॉडियर (१६२६) ने लिखा है कि चीनियों की मिरचें और इसी तरह के दूसरे मसालों को खाने की अधिक आदत अब बदल गई है। निलिपम्स (मिडल किंग्डम, जिल्द २

पृ० ४ ६,४०८) के अनुसार चीनी लोग आजकल बहुत कम मसाले इस्तेमाल करते हैं। काली मिरच को तो वे ज्वरहर के तौर पर फाण्ट के रूप में बरतते हैं, और वह भी कुछ साल पहले की तुलना में ज्वरहर रूप में भी इस का प्रयोग बहुत कम हो गया है। इस पर मूल (Moule) लिखते हैं कि मिरच को न केवल डाक्टरों ने ही उपेक्षित कर दिया है परन्तु सामान्य लोगों ने भी यह उपेक्षित हो गई है। एक या दो महीने पहले शहर में एक छाबड़ी वाले की दुकान पर से गुजरते हुए मैंने एक लड़की गाहक को चिल्ला कर कहते हुए सुना, 'ठीक-ठीक बताइये कि तुमने इसमें मिरचें तो नहीं डाली।' उस लड़की ने काली मिरच की ही अनुपस्थिति चाही हो यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। भारत में बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जो छाबड़ी वाले से खाने की चीज खरीदते समय उसमें लाल मिरच न डाली होने का निश्चय कर लिया करते हैं। इसी तरह, उस लड़की ने भी सम्भवतः लाल मिरच के लिए ही पूछा हो।

दक्षिणीय चीन के एक पुराने बन्दरगाह जैतोन से काली मिरच का व्यापार बहुत होता था। मार्को पोलो (जिल्द २, पृ० २३५) लिखता है कि युरोप के इसाई देशों में भेजे जाने के लिये सिकन्दरिया (Alexandria, मिश्र की बन्दरगाह) या दूसरी जगहों पर यदि मिरच का एक जहाज आता है तो जैतोन के बन्दरगाह में ऐसे सौ जहाज, और इससे भी अधिक, आते हैं, क्योंकि यह संसार की सब से बड़ी दो व्यापारिक बन्दरगाहों में से एक है।

चीनी सम्राट् उस समय मिरच पर चवालीस प्रतिशतक, अगर, काष्ठ, चन्दन, और दूसरी अधिक जगह घेरने वाली चीजों पर चालीस प्रतिशतक कर लेता था।

१५१५ में कोचीन से चीन के सम्बन्ध में लिखते हुए गिओवान्नी द एम्पोली (Giovanni d' Empoli कहता है,'इन भागों से जहाज वहाँ मसाले ले जाते हैं। चीन में सुमात्रा से प्रति वर्ष साठ हजार कैण्टर (एक कण्टर Canter = १३० पौण्ड) मिरच जाती है और को चीन तथा मलाबार से पन्द्रह या बीस हजार कैण्टर। एक कैण्टर की कीमत पन्द्रह से बीस डुकत (ducats) तक थी। डुकत एक इटालियन सिक्का था जो सोने और चांदी दोनों का हुआ करता था। सोने का एक डुकत हमारे चार रुपये के बराबर और चांदी का दो रुपये के बराबर होता था।

काली मिरच के अतिरिक्त सोंठ (१), जावित्री जायफल, सुगन्धित पदार्थ, अगर, मखमल, योरोपियन सोनेके तार, मूंगे, ऊन, आदि भी चीन को जाते थे। १५१७ में गाहवानो (Gahvano) ने फर्नाओ पेरेज (Fernao parez) के चीन में साहसों का उल्लेख करते हुए कहा था 'उस ने पेसम (Pacem) में मिरच का एक जहाज लिया था, चीन में यह व्यापार का मुख्य पदार्थ था।' मार्सडन के सुमात्रा के इतिहास से स्पष्ट है कि उन्नीसवी सदी तक भी थोड़े बहुत परिमाण में यह चीन को भेजी जाती रही थी। सुमात्रा से ईस्ट इण्डीज कम्पनी के बगीचों से औसत बाहर सौ टन निर्यात होती थी। इसमें से अधिक परिमाण तो युरोप को जाता था और शेष चीन को चला जाता था।

मिश्र इसे जानता था। सम्भवतः टालेमीज (Ptolemies)के समुद्रीय व्यापार से प्राप्त करता था सीरिया को यह फारस की खाड़ी से टायर को जाने वाले व्यापारिक काफलों से मिलती थी। एशिया माइनर, सीरिया और मिश्र को जीतने के के बाद रोम वासी उसे प्राप्त करने लगे थे और रोम उस के लिए बड़ी भारी मण्डी बन गई थी। यह कल्पना युक्ति संगत है कि बेबिलोनिया और फारस की खाड़ी में मसालों में काली मिरच की मांग सामान्यता अधिक थी जैसे कि मिश्र में दाल चीनी की अधिक मांग थी। डेरियस के आधीन पर्शियन साम्राज्य के विस्तार के साथ इस की मांग बहुत बढ़ गई थी। यह व्यापार समुद्र के रास्ते था, जमीन के

रास्ते नहीं। यह भी कहा जा सकता है कि रोम में कालीमिरच की माँग पैदा होने से पहले चीन में इस की स्थिर मांग थी और यही कारण था कि दूसरी सदी ईस्वी पूर्व में और सम्भवतः उससे पहले भी मलाबार तट पर चीनी जहाज आया करते थे।

भारत और रोम के बीच यह व्यापार का मुख्य पदार्थ था। पश्चिम की ओर जाने वाले औसत माली जहाजों में शायद तीन-चौथाई काली मिरच भरी होती थी। रोमन रसोई की अत्यधिक महगी चीजों में यह एक थी। प्लीनी ने इसका मूल्य पन्द्रह डिनारी प्रति पौण्ड बताया है।

सेण्ट सिल्वेस्टर के अधीन गिरजे को सम्राट कान्स्टेण्टाइन द्वारा दिये गये उपहारों में मंहगे बरतन, सुगन्धित गोंदें, मसाले, लौबान, नड गूगल, बोल, दाल, चानी, कपूर और मिरच थी।

इंग्लैण्ड में इसे सब मसालों से अधिक पसन्द कियाजाता था। पीर्स प्लौमैन(Piers Plowman ५,३१०-१३) में एक पेटू भटियारन से पूछता है–'तुम्हारे पास गरम मसाले हैं' काली मिरच एक पौण्ड लहसुन और सौंफ भी है या नहीं ?' जैसे इन के बगैर वह उसके यहाँ खाना ही नहीं खायेगा।

१६२३ में इंग्लैण्ड में दो लाख पौण्ड काली मिरच गई थी। उसका ⅘ वाँ का भाग उसने बारह महीनों के अन्दर ही निर्यात कर दिया था। १६२०में इंग्लैण्ड में काली मिरच का भाव एक शिलिंग आठ पेंस प्रति पौण्ड था। व्यापारी लोग उन दिनों पूर्व में ढाई पेंस की एक पौण्ड काली मिरच खरीदा करते थे। कमर्शिचिल पॉलिसि आफ दि मुगहस, डी० पन्त, २। ३०, पृ० २७५) रोगर्स की हिस्ट्री आफ एग्रिकलचर एण्ड प्राइसेज इन इंग्लैण्ड, दिखाती है कि पुर्तगलियों द्वारा केप मार्ग तलाश करने के ठीक पहले ही एक पौण्ड मिरच का मूल्य दो शिलिंग था जो एक तरखान की चार दिन की मजदूरी बनती थी।

टैवर्नीर (Tavernier) ने देखा था कि मिरच मुख्यतया ट्यूटिकोरीन और कालीकट में बेची जाती है और कुछ रत्नागिरी तट पर राजापुर से भी आती है। वह कहता है कि मलाबार के लोगों से जो डच मिरचें खरीदते हैं वे उन्हें सिक्के के रूप में कीमत नहीं देते परन्तु रुई, अफीम आदि व्यापारिक चीजें बदले में दे देते हैं। यह मिरच वही है जो युरोप को निर्यात की जाती है। काली मिरचों का मूल्य तो काफी होता ही है पर व्यापारिक चीजों के परिवर्तन में लेने पर वे सौ फी सदी मुनाफा ले लेते हैं। टैवर्नीर ने पुर्तगालियों द्वारा कोचीन में रखे हुए एक बड़े भण्डार का भी जिक्र किया है जिसे' काली मिरच का घर' (Pepper House) कहते थे।

ओडोरिक ने मिरचों की रक्षा करने वाले सांपों का भी वर्णन किया है। सर जोहन मैण्डेविल्ले के उल्लेख में कथा और भी स्पष्ट है। 'उस देश की अधिक गरमी और मिरचों के कारण उस देश में सांपों और दूसरे कीड़ों की बहुत सी किस्में होती हैं और कुछ लोग कहते हैं कि जब हम मिरचें तोड़ने लगते हैं तो आग जला देते हैं जिस से सांप जल जांय और भाग जांय।' सर जान मैण्डेविल्ले कहते हैं कि यह बात गलत है। क्योंकि यदि वे फल धारण करने वाली लताओं को जला दें, मिरचें जल जांयगी और इससे उन के सब गुण नष्ट हो जाँयगे, जैसे कि दूसरी चीजों के बारे में होता है। ऐसा करने से उन्हें स्वंय ही बहुत हानि होगी और लगी हुई आग को वे कभी बुझा नहीं सकेंगे। लेकिन सांपों से बचने के लिए वे अपने शरीर को घोंघे और दूसरी चीजों के रस से पोत लेते हैं। सांप और दूसरे कीड़े इससे घृणा करते हैं और भाग जाते हैं।'

हीरे जवाहरात और सोने जैसी बहुमूल्य चीजों की रक्षा करने के लिए नागदेवों की ख्याति बहुत सुनी जाती है। क्योंकि काली मिरच भी बहुत मूल्यवान चीज हो गई थी इसलिए लोक गाथाओं में उस के इष्ट देव भी सांप मान लिये गये थे। वास्तव में यह बात सत्य नहीं है कि काली मिरच की लताओं पर सांप चिपटे रहते हैं।

मार्को पोलो ने अपने यात्रा विवरण में फिलिपाइन मोलक्का आदि के द्वीप समूहों के लिए लिखा था कि उन द्वीपों में बरफ की तरह सफेद मिरच उगती है, और कालीमिरच भी बड़े परिमाण में होती है। इन द्वीपों की बहुमूल्य चोजें, सोना, कीमती पत्थर और सब प्रकार के मसाले अचरज पैदा करते हैं। मोलक्का द्वीप समूहों को तो अब भी मसाले के द्वीप (spice islands)कहते हैं। मार्को पोलो(जिल्द २ पृष्ठ २७२) बताता है कि जावा का महान् द्वीप अत्यन्त समृद्धिशाली है जिसमें कालीमिरच, जायफल, जटामांसी, गैलिंगल, कबाब चीनी, लौंग और सब प्रकार के दूसरे मसाले पैदा होते हैं।' कोलम् या कोइलम के महान् राज्य में सब जगह कालीमिरच बड़े पैमाने पर बोई जाती है और मैं आप को बताता हूँ कि किस तरह मिरच के वृक्ष जंगली नहीं होते परन्तु खेती किये जाते हैं। उन्हें नियमित रूप से बोया और सींचा जाता है। मई,जून, जुलाई महीनों में मिरच इकट्ठी की जाती है (वही, जि० २ ३७५) एलि (Eli वर्तमान कन्नानूर) के राज्य में मिरच, सोंठ और दूसरे मसाले पैदा किये जाते हैं (पृ० ३८५)।

वर्गीकरण के सिद्धान्त

तथा जन्तु जगत में मेंढक का स्थान

लेखक श्री चम्पन स्वरूप,गुरु कुल काँगड़ी, सहारनपुर

संसार में अनेक प्रकार के जन्तु देखने को मिलते हैं। यदि हम किन्ही दो जन्तुओं को लेकर उनकी पारस्परिक तुलना करें तो हम देखेंगे कि उनमें अनेकों सादृश्य हैं और अनेकों विभिन्नताएँ भी। खरगोश की मनुष्य से तुलना की जाये तो ज्ञात होगा कि वह कई बातों में मनुष्य के समान है। मनुष्य के समान खरगोश की त्वचा पर बाल तथा उसमें दो हाथ और दो पैर होते हैं। साथ-साथ वह मनुष्य से बहुत सी बातों में भिन्न भी है। इस विभिन्नता का सबसे सरल उदाहरण उसकी पूंछ है जो कि मनुष्य में नहीं होती। संसार के सब प्राणियों में कुछ न कुछ सम्बन्ध होता है। सम्बन्ध की घनिष्ठता सादृश्य के साथ बढ़ती और विभिन्नता के साथ घटती जाती है। स्पष्ट है कि दो खरगोशों में या दो मनुष्यों में पारस्परिक सम्बन्ध उस सम्बन्ध की अपेक्षा अधिक घनिष्ठ है जो कि एक खरगोश और एक मनुष्य के बीच होता है। इसी प्रकार रचना सादृश्य के आधार पर मेंढक और खरगोश में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है जितना खरगोश और बिल्ली में। इसी सम्बन्ध के अनुसार प्रत्येक जन्तु का जन्तु जगत में एक विशेष स्थान होता है जो कि दूसरे जन्तुओं से उसके सम्बन्ध को बतलाता है। इस लेख में हम देखेंगे कि जन्तु शास्त्र की दृष्टि से मेंढक का यह विशेष स्थान क्या है। इस स्थान को जानने के लिये जन्तुओं के भेद ,गण, जाति, वंश वर्ग श्रेणी और समुदाय तथा उनके वर्गीकरण आदि का ज्ञान होना आवश्यक है।

वर्गीकरण क्या है ?—जन्तुओ, वनस्पतियों या अन्य किन्हीं भी वस्तुओं के वर्गीकरण का अर्थ यह है कि उनको ऐसे समूहों या उपसमूहों में विभक्त या क्रमबद्ध कर दिया जाये कि प्रत्येक समूहों के सदस्यों में कुछ न कुछ सादृश्य और समानताएं हों और प्रत्येक समूह की विशेषताओं की ठीक-ठीक व्याख्या की जा सके। प्रकृति की व्यवस्था को समझने के लिये वर्गीकरण परम आवश्यक और सरलतम रीति है। वस्तुओं में समानताएं देख कर उनको एक समूह में रखने से उनके अध्ययन में

सुगमता अनुभव होती है और प्रकृति की जटिलता सरलता के रूप में परिवर्तित हो जाती है। जगत में जन्तुओं की संख्या इतनी अधिक है कि प्रत्येक का अध्ययन पृथक-प्रथक स्वतन्त्र रूप से असम्भव है। इसलिये वर्गीकरण के द्वारा किसी भी समूह की विशेषताओं का ज्ञान होने से उस समूह के सब सदस्यों की विशेषताओं का ज्ञान हो जाता है।

वर्गीकरण के सिद्धान्त—वर्गीकरण कितने ही प्रकार से किया जा सकता है। उदाहरण के रूप में यदि हम किसी वंश के व्यक्तियों का वर्गीकरण करना चाहें तो हम उनको गोरे काले, लम्बे नाटे मोटे पतले आदि कितने ही लक्षणों के आधार पर विभाजित कर सकते हैं किन्तु ऐसे लक्षणों के आधार पर किया हुआ वर्गीकरण बिल्कुल एक कृत्रिम वर्गीकरण होगा। नैसर्गिक वर्गीकरण वही हो सकता है जिसमें हम उन व्यक्तियों के पारस्परिक रक्तसम्बन्ध दिखला सकें। ऐसा वर्गीकरण एक वंश परम्परा (geneological) वृक्ष का रूप धारण करेगा क्योंकि ऐसे वृक्ष से यह स्पष्ट जाता है कि एक वंश के भिन्न-भिन्न वर्तमान व्यक्ति किसी एक ही आदि पूर्वज से उत्पन्न हुए हैं। यह हम किसी वृक्ष की छोटी-छोटी शाखाओं से बड़ी शाखाओं पर बड़ी से और भी अधिक बड़ी पर चलते जायें तो अन्त में हम उस वृक्ष के मूल काण्ड पर पहुँचते हैं। यह मूल काण्ड ही एक पूवज का रूप है। इसी प्रकार जन्तु विज्ञान में भी यही सिद्धान्त माना जाता है कि अनेकों प्रकार के वर्तमान जन्तु विकास के द्वारा एक ही प्रारम्भिक पूर्वज से उत्पन्न हुए हैं। जन्तुओं का विकास एक अत्यअन्त विस्तृत और जटिल विषय है जिसका विस्तृत वर्णन इस छोटे से लेख में नहीं किया जा सकता। केवल उसका साधारण परिचय देना ही यहाँ पर यथेष्ट है।

विकास के सिद्धान्त के अनुसार जीवित प्राणियों के वे जटिल भेद, गुण, वर्ग आदि जो आजकल संसार में विद्यमान हैं जीवन के किसी पहिले सरल रूप या रूपों से अवरोहण (descent) तथा रूप परिवर्तन द्वारा बने हैं। विकास का सिद्धान्त विशिष्ट सृजनवाद (theory of special creation) से सर्वथा भिन्न है। विशिष्ट सृजनवाद के अनुसार सब वर्तमान प्राणी किसी पूर्व सरल प्राणी से नहीं अपितु किसी समय में अपनी ही प्रकार के प्राणियों से बने हैं। किन्तु किसी प्राणी का विकास उन सब दशाओं का इतिहास बतलाता है जिनमें होकर उसे अपने किसी सरल पूर्वज से अपनी वर्तमान जटिल अवस्था या रूप तक आने के लिये गुजरना पड़ा होगा। एक उदाहरण से ये दोनों सिद्धान्त स्पष्ट हो जायेंगे। विकास बाद के अनुसार मेंढक का पूर्वज सृष्टि के आदि काल में कोई एक कोष्ठीय (unicellular) सरल प्राणी होना चाहिये जिससे कि बाद में जटिल और जटिलतर अन्य बहुकोष्ठीय (multicelluler) प्राणी इसी प्रकार बनते गये होंगे जैसे कि मेंढक के जीवन इतिहास और क्रमवद्धन में पुंस्त्री बीज (oosperm) से तूतुल(morula)तूतुल से कोरकुल (blastula) कोरकुल से गस्त्रुल (gastrulo) गस्त्रुल से बाल मण्डक (tadpole) और बाल मण्डूक से मेंढक बना है। इस बढ़ती हुई जटिलता का परिणाम ही वर्तमान मेंढक है। किन्तु विशिष्ट सृजन वाद के अनुसार मेंढक के पूर्वज आदि काल में भी मेंढक ही होंगे और वे पूर्वज विशिष्ट सृजन द्वारा बने होंगे। विशिष्ट सृजन बाद के अनुसार एक जाति के जन्तुओं में तो परस्पर एक सम्बन्ध हो सकता है किन्तु एक जाति का सम्बन्ध किसी दूसरी जाति से नहीं हो सकता। यदि इस सिद्धान्त को ठीक मान लिया जाये तो विभिन्नता या सादृश्य का कम या अधिक होना कोई अर्थ नहीं रखता क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार बन्दर और मनुष्य का पारस्परिक सम्बन्ध बन्दर और मछली के पारस्परिक सम्बन्ध से कुछ अधिक घनिष्ट नहीं है यद्यपि यह बिल्कुल स्पष्ट है कि बन्दर और

मनुष्य के बीच वाला सादृश्य बन्दर और मछली के बीच वाले सादृश्य से कहीं अधिक होता है। इस लिये विशिष्ट सृजनवाद के आधार पर किसी प्रकार का नैसर्गिक वर्गीकरण असम्भव है। विकास बाद हीऐसे वर्गीकरण का आधार हो सकता है।

नैसर्गिक वर्गीकरण की विधि को ठीक प्रकार से समझने के लिये यह आवश्यक है कि रचना- साम्यी (homologus)और कर्मसाम्यी(analogus) अवयवों का अर्थ तथा इन दोनों में पारस्परिक भेद स्पष्ट कर दिया जाये। रचनासाम्यी अवयव वे होते जिनकी रचना एक दूसरे के सदृश होती है चाहे उनका कार्य भिन्न हो। कार्यसाम्यी अवयव वे होते हैं जिनका कार्य एक दूसरे के सदृश होता है चाहे रचना भिन्न हो। उदाहरण के लिये मेंढ क की अग्रिम शाखाएँ (fore-limbs) और चिड़ियों के पक्ष या पंख(wings)रचना की दृष्टि से समान आधारों पर बने हैं अर्थात् पक्ष या अग्रिम शाखा (fore-limb) दोनों के ककाल की रूप रेखा पंचांगुलिक (pente' dactyle) है। किन्तु पक्ष उड़ने का कार्य करता है जो कि अग्रिम शाखा नहीं करती। पक्ष और अग्रिम शाखा ये दोनों परस्पर रचना—साम्यी अवयव हैं। चिड़ियों के पक्ष और मच्छर, मक्खी या तितलियों आदि पक्ष के परस्पर कार्य साम्यी हैं क्योंकि यद्यपि उनकी रचना भिन्न है तथापि उनका कार्य एक ही है अर्थात् उड़ना। इसी प्रकार मेंढक की टाँगे और मच्छर की टाँगे कार्य साम्यी हैं। नैसर्गिक वर्गीकरण के लिये कार्य साम्यी अवयवों का कोई लाभ नहीं है क्योंकि परिस्थितियों के अनुसार ऐसे अवयव बिना मूल रचना में परिवर्तन किये ही कार्य परिवर्तन कर लेते हैं। जब तक मूल रचना में परिवर्तन न आये तब तक नई जाति का निर्माण नहीं हो सकता। इसीलिये नैसर्गिक वर्गीकरण रचना साम्यी अवयवों के आधार पर ही हो सकता है। सारे उड़ने वाले जन्तु जैसे मक्खी, मच्छर, तितली और चिमगादड़ आदि को हम पक्षी नहीं मान सकते। इसी प्रकार सारे तैरने वाले जन्तुओं को हम मछली नहीं मान सकते। वर्गीकरण के लिये कार्य साम्य एक गौण चीज है। उसके लिये तो रचना साम्य ही प्रधान आधार है। इसीलिये शरीर रचना विज्ञान का पर्याप्त ज्ञान वर्गीकरण में आवश्यक होता है।

शरीर रचना विज्ञान के साथ-साथ वर्गीकरण में भ्रूण विज्ञान (embryology) और जीवाश्मशास्त्र (palaeontology) की भी सहायता की आवश्यकता होती है। किसी जन्तु का भ्रूण विज्ञान यह बतलाता है कि एक जन्तु को अपने अंडे से अपने वयस्क रूप में आने के लिये किन-किन अवस्थाओं में गुजरना होता है। सम्भवत: इन्हीं अवस्थाओं में से हो कर उस जन्तु को अपने आदि पूर्वज से अपने वर्तमान रूप में आने के लिये गुजरना पड़ा होगा। इसलिये यह विज्ञान रक्त सम्बन्ध को निर्धारित करने में कभी-कभी बड़ा सहायक होता है उदाहरण के लिये तिमिंगिल (whale) जिसको साधारण भाषा में मछली कह दिया जाता है मछली नहीं है वरन् एक स्तनधारी जन्तु (mammal) है। यह बात रचना विज्ञान से तो स्पष्ट हो ही जाती है किन्तु अधिक स्पष्ट भ्रूण विज्ञान से होती है क्योंकि चाहे वयस्क तिमिंगिल मछलियों से कुछ सदृशयता रखता हो किन्तु उसके भ्रूण तथा भ्रूण के क्रम वर्धन (development) में पूर्ण रूप से स्तनधारी लक्षण पाये जाते हैं।

जीवाश्म शास्त्र उन जन्तुओं का ज्ञान कराता है जो सृष्टि के किसी समय में विद्यमान रहे होंगे किन्तु वर्तमान समय में नहीं मिलते। ऐसे जन्तु जिनको जीवाश्म (fossil) कहते हैं कभी-कभी दो श्रेणियों के बीच का सम्बन्ध स्थापित करने में कड़ी का काम करते हैं और इसलिये वर्गीकरण में पर्याप्त रूप से सहायक होते हैं। पक्षियों और उरोगामियों (reptiles) के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट करने वाले बहुत से जीवाश्म मिले हैं जिनमें इन दोनों श्रेणियों की विशेषताएं,

आंशिक रूप से एक ही जन्तु के अन्दर देखी गई हैं।

वर्गीकरण की विधि—वर्गीकरण के आधार भूत सिद्धान्त जान लेने के बाद अब उसकी विधि का विस्तृत परिचय दिया जायेगा। यह विधि साधारण हिन्दुस्तानी मेंढक का जन्तु-जगत में जीव विज्ञानीय स्थान निर्धारण करने से बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगी।

भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में कितने ही प्रकार के मेंढक पाये जाते हैं। और भी अनेकों प्रकार के मेंढक संसार के भिन्न-भिन्न देशों में मिलते हैं। इसी बात को हम जन्तु शास्त्र की भाषा में यों कह सकते हैं कि मेंढकों की अनेकों जातियाँ (species) हैं जो कि सब एक ही गण (genus) में रक्खी जा सकती हैं। ये सब जातियाँ आकृति, रचना, रंग तथा अन्य विशेष लक्षणों के आधार पर एक दूसरे से भिन्न हैं। सबसे पहिले हमें यह देखना है कि 'जाति' शब्द से क्या अभिप्राय है।

यह एक साधारण निरीक्षण की बात है कि एक जाति के कोई भी दो मेंढक परस्पर एक दूसरे के बिल्कुल ठीक-ठीक सदृश नहीं होते। इसी प्रकार हम देखते हैं कि सब मनुष्य, चाहे वे संसार के किसी भी भाग के रहने वाले हों जन्तु शास्त्र की दृष्टि से यद्यपि एक ही जाति के जन्तु हैं तो भी एक मनुष्य की शक्ल किसी भी दूसरे मनुष्य से पूरी तरह नहीं मिलती, इसका अर्थ यह है कि एक जाति के जन्तुओं में भी परस्पर विभिन्नताएँ हो सकती हैं। ऐसी विभिन्नताओं को व्यक्तिगत विभिन्नताएँ कहते हैं जिनके कारण कभी-कभी यह निश्चिव करना कठिन हो जाता है कि किन्हीं दो जन्तुओं को अलग-अलग जातियाँ मानी जायें या उनको एक ही जाति के भिन्न-भिन्न भेद (varieties) माना जाये। इस बात को निश्चित करने के लिये उच्च श्रेणी के जन्तुओं में पारस्परिक फलदता (fertility) एक अच्छी पहिचान है। किसी भी जाति के भिन्न-भिन्न भेद परस्पर संयोग द्वारा एक फलप्रद (fertile) सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं किन्तु भिन्न-भिन्न जातियों जनन संयोग द्वारा या तो सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ ही नहीं होती और यदि होती भी हैं तो ऐसी सन्तान बांझ संकरज (hybrid) होती है। उदाहरण के लिये कुत्तों की कितने ही प्रकार की नस्लें या भेद होते हैं। उनके भिन्न-भिन्न भेद परस्पर जनन संयोग से फलप्रद सन्तान पैदा कर सकते हैं, किन्तु गधे और घोड़े के बीच जनन संयोग से जो खच्चर पैदा होता है वह आगे कोई सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकता क्योंकि गधा और घोड़ा बिल्कुल भिन्न जातियाँ हैं। वर्गीकरण के प्रारम्भिक समूह वे हैं जिनके जन्तु परस्पर जनन संयोग द्वारा फलप्रद सन्तान उत्पन्न कर सकते हों या उनमें ऐसा सादृश्य हो जिससे कि यह अनुमान लगाया जा सके कि वे ऐसी सन्तान पैदा कर सकते हैं। ऐसे प्रारम्भिक समूहों को 'जाति' कहते हैं। 'जाति के जन्तुओं का पारस्परिक सादृश्य दो बातों पर निर्भर है—(१) पहिली यह कि उनका अवरोहण एक ही है और (२) दूसरी यह कि दूसरी जाति के जन्तुओं से मिलकर जनन संयोग द्वारा वे अपनी जाति में विद्यमान पारस्परिक सादृश्य को कम नहीं करना चाहते। पारस्परिक फलदता का सिद्धान्त अपवाद रहित नहीं है और जङ्गली जन्तुओं में तो उसका लागू करना प्राय: असम्भव ही हो जाता है। इसलिये ऐसी अवस्था में जाति को निर्धारित करने का आधार केवल स्थिर विभिन्नताओं की उपस्थिति ही है। इन विभिन्नताओं के आधार पर जाति निर्धारण एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा। मान लीजिये कि जङ्गली बिल्लियों की बहुत सी खालें परीक्षण के लिये इकट्ठी की जाती हैं और उनमें यह दिखाई देता है कि बहुत सी खालों में पूंछ लम्बाई में शरीर की लम्बाई की दो तिहाई हैं तथा खाल के रंग में लाल झलक और सिर के ऊपर विशेष प्रकार के निशान हैं। उन्हीं में बहुत सी दूसरी खालें ऐसी भी हैं जिनमें

पूंछ की लम्बाई शरीर की लम्बाई से आधी है और खाल का रंग भूरा तथा उस पर काली रेखाएँ हैं। यदि इन दो प्रकार की खालों के बीच कोई उतार चढ़ाव नहीं मिलता तो निश्चित ही इन दो प्रकार की खालों वाली बिल्लियाँ पृथक-पृथक जातियों में रक्खी जायेंगी।

'जाति' शब्द को समझ लेने के बाद हम पुनः वर्गीकरण की विधि पर आते हैं। द्विनाम पद्धति (Binomial nomenclature) के अनुसार हिन्दुस्तानी मेंढक का जीव विज्ञानीय नाम 'मण्डूक व्याघ्रीय' (Rana tigrina) है। एक दूसरी जाति का मेंढक जो कि 'मण्डूक श्यामल' (Rana-cyanophilictis) कहलाता है साधारण मेंढक से कुछ भिन्न है। मण्डूक श्यामल के निम्नलिखित लक्षण इस विभिन्नता के आधार हैं :—

अपेक्षा कृत छोटा आकार, पृष्ठतल की (dorsal surface) त्वचा का रंग पिंगल या जैतूनी तथा उस पर स्थान-स्थान पर काले धब्बे तथा छोटी-छोटी गूमड़ियों (Warts या tubercles) की उपस्थिति, अँगुलियां बहुत पतली और नुकीली, पहिली अंगुली दूसरी से आगे नहीं निकली हुई, नुकीली पादांगुलियों की झिल्ली उनकी नोकों तक फैली हुई और चौथी पादांगुली तीसरी और पांचवीं से कुछ अधिक बड़ी नहीं।

इन भेदों के कारण ये दोनों प्रकार के मेंढक पृथक-पृथक जातियों—'वयाघ्रीय' और 'श्यामल' में रक्खे गये हैं। मेंढक की अन्य जातियां भी हैं। 'मण्डूक अशाश्वत' (Rana temporaria) अंग्रेजी मेंढक है। 'मण्डूक भोज्य' (Rana esculenta) मनुष्यों के खाने के प्रयोग में आता है। मेंढक की ये सब जातियां निम्न लिखित लक्षणों में एक दूसरे के सदृश हैं :—

(१) ऊर्ध्वहनु (Upper jaw) में दाँतों की उपस्थिति और (२) त्रिक कशेरुक (Sacral Vertebra) के बाहुक प्रवर्धन (Transverse Processes) फूले हुए नहीं।

इसलिये सब मेंढकों की भिन्न-भिन्न जातियों को एक गण में रक्खा गया है। इस गण (genus) का नाम है 'मण्डूक' (Rana)।

मेंढक के ही सदृश एक जन्तु और भी देखने को मिलता है जिसको अंग्रेजी भाषा में टोड (toad) कहते हैं। यह कहना कठिन है कि टोड का नाम हमारी भाषा में क्या है किन्तु इसके लिये हम 'दादुर' शब्द का प्रयोग करेंगे। दादुर के निम्न लिखित लक्षणों द्वारा हम उसे मेंढक से भिन्न समझते हैं :—

त्वचा अपेक्षाकृत सूखी और ग्रन्थिल (glandular) गूमड़ियों से ढकी हुई, पश्चिम शाखाएँ (hind limbs) अपेक्षा कृत छोटी, दाँतों की अनुपस्थिति, और त्रिक कशेरुक के बाहुक प्रवर्धन फूले हुए। ये सब लक्षण मेंढक को दादुर से इतनी अधिक दूर ले जाते हैं कि दादुर की भिन्न-भिन्न जातियां न कि केवल एक पृथक गण 'कदुरव' (Bufo) में वरन् वे सब गण एक पृथक वंश (family) 'कदुरवादि' (Bufonidae) में रक्खे गये हैं। मेंढक के भी अनेक गण हैं जो कि सब मण्डूकादि (Ranidae) वंश में रक्खे गये हैं।

(टिप्पणी—यद्यपि 'दादुर', 'मण्डूक', 'कदुरव', आदि सब 'मेंढक' के ही पर्यायवाची शब्द हैं किन्तु पारिभाषिक रूप में हम इनको ऊपर लिखे हुए विशेष अर्थों में प्रयोग करेंगे।)

दादुर (toad) और मेंढक निम्नलिखित लक्षणों में एक दूसरे के सदृश हैं—

'वयस्क अवस्था में पूंछ की अनुपस्थिति, धड़ छोटा और चौड़ा, पश्चिम शाखाएँ (hind-limbs) अग्रिम-शाखाओं (fore-limbs) की अपेक्षा बड़ी।'

इसलिये मेंढक और दादुर क्षुद्रगोधा (newt) सलमन्द्र (salamander) और त्रितन (triton) आदि जन्तुओं से जिनमें कि पूंछ आजीवन उपस्थित रहती है और अग्रिम तथा पश्चिम शाखाएँ लगभग बराबर होती हैं, भिन्न हैं। यह भिन्नता एक वंश के जन्तुओं के बीच वाली भिन्नता से भी

बढ़ गई है। इसलिये इन दोनों जन्तु-समूहों के दो भिन्न वर्ग (orders) बनाने पड़े हैं। 'मण्डूकादि' और 'कटुरवादि' वंशों को 'अपुच्छी'(Anura या Ecaudata वर्ग में और सलमन्द्र त्रितन तथा क्षुद्रगोधा आदि को 'सपुच्छी' (Urodela या Candata) वर्ग में रक्खा गया है। क्षुद्रगोधा और सलमन्द्र की वयस्क अवस्था में गलफड़ (gills) नहीं होते हैं किन्तु सपुच्छी वर्ग के 'प्रोतुस' (Proteus) और मायिनी (siren) आदि कुछ जन्तु ऐसे भी हैं जिनमें या तो गलफड़ और या गलफड़िक दरारें जीवन भर रहती हैं। कुछ सपुच्छियों में शाखाएँ (limbs) बहुत उन्नत होती हैं किन्तु कुछ में बहुत छोटी और यहां तक कि मायिनी में पश्चिम शाखाएँ बिल्कुल अनुपस्थित भी हैं। ऐसे भेदों के आधार पर सपुच्छी वर्ग के या और किसी भी वर्ग के उपवर्ग (sub-orders) भी बनाये जा सकते हैं।

'सपुच्छी' और 'अपुच्छी' के अतिरिक्त इनके ही सदृश जन्तुओं का एक तीसरा वर्ग और भी है जिसके जन्तु आकृति में बिल्कुल सांपों की तरह होते हैं क्योंकि उनका शरीर लम्बा और संकीर्ण होता है तथा उनमें अग्रिम और पश्चिम दोनों शाखाओं का अभाव है। इस वर्ग का नाम 'अपदी' (Apoda) या नग्नाहि (gymnophiona) है। अवशिष्टाक्षी (Caecilians) इस वर्ग के जन्तुओं के उदाहरण हैं।

'सपुच्छी', 'अपुच्छी' और 'नग्नाहि' वर्गों के जन्तु यद्यपि परस्पर बहुत भिन्न हैं तथापि उनमें बहुत सी समानताएं भी हैं। उनमें गलफड़ या तो आजीवन या जीवन के कुछ समय में अवश्य उपस्थित रहते हैं। फुफ्फुस (lungs) भी लगभग सब में होते हैं। लगभग सब में रूपान्तरण (meta-morphosis) का दृश्य देखने को मिलता है और अंडे से बाहर आने वाला प्राणी एक गलफड़िक (gilled) वर्धक(larva) के रूप में होता है। उन सब की त्वचा मुलायम और ग्रन्थिल तथा पादांगुलियाँ नख रहित होती हैं। इसी प्रकार के अन्य अनेकों लक्षण उनको सर्प, कछुए, मगरमच्छ, छिपकली, आदि से गलाफड़ों का तथा उनके शारीरिक क्रम वर्धन में रूपान्तरण का सर्वथा अभाव है और त्वचा पर शल्क (scales) तथा पादांगुलियों में तीखे नख होते हैं। ये भिन्नताएं उन भिन्नताओं की अपेक्षा जो कि ऊपर लिखे वर्गों के बीच पाई जाती हैं कहीं अधिक महत्व पूर्ण है। इसलिये 'सपुच्छी,' 'अपुच्छी' और 'नग्नाहि' वर्गों को एक पृथक श्रेणी स्थलजलचर (Amphibia) में रक्खा गया है। कछुए, मगरमच्छ, छिपकली आदि जिन भिन्न-भिन्न वर्गों के जन्तु हैं उन सब वर्गों को मिलाकर एक पृथक श्रेणी बनाई गई है जिसका नाम उरोगामी (Reptilia) है। इसी प्रकार मछलियाँ जो कि जीवन भर गलफड़ों से श्वास लेती हैं और जिनमें तैरने के लिये पक्षक या वाज (fins) उपस्थित होते हैं 'मत्स्य' (Pisces या fishes) श्रेणी में रक्खी गई हैं। चिड़ियाएं जिनकी त्वचा परों से ढकी रहती है पक्षी (Aves या birds) श्रेणी में और बालों वाले जन्तु जो कि अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं स्तनधारी या स्तनपोषी (Mammalia) श्रेणी में रक्खे गये हैं।

मत्स्य, स्थलजलचर, उरोगामी, पक्षी और स्तन-पोषी श्रेणियों के जन्तुओं में अनेक प्रकार के पारस्परिक सदृश लक्षण मिलते हैं। उन सब में लाल रक्त होता है। दो युगल शाखाओं (limbs) से अधिक कभी नहीं होतीं। सब में आन्तरिक कंकाल होता है। भ्रूण में यह कंकाल केवल पृष्ठलगुड (notochord) के रूप में होता है। यह पृष्ठलगुड वयस्क अवस्था में पृष्ठवंश (ver-tebral column) द्वारा स्थानान्तरित हो जाती है। इन लक्षणों के आधार पर इन सब श्रेणियों को मिलाकर एक 'उपसमुदाय' (sub-phylum) 'पृष्ठवंशी (Vertebrata)बनाया गया है।

पृष्ठवंशी जैसे अन्य उपसमुदायों को मिलाकर एक 'समुदाय' (Phylum) 'लगुडी' (Chordata) बना है। लगुडी समुदाय के जन्तुओं की यदि हम केंकड़े (crabs), कीट (insects) बिच्छू (scorpion) और कान खजूरा (centipede) आदि से तुलना करें तो हम देखेंगे कि कीट, केकड़े आदि में रक्त नीरंग, शाखाएं (limbs) अनेक और सन्धियुक्त (jointed) तथा बाह्य कंकाल उपस्थित होता है। ये सब भिन्नताएँ इतनीअधिक स्पष्ट हैं कि कीट केकड़े आदि का एक पृथक समुदाय बनाया गया है जिसका नाम 'सन्धिपदी' (Arthropoda) है, इसी प्रकार कोमल शरीर वाले सीपी, शंख कौड़ी वाले जन्तु जैसे घोंघा (snail) आदि 'बेलवागी' (Mollusca) समुदाय में रक्खे गये हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के कृमि (worms) जैसे केचुआ (earthworm), जोंक (leech) आदि 'वलयी' (Annelida) समुदाय में, गिजगिजिया (Jeelly fish) और उदोरग (Hydra) जन्तु 'खातभूतान्त्री' (Coelentrata) समुदाय में और सब से सरल तथा सूक्ष्म जन्तु जैसे विपरिणामी (Amoeba) परायाम (Paramocium)' घूर्णक (Vorticella) और सारपुंज (Plasmodium) आदि जन्तु 'प्राक्जन्तु' (Protozoa) समुदाय में रक्खे गये हैं। सब समुदायों को मिलाकर जन्तु जगत बना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जन्तु-जगत को को समुदायों में, समुदायों को श्रेणियों में, श्रेणियों को वर्गों में, वर्गों को वंशों में, वंशों को गणों में और गणों को जातियों में विभक्त किया गया है।

साधारण हिन्दुस्तानी मेंढक का जन्तु-जगत में जीव विज्ञानीय स्थान निम्नलिखित ढंग से संक्षेप में दिखलाया जा सकता है—

जगत—जन्तु
समुदाय—लगुडी
उपसमुदाय—पृष्ठवंशी
श्रेणी—स्थलजलचर
वर्ग—अपुच्छी
वंश—मण्डूकादि
गण—मण्डक
जाति—व्याघ्रीय

———

द्विनाम पद्धति

ले० श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालङ्कार, हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

वनस्पति शास्त्र, जीव विज्ञान आदि वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन करने के लिये यदि द्विनाम पद्धति को अपनाना ही है तो उस का पूर्णतया भारतीय करण होना चाहिये। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा को ध्यान में रखते हुए हमें पुस्तकों का अनुवाद करना चाहिए। मक्खी पर मक्खी मारना हमारे विद्यार्थियों को बहुत गलत रास्ते पर ले जा सकता है। उदाहरण में मैं अपने कथन को स्पष्ट करता हूँ। राना टिग्रीवा एक चित्तीदार मेंढक होता है। चित्तीदार के लिये संस्कृत में चित्रक शब्द का प्रयोग होता है। महाभारत में जहां सांपों की बहुत सी जातियां गिनाई गई हैं वहाँ उसने 'चित्रकाहि'

जाति के एक सांप का वर्णन भी किया है। जीव विज्ञान को अध्ययन करने वाले एक भारतीय विद्यार्थी को जब एक चित्तीदार मेंढक दीखता है तो वह उसे मण्डूक व्याघ्री कहने के स्थान पर 'चित्र मण्डूक कहना अधिक पसन्द करेगा और इस में भाव भी अधिक व्यक्त होता है। जिन चीजों के लिए हम पहिले से ही संस्कृत के शब्दों का प्रयोग करते रहे हैं उन के लिए भी लैटिन, ग्रीक या अंग्रेजी शब्दों के अनुवाद क्यों किये जांय ?

पाश्चात्य जगत ने धतूरे का प्रयोग भारत से सीखा। वैज्ञानिक भाषा में धतूरे गण का नाम धतूरा ही है। इस गण में एक सफेद फूलों वाला धतूरा होता है उसे लैटिन में धतूरा एल्बा कहते हैं। एल्बा का अर्थ श्वेत है। संस्कृत की वनस्पति विज्ञान की पुस्तकों में इसे 'श्वेत धतूरा' कहा गया है। श्री चम्पत स्वरूप जी इस धतूर श्वेत क्यों अनुवाद करना पसन्द करेंगे ? द्विनामों को ज्यों का त्यों अनुवाद करना भी हमारी भाषा की प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध होगा।

शहतूत गण के पौदों के लिए आधुनिक वनस्पति शास्त्र में सामान्य नाम मोरस है। मोरस गण में सफेद, काला, कटे हुए पत्तों वाला आदि जातियां हैं। लैटिन में इन के लिए क्रमशः नाम हैं मोरस एल्बा, मोरस नाइग्रा और मोरस सेर्राटा। मक्खी पर मक्खी रख कर अनुवाद करने की अपेक्षा यदि इन के भारतीय रूप ही अपना लिए जांय तो अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। आप उन्हें क्रमशः 'श्वेत तूत' 'कृष्ण तूत' और 'दन्तुर तूत' कह सकते हैं।

संसार की जन संख्या

लेखकः डा० ओंकार नाथ पर्ती, सागर विश्वविद्यालय, सागर

आधुनिक काल में संसार के सब राष्ट्र एक दूसरे पर निर्भर हैं। जैसे संसार से धीरे-धीरे साम्राज्यवाद लोप होता जा रहा है उसी तरह राष्ट्रवाद की भी बुनियादें कमजोर पड़ रही हैं। वह समय दूर नहीं जान पड़ता जब सर्वत्र अन्तर्राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव होगा। स्वतंत्र भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू स्वयं अन्तर्राष्ट्रीयता के उपासक हैं। ऐसे समय में सम्पूर्ण संसार की जन संख्या के विषय में विचार करना असंगत न होगा।

संसार की जन संख्या कितनी है ? इस प्रश्न का उत्तर देना सरल नहीं है। सभ्य राष्ट्रों की जन संख्या तो बहुत कुछ ठीक-ठीक ज्ञात है किन्तु संसार में कितने ऐसे ही प्रदेश हैं कि जिनकी संख्या के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इंगलैण्ड, योरप उत्तरी अमरीका, भारत वर्ष और जापान के विषय में विश्वसनीय आँकड़े प्राप्त हैं; किन्तु चीन, अमरीका के जङ्गलों और अफ्रीका के विषय में जन संख्या का केवल अनुमान मात्र किया जा सकता है। संसार की जन संख्या के विषय में कई लोगों ने भिन्न-भिन्न आँकड़े दिये हैं। सारिणी न० १ में यह दर्शाये गये हैं :

सारिणी न० १

सूत्र	तिथि	संसार की-जन संख्या लाख में
१ ई० लिवासियो	सन् १६०८	१,६२,६०
२ सर जी०एच० निब्बस्	सन् १६१४	१,६४,६०
३ टाइम्स का एटलस	सन् १६२१	१,६४,६०

४ अन्तर्राष्ट्री कृषि संघ	सन् १६२१	१,८२,००
५ लीग ऑफ नेशन्स	सन् १६२१	१,०२,५०
६ „ „ „	सन् १६४०	२,१४,५०

यह तो स्पष्ट है कि इन आँकड़ों में समानता नहीं है। योरप और उत्तरी अमरीका में रूस और मैक्सिको की जनसंख्या के विषय के अनुमानों में मत भेद है। एशिया में चीन और दक्षिणी पश्चिमी प्रदेशों की जनसंख्या के अनुमानों में विभिन्नता है। अफ्रीका की जन संख्या के आँकड़ों का आधार केवल कल्पना है। जनसंख्या की कल्पना के विषय में कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिये बेलजियन काँगो की जन संख्या के अनुमान ८० लाख से तीन करोड़ तक के हैं।

चीन की जन संख्या भी ठीक से ज्ञात नहीं है। सारिणी न० २ में चीन की जन संख्या के विषय में विभिन्न अनुमान दिये हुये हैं।

सारिणी न० २

चीनी साम्राज्य की जनसंख्या

सूत्र	तिथि	जन संख्या लाखों में
१ मिगचिंगयेंग जनगणना	सन् १६१०	३२,४०
२ सरकारी गजेट	सन् १६११	३१,५०
३ चीनी पोस्ट आफिस	सन् १६२०	४२,१०
४ टाइम्स एटलस	सन् १६२१	३२,१०
५ लीग ऑफ नेशन्स	सन् १६३१	४५,००
६ स्टेटसमैन इयरबुक	सन् १६३१	४८,६०
७ लीग ऑफ नेशन्स	सन् १६४०	४५,००
८ स्टेटसमैन इयरबुक	सन् १६४६	४५,८०

यहां यह बता देना आवश्यक है कि चीन की जन संख्या के अनुमान का आधार मुख्यत: मिगचिगपेंग की जन गणना है। यह जन गणना इस प्रकार की गई थी। पहिले घरों की संख्या ज्ञात कर ली गई और बाद में एक औसत घर की जन संख्या से गुणा कर दिया गया। यह तो स्पष्ट है कि प्रत्येक घर की जन संख्या की औसत चीन के सब प्रदेशों में एक सी नहीं हो सकती। मिगचिंगपेंग ने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। अत: उसकी गणना का आधार अधिक सत्य नहीं है।

पहिले दी गई सारिणियों से यह ज्ञात होता है कि सन् १६११ से संसार की जन संख्या २५ प्रतिशत बढ़ गई है और चीन की जन संख्या लगभग ५० प्रतिशत। चीन में सन् १६११ के बाद क्रांति हुई, लड़ाइयां हुई, अनगिनती बाढ़ें आईं और कितनी ही बार महामारी का प्रकोप हुआ। यह सब उत्पात चीन में लगभग तीस वर्षों से होते ही रहे हैं। इसी समय में भारतवर्ष में इन्फ्लूयेन्जा का प्रकोप (१६१८-१६२०) हुआ जन गणना के अनुसार सन् १६११ से १६२१ तक में भारत में केवल ०·६ प्रतिशत जन वृद्धि हुई। योरप में दो महायुद्ध हुये। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुये सन् १६१४ की संसार में जन संख्या की वृद्धि कुछ असंगत सी जान पड़ती है। इतना तो स्पष्ट जान पड़ता है कि संसार की जन संख्या २,०,००० लाख अथवा दो अरब से अधिक नहीं है।

सभ्य संसार की जन गणना की संख्याओं को देख कर ऐसा भास होता है कि जन संख्या में वृद्धि होती रही है। इंगलैण्ड और वेल्स की जन संख्या सन् १८०१ से सन् १६२१ तक चौगुनी हो गई थी और सन् १८०० से योरप की जन संख्या १७½ करोड़ से ५० करोड़ हो गई है। अच्छी अवस्था में जन संख्या और भी अधिक बढ़ सकती है। कैनैडा के फ्रेंच निवासियों की संख्या इस समय ४० लाख है। इसमें से लगभग सब ५८०० फ्रेंच जो सन् १६८० तक वहां पहुँच गये थे, की जन संख्या की वृद्धि हैं। उनकी वृद्धि लगभग ६०० प्रतिशत हुई है।

हिसाब लगाने से यह ज्ञात होता है कि सन् १६०० से १६११ तक जिन देशों में जन गणना नियमित रूप से ज्ञात है उनमें ११५६ प्रतिशत प्रति वर्ष वृद्धि जन संख्या में हुई। यदि वृद्धि की

गति यही मान ली जाय तो ६० वर्ष में जन संख्या दुगनी हो जाती है। और यदि यही प्रतिशत वृद्धि समान रूप से रही हो तो प्रथम मनुष्य जोड़ा २१५० वर्ष से पुराना न होना चाहिये। इस हिसाब से लगभग १००० वर्ष में संसार की जन संख्या लगभग २,५००,००,००,००,००,०० हो जायगी अर्थात् सारी पृथ्वी पर प्रत्येक जीव को एक वर्गगज जमीन भी न पड़ेगी। इन गणनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि सभ्य समाज की प्रतिशत प्रति वर्ष जन संख्या वृद्धि पुराने असभ्य समाज से कहीं अधिक है। और यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वृद्धि की यह गति अधिक समय तक नहीं रखी जा सकती।

हम लोग जन संख्या की अति तीव्र वृद्धि गति के समय में हैं। इस वृद्धि गति का अब अन्त आ रहा है। संसार के सभ्य समाज में उत्पत्ति की गति कम होती जा रही है और उत्पत्ति की कम गति मृत्यु की कम गति से तीव्रतर है। पुरातन काल में कितने ही बच्चे जन्मते ही मृत्यु का ग्रास बन जाते थे और इस तरह जन संख्या अधिक नहीं बढ़ पाती थी। इस समय ऐसा जान पड़ता है कि जन संख्या की बाढ़ की गति की रोक उत्पत्ति की गति का कम होना है। मनुष्य के सामने जन संख्या की वृद्धि को रोकने के यही दो साधन हैं और तीसरा कोई नहीं। यदि मनुष्य इस बाढ़ की गति को नहीं रोक सकता तो प्रकृति को युद्ध, अकाल और महामारी का आश्रय लेना पड़ेगा। इतना तो स्पष्ट है कि हमारी पृथ्वी बढ़ाई नहीं जा सकती। उसमें से प्राप्त खाद्य पदार्थों की मात्रा अवश्यमेव बढ़ाई जा सकती है किन्तु इस वृद्धि का भी एक अन्त है।

आधुनिक काल में (१८००-१६००) जन संख्या की इस तीव्र गति से वृद्धि के कारण क्या है? जन संख्या की सबसे अधिक वृद्धि अंगरेजी बोलने वाली जातियों में हुई है। नीचे इस वृद्धि के कुछ आंकड़े दिये हुये हैं

सारिणी न० ३

तिथि	स्थान	जन संख्या लाखों में
सन् १८०१	ब्रिटिश टापू	१५६
सन् १८००	यू० एस० ए०	४३
सन् १८०१	कैनेडा	१
		योग २०३

सारिणी न० ४

तिथि	स्थान	जन संख्या लाखों में
सन् १६३०	ब्रिटिश टापू	४६०
सन् १६४१	आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड	१०
	दक्षिणी अफ्रीका	१०
	कैनेडा और न्यूफाउण्डलैण्ड	८०
सन् १६४०	यू० एस० ए०	११६०
		योग १८६०

यह वृद्धि औद्योगिक क्रांति (Industrial revolution) के समय से प्रारम्भ होती है। तरह-तरह की मशीनें बन जाने से बहुत सी चीजें थोड़े समय में अधिक मात्रा में बनने लगीं। इससे व्यवसाय के स्थानों की ओर लोगों का झुकाव अधिक हुआ। वहां की जन संख्या बढ़ने लगी। बढ़ती हुई जन संख्या के लिये खाद्य पदार्थ पैदा किये जाने लगे और आस पास की सब भूमि में अतितीव्र गति से खेती की जाने लगी। किन्तु प्राप्त भूमि इसके लिये पर्याप्त न हुई। अन्य देशों से खाने की सामग्री लाने की व्यवस्था की गई। जब इनसे भी पूरा न पड़ा तो उपनिवेशों की खोज हुई और यह लोग आस्ट्रेलिया न्यूजीलैण्ड, कैनेडा, न्यूफाउण्डलैण्ड और यू० एस० ए० जाकर बसने लगे। जन संख्या की यह वृद्धि संभव थी क्योंकि संसार में ऐसे स्थान खाली पड़े थे कि जिन्हें उपनिवेश बनाया जा सकता था। आज कल हम इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि संसार में अब इस तरह के स्थान खाली नहीं है। अब तो केवल भू मध्य रेखा के निकट स्थित जङ्गलों को काट कर ही उपनिवेश बनाये जा सकते हैं।

यह तो स्पष्ट है कि जन संख्या का आधार भूमि से प्राप्त खाद्य सामग्री है। अब यह प्रश्न उठता है कि भूमि कितनी है? और प्राप्त भूमि में कितनी ऐसी हैं कि जिसमें खेती हो सकती है और जिस पर मनुष्य रह सकता है? यदि ऐसे स्थानों को जहां बारहो महीने बर्फ रहती है छोड़ दिया जाय तो बाकी भूमि ५ करोड़ वर्ग मील है। संसार की जनसंख्या लगभग दो अरब है, अतः ४० मनुष्य प्रति वर्ग मील के हिसाब के औसत भूमि पड़ती है। किन्तु जनसंख्या का वितरण प्राप्त भूमि पर समान नहीं है। समस्त जनसंख्या मुख्यतः थोड़े से स्थानों में बटी हुई है। योरप की जनसंख्या उत्तर में ६०° अक्षांश और वोल्गा की घाटी, पूर्व में यूराल पहाड़ और दक्षिण में सहारा और अरब के रेगिस्तानों से घिरी है। यह भूभाग लगभग तीस लाख वर्ग मील है और इसमें लगभग ५० करोड़ मनुष्य रहते हैं। इसी तरह चीन के प्रदेशों में लगभग ५० करोड़ मनुष्य केवल १७ लाख वर्ग मील भूमि पर रहते हैं। भारतवर्ष और लंका में लगभग १० लाख वर्ग मील भू भाग पर ४० करोड़ मनुष्य रहते हैं। मनुष्य के इतिहास को देखते हुए यह स्पष्ट है कि इन स्थानों में मनुष्य जाति सदा से रहती चली आई है। इन तीन भू भागों के ५७ वर्ग मील में लगभग १ अरब ५० करोड़ जन संख्या है। एक चौथा भू भाग उत्तरी अमरीका का है जिसमें सभ्य मनुष्य कुछ ही शताब्दियों से रह रहे हैं। यहाँ पर २० लाख वर्ग मील भूमि पर लगभग १३ करोड़ आबादी है। इन बड़े भू भागों को छोड़कर संसार में कई एक छोटे-छोटे स्थान ऐसे हैं जिनमें जन संख्या पर्याप्त है, उदाहरण के लिए जापान, जावा, दक्षिणी अमरीका और आस्ट्रेलिया के कुछ बड़े शहर। सारणी न० ५ में इन भू भागों का अक्षांश और प्रति वर्ग मील जनसंख्या दर्शायी गई है।

सारणी न० ५

स्थान	भू भाग वर्ग मीलों में	जनसंख्या कुल	जनसंख्या प्रति वर्ग मील	मध्य अक्षांश
योरप	२८ लाख	५२ करोड़	१२६	५०° उत्तर
पूर्वी उत्तरी अमरीका	१९ ,,	१३ ,,	५२	४०° ,,
पूर्वी एशिया (भारत को छोड़ कर)	१७ ,,	५० ,,	२९२	३५° ,,
भारत वर्ष (पाकिस्तान को लेकर)	१० ,,	४० ,,	४००	२५° ,,

इस सारणी से यह ज्ञात होता है कि मनुष्य अधिकतर पृथ्वी के १/७ भाग में ही रहते हैं। अन्य ६/७ भाग में जनसंख्या बहुत कम है। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि जन संख्या का विवरण उन स्थानों में अधिक हैं जहां कि भूमि उपजाऊ है। मनुष्य मात्र ने इस में से सब उपजाऊ स्थान छांट लिये हैं और वहां बस गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक वैज्ञानिक उन्नति के सहारे मनुष्य उन स्थानों में भी बस गये हैं जहां कि भूमि उपजाऊ नहीं है (उदाहरण साइ-

बेरिया); किन्तु यह कहना असंगत न होगा कि वे मुख्यतः उपजाऊ प्रदेशों में ही बसे हैं।

इस पृथ्वी की सारी भूमि तीन प्रकार की है। ४० प्रतिशत ऐसी है जहां का तापक्रम ऐसा है कि वहां उपज हो ही नहीं सकती। ३० प्रतिशत ऐसी है कि जो या तो रेगिस्तान है या जहां केवल कुछ झाड़ियां और घास होती हैं जिनमें केवल ढोर चराये जा सकते हैं किन्तु खेती नहीं होती है। केवल ३० प्रतिशत भूमि ऐसी है जहाँ खेती या तो होती है या हो सकती है। इस ३० प्रतिशत भूमि में से भूमध्य अक्षांश भाग में घने जंगल हैं जिन्हें यदि काट दिया जाय तो खेती हो सकती है। उत्तरी अमरीका के भूमध्य अक्षांश वाले प्रदेशों में कुछ मनुष्यों ने खेती करने की चेष्टा की किन्तु उन्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। यह कठिनाइयां निम्नलिखित थीं (१) वहां की जलवायु में तापक्रम अधिक और नमी ज्यादा है, (२) बहुत सा हिस्सा दल-दल के रूप में है जिसे ठीक करने में अधिक खर्च होता है, (३) जंगल बड़ा घना है और जंगली वृक्ष अतिशीघ्र बढ़ते हैं, (४) ऐसे स्थानों में मजदूर नहीं मिलते और दूसरे स्थानों से जाने के लिये तैयार नहीं होते, (५) वहां इतना व्यय करने के बाद खेती करने में आर्थिक लाभ नहीं दिखाई देता। इन बातों को ध्यान में रखते हुए यह असम्भव सा जान पड़ता है कि इन भागों में साधारण अवस्था में कभी खेती होगी। यह तो खेत तभी बनेंगे जब मनुष्यों को खाद्य सामग्री की बड़ी कमी पड़ेगी।

अब इस प्रश्न पर विचार किया जायेगा कि संसार में उपलब्ध भूमि से प्राप्त खाद्य सामग्री पर कितने मनुष्य जीवित रह सकते हैं। इस जनसंख्या का अनुमान किसी आधार पर ही किया जा सकता है। यदि हम मान लें कि (१) संसार की खाद्य सामग्री वर्तमान जैसी रहेगी और खाद्य पदार्थों की उपज बढ़िया बीज के प्रयोग अथवा खेती बढ़ा कर की जायेगी, (२) मनुष्य भूमध्य रेखा के समीप के जंगलों को साफ करके खेत बना लेंगे (३) और मनुष्य वैज्ञानिक अनुसन्धानों की सहायता से प्रति वर्ग एकड़ उपज बढ़ा सकेंगे, तो संसार में कितने मनुष्यों के लिये खाद्य सामग्री पैदा की जा सकती है इस पर अनुमान किया जा सकता है।

यदि यह मान लिया जाय कि संसार की खाद्य सामग्री वर्तमान जैसी ही रहेगी तो अनुमान इस आधार पर किया जा सकता है। हम किसी एक ऐसे प्रदेश को चुन लें जहां कि उस स्थान के निवासियों के लिये पर्याप्त मात्रा में खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं और उसके आधार पर संसार की भावी जनसंख्या के विषय में कल्पना करें। उदाहरण के लिये हम फ्रांस और भारत वर्ष को ले सकते हैं। यह देश इसलिये चुने गये हैं कि इनमें खाद्य पदार्थ पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होते हैं और यहाँ के निवासियों का आहार भिन्न हैं।

पहले फ्रांस को लीजिये। फ्रांस का लगभग ६० प्रतिशत भाग खेती के लिये उपयुक्त है। यहाँ की जन संख्या लगभग ४०० मनुष्य प्रति वर्ग मील है। इस आधार पर सारी पृथ्वी की भूमि लगभग ६ अरब ५० करोड़ मनुष्यों के लिये खाद्य सामग्री पैदा कर सकतीहैं !

भारत वर्ष में खाद्य पदार्थों के व्यय का स्टैंडर्ड कुछ कम है। ब्रिटिश भारत (अर्थात् देशी रियासतों को छोड़कर) ये लगभग ६०० मनुष्य प्रति वर्ग मील में है। इस अधार पर पृथ्वी की भूमि लगभग १० अरब मनुष्यों के लिए खाद्य सामग्री पैदा कर सकती है।

इन अनुमानों के सम्बन्ध में यह ध्यान में रखना होगा कि इन दोनों देशों में समय-समय पर अकाल पड़ता रहा है। अतः यदि संसार की अधिक से अधिक जनसंख्या १० अरब मान ली जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि समय-समय पर अकाल द्वारा इस संख्या में कमी होती रहेगी।

यदि यह मान लिया जाय कि मनुष्य भूमध्य रेखा के समीप के घने जंगलों को साफ करके खेत बना लेंगे तो परिस्थिति अधिक आशा जनक हो जाती है। इस परिस्थिति में जन संख्या का अनुमान जावा के आधार पर किया जा सकता है। इस टापू में प्रत्येक वर्ग मील खेत के सहारे औसतन १२०० मनुष्य है। अब यदि यह मान लिया जाय कि पृथ्वी के मध्य अक्षांश की भूमि फ्रांस जैसी उपजाऊ है और भू मध्य रेखा के निकटवर्त्ती जंगलों की भूमि जावा जैसी उपजाऊ है तो समस्त पृथ्वी का खेती के उपयुक्त भू भाग लगभग ६ अरब ६० करोड़ मनुष्यों के लिये आहार प्रदान कर सकता है।

कुछ लेखकों ने वैज्ञानिक अनुसन्धानों के आधार पर संसार की अधिक से अधिक संभव जनसंख्या के विषय में अनुमान किये हैं। प्रिंस क्रोपाटकिन का कथन है कि भूमि की उपजाऊ शक्ति जितनी चाहें बढ़ाई जा सकती है। इन लेखकों ने इस बात का ध्यान नहीं रखा कि इस तरह उपज बढ़ाने में मेहनत कितनी पड़ेगी। यह भी संभव है कि उपज बढ़ाने में जितने मनुष्यों की मेहनत लगेगी उपज उतनी न बढ़े कि उनका भी पेट भर सके। सच तो यह है कि इस तरह के अनुमानों का आधार कोरी कल्पना ही है और कोई प्रामाणिक बात नहीं है।

सब बातों को ध्यान में रखते हुये यह तो स्पष्ट है कि प्राप्त भूमि आधुनिक जनसंख्या के लिये पर्याप्त ही नहीं है वरन् पर्याप्त मात्रा से कहीं अधिक है। लेखक के विचार से इस पृथ्वी पर आज की जन संख्या से तिगुने मनुष्य सरलता से रह सकते हैं। लगभग ६ अरब मनुष्यों के लिये यह पृथ्वी सरलता से खाद्य पदार्थ दे सकती है। इससे यह न समझना चाहिये कि हमें इस विषय की ओर ध्यान देने की अभी कोई आवश्यकता नहीं है। वास्तव में परिस्थिति गंभीर है। यदि जनसंख्या की वृद्धि का रूप वर्तमान जैसा ही रहा तो इस गति से केवल १०० वर्ष में ही संसार की जन संख्या तिगुनी हो जायेगी। मानव के इतिहास में १०० वर्ष कोई लम्बा समय नहीं है। यू० एन० ओ० के भांति की संस्थाओं को इस विषय पर अभी से विचार करना चाहिये।

काष्ठ-शिल्प

(ले० श्री० त्रिवेणीराय 'विशारद', कारपेन्टरी स्कूल, इलाहाबाद)

मनुष्य की प्रारम्भिक कहानी यह बतलाती है कि उस समय अधिकतर पृथ्वी का धरातल बनप्रान्तों से ढका हुआ था। धीरे-धीरे सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य ने बन-प्रान्तों को काटकर खुली हुई पृथ्वी पर कृषि करना आरम्भ किता। मनुष्य की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जनसंख्या ने जंगलों से आच्छादित पृथ्वी के धरातल को खुले हुए मैदानों के रूप में परिवर्तित कर दिया। परंतु आधुनिक विज्ञान के विकास के युग में भूगर्भ शास्त्र के ज्ञाताओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि वन-प्रान्तों का अभाव किसी भी राष्ट्र के लिये अहितकर है। जंगलों की अधिकता से जल-वृष्टि की अधिकता, जलवायु की स्वच्छता पृथ्वी की टिकाऊ नमी, अस्तु उपज में वृद्धि आदि कई लाभ सिद्ध हो चुके हैं। यही कारण है कि आज के उन्नति शील राष्ट्रों में कृत्रिम वन-प्रान्त लगाए जाते हैं। आवश्यकतानुसार इन जंगलों के कुछ भागों को काटकर उनमें दुबारा जंगल लगा दिए जाते हैं। इस तरह वन-प्रान्तों से अधिक

मात्रा में प्रतिवर्ष काष्ठ भी प्राप्त किया जाता है। इस तरह वे राष्ट्र काष्ठ-कला, भवन-निर्माण, फरनीचर आदि क्षेत्रों में भी अग्रसर है।

अपने देश में भी इधर कुछ दिनों से सरकार ने कई वन-रक्षण अनुसंधान विभागों (फारेस्टरी-रिसर्च) की स्थापना की है। लोगों का अनुमान है कि फिलहाल भारतीय वन-प्रान्त यहीं की आवश्यकता से कहीं अधिक काष्ठ का उत्पादन कर सकते हैं। परन्तु भविष्य में जब हमारा राष्ट्र उन्नतोन्मुख होगा, तब हमारे देश में भी जनता के रहन-सहन (लिविंग स्टैण्डर्ड) के उत्तरोत्तर ऊँचे स्तर के साथ साथ काष्ठ-उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता पड़ेगी। फिर तो भारत में भी कृत्रिम वन-प्रान्त लगाने पड़ेंगे। दुख का विषय है कि हमारे देश में वर्त्तमान समय में जितनी भी वन-प्रान्तों में काष्ठकी अपार संपत्ति व्यर्थ बिखरी पड़ी है, उसका सदुपयोग नहीं हो रहा है। सचमुच इस विदेशी सरकारने इस दिशाकी ओर उदासीनता दिखाकर देश की कलाओं का दम घोंटकर देश को काफी धक्का पहुँचाया है। परन्तु अब तो अपने देश में अपना राज है। अब निकट भविष्य में जनता के जीवन ऊँचे स्तर पर लाने वाले पदार्थों में काष्ठ-कला का कम महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रहेगा।

अब तक तक दासता के बंधन में पड़े रहने से हम भारतीयों के रग-रग में एक अजीब कीड़ा घुस गया था जिसके द्वारा हमने अपना यह सिद्धान्त बना लिया है कि शारीरिक परिश्रम करने से हमारी बेइज्जती है, मानहानि है। दुःख है कि हम इस सिद्धान्त को भूल गए कि शिक्षा मस्तिष्क को शिक्षित बनाती है और काम शरीर को शिक्षित बनाता है' (Education educates the mind and the work educates the body)। यही कारण है कि अभी तक देश के नवयुवकों ने वस्तु-कला (Industry) के क्षेत्र में प्रत्याशित क़दम नहीं बढ़ाया है। इस रोग में भारत की प्राचीन वर्ण व्यवस्था की प्रणाली ने अपने जर्जर ढाँचे को लिए हुए उद्दीपन का कार्य किया है,। परन्तु आशा है निकट भविष्य में हमारी राष्ट्रीय सरकार प्रायमरी और माध्यमिक शिक्षा के बाद विद्यार्थियों को वस्तु-कला की ओर अग्रसर करेगी।

काष्ठोत्पादन का प्रयोग भिन्न भिन्न अवस्थाओं में भिन्न भिन्न क्षेत्रों में किया जाता है। यह उत्पादन चार भागों में विभाजित है। प्रथम उस वृक्ष का काष्ठ जिसकी भीतरी लकड़ी विशेषकर ठोस व मजबूत होती है। इस तरह के पेड़ को 'अन्तः सार वृक्ष' कहते हैं। द्वितीय वे पेड़ जिनकी लड़की का बाहरी भाग ही अधिक ठोस होता है। इन पेड़ों को 'बहिस्सारवृक्ष' कहते हैं। तृतीय 'सर्वसार वृक्ष' हैं जिनका सम्पूर्ण भाग एकसा घना अर्थात् ठोस होता है। चौथी श्रेणी में निस्सार काष्ठ आता है, जिसका प्रयोग काष्ठ शिल्प में नहीं प्रत्युत ईंधन के लिए किया जाता है। प्रथम जाति में शीशम, नीम, आम, साल, साखू आदि; द्वितीय में बाँस, बेल, नारियल, ताड़ आदि, तृतीय में फिरास, बबूल, इमली आदि तथा चौथी में पलास, बड़, पीपल, गूलर आदि आते हैं।

काष्ठ शिल्प अथवा बढ़ईगिरी में विशेष कर अंतःसार तथा सर्व्वसार जाति के वृक्षों का काष्ठ प्रयोग होता है। बहिस्सार पेड़ों का प्रयोग भारतीय गृह-निर्माण में अधिकता से किया जाता है। निस्सार जाति की लकड़ी काष्ठ-शिल्प के लिए नितान्त निरोपयोगी है। इस जाति के वृक्षों का उपयोग बहुधा ग्राम क्षेत्रों में शीतल-छाया प्राप्त करने में किया जाता है। गिर जाने पर इनकी लकड़ी जलाने के काम में आती है।

पाश्चात्य वनस्पतिवेत्ताओं (Botanists) के मतानुसार वृक्षों की मुख्यत्या दो श्रेणियां होती है। प्रथम 'पुष्पित वृक्ष' (फैनेटोजन ट्री)—जिन वृक्षों में सुमन लगते हैं। इन वृक्षों की लकड़ी कठोर होती है। इसका प्रयोग काष्ठ-शिल्प में अधिकता के साथ किया जाता है। इस प्रकार के पेड़ों की पत्तियां नुकीली तथा छोटी होती हैं। द्वितीय 'अपुष्पित

वृक्ष' (काइपोटिजेन जिनकी लकड़ी अपेक्षतया नरम होती है। इनकी पत्तियाँ चौड़ी होती हैं। पुष्पित वृक्षों की दो और जातियां है जिन्हें बहिर्वर्द्धित (Exogenous) और अन्तर्वर्द्धित (Endogenous) कहते हैं।

बहिर्वर्द्धित वृक्षः—इस जाति के पेड़ उत्तरोत्तर बाहर की तरफ फैलते हुए मोटे होते जाते हैं। इन पेड़ों में उनके छिलके(Bark)के नीचे आन्तरिक भाग में ठोस काष्ठ के ऊपर प्रति वर्ष एक-एक चक्राकार नया परत (Annual Ring) उत्पन्न होता है। इस परत को हम वृक्ष की प्रति वर्ष मोटे होने की क्रिया कह सकते हैं। इस जाति के पेड़ों के आड़े कर्तन (चिरान यानी Cross Section)में पेड़ के गर्भाशय अथवा गाभे में हम इन वार्षिक-चक्रों को सरलता से देख सकते हैं। ये चक्र से समकेन्द्रक(Concentric) होते हैं। इनसे पेड़ों की आयु का पता सहज में लगाया जाता है। आधुनिक विज्ञान ने एक ऐसे यंत्र का निर्माण किया है जिसके द्वारा हम पेड़ को बिना काटे ही उसकी आयु का पता लगा सकते हैं। इस यंत्र से पेड़ के तने में पतला छेद करते हैं। बाहर जो भी बुरादा आता है उसके रंग के द्वारा पेड़ की आयु का पता लगाया जाता है। वार्षिक चक्रों का रंग पेड़ों की लकड़ी से अधिक गहरा(Dark)कालापन लिये हुये होता है। अस्तु, जितनी बार यह गहरा बुरादा बाहर आता है उससे हम पेड़ की उमर गिन लेते हैं। ग्रीष्म प्रधान देशों में जहाँ पर कि गर्मी अधिक पड़ती है यह वार्षिक चक्र प्रति वर्ष एक से अधिक भी बन सकते हैं। इनकी दो श्रेणियाँ हैं। प्रथम वसन्तकालीन पर्त (Spring Ring) तथा द्वितीय शरद् कालीन पर्त (Autumn Ring) सागौन, साखू, शाल्यिय, देवदार आदि वृक्ष इसी श्रेणी में आते हैं।

अन्तर्वर्द्धित वृक्षों में यद्यपि प्रथम अवस्था में काष्ठ की वृद्धि या विकास की प्रारम्भिक क्रिया बाहर की ओर से ही आरम्भ होती है, तथापि बाद में नए विकास का रस अत्यन्त सूक्ष्म आड़ी नलिकाओं या छिद्रों द्वारा बाहर से आन्तरिक भाग में प्रवेश करने लगता है। इस तरह पेड़ अन्दर ही अन्दर बढ़ता है। ताड़ बांस-बेंत आदि वृक्ष इस जाति के हैं।

काष्ठ— पेड़ के आड़े कर्त्तन को पाँच भागों में विभजित किया गया है। पिथ (गाभा), हृदकाष्ठ (Heart wood), रसयुक्त काष्ठ (Sap wood) काण्डवर्द्धक स्तर अथवा गूदा (Cambium) तथा छाल (Bark) आड़े कर्त्तन के चित्र नं० १ में पहला
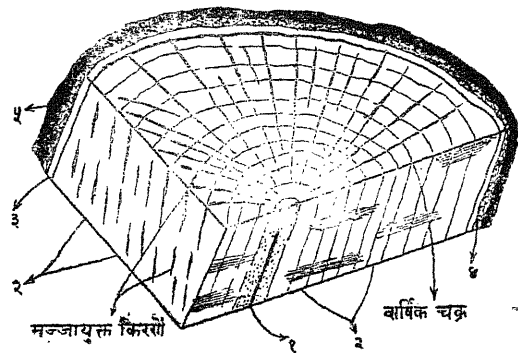
चित्र नं १

भाग गाभ कहलाता है। यह भाग मज्जायुक्त तथा वृक्ष का मर्म्मस्थान अथवा केन्द्र भाग है। यह भाग फरनीचर के लिए व्यर्थ है। दूसरा भाग जो कि गाभे के बाहर चारों ओर परिपक्व काष्ठ ठोस होता है। पेड़ का यह अवयव (हृदकाष्ठ) अत्यन्त मजबूत टिकाऊ और गहरे (Dark) रंग का होता है। इसी का प्रयोग काष्ठ शिल्प में होता है। तीसरा भाग रस युक्त काष्ठ जो कि श्वेत काष्ठ भी कहलाता है। यह हल्के रंग का और अंतरवर्त्ती भाग (हृदकाष्ठ) से कम मजबूत होता है। इस लकड़ी का प्रयोग फरनीचर में नहीं किया जाता है,क्योंकि इस लकड़ी में घुन आसानी से लग जाते हैं। यह लकड़ी पानी पड़ने के पश्चात् शीघ्रता से सड़ जाती है। यदि किसी तरह से इसका थोड़ा सा अंश फरनीचर बनाने वाली लकड़ी में आ भी जाता है तो उसको रंग (पेण्ट) पानी वार्निश के द्वारा लकड़ी के रंग में मिला देते

हैं। इस प्रकार फरनीचर का सौन्दर्य्य मारा नहीं जाता है। इस क्रिया को रसयुक्त काष्ठ को नीला करना (Bluing of Sap wood) कहते हैं। चौथा भाग काण्डवर्द्धक स्तर है। यह भाग छाल तथा आन्तरिक रसीले काष्ट के बीच में होता है। इसकी रक्षक बाहरी छाल है। पेड़ के तने के विकास के साथ-साथ यह काण्डवर्द्धक स्तर दो क्रियाएँ करते हैं। प्रथम तो अपने को रसयुक्त काष्ट के रूप में परिवर्त्तित करता है, फिर बाद में छाल की ओर बढ़कर अपना पहला रूप ग्रहण कर लेता है। पाँचवाँ सब से बाहरी भाग छाल है। यह अतिकठोर तथा शुष्क स्तर है। इसे हम वृक्ष का परिधान कह सकते हैं। यह पेड़ के आन्तरिक भाग को बाहरी जलवायु के बुरे प्रभाव से सुरक्षित रखता हैं। यदि इसे हटाकर कोमल गूदे वाला स्तर खुला छोड़ दिया जाय तो रसका सञ्चार बन्द होजाता हैं और वृक्ष सूखकर गिर जाता है। गूदेवाले (Cambium) स्तरों से तन्तुमय पदार्थ की पतली सूक्ष्म रेखायें अथवा रगें गर्भाशय की ओर जाती हुई दिखाई पड़ती हैं। ये रगें ठीक उसी प्रकार विपरीत दिशा में भीं आन्तरिक भाग से बाहर भाग की ओर किरणों के रूप में दौड़ती हुई होती हैं इन रगों अथवा नसों का पारिभाषिक नाम मज्जायुक्त किरणें (Medullary Rays) हैं।

चित्र सं० २

इन किरणों का रंग शेष काष्ठ की अपेक्षा हलका होता है। ये किरणें मध्य भाग से हृद काष्ठ, श्वेत काष्ठ और रसयक्त काष्ठ से गुजरती हुई छाल तक हो जाती हैं। अपनी आकृति के अनुसार ये किरणें रथ के पहियों की मध्यान्तर छड़ें (Bars) की तरह होती हैं। इन किरणों को 'रजताभ रेशा' (Silver grain) अर्थात् चाँदी की उज्जवल अग्नि के समान भी कहा जाता है। रंदी हुई लकड़ी में ये किरणें शेष काष्ठ से रंग में हलकी होने के कारण से बहुत ही सौन्दर्य्य वर्द्धक होती हैं।

काष्ठ के विकास में इन किरणों का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। ये किरणें रस-वाहिका नली का कार्य्य करके पेड़के आन्तरिक भाग में नयी तथा अनेक पोषणद्रव्य पदार्थ का शीघ्रता तथा अधिक सरलता के साथ संचार करती हैं। यह संचरण क्रिया ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर को भी होती है। इस संचरण काल में रसयुक्त काष्ठ के आन्तरिक तत्व जो कि अन्दर की ओर अपने सीधे खड़े उर्ध्वाधर रेशों में तरल पदार्थ को छान कर प्राप्त करने के लिये सूक्ष्म छिद्रों को बनाये रहते हैं, इन छिद्रों के द्वारा वे अपना भोज्य पदार्थ प्राप्त करते रहते हैं। इस तरह काष्ठ उत्पादन होता रहता है।

ये किरणें पेड़ में एक विशेष शक्ति का भी कार्य्य करती हैं। पेड़ के आड़े कर्त्तन में यह आसानी से देखा जा सकता है कि ये किरणें वृत्ताकार रूप में काष्ठ के गाभे की ओर मुड़ी रहती हैं, इस तरह वह बाह्य भाग को आन्तरिक भाग की ओर बांधती हैं। ये किरणें चूँकि रस (Sap) ऊपर से नीचे को ले जाती हैं, इसलिये काष्ठ में ऊर्ध्वाधर (Vertical) होती हैं। परन्तु जब काष्ठ तख्तों के रूप में बनाकर फरनीचर में प्रयोग किया जाता है तो इन किरणों का उर्ध्वाधर रूप क्षितिज के समानान्तर आड़ा (Horizontal) हो जाता है। इसलिये जब कभी भी लकड़ी पर दबाव पड़ता है तो ये किरणें भार-वहन करने में शक्ति-शाली होती हैं।

वार्षिक चक्रों की मोटाई वृक्षों में भिन्न भिन्न होती है। मिट्टी, स्थिति और जलवायु का विशेष प्रभाव इस भिन्नता में होता है। चौड़े चक्र अच्छी मिट्टी तथा जलवायु वाले भागों में बनते हैं। जहां पर वृक्ष के विकास के प्रतिकूल वातावरण होता है ये चक्र पतले होते हैं। तदनुसार उष्णकटिबन्धीय जलवायु (Tropical Climates) में, जहाँ पर कि भौतिक प्रतिरोध (पदार्थों की कमी आदि मौसम के परिवर्त्तन के अनुसार) नहीं होता है वहां पर काष्ठोत्पादन-कार्य,

वसन्तकालीन और शरतकालीन काष्ठ में कोई बिना परिवर्त्तन लाए ही होता रहता है। फिर भी एक हलका सा निशान बन जाता है और ऐसा प्रतीत होता है कि वार्षिक चक्र की उत्पत्ति ही न हुई हो।

काष्ठ का विकासः—वार्षिक वृद्धि के आड़े चक्रों पर जो कई ऊर्ध्वाकार नसें होती हैं उनके द्वारा वृक्षों की पोषक सामग्री का प्रवाह रस के रूप में मूल की ओर से शाखाओं तथा पत्तियों की ओर दौड़ता और वापिस लौट आता है। बसन्तकालीन प्रवाह जड़ की ओर से ऊपर की ओर को होती है। यही कारण है कि वसन्त में वृक्ष नवजीवन प्राप्त कर नई नई कोंपल लेते हैं। ऊपर पहुँचने में यह इस अल्पकालीन विश्राम के समय कुछ तो सूर्य्य किरणों के ताप के प्रभाव से सूख कर उड़ जाता है और कुछ गाढ़ा होकर शाखाओं तथा पत्तियों में जम जाता है। पत्तियाँ वायु को सोखकर आक्सीजन (Oxygen) को पृथक कर देती हैं और कार्बनडाई आक्साइड (Carbon-dioxide gas) को पी जाते हैं। इसी से काष्ठोत्पादक रस की वृद्धि होती है। शरदृऋतु में यह रस कुछ गाढ़ा होकर काण्डवर्द्धक स्तरों में उतरता है और प्रतिवर्ष एक नये चक्र का निर्माण करता है। इस क्रिया की समाप्ति पर वृक्ष के पत्ते अपनी छोटी अग्रशाखाओं (Twigs) से छूट कर गिर जाते हैं। यह घटना शिशिर की समाप्ति के साथ होती है। यह पतझड़ कहलाता है। इस समय रस का संचरण बन्द रहता है। और वृक्ष का विकास भावी वसन्त तक बन्द रहता है। इस समय श्वेत काष्ठ की रगों में जो रस शेष रहता है वह वसन्तऋतु में वृक्षों में कोंपल उत्पन्न करने में सहायक होता है।

श्वेत काष्ठ के अंदर एक रसयुक्त जीवित मजेदार तत्त्व (Element) होता है। जो कि अपने विकास के साथ बाहर काष्ठोत्पादन करते हैं ये तत्त्व अपनी बनावट में त्रिपार्श्विक(Prismatic)होते ढाल हैं। जिनका एक सिरा ढाल में नुकीला होता है। वसंन्त काल में जब कि सूर्य्य की धूप तथा कुछ दूसरे शीघ्र प्रभावोत्पादक अन्य सूक्ष्म अपरिचित कारण वनस्पतियों के विकास में उद्दीपन का कार्य्य करते हैं और एक नई स्फूर्ति प्रदान करते हैं तो श्वेत काष्ठ के अन्तरिक भाग की ओर ये तत्त्व (Cells) किरणयुक्त फाटन के रूप में (Radially) परिवर्तित हो जाते हैं। इसके पश्चात् वहाँ पर शीघ्रता से रेशे (तन्तु) उत्पन्न होते हैं।

• यद्यपि ये तत्त्व पूर्ण रूपेण अपने रूप में परिवर्तित नहीं होते हैं फिर भी ये नवोदित रेशे (तन्तु) एक जिज्ञासु तथा सूक्ष्म दर्शी क्रमात्मक छोटे-छोटे छिद्रों के साथ सम्पन्न होते हैं। इन छिद्रों का मुख अन्दर की ओर फैला हुआ होता है। ये छिद्र नमी को प्राप्त करने तथा संचार करने की उत्सुकता में रहते हैं। जब तक यह अंतिम क्रिया विकसित होती रहती है तब तक (रस) जो कि नियमानुकूल शनैःशनैः अपना प्रवाह ऊपर को बहाता रहता है। इस भौतिक रस में काष्ठोत्पादक पदार्थ होता है जो कि पेड़ का विकास ऊपर की ओर करता है। यह रेशों को अपने भोज्य पदार्थ द्वारा पुष्ट करके उनकी एक मोटी दीवाल बनाता है। जैसे-जैसे गर्मी बढ़ती जाती है यह काष्ठ का बढ़ता हुआ आकार, इन नये बने हुए मोटी दीवाल सी परतों जो कि खानेदार नसों से बनी होती हैं, के द्वारा बाह्य आवरण (छिलका) पर दबाव डालता है। फिर छिलका भी इन बढ़ते हुए तन्तुओं पर एक प्रभावोत्पादक रोक डालता है।

यह रस ऊपर पहुँचने पर अल्प-विश्राम के पश्चात् जब गर्मी अपने अत्यधिकमात्रा पर पहुँच चुकी होती है तो नीचे की ओर उतरने लगता है। इस समय जड़ तथा पेड़ की पत्तियों को जो भी कई लाभप्रद परिणाम प्राप्त होते हैं ध्यान में रखने लायक हैं। इस समय का रस अधिक मात्रा में काष्ठोत्पादक भौतिक पदार्थ-परिपूर्ण होता है। इस लिये शरदऋतु में वसंत ऋतु की अपेक्षा अधिक रेशो की दीवाल मोटी तथा क्रमिक विकासोन्मुख रहती है। काष्ठ का घनत्व बढ़ता जाता है। सचमुच यह सम्भव है कि यदि पेड़ों को उतनी उत्पादन सामग्री, जितनी की बाद में ग्रीष्मकाल तथा शरदकाल में मिलती है प्राप्त

होती तो वे रेशे अधिक घनत्त्व प्राप्त कर सकते हैं। यह वसन्त कालीन काष्ठ शरदकालीन की अपेक्षतया कम ठोस तथा ढीला होता है। कारण यह है कि वसंत काल में काष्ठ के अन्दर अधिक संख्या में वायु की सूक्ष्म पतली नालियाँ वर्तमान रहती हैं। ये छिद्र ओक वृक्ष के पार्श्व कर्त्तन (Side section) में आसानी से स्पष्टतया देखे जा सकते हैं। ये सूक्ष्म छिद्र वसन्त काल में ही विशेषतया उत्पन्न होते हैं। इन्हें रोमकूप (Pores), सूक्ष्मरंध्र कहा जा सकाता है। शरदकालमें ये बहुत छोटे तथा थोड़े से होते हैं। बसंत काल में ये छोटे-छोटे समूहों में एकत्रित रहते हैं। कुछ लकड़ियों में ये अस्पष्ट होते हैं।

फिर शीतकाल आता है। इसके आगमन के साथ ही रस का प्रवाह तथा तत्वों का उत्पादन अवनति अवस्था को प्राप्त होता है। साथ ही साथ परिणामानुसार काष्ठ की वृद्धि भी कम होती है। इसी समय एक पूर्ण वार्षिक चक्र बनता है। इस चक्र के दो रूप होते हैं। प्रथम, इसका अधिक भाग रंग में हल्का और ढीले रेशेदार होता है। द्वितीय का रूप अधिक (Dark) घना तथा कठोर होता है। प्रथम भाग अधिक मात्रा में रस प्राप्त करता है। और इसके पश्चात् द्वितीय भाग को क्रमानुसार थोड़ा रस मिलता है। इस समय में नाली (रस-मार्ग) साधारणतया रस के अभाव के कारण खाली रहतीं है जो कि वायु तथा पानी से भर जाती है। ये फिर पुरानी रेशों की दीवारें घनी और ठोस होकर अति उत्तम काष्ठ बन जाती हैं। यही फरनीचर के लिये सब से उपयोगी लकड़ीं है।

कल का संसार

जहाजों में आग बताने वाला छोटा यंत्र

लन्दन में हाल में एक ऐसे यंत्र का प्रदर्शन किया गया था जिसकी सहायता से पानी के जहाजों में लगने वाली अग्नि का पता चल सकता है। यह यंत्र आग की लपटों के सम्पर्क में नहीं आता, अपना प्रभाव यह इर्द-गिर्द के वातावरण पर प्रकट करता है। यदि तापमान के बहुत अधिक होने अथवा अन्य किसी कारण से जहाज में अपने आप अग्नि भड़क उठे तो उसकी सूचना यह यंत्र तुरन्त दे देता है। इस यंत्र की विशेषता यह है कि, तापमान के किसी विशेष ऊँची डिग्री पर पहुँचने पर, खतरे की सूचना दे देता है ताकि लोग सतर्क हो जाएँ। इस यंत्र की उपयोगिता उस समय स्पष्ट हो जाती है जब जहाज पर लदे हुए मालों का स्वाभाविक तापमान अपेक्षाकृत अधिक होता है। रँगीली रोशनी उस स्थान पर चेतावनी भेजती हैं जहाँ जहाज का कप्तान तैनात रहता है। इस प्रकार आग के भड़कने के पहले ही, उसे दबाना सम्भव हो जाता है।

आवश्यकता से अधिक गर्म बियरिंग में आग का पता लगाने के लिए भी इस यंत्र का उपयोग किया गया था। जब उस बियरिंग का तापमान, जो इस यंत्र की आजमाइश के लिए बनाई गई थी, किसी निश्चित डिग्री तक पहुँच गया तब इस यंत्र ने तुरन्त चेतावनी दे दी (यंत्र के वह भाग जहाँ पर गति होती है बियरिंग कहलाते हैं।) । तेल से चलने वाली हवाई इंजनों में जब, नवीन परिवर्तनों के कारण, आग का पता लगाने की विधि में भी सुधार की आवश्यकता हुई, तब इस यंत्र का प्रयोग पहले-पहल हवाई जहाजों के लिए किया गया था। आधुनिक यंत्र उसी प्रयोग का विकसित रूप है। यह यंत्र प्रत्येक ओर से कुछ इंच लम्बे एक छोटे से बक्स में होता है।

लन्दन में तेल निकालना

लन्दन के पास अथवा लन्दन के नीचे किसी स्थान में तेल के एक बड़े कुण्ड का पता चला है। दस हजार पौण्ड खर्च कर बिल्सदन (लन्दन) में एक प्रयोग इस समय किया जा रहा है। इंजीनियर लोग यह आशा कर रहे हैं कि वे इस प्रकार भूमि के अन्दर वाले तेल कुण्ड का पता लगा लेंगे।

कुछ समय पहले इस स्थान से आधी मील दूर पर एक सूराख किया गया था और १६०० फ़ीट की गहराई पर तेल का पता चला था। उस समय, यद्यपि इस अनुसंधान की सूचना यादगार के रूप में रख ली गई थी, पर इस ओर कोई नवीन प्रयास नहीं किए गए थे। सम्भव है कि इस समय किए जाने वाले प्रयोग सफल न हों पर यह आशा की जाती है कि अन्त में इस प्रयोग तथा अन्य प्रयोगों की सहायता से लन्दन के भीतर स्थित तेल-कुण्ड का पता लग ही जाएगा।

अत्तारों को नूतन सहायता

लन्दन के बाजारों में एक नए प्रकार की मशीन बिक रही है जो छोटी और बड़ी विविध प्रकार की दवा रखने वाली नन्हीं शीशियों के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। मशीन अपने आप इन शीशियों में आवश्यकता अनुसार मात्रा में द्रव डाल देती है। इसके बाद मशीन में लगा हुआ एक यंत्र इन शीशियों को बन्द कर देता है। इस यंत्र को चालू करने के लिए केवल यह आवश्यक होता है कि स्थानीय गैस, हवा का दबाव और बिजली से इसे संयोजित किया जाय। आवश्यकता के अनुसार भिन्न-भिन्न आकार की शीशियाँ यह मशीन प्रति मिनट बीस की रेट से तैयार करती है।

इसी प्रकार निपुणता से काम करने वाली एक मशीन इन शीशियों को धोने का काम करती है। इससे काम लेने की विधि बहुत सरल है। छान कर साफ किए गए पानी से भरे एक बर्तन में यह शीशियाँ औंधा कर रख दी जाती हैं, जब इन शीशियों से हवा बाहर निकाल ली जाती है तब पानी उनके अन्दर जाता है, और हवा का उनमें फिर प्रवेश करने पर पानी बाहर निकल आता है। इस प्रकार शीशियाँ साफ हो जाती हैं।

एक साधन और तीन सुविधा

लन्दन के बाजारों में इस समय एक नवीन प्रकार का छोटा सा यंत्र ग्राहकों के सामने रखा गया है। स्त्रियों के लिए यह वस्तु बड़ी आकर्षक है। देखने में यह एक छोटे हाथ के आइने के समान है, किन्तु इसके एक ओर पाउडर रखने का स्थान होता है और दूसरी तरफ़ गालों पर लगाने का लाल रंग। इस आइने की मुट्ठी वास्तव में होठों पर रंग लगाने के काम में आती है। कान्ति बढ़ाने की इन तीनों क्रियाओं के लिए अलग-अलग आइने हैं। यह यंत्र तीन भिन्न रंगों का होता है—आबनूस, नीला तथा पीले और सफ़ेद का मिश्रण।

पार्थिव विज्ञान

१—भू-स्तर रचना

लेे० श्री० नत्थनलाल गुप्त, (जगाधरी), हरद्वार

पृथ्वी के पर्वतीय भाग अत्यन्त कठोर चट्टानों से मिल कर बने हैं, जो पत्थर कहलाती हैं, और शेष भाग प्रायः कुछ नर्म और बारीक मिट्टी से बने हुए हैं। यह ऊपर की नर्म मिट्टी रंग और बनावट के विचार से विभिन्न प्रकार की होती है। वह कहीं तो कठोर और खाकी से रंग की होती है, और कहीं नर्म और पीली सी, कहीं-कहीं काली बारीक और चिकनी; अनेक स्थानों में हजारों मील तक भूरे वा पीले रंग का बारीक रेत फैला होता है। इस ऊपरी बारीक मिट्टी ही में जिसे अंग्रेजी में सायल

(Soil) कहते हैं, घास और सब प्रकार के पौदे ऊगते हैं, वे उसमें से पानी में घुलने वाले पदार्थों को चूस कर पलते हैं, और अन्त में गल सड़ कर उसी में मिल जाते हैं, इसी कारण प्रायः सब प्रकार की ऊपरी मिट्टियों में कार्बनिक पदार्थ (Organic Matters) मिले हुए पाये जाते हैं।

ऊपरी मिट्टी (Soil) की यह तह बहुत मोटी नहीं है। सामान्यतः उसकी मोटाई तीन या चार फुट से अधिक नहीं होती किन्तु अत्यन्त उपजाऊ मैदानों में वह कई-कई गज मोटी भी पाई जाती है। इस बारीक मिट्टी की तह के नीचे एक और तह बिछी
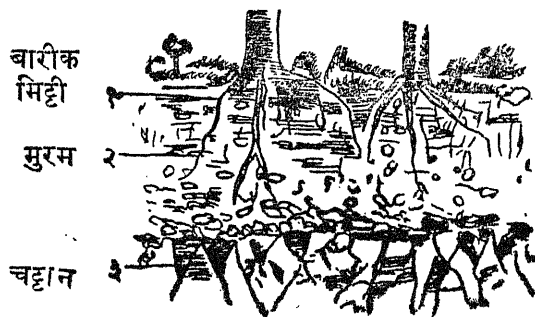
चि० सं० १

होती है जो कुछ अधिक मोटे कणों और रोड़ों से मिल कर बनती है; यह सब-सॉयल (Sub-soil) या नीचे की मिट्टी (या मुरम) कहलाती है। उसमें केवल बड़े-बड़े वृक्षों की जड़ें ही पहुँच सकती हैं, इसलिये उसमें कार्बनिक पदार्थ बहुत कम पाये जाते हैं। ऊपर की मिट्टी जब मेंह के पानी से बह जाती है और नीचे की मोटी मिट्टी—मुरम—ऊपर आ जाती है तो हवा, पानी आदि के प्रभाव से वह भी वैसी ही बारीक हो जाती है। इस दूसरी तह के नीचे प्रायः वैसी ही पथरीली चट्टानों की तह पाई जाती है, जैसी पर्वतीय प्रान्तों में देखने में आती है।

यदि किसी कठोर चट्टान के एक टुकड़े को बारीक पीस लिया जाय तो वह बारीक मिट्टी के समान होगा और वास्तव में ऊपर की बारीक मिट्टी भी ऐसी ही कठोर चट्टानों के पिस जाने से बनी है। यदि ऊपर की बारीक मिट्टी को अणुवीक्षण यन्त्र (Microscope) से देखें तो उसके कण भी नन्हें-नन्हें पत्थर के टुकड़े से प्रतीत हुआ करते हैं। इस प्रकार के कणों को खनिज कण (Mineral fragments) कहा करते हैं। खनिज कणों के अतिरिक्त ऊपर की बारीक मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ (जीवों तथा वनस्पतियों के कण) भी मिले हुए होते हैं, यह पदार्थ किसी मिट्टी में जितने अधिक होते हैं, उतनी ही वह अधिक उपजाऊ होती है।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है, कि वास्तव में पृथ्वी की तमाम सतह पथरीली चट्टानों से मिल कर बनी हुई है, जिन के ऊपर का कुछ भाग विशेष कारणों से बारीक हो गया है, उसी में सब प्रकार की वनस्पति ऊगती है। यदि यह पिसी हुई चट्टानों की तह पृथ्वी के ऊपर फैली हुई न होती तो दुनियां में वनस्पति का अस्तित्व ही न होता और चूंकि मनुष्य तथा अन्य प्राणियों का जीवन वनस्पति पर निर्भर है, इसलिये संसार में किसी भी प्रकार के प्राणी दृष्टिगोचर न होते।

सामान्य बोल चाल में हम केवल कठोर चट्टानों को ही चट्टान कहते हैं। किन्तु विज्ञान की भाषा में चट्टान उन समस्त पदार्थों को कहते हैं जिन से पृथ्वी का गोला बना हुआ है। इस विचार से रेत, बजरी, और चिकनी मिट्टी सब इसी प्रकार चट्टान कहलाती हैं जिस तरह रेत का पत्थर तथा ग्रेनाईट (Granite) आदि।

अब हम कठोर पत्थर (Granite) के एक बड़े से टुकड़े, रेत के पत्थर (Sand stone), स्लेट के पत्थर, चाक (खड़िया) तथा पत्थर के कोयले का भली प्रकार निरीक्षण करें तो हमें मालूम हो जायेगा कि वह भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ हैं। पहले उन सब को आग में डालो तो पत्थर का कोयला तो जलने लगेगा किन्तु और किसी[1] टुकड़े को आग न जला सकेगी। इस से मालूम हुआ कि पत्थर का कोयला जिस पदार्थ का बना है, वह उन पदार्थों से जिनसे अन्य पत्थर बने हुए हैं, बहुत

[1] चाक का टुकड़ा आग में जलकर भुर-भुरा सा हो जाता है, किन्तु पत्थर के कोयले के समान नहीं जलता।

भिन्न प्रकार का है। सच बात तो यह है, कि पत्थर का कोयला, यद्यपि पत्थर का कोयला कहलाता है पर वास्तव में वह पत्थर नहीं है; वरन एक प्रकार की वनस्पति है जिसमें विशेष प्रकार के परिवर्तन हो जाने से वह ऐसा कठोर हो गया है और उसका रंग रूप भी ऐसा बदल गया है, कि पहचान नहीं पड़ता।

पत्थर के कोयले को अलग रख दो और शेष पदार्थों को अणुवीक्षण यन्त्र से देखो तो उन की रचना भी भिन्न-भिन्न प्रतीत होगी। रेत के पत्थर में तो अत्यन्त नन्हें २ गोल २ कण कतारों में चिपके हुए प्रतीत होंगे, जो कांच के टुकड़ों के समान चमकते हैं। यह कण किसी पत्थर में कुछ मोटे और किसी में बारीक होते हैं, सामान्यतः जो पत्थर मकानों के बनाने में काम आते हैं, वह वास्तव में रेत के पत्थर ही होते हैं जो रेत के महीन २ कणों से मिल कर बने हैं। जिस पदार्थ से यह बिल्लोरी कण आपस में चिपके रहते हैं वह चूने का कारबोनेट(Calcium carbonate)होता है। यदि रेत के पत्थर के एक छोटे से टुकड़े को हलके हाईड्रोक्लोरिक एसिड (Hydrochloric acid) में डाल दिया जाय तो उस में से एक प्रकार की गैस निकलने लगेगी और थोड़ी देर में वह पदार्थ तो, जिसने कणों को परस्पर चिपकाया हुआ था तेजाब में घुल जायेगा और कण अलग २ होकर बिखर जायेंगे, किन्तु इन कणों पर तेजाब का कुछ भी असर न होगा।

अब ग्रेनाईट (कठोर पत्थर) के टुकड़े को लो। उस का एक सिरा हथोड़े से इस तरह तोड़ दो कि उसके टूटने से एक साफ सी नवीन सतह निरीक्षण के लिये निकल आवे। इस सतह का अणुवीक्षण यन्त्र से भली प्रकार निरीक्षण करो तो तुम्हें पता लगेगा कि वह नन्हें २ गोल कणों से मिलकर नहीं बना है वरन उसकी रचना कुछ भिन्न प्रकार की है। उस में कहीं २ तो वैसा ही चमकीला पदार्थ दृष्टि आयेगा जैसे पदार्थ के कणों से रेत का पत्थर बना होता है। यह बिल्लोर ही है किन्तु यहाँ बिल्लोर के गोले २ कण दिखलाई नहीं पड़ेंगे वरन लम्बी २ सपाट सतहें दिखलाई पड़ेंगी। वह इतनी कठोर
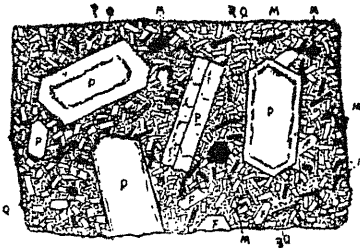
चि० सं० २

होती हैं कि हम उन्हें चाकू से भी नहीं खुरच सकते, उनके सिवा उसमें धुंधले से सफेद व बादामी रंग की बहुत सी लम्बी २ सतह दिखाई देंगी जो चाकू द्वारा बड़ी कठिनाई से खुरची जा सकती हैं और उनमें मोती की सी चमक होती है। यह लम्बी २ सतह वास्तव में लम्बे-लम्बे रवों (Crystals) के चिर जाने से बनी हैं, यह फैलस्पार (felspar) के रवे हैं। तीसरी एक और चमकदार चीज दिखलाई पड़ेगी जो प्रायः काले से रंग की होती है। यह एक प्रकार का अभ्रक है और माइका (Mica) कहलाता है। यह तीनों प्रकार के रवे एक दूसरे के ऊपर नीचे व तरतीबी से फैले हुए होंगे। यह किसी चिपकाने वाले पदार्थ से इस प्रकार चिपके हुए नहीं है जिस प्रकार से रेत के पत्थर में बिल्लोरी कण चिपके रहते हैं वरन ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें आग में पिघला कर ठंडा हो जाने दिया गया है और ठंडा होते समय अलग-अलग पदार्थ के अलग-अलग रवे बन गये हैं और परस्पर चिपक गये हैं।

अब स्लेट का पत्थर उठाओ। यह ग्रेनाईट की अपेक्षा बहुत नर्म है, क्योंकि हम उसे चाकू से खुरच सकते हैं और आसानी से तोड़ सकते हैं। किन्तु जब

हम उसे तोड़ते हैं तो उसके पर्त से उतरने लगते हैं। इसके अतिरिक्त उसकी रचना में न तो रेत के पत्थर के समान मोटे-मोटे गोल कण दिखाई देते हैं और न लम्बे-लम्बे रवे वरन वह बहुत ही बारीक-बारीक कणों से मिल कर बनी हुई है।

अब चाक को लो। जब उसे अणुवीक्षण यन्त्र से देखते हैं, तो उसके कण नन्हें-नन्हें घोंघों जैसे प्रतीत होते हैं। वास्तव में वह छोटे-छोटे निम्न श्रेणी के जन्तुओं के खोल ही हैं जो फार्मी निफरा (Forminifra) कहलाते हैं। यह समुद्री जानवर ऐसे नन्हें-नन्हें होते हैं कि अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता के बिना दिखलाई नहीं पड़ते। जब वह जानवर मर जाते हैं तो उनके पंजर समुद्र की तली में इकट्ठे हो जाते हैं और कुछ समय के पश्चात् परस्पर चिपक कर कठोर चट्टान बन जाते हैं, यही चाक है।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि ग्रेनाईट, रेत का पत्थर और स्लेट का पत्थर तो खनिज पदार्थों (Mineral Matters) से बने हैं किन्तु पत्थर का कोयला तो वनस्पतियों का तथा चाक नन्हें-नन्हें
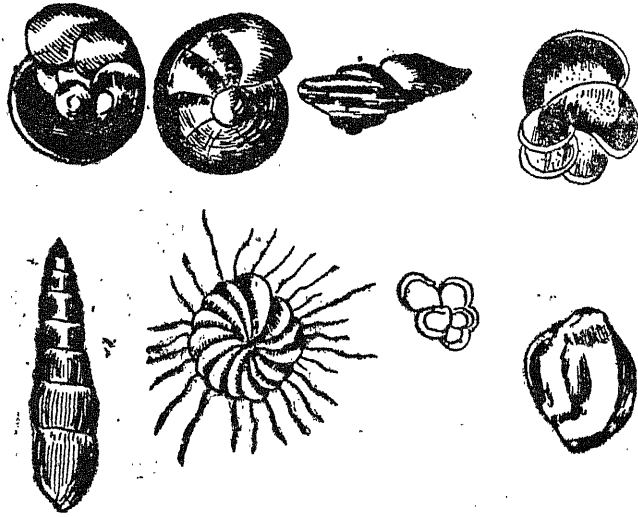
चित्र सं० ३—चाक के घोंघे

जन्तुओं का शेष है, अतः चट्टानें दो प्रकार की होती हैं, वह समस्त चट्टानें जो खनिज पदार्थों से बनती हैं, अकार्बनिक चट्टानें (Inorganic Rocks) या खनिज चट्टानें कहलाती हैं और जो चट्टानें वनस्पतियों वा जन्तुओं द्वारा बनती हैं, वह कार्बनिक चट्टानें (Organic Rocks) कहलाती हैं। ग्रेनाईट, रेत का पत्थर और स्लेट का पत्थर अकार्बनिक तथा पत्थर का कोयला और चॉक कार्बनिक चट्टानें हैं।

जो चट्टानें खनिज पदार्थों से बनी होती हैं, इन के गुण तथा रसायनिक रचना भिन्न-भिन्न हैं। इन की रचना में सब से अधिक सिलिका (Silica) नाम का एक पदार्थ है। मिट्टी, चकमक पत्थर और बिल्लौर भी सिलिका से बना हुआ है। सिलिका के अतिरिक्त और पदार्थ जिनसे चट्टानें बनती हैं चूने और मैगनेसियम के कारबोनेट हैं।

खनिज चट्टानें, बनावट के विचार से दो प्रकार की होती हैं। जो चट्टानें रेत के पत्थर (Sand stone) के समान नन्हें-नन्हें कणों के संयोग से बनती हैं वह कणीली वा दानेदार चट्टानें (Sedimentary Rocks) कहलाती हैं। दूसरे प्रकार की चट्टानें ग्रेनाईट के समान होती हैं, उन्हें हम रवीली चट्टानें (Crystalline Rocks) कह सकते हैं।

जब कोई गहरी खान खोदी जाती है तो प्राय: देखने में आता है, कि भिन्न २ प्रकार की चट्टानों के स्तर एक दूसरे के पीछे निकलते चले आते हैं। उसी प्रकार जब हम किसी पहाड़ का कटा हुआ पहलू देखते हैं तो वहां भी यही दृश्य देखने में आता है कि भिन्न २ रंगों तथा बनावटों के पत्थरों के स्तर एक दूसरे के ऊपर नीचे फैले हुए हैं। यह चट्टानें, इस विशेष रचना के कारण, तहदार वा स्तर सहित (Stratified) चट्टानें कहलाती हैं। तमाम स्तर सहित चट्टानें प्राय: कणीली होती है, अर्थात् नन्हें कणों के परस्पर चिपक जाने से बनती हैं। इन चट्टानों में कुछ ऐसी भी है जिन में स्लेट के पत्थर के समान पर्त भी पाये जाते हैं और जब उन पर चोट मारते है तो उनके पर्त खिल जाया करते हैं। पृथ्वी का ऊपर का छिल्लक—भू-स्तर (Crust of the Earth) प्राय: स्तर सहित चट्टानों से ही मिल कर बना हुआ है।

स्तरवाली चट्टानों को जलज चट्टानें(Aqueous Rocks) भी कहते हैं, क्योंकि, उनकी रचना जल से हुई है। यदि हम एक पानी के ग्लास में, कुछ कंकरियां, रेत और बारीक मिट्टी घोल दें और उसे खूब हिला डुला कर एक तरफ रख दें, तो तुम
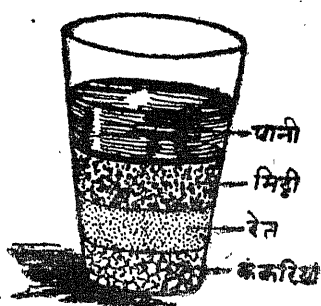
चि० सं० ४

देखोगे कि कंकरियां तो भारी होने के कारण तत्काल पेंदे में बैठ जायंगी और सारे पेंदे में उनकी एक तह बिछ जायेगी; उसके पश्चात् रेत बैठना आरम्भ होगा; मिट्टी के कण बहुत बारीक हैं इसलिए वह बहुत देर तक पानी में तैरते रहेंगे और सब से पीछे तली में बैठेंगे। सब से नीचे कंकरियों का स्तर होगा, उसके ऊपर रेत का और सब से ऊपर मिट्टी का। पृथ्वी के ऊपर की समस्त चट्टानें इसी प्रकार बनी हैं।

कंकरियाँ, रेत और मिट्टी वास्तव में एक ही प्रकार के पदार्थ हैं। अन्तर केवल इतना ही है, कि कंकरियां पत्थरों के मोटे २ टुकड़े हैं, रेत छोटे २ कण हैं और मिट्टी के कण अत्यन्त बारीक हैं। यह तीनों वास्तव में विभिन्न चट्टानों के टूटने और घिसने से बने हैं। हम अगले लेख में बतलायेंगे, कि कुछ प्राकृतिक शक्तियां, किस प्रकार से कठोर से कठोर चट्टानों को तोड़ने और बारीक पीसने में, हर समय लगी रहती हैं। इस प्रकार से जो रोड़े वा रेत बनता है उसे वर्षा का पानी, नदियाँ, झीलों तथा समुद्रों में बहा ले जाता है और वहां जाकर वह तली में बैठ जाते हैं। बड़े २ रोड़े तो तत्काल बैठ जाते हैं और सब से नीचे का स्तर बनाते हैं; उनके ऊपर छोटी २ कंकरियां बैठती हैं, फिर रेत और तत् पश्चात् बारीक मिट्टी। इस प्रकार स्तरों की रचना होती है। यह कार्य सर्वदा चलता रहता है और बड़े २ स्तर सदा बनते रहते हैं।

बहुत से ऐसे पदार्थ भी पानी में घुले हुए होते हैं, जो तमाम कणों को चिपका कर, कठोर चट्टान बनाने में सीमेंट* का काम देते हैं। ऊपर की स्तरों के भार से दब कर भी नीचे के स्तर कठोर हो जाते हैं। पत्थर की बड़ी २ गोल २ बटियों के परस्पर चिपक जाने से जो चट्टानें बनती हैं वह बढ़िया चट्टान (Conglomerate) कहलाती है; जो रेत के कणों के परस्पर चिपकने से बनती हैं, वह रेत का पत्थर (Sand stones) और जो अत्यन्त बारीक कणों के मिलने से बनती हैं, वह मटियाली चट्टान(Clay Rocks) या केवल मिट्टी कहलाती हैं।

*इस प्रकार के पदार्थ चूने के कारबोनेट, सिलिका और लोहे के ओक्साईड आदि हैं।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है, कि स्तर सहित चट्टानें नदियों, झीलों तथा समुद्रों के पानी की निथरन के तली में बैठने से बनती हैं। लगभग सारी पृथ्वी पर स्तर सहित चट्टानों की एक मोटी तह चढ़ी हुई है, और ऊँचे २ पर्वत भी स्तर वाली चट्टानों से मिल कर बने हुए हैं; इससे स्पष्ट यह परिणाम निकलता है, कि समस्त स्थल तथा ऊँचे २ पर्वत भी किसी समय में समुद्र की तली में डूबे हुए होंगे और जहां अब समुद्र है, वहां, कभी अवश्य स्थल होगा; उसी स्थल पर से रेत मिट्टी बह बह कर समुद्र में आया होगा; और उस के तली में बैठ जाने से उपस्थित स्थल पर की समस्त चट्टानें बनी होंगी। किन्तु, अब प्रश्न यह पैदा होता है, कि वह चट्टानें, जो कभी समुद्र में डूबी हुई थीं, बाहर कैसे निकल आईं; और पुराना स्थल कहां लुप्त होगया; इस का उत्तर यह है, कि भू-स्तर स्थिर नहीं है, किन्तु, उसके कुछ भाग तो धीरे २ ऊपर उभरते और कुछ नीचे को धसकते रहते हैं; और यह परिवर्तन ऐसा धीरे २ होता रहता है, कि हमें प्रतीत तक नहीं होता; किन्तु जब मुद्दतों के पश्चात् समुद्र तट के किसी भाग को समुद्र के भीतर डूबा हुवा पाते हैं वा समुद्र के निकट स्थल का कोई नवीन भाग निकल आता है, तब हमें इस परिवर्तन का पता चलता है।

पानी की निथरन जब तली में बैठती है, तो उस से जो स्तर बनते हैं वह समतल होते हैं; किन्तु, स्थल पर की चट्टानों के तमाम स्तर समतल नहीं हैं; वरन, कहीं २ तिरछे, कहीं सीधे खड़े हुए तथा कहीं २ सर्प की भाँति लहरें खाते हुए देखने में आते हैं। इस प्रकार की समस्त रचनाओं का कारण भू-स्तर की अस्थिरता ही है, जब स्तर एक तरफ से ऊपर को उभरने लगते हैं और उनका दूसरा सिरा अपने स्थान पर रहता है, तो वह तिरछे हो जाते हैं; यदि स्तर बीच में से ऊपर को उठने लगें, तो उन का आधा भाग एक तरफ को और आधा दूसरी तरफ को झुक जायेगा, इस प्रकार से स्तरों की रचना

चि० सं ५

(क) समतल चट्टाने (ख) खड़ी चट्टाने (घ) लहरदार चट्टाने (च) तिरछी चट्टाने (ग, छ, ज और झ) स्तरदोष

धनुषाकार हो जायेगी। कभी २ स्तरों के दोनों सिरों पर कठिन दवाव पड़ने से लहरें पड़ जाती हैं। कभी २ दवाव के कारण स्तर बीच में से टूट भी जाते हैं और उनका एक भाग तो नीचे को खिसक
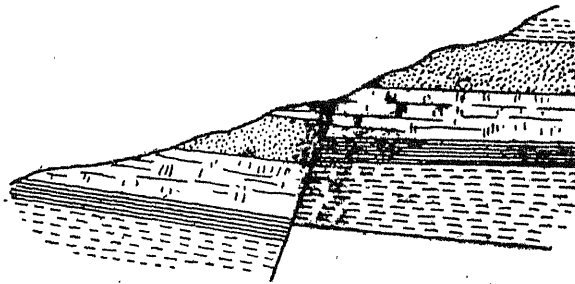
चित्र सं० ६—स्तर दोष

जाता वा ऊपर को धकेला जाता है, और दूसरा अपने स्थान पर रहता है; वा दोनों ही भाग हिल-डुल जाते हैं; इस से स्तरों का मेल बिगड़ जाता है। इसे फ़ॉल्ट (Fault) वा स्तर दोष कहते हैं।

प्रस्तरावशेष (Fossils)—स्तरदार चट्टानों को जब तोड़ते हैं, तो उन की स्तरों के बीच में प्राणियों के पिंजर और कभी पौदों और वृक्षों के अंश भी दबे हुए निकलते हैं। यह प्रायः पत्थर के समान कठोर होते हैं और जीवावशेष वा प्रस्तरावशेष (Fossils) कहलाते हैं। इन को देख कर हम यह बात सुगमता से जान लेते हैं कि वह चट्टानें समुद्र के खारी पानी में बनी हैं वा किसी झील वा नदी के मीठे पानी में, क्योंकि प्रायः यह देखने में आया कि मीठे पानी में रहने वाले प्राणी, खारी पानी के रहने वाले प्राणियों से बहुत भिन्न होते हैं। बहुत से ऐसे प्राणियों के पिंजर भी चट्टानों में दबे हुए पाये जाते हैं, जिन की नस्ल अब दुनियां में कहीं नहीं पाई जाती, उन को देख कर हम जान सकते हैं, कि जिस काल में यह चट्टानें बन रही थीं, उस समय किस २ प्रकार के प्राणी दुनियां में उपस्थित थे, और उस से हम कुछ २ यह भी अन्दाजा लगा सकते हैं, कि वह चट्टानें कितनी पुरानी हैं। यह प्राणी व पौदे पानी के भीतर, स्तरों के जमते समय ही रेत में दब गये थे और अनेक कारणों से ऐसे कठोर हो गये हैं कि अब पत्थर के समान प्रतीत होते हैं।

कभी २ किसी चट्टान की तह के ऊपर पानी की लहरों के बनाये हुए निशान भी पाये जाते हैं, जिन को देख कर हम यह परिणाम निकालते हैं, कि वह चट्टानें अवश्य पानी के किनारे के निकट बनी हैं। कभी २ वर्षा की बूंदों के चिन्ह भी पाये जाते हैं।

यह मालूम करना कि कौन सी चट्टान पुरानी और कौन सी नई है, कभी २ तो बहुत ही सरल होता है और कभी २ बहुत ही कठिन। प्रगट है कि जो चट्टानें नीचे होती हैं, वह पहले बनी हैं, और जो ऊपर हैं वह पीछे; किन्तु कभी २ चट्टानें ऐसी उलट पुलट हो जाती हैं, कि नीचे की चट्टानें ऊपर और ऊपर की नीचे को चली जाती हैं; ऐसी अवस्था में पहचान कठिन हो जाती है।

आग्नेय(वा तापज)चट्टानें(Igneous Rocks) बिना रेत की चट्टानें, प्रायः छोटे बड़े रवों (Crystals) से मिलकर बनी होती हैं। यह आग्नेय चट्टानें कहलाती हैं; क्योंकि उन के बनने का कारण अग्नि है।

आग्नेय चट्टानें, जलीय चट्टानों के समान, समस्त स्थल पर फैली हुई नहीं हैं; वरन, वह केवल जहाँ तहाँ देखने में आती हैं। वह स्थल पर भी बड़ी २ दरारों में फंसी हुई, वा प्रायः, बड़ी २ पर्वत मालाओं के मध्य में, सब से पुरानी जलीय चट्टानों के बीच में से उभरी हुई दृष्टि आती हैं। ज्वालामुखी पर्वतों के आस पास भी इसी प्रकार की चट्टानें होती हैं। दक्षिण का बहुत सा भाग ऐसी ही चट्टानों से मिलकर बना है।

आग्नेय चट्टानें, अत्यन्त कठोर होती हैं। उनमें न पानी प्रवेश कर सकता है और न पौदा उग सकता है। यह पिघले हुए खनिज पदार्थों के जम जाने से बनती हैं, इसलिए, इनमें स्तर नहीं होते। जिस समय, पृथ्वी ने, सरल अवस्था से कठोर अवस्था प्राप्त की, उस समय, समस्त भूतल पर आग्नेय चट्टानें ही फैली थीं और वह ऐसी कठोर थीं जैसा लोहे का गोला; किन्तु समस्त चट्टानें घिस घिसा कर चूर २ हो गईं और पानी ने उनके स्तर जमा दिये, अब सारा स्थल स्तर-सहित चट्टानों से ही ढका हुवा है. इन चट्टानों की मोटाई हजारों फुट होगी और उन के बनने में लाखों वर्ष लगे होंगे। स्तर वाली चट्टानों के नीचे, अब भी, आग्नेय चट्टानों का फर्श बिछा हुआ है।

जमीन, यद्यपि, ऊपर से बिल्कुल ठंडी और कठोर हो गई है, परन्तु, उस के पेट में अब भी बड़ी उष्णता भरी हुई है। उस उष्णता के कारण पृथ्वी के भीतर का पदार्थ, कभी २ इतने जोर से ऊपर को धकेला जाता है, कि वह ऊपर की कठोर चट्टानों को तोड़ कर बाहर निकल आता है। हम जानते हैं कि ऊपर आने पर, दबाव के हट जाने के कारण, वह अपनी ही उष्णता से पिघल जाता है,

वा पहले ही पिघला हुआ होता है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि जब वह बाहर निकलता है तो पिघला हुवा होता है। ज्वालामुखी पर्वतों से इस प्रकार का पदार्थ बहुत निकला करता है। वह लावा (Lava) कहलाता है। बाहर आकर वह ठंडा हो कर जम जाता है और जमते समय उसमें छोटे-छोटे रवे भी बन जाते हैं। इस प्रकार की चट्टानें ज्वालामुखी चट्टानें (Valcanic Rocks) कहलाती हैं।

कभी-कभी ऐसा भी होता है, कि पृथ्वी के भीतर का पिघला हुवा पदार्थ जब ऊपर को धकेला जाता है, तो वह अपने ऊपर की चट्टानों को चीर कर बाहर तो नहीं निकल पाता, किन्तु इन चट्टानों को धकेल कर ऊँचा उठा देता है और इनके बीच में स्वयं ठंडा हो कर जम जाता है। इस प्रकार से जमीन पर ऊँचा पर्वत बन जाता है और जब उसकी चोटी पर की चट्टानों के स्तर घिस-घिस कर बह जाते हैं, तो वह आग्नेय चट्टानें पहाड़ के बीचों बीच में सब से पुरानी तहदार चट्टानों के मध्य में फँसी हुई दृष्टि आने लगती हैं। इस प्रकार की आग्नेय चट्टानें चूंकि बड़े दबावों के नीचे जमती हैं, इसलिये उनके रवे, उन चट्टानों की अपेक्षा जो बाहर हवा में आकर जमती हैं, कुछ भिन्न प्रकार के होते हैं। यह चट्टानें आन्तरिक आग्नेय चट्टानें (Platonic Rocks) कहलाती हैं। ग्रेनाईट इसी प्रकार बना है।

परिवर्त्तित चट्टानें (Metamorphic Rocks)— पिघला हुवा लावा जब जलज-चट्टानों की स्तरों को चीरता हुवा बाहर निकलता है, तो उसकी उष्णता से, इन चट्टानों का वह भाग, जो पिघले हुए लावे को छूता है कुछ दूर तक कुछ-कुछ पिघल जाता है। इससे उसकी रचना में बहुत कुछ अन्तर पड़ जाता है। उसमें तहों के चिन्ह भी रहते हैं और कुछ-कुछ रवे भी बन जाते हैं। इस प्रकार की चट्टानें परिवर्त्तित चट्टानें कहलाती हैं। स्लेट का पत्थर और संगमरमर इसी प्रकार की चट्टानें हैं।

सेन्द्रिक चट्टानें (Organic Rocks):— हम ऊपर बता चुके हैं कि जलीय-चट्टानों के स्तरों में कभी-कभी, किसी प्राणी का पिंजर वा किसी वृक्ष का कोई भाग दबा हुवा निकल आता है, जो भारी दबाव के कारण पत्थर के समान कठोर बन जाता है और प्रस्तरावशेष कहलाता है। इसी प्रकार से किसी-किसी स्थान पर सेन्द्रिक पदार्थ (Organic Matters) के मोटे-मोटे स्तर जलीय चट्टानों के स्तरों के बीच में दबे हुए निकलते हैं, जो खासे मोटे तथा मीलों तक फैले हुए होते हैं। यह सेन्द्रिक चट्टानें कहलाती हैं। पत्थर का कोयला, वनस्पति से बनी हुई सेन्द्रिक चट्टान तथा चॉक और मूंगा, प्राणी शेष से बनी हुई सेन्द्रिक चट्टानें हैं।

पत्थर का कोयला—पत्थर का कोयला पुरातन काल की वनस्पति का शेष है। हम ऊपर बता चुके हैं, कि स्थल के कोई-कोई भाग धीरे-धीरे नीचे को खिसकते रहते हैं और कुछ भाग ऊपर को उभरते रहते हैं। ऐसा हमेशा से होता आया है और हमेशा होता रहेगा। इसी के कारण, स्थल के बहुत से भाग जिन पर कभी वनस्पति उगी हुई थी, नीचे को खिसक गये, और पीछे जब उनके ऊपर खनिज पदार्थों के स्तर जम गये, तो वह सारी वनस्पति, भारी बोझ के नीचे दब कर, अत्यन्त कठोर हो गई। पृथ्वी की आन्तरिक उष्णता के कारण उसमें बहुत से रसायनिक परिवर्तन भी हो गये, जिनके कारण उसकी आकृति ऐसी बदल गई कि अब वह पहचानी नहीं जाती।

यदि हम किसी कोयले की खान के भीतर उतर जायें, तो देखेंगे, कि कोयले की कई सौ फीट मोटी तह चिकनी मिट्टी की दो ठोस तहों के बीच में फैली हुई है। यह ऊपर की तह खान की छत और नीचे की तह खान की तली कहलाती है। छत की चिकनी मिट्टी के ऊपर प्रायः रेत के पत्थरों की तह होती है। इसी तरह तली के नीचे भी रेत के पत्थरों का स्तर जमा रहता है। यह तमाम रचना चित्र में भली— भाँति दिखलाई गई है। यदि खान की तली

को ध्यान से देखें तो प्रतीत होगा, कि वह एक प्रकार की काली मिट्टी की बनी हुई है, जो दलदल की चिकनी मिट्टी के समान है। तली की मिट्टी में पत्थर के कोयले के समान काले-काले रेशे से बहु-

रेत का पत्थर		खान की छत
चिकनी मिट्टी		
कोयला		कोयले की तह
मिट्टी		खान की तली
रेत का पत्थर		
मिट्टी		छत
कोयल		कोयले की तह
मिट्टा		तली

चि० सं० ७

तायत से दबे रहते हैं, यह वास्तव में उन वृक्षों और पौदों की जड़े हैं, जिनमे पत्थर के कोयले का स्तर बना है। छत की मिट्टी भी इसी प्रकार की है। उसके भीतर वृक्षों के तने, टहनियाँ और पत्ते दबे हुए पाये जाते हैं, जिनको भली प्रकार देख कर हम यह भी मालूम कर सकते हैं, कि वह किस प्रकार की वनस्पति का शेष है। यहाँ मिट्टी के एक टुकड़े का जो कोयले की खान से लिया गया है, चित्र दिया जाता है। इसमें इस प्रकार के पौदों की टहनियों तथा पत्तों के चिन्ह बने हुए हैं। यह पौदे वर्तमान काल की एक बिना फूल की वनस्पति के समान है, जो फर्न (Fern) कहलाती है। किन्तु अन्तर केवल इतना है, कि आज फर्न उस समय की फर्न से बहुत छोटी होती हैं।
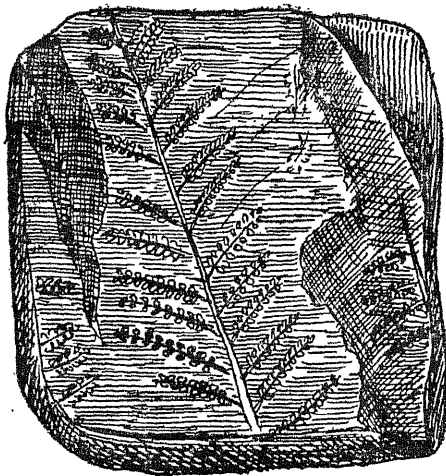
चि० सं० ८

चि० सं० ८ कोयले की खान से निकला हुआ चिकनी मिट्टी का टुकड़ा जिसमें पत्ती और शाखाओं के चिन्ह बने हुए हैं।

पत्थर का कोयला भी एक प्रकार की तह दार चट्टान है, क्योंकि, वह जमीन के भीतर तह पर तह पाये जाते हैं। पत्थर के कोयले को तहों के रूख तोड़ना भी आसान है, और यदि तुम चाहो कि पत्थर का कोयला आसानी से जले और खूब आँच दे, तो उसे तहों के बल आग पर रखना चाहिये, इस अवस्था में, आग से उसके पर्त-पर्त खुल जायेंगे और सुगमता से जलेंगे।

चॉक (Chalk):—यह प्राणियों द्वारा बनी हुई चट्टान है। हम पीछे बता चुके हैं, कि चॉक बहुत ही नन्हें-नन्हें समुद्री कीटों के घोंघों से बनती है। यह नन्हें-नन्हें जीव, समुद्र के पानी में अक्सर तैरते फिरा करते हैं और फोरामीनिफरा (Foraminifra) कहलाते हैं इन प्राणियों की रचना कुछ इस प्रकार की है, कि ऊपर कठोर छिलका होता है, और उसके भीतर एक चिपचिपा सा, सजीव पदार्थ (Paotoplasm) भरा रहता है। यह समुद्र के पानी में से चूने के कारबोनेट्स

(Carbonates of lime) चूसते रहते हैं और उन्हीं से अपने ऊपर का कठोर छिलका बनाते हैं। जब वह जीव मर जाते हैं, तो समुद्र की तली में बैठ जाते हैं। वह इस बहुतायत से होते हैं, कि समुद्र में उनके घोंघों की एक मोटी तह जम जाती है, जो प्रायः सैकड़ों वरन हजारों फुट मोटी होती है, कुछ काल के पश्चात ऊपर के भार से दब कर वह सारे घोंघे आपस में चिपक जाते और कठोर चट्टान बन जाते हैं। और जब समुद्र की तली, किसी कारण से उभर कर समुद्र के बाहर निकल आती है, तो इनसे चाँक की ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ बन जाती है। इङ्गलिस्तान में, इस प्रकार की चाँक की पहाड़ियाँ बहुतायत से पाई जाती है।

मूंगे की चट्टानें (Coral Rocks):—मूंगा भी एक प्रकार के समुद्री जानवरों का पिंजर ही है। लाखों नर्म-नर्म शरीर वाले छोटे-छोटे जीव गर्म समुद्रों में, तटों के निकट, जहाँ समुद्र बहुत कम गहरा होता है, चट्टानो से चिपटे रहते हैं। यह भी समुद्र के पानी में से चूने के कारबोनेट्स चूसते रहते हैं। जब वह मर जाते हैं, तो उनके पिंजर वहीं पड़े रह जाते हैं। एक ही चट्टान पर उनकी सकड़ों पीढ़ियाँ गुजर जाती है, यहाँ तक कि उनके पिंजरों का ढेर पानी से बाहर निकल आता है और चूने की सख्त चट्टान बन जाता है। इस प्रकार की चट्टानें मूंगे की चट्टान कहलाती हैं।

गणित—मनोरंजन

दुलह सिंह कोठारी तथा लच्छमण सिंह कोठारी

समस्या—तीन अंक की कोइ एक संख्या सोचिये। पहिला और तीसरा अंक समान न हों। इस संख्या की विपरीत संख्या लिखिये। इन दोनों संख्याओं का अंतर मालूम कीजिये। शेष संख्या और इसकी विपरीत संख्या को परस्पर जोड़ दीजिये। इस गणित का फल प्रत्येक बार निश्चित ही होगा। यह निश्चित संख्या १०८९ होगी।

उदाहरण—		
	मूल संख्या—	=२२१
	विपरीत संख्या	=१२२
	अंतर	=०९९
	अंतर का विपरीत	=९९०
	अंतर+अंतर का विपरीत	=१०८९

विश्लेषण—मान लीजिये कि मूल संख्या में, एकाई-अंक=क, दहाई-अंक=ख, सैकड़ा-अंक=ग। "ग" अंक "क" से बड़ा है।

	सैकड़ा	एकाई	दहाई
मूल संख्या के अंक	ग	ख	क
विपरीत संख्या के अंक	क	ख	ग

अंतर के अंक

(ग–क–१) (ख+१०–ख–१) (क+१०–ग)

बीज गणित के आधार पर

अंतर

=१०० (ग–क–१) × १० × ९ + (क+१०–ग)

विपरीत अंतर

=१०० (क+१०–ग) +१०+९+ (ग–क–१)

जोड़ =९००+१८०+९=१०८९

समस्या—किन्ही तीन व्यक्ति 'अ', 'ब', 'स' को कहिये कि उनमें से प्रत्येक अधिक से अधिक २ अंकों की एक-एक संख्या सोचे। प्रथम व्यक्ति 'अ' अपनी संख्या को दूना कर तीन जोड़ दे। इस जोड़ को ५० से गुणा कर, गुणनफल 'ब' को बता दे। 'ब' अपनी संख्या को 'अ' की बतायी संख्या में

जोड़ कर सारी क्रिया दुहराये। और नतीजा "म" को बता दे। इसी प्रकार 'स' भी 'ब' की बतायी हुई संख्या में अपनी संख्या जोड़ कर यही गणित करे। 'स' के फल में से १५१५१५० घटाने पर तीनों मूल संख्याएँ सुगमता से बतायी जा सकती हैं।

उदाहरण— 'अ' की संख्या =८
'ब' की संख्या =३१
'स' की संख्या =५

'अ' की क्रिया:

(i) ८×२=१६, (ii) १६+३=१९,
(iii) १९×५०=९५०

'ब' की क्रिया:

(i) ९५०+३१=९८१, (i) ९८१×२= १९६२, (iii) १९६२+३=१९६५, (iii) १९६५+ ५०=९८२५०

'स' की क्रिया:

(i) ९८२५०+५=९८२५५
(ii) ९८२५५×२=१९६५१०,
(iii) १९६५१०+३=१९६५१३,
(iv) १९६५१३×५०=९८२५६५०

'स' का फल =९८२५६५०
घटाओ =१५१५१५०
नतीजा =८, ३१, ०५, ००

इस नतीजे के अन्तिम दो शून्य को छोड़ कर यदि बाँयी ओर से दो-दो अंकों को छोड़ कर अर्ध-विराम (,) लगाते चलें तो तीनों मूल संख्याएँ स्पष्ट हो जाती हैं।

विश्लेषण:—यहाँ पर साधारण रीति से इस समस्या पर विचार करते हैं।

मान लीजिये कि कुल व्यक्तियों की संख्या "म" है। प्रत्येक व्यक्ति एक २ संख्या सोचता है। यह संख्याएँ इस प्रकार हैं: $क_१, क_२, क_३,\ldots$ ...कम। इनमें से सबसे बड़ी संख्या 'न' अंक की है।

प्रथम व्यक्ति अपनी संख्या $क_१$ को दूना कर "$प_१$" जोड़ देता है। इस जोड़ को $१०^{न}/२$ से गुणा कर फल द्वितीय व्यक्ति को बता देता है और वह भी अपनी संख्या को प्रथम व्यक्ति को बतायी संख्या में मिला कर क्रिया को दोहराता है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति बारी २ से यही क्रिया करता है।

प्रथम व्यक्ति का फल

$= (२क_१+प_१)\ १०^{न}/२ = क_१\ (१०)^{न} + १/२\ प_१\ (१०)^{न}$

द्वितीय व्यक्ति का फल

$= [\{(२क_१+प_१)\ १०^{न}/२ + क_२\}\ २ + प_२]\ १०^{न}/२ = क_१\ (१०^{२न}) + १/२प_१\ (१०^{२न}) + क_२\ (१०)^{न} + १/२प_२\ (१०)^{न}$

....

अंतिम व्यक्ति का फल

$= \{क_१\ (१०)^{मन} + क_२\ (१०)^{(म-१)न} + \ldots\ldots + कम\ (१०)^{न}\} + १/२\ \{प_१\ (१०)^{मन} + प_२\ (१०)^{(म-१)न} + \ldots + पम\ (१०)^{न}\}$

अंतिम संख्या में से यदि हम: $१/२\{प_१\ (१०)^{मन} + \ldots\ldots + पम\ (१०)^{न}\}$ ——(१), घटा दें तो निम्न मान (expression) शेष रहेगा:

$\{क_१\ (१०)^{मन} + क_२\ (१०)^{(म-१)न} + \ldots\ldots\ कम\ (१०)^{न}\}$............(२)

मूल संख्याएँ ($क_१, क_२\ldots\ldots$कम) मान (२) में स्पष्ट है। मान (२) के अन्त में 'न' शून्य होगी, इनको छोड़ कर ही बाँयी ओर से प्रत्येक 'न' अंकों के बाद अर्ध-विराम लगाना होगा।

ऊपर के उदाहरण में: म=३ और न=२ और $प_१=प_२=प_३=३$

∴ मान (१) =१५१५१५० .

जैसा कि हम देख चुके हैं अन्तिम फल में से यही संख्या घटाई थी।

समस्या—किसी ताश में से एक पत्ता निकालिये और देखकर उसे उलटा जमीन पर रख दीजिये। इसके ऊपर एक पर एक कोई से पत्ते उल्टे रखते जाइये यहाँ तक कि इन पत्तों की संख्या और नीचे के पत्ते का अंक मिलकर १२ न हो जांय। यदि नीचे

सत्ता हो तो उस पर कोई से भी पांच पत्ते रखने होंगे। अब एक पत्ता और लीजिये और उस पर भी पहिले की भांति ढ़ेरी बनाइये। इस प्रकार ढ़ेरियें बनाते चलिये। अन्त में कुछ पत्ते हाथ में बच रहेंगे जिनसे ढ़ेरी बनना सम्भव नहीं होगा।

प्रत्येक तसवीर वाले पत्ते का अंक १० मानिये (अथवा १२ या १२ से कम कोई भी अंक मान सकते हैं)।

कुल ढ़ेरियों और बचे हुए पत्तों की संख्या से नीचे के पत्तों के अंकों की जोड़ बताई जा सकती है। ढ़ेरियों की संख्या में से ४ घटा कर १३ से गुणा कीजिये। गुणनफल में बचे हुए पत्तों की संख्या जोड़ने से इच्छित फल निकल आयेगा।

उदाहरण

नीचे के पत्ते का अंक	१	७	३	६	२	५	×
ऊपर रखे पत्तों की संख्या	११	५	६	३	१०	७	×

हाथ में बचे पत्तों की संख्या = १
ढ़ेरियों की संख्या = ६
नीचे के पत्तों के अंकों की जोड़ = १३ (६ − ४) + १
= २७

नीचे के पत्तों के अंकों की जोड़ २७ ही होना चाहिये।

ऊपर दी हुई कुण्डली के निरीक्षण से यह स्पष्ट है कि

विश्लेषण—मान लीजिये कि नीचे के पत्ते का अंक और ऊपर रखे पत्तों की संख्या की जोड़, १२ के स्थान पर, "न" है।

ढेरियें	१	२	३	....	म
नीचे के पत्तों के अंक	$क_1$	$क_2$	$क_3$	....	$क_म$
ऊपर रखे पत्तों की संख्ता	$प_1$	$प_2$	$प_3$	....	$प_म$

ढ़ेरियां बनाने के पश्चात् बचे हुए पत्तों की संख्या = ब, क्योंकि प्रत्येक ढ़ेरी में नीचे के पत्ते का अंक और ऊपर रखे पत्ता की संख्या की जोड़, "न" मानी गई है, इसीलिये,

$क_1 + प_1 = क_2 + प_2 = \quad = न \ldots 1$
ढ़ेरी एक में पत्तों की संख्या $= प_1 + 1$
ढ़ेरी दो में पत्तों की संख्या $= प_2 + 1$

....

ढ़ेरी 'म' में पत्तों की संख्या $= प_म + 1$
कुल 'म' ढ़ेरियों में पत्तों की संख्या $= (प_1 + 1) + (प_2 + 1) + \ldots + (प_म + 1)$
क्योंकि ताश में ५२ पत्ते होते हैं, इसलिये :

$$(प_1 + 1) + (प_2 + 1) + \ldots + (प_म + 1) + ब = 52 \ldots (2)$$

....

समीकरण (१) के अनुसार हम (२) को निम्न प्रकार से लिख सकते हैं—

$$(न - क_1 + 1) + (न - क_2 + 1) + \ldots + (न - क_म + 1) + ब = 52$$ अथवा,

$$न \times म - (क_1 + क_2 + \ldots + क_म) + म + ब = 52$$

सुविधा के लिये हम, $(क_1 + क_2 + \ldots + क_म)$ को "ज", के बराबर मानते हैं। स्पष्ट है कि "ज" नीचे के पत्तों के अंकों की जोड़ है।

अब हम समीकरण (३) को इस प्रकार लिख सकते हैं : $ज = न \times म + म + ब - 52$

अथवा, ज=म (न+१)+ब−५२......(४)
ऊपर के उदाहरण में, न=१२,
इसलिये (४) से,

ज=१३(म−४)+ब......(५)
हम यह देखते हैं कि जब न=१२, तभी समीकरण (४) अत्यन्त सरल रूप (५) धारण कर लेती है।

—×—

वैज्ञानिक समाचार

१—ईंधन अनुसन्धान समिति की रिपोर्ट

इसी वर्ष के आरंभ में श्री सी० फोरेस्टर तथा श्री जे० एन० मजुमदार ने भारतीय कोयले को धोकर उत्तम बनाने के सम्बन्ध में अपनी महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रकाशित की है। यह रिपोर्ट ईंधन-अनुसन्धान समिति की पहली रिपोर्ट के नाम से प्रकाशित हुई है। ईंधन-अनुसन्धान समिति श्री ए० फर्कुहर की अध्यक्षता में काम कर रही थी और वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद ने, उसे यह काम सौंपा था।

भारतीय कोयले में राख का हिस्सा अधिक होता है, जिससे उसके प्रयोग में बहुत कठिनाई होती है। इसलिए यदि कार्बन बनाने या अन्य किसी कार्य के लिये साफ कोयले की आवश्यकता हो तो पहले उसकी राख को पृथक कर देना चाहिये।

रिपोर्ट में बताया गया है कि कोक को धोकर किस प्रकार उत्तम बनाया जा सकता है। यह सर्वविदित है कि भारत में कोक बनाया जाने वाला कोयला अधिक परिमाण में नहीं मिलता। इसलिए यदि कोई ऐसा ढंग निकल आवे जिससे भट्टी में जलाने योग्य कोयला तैयार करने के लिए कोयले के परतों की संख्या में वृद्धि हो जाय तो बहुत अच्छा हो और लाभ भी रहे।

झरिया का कोयला

झरिया की कोयले की खान से झरिया का कोयला अधिकतर ऐसा कोयला निकलता है जिससे कार्बन बनाया जा सकता है। रिपोर्ट में कहा गया है कि झरिया की कोयले की खान में दसवें परत से नीचे के परत जिनमें २४ प्रतिशत से अधिक राख नहीं होती, बड़ी आसानी से धोये जा सकते हैं और व्यापारिक दृष्टिकोण से भी लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं। इस प्रकार धोने से जो छोटे-छोटे कोयले के टुकड़े निकलेंगे, उनसे कोक बनाया जा सकता है। इस प्रकार बने हुए कोक में भी राख २० प्रतिशत से अधिक नहीं होगी।

इन आविष्कारों के फलस्वरूप कोक में परिणित करने योग्य कोयले के भंडारों का मूल्य बढ़ जायगा और उचित दिशा में प्रयोग होने लगेगा।

अध्यक्ष ने रिपोर्ट की भूमिका तथा परिशिष्ट में पानी से धोकर कोयला साफ करने के आर्थिक पहलू पर प्रकाश डाला है। आशा है कि निकट भविष्य में ही भारत में बड़े पैमाने पर कोयला धोने का काम शुरू हो जायगा। निस्सन्देह, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद ने जो आविष्कार किया है वह खान उद्योग में रत सभी व्यक्तियों और अधिकांश कोयला प्रयोक्ताओं के लिए लाभदायक सिद्ध होगा। विशेष कर यह उनको लाभप्रद होगा, जो कार्बन बनाने की मशीनें चलाते हैं।

२—जूट से 'सेल्यूलोज'

निकट भविष्य में, भारत में नकली रेशम के उद्योग की उन्नति की इतनी अधिक आशा की जाती है कि उसके उत्पादन के लिये विशेष प्रकार के

'सेल्यूलोज' की मांग बढ़ती जा रही है। यही कारण है कि इस विशिष्ट सेल्यूलोज के उत्पादन के लिये उसके अन्य साधनों की खोज हो रही है। अब तक यह विशिष्ट सेल्यूलोज 'काटन लिंट से' से तैयार किया जाता जा रहा है किन्तु अब इसे 'जूट के रेशे' से तैयार करने का प्रयोग किया गया है। लकड़ी की अपेक्षा जूट, इस सेल्यूलोज का अधिक अच्छा साधन समझा जाता है, क्योंकि उसमें 'लिगनिन' कम होता है और उनकी सफाई भी सरलता पूर्वक की जा सकती है। 'वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान पत्रिका' के फरवरी के अंक में एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें बताया गया है कि जूट के रेशे से इस विशिष्ट सेल्यूलोज को तैयार करने के लिये 'केन्द्रीय जूट कमेटी' की प्रयोगशालाओं में अनुसन्धान का क्या कार्य हुआ और उसके फलस्वरूप क्या संभावनाएँ दिखायी देती हैं।

व्यापार के क्षेत्र में, उपर्युक्त विशिष्ट सेल्यूलोज के उत्पादन के लिये जूट का रेशा किस सीमा तक काम दे सकेगा, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसका कारण यह है कि जूट का रेशा, 'काटन लिंट से' से अधिक कीमती बैठता है और सेल्यूलोज का परता भी उसमें कम ही बैठता है। इसके अतिरिक्त, 'लिगनिन' निकालने में भी बड़ी कठिनाई पड़ती है। इससे समझा जाता है कि रद्दी जूट अथवा जूट की चीजें ही, उक्त विशिष्ट सेल्यूलोज बनाने के काम में इस्तेमाल की जा सकेंगी। उक्त लेख में बताया गया है कि सेल्यूलोज तैयार करने के लिये जूट के रेशे को किस प्रकार साफ करना चाहिये और इसके लिये किस प्रणाली से काम लिया जाना चाहिये।

उपर्युक्त 'पत्रिका' में एक अन्य लेख भी छपा है, जिसमें बताया गया है कि कोयलेदार धुएं (कोक बीज) को औद्योगिक तथा घरेलू कामों के लिये किस प्रकार जमाया जा सकता है। जमाने की पूरी प्रणाली का विवरण भी लेख में दिया गया है।

३—राष्ट्रीय धातुशोधन प्रयोग शाला

क्लीवलेंड ओहियो (अमेरिका) की यांत्रिक धातुशोधन अनुसंधानशाला के डायरेक्टर, और केस इस्टीटयूट आफ टेक्नोलोजी की भौतिक धातुशोधनशाला के प्रोफेसर डा० जार्ज साख्स को जमशेदपुर में राष्ट्रीय धातुशोधन प्रयोगशाला के डायरेक्टर पद पर नियुक्त कर दिया गया है। डा० साख्स इस समय वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद में कार्य करते हैं। वे डा० जी० पी० कंट्रेक्टर के साथ यूरोप में प्रमुख अनुसन्धान केंद्रों का निरीक्षण कर रहे हैं और १ अक्टूबर, १६४८ को अपना नया पद सँभाल लेंगे।

भारतीय अनुसन्धान और उन्नति परिषद ने हाल ही में ५ सरकारी अनुसन्धान शालायें स्थापित की हैं जिनमें से एक राष्ट्रीय धातुशोधन प्रयोगशाला है। और शेष चार राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला, राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, ईंधन अनुसंधान केंद्र, तथा केंद्रीय कांच एवं मृतिका अनुसंधान संस्था है।

राष्ट्रीय धातुशोधन प्रयोगशाला में सब प्रकार का धातुशोधन-अनुसन्धान कार्य होगा तथा टाटा आइरन और स्टील कंपनी की आधुनिक अनुसंधान शाला से भी सहयोग स्थापित किया जायगा। तांबा, अल्यूमिनियम, जस्ता आदि जो धातुएँ भारत में अधिकता से मिलती हैं, उनके अनुसन्धान पर भी विशेष ध्यान दिया जायगा। आरम्भ में भारत की आवश्यकताओं को खास तौर से ध्यान में रखा जायगा। यदि कोई लम्बा अनुसन्धान करना होगा तो तभी राष्ट्रीय प्रयोगशालायें एक दूसरी के सहयोग से काम करेंगी।

४—भूकम्प क्यों आते हैं ?

अंतरिक्ष विभाग की ओर से बताया गया है कि भारत के तटवर्ती केन्द्रों में शीघ्र ही भूकम्प यंत्र लगाये जांयगे, जिनकी सहायता से भारतीय समुद्रों के मौसम की भविष्य वाणी की जा सकेगी। पृथ्वी कभी शांत नही रहती; सूक्ष्मातिसूक्ष्म कम्पन-सूचक यंत्रों में पृथ्वी के कम्पन प्रायः निरंतर दर्ज होते रहते हैं और ये ८ या १० सेंकड तक ठहरते हैं।

भूकम्प का कारण क्या है ? इस विषय पर लगभग ५० वर्षों के अनुसंधान के बाद अब यह पता लगा है कि समुद्र में हवा तूफान या दबाव आदि के कारण पृथ्वी की सतह पर कम्पन की लहरें पैदा हो जाती है।

बंगाल की खाड़ी और अरब सागर के तूफानों से उत्पन्न हुए भूकम्पों के विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि भूकम्प उत्पन्न होने के स्थान से भूकम्प दर्ज करने वाला यंत्र जितनी दूरी पर है उसी अनुपात में उस कम्पन की अवधि बढ़ जायगी। यह भी मालूम हुआ है कि ग्रीष्म-काल की अपेक्षा शीतकाल में भूकम्प का विस्तार अधिक बढ़ जाता है। समुद्र में तूफान का पता लगाने के लिए भारतीय अंतरिक्ष विभाग इन अनुसन्धानों का उपयोग कर रहा है।

भूमि के कम्पन और गति की जाँच :

'भूगर्भ के चुम्बकत्वाकर्षण सम्बन्धी परिवर्तन मैगनिटोग्राम' नामक यन्त्र पर बराबर अंकित होते रहते हैं। इस प्रकार अंकित होने वाले एक विशेष प्रकार के अल्पकालीन स्पन्दनों को 'माई-क्रोपल्सेशन' कहते हैं। अलीबाग (बम्बई) में इन स्पन्दनों के क्रम तथा मौसम और सूर्य के धब्बों की गतिविधि के साथ उनमें होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करने के लिए १६३७, १६३८, १६४०, १६४१, १६४४ और १६४५ के भूगर्भ चुम्ब-कत्वाकर्षण सम्बन्धी लेखे जांचे गये हैं और इन जांचों के परिणाम अन्तरिक्ष अनुसन्धान विभाग द्वारा प्रकाशित एक निबन्ध में दिये गये हैं।

माइक्रोपल्सेशनों की गति के दैनिक परिवर्तनों की जांच करने से मालूम होता है कि प्रायः आधी रात के समय उनकी गति अधिकतम होती है। मौसम सम्बन्धी गति-विभिन्नता अधिक स्पष्ट नहीं होती। 'माइक्रोपल्सेशन' की गति-विभिन्नता और चुम्बकत्वाकर्षण सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय आंकड़ों की पारस्परिक तुलना भी की गई है। इससे जो परिणाम निकले हैं उनकी तुलना ट्राम्सो और सोदंकिला जैसे ऊँचे स्थानों पर किये गये परिणामों के साथ की गई है। उक्त निबन्ध में कुछ विशेष प्रकार के स्पन्दनों के विवरणों की एक तालिका भी दी गई है, जिससे विभिन्न प्रकार के अन्य पर्यवेक्षणों में महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त हो सकेगी।

सूचना

डाइरेक्टर, शिक्षा विभाग, संयुक्त प्रांत

आज्ञा नं० १/६३८—३१-३७

इलाहाबाद, ८ मई, १६४८

१—सूचित किया जाता है कि इस साल (१६४८-४६ ई०) के लिये शिक्षा प्रसार विभाग अपने पुस्तकालयों के लिये हिंदी तथा उर्दू पुस्तकों का चुनाव करेगा। प्रकाशन, लेखक तथा पुस्तक-विक्रेतागण, जो चाहते हैं कि उनकी पुस्तकें उन पुस्तकालयों के लिये चुनी जावें, शिक्षा-प्रसार अफसर (एजुकेशन एक्सपेन्शन आफिसर) संयुक्त प्रान्त, इलाहाबाद के पास प्रत्येक पुस्तक की पांच-पांच प्रतियाँ १५ अगस्त, १६४८ ई० तक भेज दें।

२—पुस्तकें चाहे किसी भी विषय पर क्यों न लिखी गई हो, ऐसी होनी चाहिये, जो साधारणतः सबको रुचिकर हों और विशेषकर ग्रामीण जनता उसे भलीभांति समझ सके। सामयिक विषय तथा सरल पुस्तकों पर विशेष ध्यान दिया जायगा।

विज्ञान, साहित्य तथा दर्शन की पुस्तकें, जो केवल उच्च श्रेणी के शिक्षित समाज के ही योग्य हैं, न भेजी जाय क्योंकि ऐसी पुस्तकें इन पुस्तकालयों के योग्य नहीं हैं।

३—केवल वही पुस्तकें विचारार्थ भेजी जावें, जो गत तीन वर्षों में प्रकाशित हुई हैं तथा जो इस विभाग द्वारा नहीं चुनी गई हैं।

४—जो पुस्तकें इस विभाग द्वारा चुनी या खरीदी जा चुकी हैं उन्हें भेजने की आवश्यकता नहीं है।

५—प्रत्येक पुस्तक के विषय में निम्नांकित विवरण पुस्तक के साथ भेजा जावे—

(१) पुस्तक का नाम,

(२) विषय,

(३) भाषा,

(४) लेखक का नाम,

(५) अनुवादक का नाम, यदि कोई है,

(६) प्रकाशक का नाम या उस व्यक्ति का नाम, जिसको यदि पुस्तक चुनी जावे, तो आर्डर भेजा जावे,

(७) पूरा पता,

(८) पुस्तक का मूल्य,

(९) मूल्य पर कमीशन,

(१०) भेजने वाले का पता।

६—पुस्तकें या तो रजिस्ट्री द्वारा अथवा रेलवे पार्सल द्वारा किराया भेजी जावें। पुस्तकें शिक्षा-प्रसार-अफसर के नाम से न भेजी जावें। आफिस के समय में पुस्तकें कार्यालय में भी ली जा सकती हैं

७—यदि पुस्तकों के प्राप्त होने की सूचना प्राप्त करना हो, तो उनकी सूची तथा टिकट के साथ एक लिफाफा भेजा जावे।

८—चुनाव के लिये भेजी गई पुस्तकें लौटाई नहीं जांयगी।

९—प्रकाशक को चुनाव हो जाने पर चुनी हुई पुस्तकों की सूचना भेजी जायगी। इस विषय में पत्र-व्यवहार करने वालों के पत्रों के ऊपर कोई ध्यान नहीं दिया जायगा।

१०—यदि कोई प्रकाशक कल्पित नाम से पुस्तकें भेजेगा या लेखक का नाम न देकर दूसरे व्यक्ति का नाम देगा, उस पर प्रतिबन्ध लगाया जायेगा कि अगले दो वर्ष तक उसकी पुस्तकें चुनाव के लिये स्वीकार नहीं की जांयगी।

चुन्नीलाल साहनी
डाइरेक्टर, शिक्षा विभाग,
संयुक्त प्रान्त।

क्षमा प्रार्थना

हमें अत्यन्त खेद के साथ लिखना पड़ता है कि हम मार्च के बाद अब आप की सेवा में अप्रैल मई का विज्ञान भेज पा रहे हैं। इस विलम्ब के कारण हमारे पाठक गणों को बहुत ही कठिनाई उठानी पड़ी; यहाँ तक कि कुछ पाठक गण धैर्य छोड़कर न्यायानुसार हम पर कार्यवाही करने की भी सोचने लगे। ठीक ही है, धैर्य की भी सीमा होती है। परंतु हमें दुःख है कि हमारी ओर से ऐसी व्यवस्था खड़ी हुई। इन सब का मुख्य कारण कागज तथा अन्य कठिनाइयाँ हैं। हमारे ग्राहक तथा सभ्य सम्भवतः है यह नहीं जानते कि विज्ञान परिषद् के जितने भी कार्य कर्ता हैं। वे अवैतनिक रूप से हिन्दी की सेवा करते हैं; केवल एक पत्रवाहक मासिक वेतन पाता है। इन परिस्थितियों को देखते हुए परिषद् के शुभचिंतक हमारी त्रुटियों पर क्रोध न करेंगे परंतु क्षमा करते हुए हमारा उत्साह बढ़ायेंगे।

हीरालाल दुबे
प्रधान मंत्री

विज्ञान परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१—**विज्ञान प्रवेशिका, भाग १**—विज्ञान की प्रारम्भिक बातें सीखने का सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़, एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव, एम० एस-सी० ।

२—**चुम्बक**—हाईस्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—लेखक प्रो० सालिगराम भार्गव, एम० एस-सी०; सजिल्द ॥=)

३—**मनोरञ्जक रसायन**—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यास की तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी०, १॥),

४—**सूर्य सिद्धान्त**—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४, १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद, सजिल्द; दो भागोंमें, मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

५—**वैज्ञानिक परिमाण**—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी, डी० एस सी०; ।॥),

६—**समीकरण मीमांसा**—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।॥), द्वितीय भाग ॥=),

७—**निर्णायक (डिटर्मिनेंट्स)**—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी० ॥)

८—**बीजज्यामिती या भुजयुग्म रेखागणित**—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियों के लिये—ले० डा० सत्य प्रकाश, डी० एस-सी०; १।)

९—**गुरुदेव के साथ यात्रा**—डाक्टर जे० सी० बासू की यात्राओं का लोकप्रिय वर्णन; ।-),

१०—**केदार-बद्री यात्रा**—केदारनाथ और बद्रीनाथ के यात्रियों के लिये उपयोगी, ।)

११—**वर्षा और वनस्पति**—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी, ।)

१२—**मनुष्य का अहार**—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=)

१३—**सुवर्णकारी**—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।)

१४—**रसायन इतिहास**—इन्टरमीडियटके विद्यार्थियों के योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।॥)

१५—**विज्ञान का रजत-जयन्ती अङ्क**—विज्ञान परिषद के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह, १)

१६—**फल-संरक्षण**—दूसरा परिवर्धित संस्करण फलोंकी डिब्बाबंदी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक २१२ पृष्ट; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०; २)

१७—**व्यङ्ग-चित्रण**—(कार्टून बनाने की विद्या) ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ, सैकड़ों चित्र, सजिल्द; २)

१८—**मिट्टी के बरतन**—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द, १॥)

१९—**वायुमंडल**—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र, सजिल्द; १॥)

२०—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगों का ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामरत्न भटनागर, एम०, ए०, २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; २॥),

२१—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश। आकार बड़ा विज्ञान के बराबर २६० पृष्ठ, २००० नुसखे, १०० चित्र, एक एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थ के लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २॥),

२२—कलम-पैबन्द—ले० श्री शंकरराव जोशी, २०० पृष्ठ ५० चित्र, मालियों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥)

२३—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाजी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०, १८० पृष्ठ, ६२ चित्र, सजिल्द २)

२४—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ, ३ चित्र, एक रङ्गीन, सजिल्द २।),

२५—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगों को बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद, पृष्ठ १०४ मूल्य १);

२६—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद-वर्णन और उपयोग करनेकी रीति पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ।।), यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के शिक्षा पटल में स्वीकृत हो चुकी है।

२७—सरल विज्ञान सागर प्रथम भाग—सम्पादक डा० गोरख प्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़पौधों की अचरज भरी दुनियां, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञान के आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६)

२८—वायुमंडल की सूक्ष्म हवायें—ले० डा० सन्त प्रसाद टंडन, डी० फिल०, मूल्य ।।।)

२९—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० डा० ओंकार नाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल०, मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—विज्ञान हस्तामलक—ले०—स्व० रामदास गौड़ एम० ए०, भारतीय भाषाओं में अपने ढंगका यह निराला ग्रन्थ है। इसमें सीधी सादी भाषा में अठारह विज्ञानों की रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन, पौने दो सौ चित्रों से सुसज्जित है, आजतक की अद्भुत बातों का मनमोहक वर्णन है, विश्व विद्यालयों में भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञान की एक सम्पूर्ण लैब्रेरी है। मूल्य ६)

२—सौर-परिवार—लेखक डाक्टर गोरख प्रसाद डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२)

३—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ—ले० श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ, सजिल्द, मूल्य ३॥) अजिल्द ३)

४—वैक्युम ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फ़िटरों इञ्जन-ड्राइवरों, फ़ोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रङ्गीन हैं, २),

मुद्रक—ए० बी० वर्मा, शारदा प्रेस, नया-कटरा—प्रयाग।

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र

भाग ६७ | सम्वत् २००५, जून-जुलाई १९४८ | संख्या ३-४

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries

प्रधान सम्पादक

श्री रामचरण मेहरोत्रा

विशेष सम्पादक

डाक्टर सत्यप्रकाश
डाक्टर गोरखप्रसाद
डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव
श्री श्रीचरण वर्मा
डाक्टर ब्रज किशोर मालवीय

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

बेली रोड, इलाहाबाद ।

वार्षिक मूल्य ३)]

[एक संख्या का मूल्य ।)

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्की इस उद्देश्यसे स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

विषय सूची

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६७] सम्बत् २००५, जून-जुलाई १९४८ [संख्या ३-४

वैज्ञानिक वर्षा

[ले० : डा० सत्य प्रकाश]

हमें इस बात का गर्व है कि हमारा जन्म वैज्ञानिक युग में हुआ है, अर्थात् एक ऐसे युग में, जब हमें नित्य नयी खोजों के समाचार मिलते रहते हैं। कवियों की कल्पनायें और पौराणिकों की आख्यायिकायें इस युग के चमत्कारों के सामने फीकी पड़ गई हैं। असम्भवों को हमने सम्भव करके दिखा दिया, रेडियो पर आप मेरा यह वक्तव्य इस समय सुन रहे हैं। आप इतनी ही सुगमता से लंडन और न्यूयार्क के संवाद भी सुन सकते हैं। ६०-७० वर्ष पूर्व यह चमत्कार असम्भव माना जाता था। हाँ नाटकों और पुराणों में हमने अवश्य आकाशवाणी का नाम सुना था। देवता विमानों में आकाश में विहार करते थे, पर आज तो दानव और मानव भी आकाश में प्रतिदिन विहार करते हुये देखे जाते हैं। थोड़े दिनों में ही आपके देश में ऐसे यन्त्रों का भी संभवत: प्रचार आरम्भ हो जायगा जिनसे आपको यहाँ बैठे हुये सैकड़ों मील पर होनेवाली घटनाओं का साक्षात् होने लगेगा। यह दिव्य दर्शन नहीं तो और क्या है! अभी हिरोशिमा नगर में जिस प्रकार का परमाणु बम द्वारा विस्फोट हुआ, उसके सामने इन्द्र का वज्र भी तुच्छ पड़ जाता है। इन सब चमत्कारों के होते हुये अब हम किस प्रकार किसी कल्पना के चरितार्थ होने को असम्भव कह सकते हैं।

कहा जाता है कि रावण के कारावास में पवन देवता, अग्नि देवता और वरुण देवता तीनों बन्दी थे। यह बात ठीक हो या न हो, पर हम देख रहे हैं कि इस युग में हमने किस प्रकार वायु, अग्नि और जल तीनों को अपने आधिपत्य में कर रक्खा है, और मनचाहा काम इन सबसे हम ले रहे हैं। आपने महाभारत के युद्ध के संबंध में अग्नेयास्त्र और वरुणास्त्र के प्रयोग पढ़े होंगे। शत्रु के अग्निबाणों से निकली ज्वाला को बुझाने के लिये वरुणास्त्र द्वारा मेघ उत्पन्न किये जाते थे, जिनसे वर्षा होती थी। उस समय की इस घटना को हम कवि की कल्पना समझते हैं। इस प्रयोग को हम असम्भव समझते हैं। बिना मेघों के वर्षा कैसी?

और फिर सब मेघ बरसने वाले भी तो नहीं होते। हमारे जीवन का यह साधारण अनुभव है कि आकाश में पानी से लदे मेघ नगर के ऊपर से उड़े चले जाते हैं, और नीचे खेतों में कृषक लोग तृषित नयनों से उन्हें देख कर, आहें भरते रह जाते हैं। अवसर पर वर्षा न होने के कारण देश में अकाल पड़ता है। यही नहीं, बहुत से ऐसे अवसर आते हैं कि आवश्यकता न होने पर भी कुसमय लगातार वर्षा होती रहती है। नदियों में भयंकर बाढ़ आती हैं और नगर बह जाते हैं और खेती नष्ट हो जाती है और कभी-कभी तो तुलसीदास के शब्दों में कहना पड़ता है कि "का बरखा जब कृषी सुखानी"। इस प्रकार अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनों ही जनता के लिये दुःखदायी सिद्ध होती हैं।

वर्षा का न होना या अधिक होना दैवी प्रकोप समझा जाता है। बेचारे मनुष्य के बस के बाहर की यह चीज़ है। वर्षा न होने पर यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता है। गलियों में बच्चों की टोलियाँ "धरती माता पानी दे" के नारे लगाती हुई वर्षा की याचना करती है। मन्दिरों और गिरिजाघरों में पूजा और प्रार्थनायें की जाती हैं। पर अब वे दिन दूर नहीं हैं जब वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा वरुण देवता पूरी तरह से हमारे बस में हो जायेंगे। हम जब चाहेंगे, बादलों को अपने नगर के ऊपर बाँध रक्खेंगे और उन्हें पानी बरसाना पड़ेगा। हम अपनी इच्छा के अनुसार शत्रु के घर जानेवाले बादलों की दिशा को बदल देंगे और उन्हें हम मित्रों के नगर में भेज देंगे। अथवा यह भी तो हमारी शक्ति में होगा कि युद्ध के लिये कटिबद्ध सेना के शिविर पर अनायास हम ऐसी मूसलाधार वर्षा करदें कि सिपाही तर-बतर हो जायँ और युद्ध के लिये बाहर निकल ही न सकें। आप सोचते होंगे कि यह असम्भव है, पर क्या आप नहीं जानते कि इस असम्भव को सम्भव कर दिखाने में ही वैज्ञानिक अपनी विजय समझते हैं। यह कोई बात अब असम्भव नहीं है।

हम आपका ध्यान एक वर्ष पुराने एक प्रयोग की ओर आकर्षित कराना चाहते हैं। ४ अप्रैल १६४७ की यह घटना है। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि इस दिन वैज्ञानिक विधि से कई हज़ार मन पानी अमरीका के एक स्थान पर बरसाया गया। इस कृत्रिम वर्षा का श्रेय पेंटिलेण्ड ओरिगोनियन के ऋतु-विभाग के अध्यक्ष कर्नल एकली एलीसन को है। कर्नल एलीसन महोदय हवाई जहाज़ में उड़कर बादलों के ऊपर पहुँच गये। ये बादल बिना बरसे ही नगर के ऊपर से आगे चले जा रहे थे, और कोई संभावना न थी कि ये बरसने बड़े वेग से जानेवाले इन मेघों में कर्नल एलीसन ने ठोस कार्बनडाइऑक्साइड की गोलियाँ छितरानी आरम्भ की,—ठीक उसी प्रकार जैसे किसान खेतों में बीज बोते हैं। जैसी नैफ़थलीन की गोलियाँ आपने देखी होंगी, वैसी ही पर अत्यधिक ठंढी ये कार्बनडाइ-आक्साइड की गोलियाँ वेग से जाते हुए बादलों में बो दी गयीं। थोड़ी ही देर के अन्तर न बरसने वाले ये बादल घोर काले पड़ गये, पानी से लद गये और बड़े ज़ोर से न केवल पानी की ही वर्षा हुई, प्रत्युत ओले भी बरसे। नीचे खेतों में खड़ी हुई जनता इस मूसलाधार वर्षा को देख कर डर के मारे काँप उठी। उन्हें क्या मालूम था कि यह वर्षा कर्नल एलीसन के प्रयोग का फल है, उसने तो इसे कोई अकस्मात दैवी प्रकोप ही समझा।

पन्द्रह मिनट के बाद ही कर्नल एलीसन ने एक दूसरे मेघमण्डल में ६ सेर "शुष्क हिम" अर्थात् ठोस कार्बन डाइआक्साइड की गोलियों को छितराया और फिर वे अपने इस प्रयोग के फल को देखने के लिये शीघ्रतापूर्वक हवाई जहाज से उतर कर नीचे आये। उन्होंने अपनी आँखों से देखा कि जिन बादलों में उन्होंने "शुष्क हिम" के बीज बोये थे, उनसे बर्फ़ के पत्रों की वर्षा पृथ्वी पर हो रही है। दस मिनट तक वायुयान द्वारा उन्होंने इस कृत्रिम वर्षा के कौतूहल का स्वाद लिया। कर्नल एलीसन के इस सम्बन्ध में ये शब्द

हैं, "समीप के स्थानों में अन्यत्र इस समय कहीं वर्षा नहीं हो रही थी, अतः यह पूर्ण निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि यह वर्षा इसी कारण हुई कि उन्होंने मेघ मण्डलों में "शुष्क हिम" का वपन किया।"

हम आपको अभी बता चुके हैं कि शुष्क हिम या ड्राइआइस ठोस कार्बन डाइआक्साइड को कहते हैं। कार्बन डाइआक्साइड वह गैस है। जो श्वासद्वारा हम बाहर छोड़ते हैं और लकड़ी और कोयला जलने पर जो बनती है। यह गैस ठण्डा करने पर उसी प्रकार पानी पानी की जा सकती है जैसे पानी को भाप ठण्डा होने पर पानी की बूँदें बनती हैं। और जिस प्रकार पानी ठण्डा हो कर बर्फ बन जाता है, उसी प्रकार द्रव कार्बन डाइआक-साइड भी ठण्डा हो कर ठोस बर्फ का सा बन जाता है। इसे "शुष्क हिम" इसलिये कहते हैं कि देखने में तो यह हिम अर्थात बर्फ सा है। पर इसमें पानी नहीं होता, इसलिये यह शुष्क है। कर्नल एलीसन ने १७ सेर के लगभग इस शुष्क हिम की सहायता से ६० वर्ग मील क्षेत्रफल के बीच में हजारों मन पानी की वर्षा करा दी। १ सेर "शुष्क हिम" का दाम संयुक्त राज्य अमरीका में १० सेंट के लगभग अर्थात ५-६ आने हैं। इस प्रकार ५-६ रुपये के शुष्क हिम से इतनी अधिक वर्षा सम्भव हुई। हाँ, वायुयान में उड़ उड़कर बादलों के ऊपर पहुँचने का जो खर्च था वह भी हमें और जोड़ लेना चाहिए। सब हिसाब लगा लेने पर भी यह कृत्रिम वर्षा सस्ती ही पड़ती है।

कर्नल एलीसन से भी पूर्व आस्ट्रेलिया के सिडनी स्थान पर २० वर्गमील के क्षेत्रफल में लग-भग इस प्रकार की विधि से ५ फरवरी १६४७ को भी कृत्रिम वर्षा कराई गई थी और कई स्थानों पर ऐसे प्रयोग किये जा रहे हैं। अब मेघों से मनमानी वर्षा करा लेना अनहोनी घटना नहीं समझी जा सकती।

कृत्रिम वर्षा का प्रथम विचार प्रो० लैंगम्योर के हृदय में उत्पन्न हुआ। यह महोदय अमरीका के प्रसिद्ध रसायनज्ञ हैं और उन्हें अपनी खोजों के उपलक्ष में नोबेल पुरस्कार भी मिल चुका है। इनका एक सहयोगी डा० शेफर भी है जिसने लैंगम्योर के विचारों को कार्यरूप में परिणित करने के लिये सन् १६४३ से ही प्रयोग आरम्भ कर दिये थे। शेफर और लैंगम्योर ने उन समस्त कारणों पर विचार किया जिनके आधार पर बादल बनते हैं, और फिर बरसते हैं। साधारण-तया हम बादलों को तीन प्रकार का समझ सकते हैं। एक तो घुँघराले बादल या सर्पिल मेघ, जिन्हें अंग्रेजी में सिरस (cirrus) कहा जाता है। ये ५ से १० मील की ऊँचाई पर होते हैं। ये देखने में घुँघराले सफेद दिखाई पड़ते हैं। १० मील की ऊँचाई पर यह इतने ठण्डे होते हैं कि इनकी भाप जम कर बर्फ के अति सूक्ष्म रवे बन जाते हैं। सूर्य और चन्द्र के चारों ओर जो गोल तेजो-मण्डल दिखाई देता है वह इन्हीं बर्फीले रवों के कारण है। जब यह रवे पिघलते हैं तो सर्पिल मेघ नीचे उतर आते हैं और मेघ-मालाओं के रूप में चलते-फिरते दिखाई देते हैं। दूसरी तरह के मेघ रुई की फुटकों की तरह दिखाई पड़ते हैं। इन्हें अंग्रेजी में कयूमुलस कहते हैं। यही वे मेघ हैं जिनकी उपमा चलते फिरते बर्फीले पर्वतों से या मस्त हाथियों से दी जाती है। इनकी चाल राजसी होती है। ये पानी से लदे होते हैं और इसीलिए भारी होने के कारण पृथ्वी से केवल १ मील की ऊँचाई पर रहते हैं। तीसरी तरह के मेघ काली घटाओं वाले होते हैं, यह पानी बरसाते हैं। और लगभग १ मील की ऊँचाई पर रहते हैं। उन्हें अंग्रेजी में निम्बस मेघ कहते हैं। यह गरजते और कड़कते भी हैं।

आँखों से दिखाई पड़ने वाले यह बादल भाप नहीं हैं। क्योंकि भाप तो आँख से देखी ही नहीं जा सकती, वह तो अदृश्य होती है। काले बादल या पहाड़ों पर हमारे घरों में घुस जाने वाले बादल जल या हिम के छोटे-छोटे कण होते हैं।

यह हिमकण या जलकण भाप के ठण्डे होने पर बनते हैं। पर बहुधा ऐसा होता है कि भाप कितनी भी ठंडी क्यों न हो जाये यह पानी बनती ही नहीं; पानी बनने के लिये धूल या इसी प्रकार के कुछ कण हवा में बिखरे रहने चाहिए। इन कणों के आश्रय पर ही भाप की बूंदें अन्तरिक्ष में प्रकट होती हैं। यदि हवा में आश्रय के लिये यह रज-कण न हों तो केवल तापक्रम की कमी से पानी की भाप द्रवित नहीं होगी। धूल के ये कण भाप के घनीभूत होने के लिये केन्द्रों का कार्य करते हैं।

मान लीजिये कि एक मील की ऊँचाई पर भाप काफी ठंडी हुई और यह जल या हिम के सूक्ष्म कण भी बन गये। ये कण पृथ्वी के गुरुत्व से आक-र्षित होकर धीरे-धीरे नीचे की ओर उतरेंगे यदि यह कण बहुत छोटे हैं तो वे नीचे बहुत ही धीरे-धीरे उतर सकेंगे, और नीचे में थोड़ी सी गरमी पाकर फिर ऊपर भाप बनकर चढ़ जायेंगे। अत: इन जलकणों या हिमकणों से वर्षा हो ही नहीं पावेगी। जिन जल बिन्दुओं को हम वर्षा में धरती पर आते हुए देखते हैं, वे लगभग उन जलकणों की अपेक्षा कई लाख गुने भारी होते हैं, और तभी वे उतरते समय मध्य मार्ग में फिर भाप बनने से बचे रहते हैं। अत: वर्षा के योग्य कोई ऐसा आश्रय केन्द्र चाहिये, जिस पर भाप से बने हुए जलकण नीचे उतरने से पूर्व बड़े होने का अवसर प्राप्त कर सकें। धूल के कण इस प्रकार का आश्रय प्राप्त कराते हैं।

जल साधारणतया 0° सेन्टीग्रेड तापक्रम पर हिम बन जाता है। पर कभी-कभी तो ऐसा होता है कि—७२° तक अर्थात् शून्य से ७२ डिग्री नीचे तापक्रम तक भी हिम नहीं बनने पाता। इसे पानी का अति शीतलीकरण कहते हैं, इस प्रकार अति शीतलीकृत पानी को यदि धूल के कणों के सम्पर्क में लाया जाय, तो यह पानी शीघ्र हिम बन जायगा। धूल के कण—१२° और—४° के बीच के तापक्रम वाले अतिशीतलीकृत जल को हिम बनाने में सहा-यक होते हैं, हिमकण मध्य मार्ग में होकर जब नीचे उतरते हैं, तब वे जलकणों की अपेक्षा कम वाष्पीभूत होते हैं। अत: इसके कारण वर्षा अधिक सुगमता से होती है। वर्षा होने के लिये हिमकणों के रवों का बनना नितान्त आवश्यक है।

लैंगम्योर और शेफर ने पानी बरसने के इन कारणों को समझा। इन लोगों ने यह समझ लिया कि यदि ऊपर से निकल जाने वाले मेघ में हिम-कणों के रवे उत्पन्न कर दिये जायें अथवा मेघ-मण्डल में ऐसे रवे बखेर दिये जायें, तो फिर मेघ से वर्षा होनी सम्भव हो सकेगी। इन रवों को मेघ-मण्डल में बखेर देना लगभग उसी प्रकार का होगा, जैसे कि खेत में बीजों का बो देना। हिम-कणों के रवे बड़े होने लगेंगे और फिर इनसे पानी बरसेगा। अब प्रश्न यह था, कि हिमकणों के रवे मेघ-मण्डल में किस प्रकार बखेरे जायें। शेफर और लैंगम्योर ने इसकी यह विधि निकाली कि मेघ-मण्डल में यदि कोई बहुत ही अधिक शीतल पदार्थ छोड़ दिया जाय, तो उसके सम्पर्क से ठंडे होकर हिमकणों के रवे बन जायेंगे। उन्होंने इस काम के लिये ठोस कार्बन डाइ अकॉसाइड को उचित समझा। आप ठोस कार्बन डाइ ऑक्सा-इड का टुकड़ा जो बर्फ सा दिखाई पड़ता है अपनी मेज पर रख दें आप देखेंगे कि इसमें से नीले रङ्ग का धुँआ निकल रहा है मानों की सिगरेट सुलग रही हो। यह धुँआ क्या चीज है? यह धुँआ वस्तुत: हिमकण के रवे हैं। जो हवा में पानी की भाप के ठंडे होने से बने हैं। आप ठोस कार्बन डाइ ऑक्सइड का एक टुकड़ा अन्तरिक्ष में फेंके, जिस मार्ग में यह टुकड़ा जायगा, वहां की वायु की भाप ठंडी और हिमकण के रवे हमें दिखाई पड़ेंगे।

अब आप समझ गये होंगे कि कर्नल एलीसन ने मेघमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड या शुष्क हिम की गोलियाँ क्यों बखेरीं, और उनसे किस प्रकार हिमकण केन्द्र बने जिनके कारण घोर वर्षा सम्भव हुई। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि वैज्ञानिक वर्षा की यह कृत्रिम विधि युद्ध के

कार्य के लिये आविष्कृत की गई थी और युद्ध-विभाग ने इसको प्रश्रय दिया। अब वे दिन दूर नहीं हैं कि शत्रुओं की सेना को छकाने के लिये इस प्रकार की वैज्ञानिक वर्षा की जाया करेगी। इन कृत्रिम बादलों की ओट में छिपे-छिपे ऊपर हमारे वायुयान शत्रुओं के देश में अनजाने ही प्रविष्ट हो सकेंगे। बहुत सम्भव है कि शीघ्र ही वह समय आ जाय कि मेघों पर अधिकार जमाने के लिये परस्पर युद्ध हों। यदि हमारी पड़ोसी राष्ट्र से खट-पट हो गई, और यदि उसके राष्ट्र में बरसने वाले मेघ हमारे ही राष्ट्र में होकर जाते हैं, तो शायद हम उन्हें वहाँ पहुँचने देने से पूर्व ही अपने ही देश में बरसा लें, और वे तरसते रह जायें। सम्भव है हम मेघों का व्यापार करने लगें। आज तो यह बातें हमें आश्चर्य मालूम होती हैं। पर सम्भव है किसी दिन यह सच हो जायें और नई समस्यायें उत्पन्न कर दें।

(आल इण्डिया रेडियो के सौजन्य से)

प्राणिकी और भारतीय संस्कृतनिष्ठ शब्दावली

ले० : ठाकुर सूरजभान सिंह, एम० एस० सी०

प्राणिकी या प्राणिशास्त्र के अन्तर्गत उन सब विषयों का समावेश होता है जो प्राणि या जीव से सम्बन्ध रखते हैं। दूसरे शब्दों में जीव की समस्त क्रियायों यथा—विकास, वृद्धि, पोषण (न्यूट्रीशन), श्वसन (रेस्पिरेशन), प्रचलन (लोकोमोशन), और प्रजनन (रिप्रोडक्शन) की क्रियाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण प्राणिकी का विषय है। जीवों का प्राकृतिक वास कैसा है, तथा उनका पर्यावरण व परजीवियों से क्या सम्बन्ध है इनका विवेचन भी प्राणिशास्त्र के अन्तर्गत है।

प्राणिकी का विषय अत्यन्त रुचिकर है क्योंकि मनुष्यों के स्वभाव, उनकी बुद्धि, आचरण, व मानसिक विचार आदि का ज्ञान उसके अध्ययन से सरलता से हो सकता है। वैसे तो मनुष्यों पर व्यावहारिक संपरीक्षा (एक्सपेरीमेन्ट) करना असम्भव है, किन्तु अन्य जीवों पर की गई संपरीक्षाओं से मनुष्यों में होने वाली क्रियाओं का ज्ञान सहज ही हो सकता है। यही कारण है कि मेडिकल कालेज में प्रवेश करने वाले विद्यार्थियों के लिये जैविकी (बायलाजी) का विषय अनिवार्य रखा गया है।

किन्तु प्रश्न यह होता है कि प्राणिकी के समान सुगम विषय विद्यार्थियों के लिये दुष्कर क्यों प्रतीत होता है। उत्तर सरल है। वर्तमान पद्धति यह है कि प्राणिकी का विषय विदेशी (आंग्ल) भाषा में एक ऐसी शब्दावली द्वारा पढ़ाया जाता है जो आंग्ल नहीं है, वरन् ग्रीक एवं लैटिन से ली गई है। परिणाम यह हुआ है कि विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के लिये उक्त भाषाओं का सामान्य ज्ञान होना अनिवार्य हो जाता है, किन्तु ऐसे कितने शिक्षक हैं जो विषय को भलीभाँति समझ कर प्रत्येक शब्द को समझ कर पढ़ते व पढ़ाते हैं। उत्तर स्पष्ट है कि इनकी संख्या बहुत ही कम है। रूढ़ि तो यह पड़ गई है कि वैदेशिक शब्दावली अत्यन्त पूज्य एवं अन्तर्राष्ट्रीय है इसलिये उसे तो उसी ढङ्ग से पढ़ना व पढ़ाना चाहिये जिस ढङ्ग से उन्होंने स्वयं सीखा हो। परन्तु यह बात भी स्वीकार करने में कोई कठिनाई न होगी कि भाषा का प्रत्येक शब्द सार्थक होना चाहिये। ग्रीक व लैटिन से निकली हुई शब्दावली, आंग्ल भाषा भाषी विद्यार्थियों के लिये भी, उतनी ही कठिन हो जाती है जितनी भारतीय विद्यार्थियों के लिये।

भारतीयों की अवस्था तो और भी दीन हो जाती है क्योंकि उन्हें अपनी मातृभाषा को कुचल कर, आंग्ल भाषा में ही पाठ्य पुस्तकों के होने के कारण, बाध्य होकर विषय को उसी भाषा में पढ़ना पड़ता है। परन्तु स्वतंत्र भारत में अब यह दशा अधिक दिनों तक न रहेगी क्योंकि मध्यप्रान्तीय शासन (गवर्नमेंट) ने डाक्टर रघुवीर से भारतीय शब्दावली लेकर मध्मा (इन्टरमीजियेट) तक की विज्ञान की पुस्तकें लिखने का उपक्रम किया है और शीघ्र ही ये पुस्तकें जनता के समक्ष आएँगी।

प्राणिकी की पुस्तकें हिन्दी में लिखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। इस कार्य में मुझे डाक्टर रघुवीर से संस्कृतनिष्ठ शब्दावली लेने की आवश्यकता पड़ी और मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि अब भारतीय संस्कृतनिष्ठ शब्दावली में प्राणिकी का विषय अत्यन्त सरल हो जायेगा। लोगों को शंका हो सकती है कि ऐसा क्यों होगा? इसके उत्तर में हमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि संस्कृत अति प्राचीन भाषा है और यही कारण है कि उसके अनेक शब्द ग्रीक, लेटिन, व अन्य विदेशी भाषाओं में वर्तमान है।

यथा—

आस्टिवो	(Osteo-)	आस्थि
सेफेलो या केफेलो	(Cephalo-)	कपाल
आपिस्थो	(Opistho-	पृष्ठ
डेका	(Deca)	द्वादश
आक्टो	(Octo-)	अष्ट
होमो	(Homo-)	सम
निओ	(Neo-)	नव
पेलसी	(Pelecy-)	पशु
पोडा	(Poda)	पाद
ओडोन्टो	(-odonto-)	दन्त
स्फेनो	(Spheno-)	स्फान
यू	(Eu-)	सु
जूगल	(Jugal)	युगास्थि
वूल	(wool)	ऊर्णी
ए	(a-)	अ
अन	(un-)	अन
सेरो	(Sacchoro-)	शर्करा
सिष्ट	(Cyst)	कोष्ठ
काइटिन	(Chitin-)	कठिनि

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि संस्कृत के अनेक शब्दों का विदेशी भाषाओं में रूपान्तरण हो गया है और जब ये बिगड़े रूप आंग्ल भाषा में भारतीयों के समक्ष आते हैं, तो ये शब्द अपने होकर भी समझ में नहीं आते। तो मेरा कहना अनुचित न होगा कि अपने विद्यार्थियों के सामने शब्द शुद्ध संस्कृत रूप में आवें। इसके अतिरिक्त प्रचलित आंग्ल शब्दावली में ऐसे अनेकों शब्द हैं जिनका शब्द से अर्थ समझना साधारण मनुष्य की शक्ति से परे हैं। ऐसे शब्दों के भारतीय पर्याय अधिक सुन्दर तथा अर्थयुत हैं :—

यथा—

विदेशी शब्द—

१ अरिस्टाटेल्स--इस शब्द का सामान्य अर्थ यह होता है कि यह अरिस्टाटल या अरस्तू का दीपक या दिया है परन्तु वास्तव में यह तो कुछ शल्यपृष्ठों (इकाइनोडर्मस) में चर्वण के लिये एक प्रकार का साचित्र (आपरेटस) है। इससे उसका उचित नाम 'चर्वण साचित्र' या चर्वित्र रखा गया है।

२ गिनीपिग—हमारा शब्दार्थ तो सर्व विदित है कि यह एक प्रकार का सूपक है परन्तु सूअर (पिग) नहीं और न यह 'गिनी' देश में ही पाया जाता है। इससे इसका उचित नाम बंटमूष...बिना पूँछ का मूष, रखा है।

३. काकरोच—इसका नाम भी बहुत ही अशुद्ध है क्योंकि वास्तव में न तो यह कुक्कुट (काक) ही है और न एक प्रकार की मीन...रोच ही, वास्तव में यह तो एक कीट है जो तैल चुरा कर पिया करता है। इससे इसका नाम तैल चोर रखा गया।

४. ऊरु (थाई) प्रदेश में एक थैली है जो (सारटोरियस) कहलाती है। वास्तव में इसका अर्थ 'दर्जी' (टेलर) से सम्बद्ध है। दर्जी के अन्दर की

ओर पाँव सिकोड़ कर बैठने की क्रिया में उपयोगी होने के कारण उस पेशी का नाम 'सारटोरियस' है।

५. पृष्ठवंशी प्राणियों की सर्वकिणवी (पैनक्रियास) में आइलैन्ड लैन्गरहैन्स नामक भाग पाया जाता है। अंग्रेजी का साधारण ज्ञान रखने वाला मनुष्य किसी द्वीप की अवश्य कल्पना करेगा किन्तु वास्तव में यह भाग ग्रन्थि का है जो मधुवशि (इंसुलिन) का उत्पादन करता है, इसका भारतीय नाम मधुवशि ग्रन्थि बहुत उपयोगी है। इसी प्रकार निम्न भारतीय नाम आंग्ल भाषा में पाये जाने वाले नामों से कहीं अधिक उचित व सार्थक है :

श्रोणि उलूखल	एसेटेबुलम (Acetabulum)
रसान्य	ड्यूटोप्लाज्म (Deutoplasm)
गंडास्थि	टेम्पोरल (Temporal)
कार्य सदृश	एनोलाजी (Analogy)
रचना सदृश	होमोलाजी (Homology)
हलास्थि	व्होमर (Vomer)
मस्ति काग्र अस्थि	स्पैनेमाइड (Sphonethmoid)
प्राणिकी	जूलाजी (Zoology)
नासास्थि	नैसल (Nasal)
तात्वस्थि	पैलेटाइन (Palatine)
त्रिवेणायस्थि	टेरीगाइड (Pterygoid)
कास्थि	कार्टिलेज (Cartilage)

इत्यादि।

प्राणिकी के अध्ययन में वैदेशिक शब्दावली के उपयोग से ऐसे अनेकों नामों को कण्ठस्थ करना पड़ता है, जिनका भारतीय संस्कृति तथा इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस बात के स्पष्टीकरण के लिये मैं केवल ग्रीक पुराणों में वर्णित किये हुए देवी देवताओं तथा राक्षसों के केवल नामों का ही उल्लेख कर देना उचित समझता हूँ, जैसे, वीनस Venus, हाइड्रा Hydra, चेमेरा Chimaera, नेरिस Nereis, वीनेयेस कर्डल Venus girdle, सेस्टस Cestus, निम्फ nymph, आर्गोनाटा orgonauta, बेरोए Bero, पाइथान Python, ट्राइथान Triton, डाफने Daphne, हाइला Hyla, एटलस Atlas, रीधा Rhea, इत्यादि। इन शब्दों को साहित्य भारतीय शब्दावली में वर्णात्मक अथवा कुछ सार्थक पदों द्वारा अनुवादित किया गया है, जैसे शिरोधर पीक्स (एटलस), सेसलाति (सैस्टस), जलीयगति (हाइड्रा), उरुपुलाति केरीए, मेततातियत, सेस्टसत्राक्ष कुंल्लुंडालि 'रोमेरा' इत्यादि।

भारतीय शब्दावली में वैदेशिक शब्दावली के नामों सरल तथा छोटे पदों में अनुवादित किया गया है। पद को देखते ही अर्थ का भास हो जाता है, यथा –

तद्वना	नेपोस्टोमा (Gnathostoma)
कपालिन	क्रेनियाटा (Craniata)
विपुच्छा	एन्यूरा (Anura)
उभयचरा	एम्फीबिया (Amphibia)
पक्षिण	एविस (Aves)
कास्थि मत्स्या	कान्ड्रिकथीस् (Chondrichthyes)
अस्थि मत्स्या	आस्टिकथीस् (Osteichthyes)
कशांगा	मेस्टीगोफोरा (Mastigophore)
बीजाणुवा	स्पोरोजोआ (Sporozoa)
प्रजीवा	प्रोटोजोआ (Protozoa)
प्ररस	प्रोटोप्लज्म (Protoplasm)

इत्यादि।

अन्त में अब केवल इसी प्रश्न पर विचार करना शेष रह जाता है कि विदेशी भाषा में इतनी अधिक कठिनाइयों के रहते हुये भी स्वतंत्र भारतवासियों में अधिकांश लोग अभी आंग्ल भाषा के पक्षपाती क्यों हैं? उत्तर स्पष्ट है कि जिस पद्धति से वे पढ़े हैं, उसी पद्धति को बनाये रखने में, वे अपना कल्याण समझते हैं। वे अपने संचित ज्ञान का विस्तार भी आंग्ल भाषा के अनभिज्ञ ९९ प्रतिशत भारतवासियों में नहीं कर सकते। उन्हें कदाचित् यह भी भय है कि यदि उनका ज्ञान सर्वसामान्य तक पहुँच जावेगा तो उनका यह ईर्षालु स्थान न रह जावेगा, जो अभी तक है। किन्तु

उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि स्वतंत्र भारतवर्ष की एक स्वतंत्र भाषा वा राष्ट्रीय भाषा आंग्ल भाषा का स्थान लेकर रहेगी। संविधान सभा इस ओर अग्रसर है और सम्भवतः संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को ही यह स्थान प्राप्त होगा। जब यह अवस्था शीघ्र उत्पन्न होने वाली है तो भारतीयों का दृष्टिकोण भी परिवर्तन हो जाना चाहिये और उन्हें आंग्ल भाषा का बहिष्कार करने में सहायक बनाना चाहिये और भारतीय शब्दावली को दिनोंदिन बढ़ाना चाहिये। अकर्मण्यता के लिये अब स्थान नहीं है और यदि किसी को सच्चे भारतीय होने का दावा है, तो उसे आंग्ल भाषा का मोह त्याग भारतीय भाषा की उन्नति में अपना समय लगा राष्ट्रीय भाषा को समृद्ध बनाने में सहायक होना चाहिये।

भारतीय शब्दावली से ज्ञान का विकास इतना शीघ्र होगा जिसकी अभी कल्पना भी कठिन है। प्राणिकी और औद्भिदी (बाटनी) सा सुन्दर विषय छोटे बच्चों को भी पढ़ाना सम्भव हो सकेगा। सच्ची बात तो यह है कि अभी तक आंग्ल शब्दावली ही भारतीय विद्यार्थियों के लिए उनके जीवनशास्त्र के अध्ययन में बाधास्वरूप रही है। क्या मेरे अन्य भारतीय मित्र मेरे विचार से सहमत होकर इस राष्ट्रीय कार्य को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे ?

विटामिन

ले० : श्री० बालकृष्ण अवस्थी, बी० एस० सी०

पिछली शताब्दी में वैज्ञानिकों का मत था कि हम लोगों के भोजन में केवल निम्नलिखित पाँच पदार्थों की आवश्यकता है :—

(१) **कार्बोहाइड्रेट**—जिसमें कार्बन, हाइड्रोजन व आक्सीजन होता है।

इसके दो भाग हैं—(अ) स्टार्च—पानी में नहीं घुलता जैसे—गेहूँ, चावल, जौ आदि।

(ब) शक्कर—पानी में घुलनशील जैसे—गुड़, चीनी, शहद इत्यादि।

यह सब पदार्थ शक्तिदायक हैं।

(२) **प्रोटीन**—वह पदार्थ जिनमें कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन और सल्फ़र के अतिरिक्त नाइट्रोजन भी रहता है। उदाहरणार्थ-दाल, दूध, दही, अंडा, मांस, मछली।

(३) **चरबी और तेल**—सब चिकने पदार्थ जैसे—घी, मक्खन, सब तरह के तेल, बनस्पति घी।

यह पदार्थ शरीर में गरमी पैदा करते हैं व शरीर का तापक्रम उचित रखने में सहायक हैं।

(४) **खनिज लवण**—इनमें मामूली नमक व और ऐसे लवण जो अन्य खाद्य पदार्थों में पाये जाते हैं, शामिल हैं। गेहूँ की भूसी, दाल, आलू व सब फलों और तरकारियों में कुछ न कुछ लवण पाये जाते हैं जो कि जलाने पर राख के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। उदाहरण—कैलशियम, सोडियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, लोह, मैंगनीज़, फ़ासफ़ोरस आदि। और

(५) **पानी**।

इस शताब्दी के प्रारम्भ में यह खोज की गई कि यदि ऊपर लिखे हुये सब पदार्थ पूरी मात्रा में खाये जायँ तो भी शरीर स्वस्थ नहीं रहता और कोई न कोई विशेष बीमारी पैदा हो जाती है। उदाहरणार्थ यह देखा गया कि कुछ नाविक महीनों तक समुद्र में सैर करते रहे। उनको ताज़े फल व

तरकारियाँ प्राप्त न हो सकीं और वह बीमार पड़ गये। धीरे-धीरे यह देखा गया कि जब तक एक मुख्य चीज खाने में शामिल नहीं की गई तो एक न एक रोग हो जाता था। यह पता चला कि जब नीबू के परिवार वाले फल जैसे—नीबू, संतरा, चकोतरा (जिनको अंग्रेजी में citrus fruits कहते हैं) नहीं खाये गये तो एक रोग जिसको "स्कर्वी" कहते हैं, हो गया। उसके बाद यह सिद्ध कर दिया गया कि ऊपर लिखे हुये ५ पदार्थों के अतिरिक्त एक छठीं श्रेणी के पदार्थ और हैं जिनका शरीर में शामिल होना अत्यावश्यक है और जिसके बिना किसी जीव का शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता। इन श्रेणी के पदार्थों का नाम "विटामिन" रक्खा गया। इनकी आवश्यकता केवल थोड़ी मात्रा में ही होती है। अभी तक लगभग १० विटामिनों का पता ठीक रूप से चला है। उनका वर्णन संक्षेप में नीचे किया जाता है। पहले ५ विटामिन इनमें मुख्य हैं।

विटामिन ए

इसका प्रयोग पहले पहल चूहों के ऊपर किया गया। जब तक उनको रसायनिक प्रकार से शुद्ध भोजन दिया गया, तब तक वह मरते रहे। पर नित्य के भोजन में जब कुछ बूँदें दूध की मिला दी गईं तो वही चूहे अच्छे होने लगे। इससे यह पता चला कि दूध में कोई ऐसी वस्तु है जिसके बिना बाढ़ घट जाती है और बाद में मृत्यु हो जाती है। इस वस्तु का नाम "विटामिन ए" रक्खा गया। इसके बिना शरीर में हर प्रकार के रोग लगने का डर रहता है। इससे इस विटामिन को "रोग हरक विटामिन" भी कहते हैं। हर एक विटामिन के और भी कई वैज्ञानिक नाम होते हैं जो भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न होते हैं।

यह विटामिन चरबी और तेजाब में घुलनशील है पर पानी में नहीं घुलता। १००° के ऊपर गरम करने पर यह विटामिन नष्ट हो जाता है।

कमी से विकार—इस विटामिन की कमी से आँखों के अनेक रोग हो जाते हैं जैसे रतौंधी। हाज़मे को भी हानि पहुँचती है व बाद में दस्त आने लगते हैं। बाढ़ कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त दाँतों का ठीक से न निकलना तथा गुरदे के रोग भी हो जाते हैं।

मुख्य प्राकृतिक पदार्थ—जिनमें यह विटामिन पाया जाता है—

काड, हैलिबट व शार्क मछलियों के जिगर के तेल, अंडा, दूध, मक्खन, पालक, फूल गोभी तथा अन्य पत्ते वाली तरकारियाँ जैसे मूली, शलजम आदि। इन चीजों में यह विटामिन बहुतायत से पाया जाता है। कुछ चीजों में यह थोड़ी मात्रा में ही पाया जाता है जैसे—मक्खन निकला हुआ दूध, दाल, मटर, गेहूँ (खासकर भूसी अथवा चूनी) जौ, गरी व सरसों के तेल, सतंरा। निम्नलिखित पदार्थों में सूक्ष्म रूप में पाया जाता है—शहद, चावल, प्याज, आलू, मूली और शलजम की जड़ें, केला, गरीदार मेवा (nuts), मूंगफली व तिल के तेल। पर मैदा, किनकी निकले हुये चावल, कोकोजम, दालदा व अन्य बनस्पति घी जो कि आजकल पर्याप्त मात्रा में प्रचलित हैं, में यह विटामिन बिलकुल नहीं पाया जाता।

विटामिन बी

पहले बेरी-बेरी रोग का कारण ज्ञात नहीं था। एक वैज्ञानिक ने पता लगाया कि यह रोग उस कबूतर में पैदा किया जा सकता है जिसको केवल किनकी निकला हुआ चावल (polished rice) ही खाने के रूप में दिया जाय। परिणाम यह हुआ कि उसकी भूख नष्ट हो गई, वह शिथिल हो गया और अन्त में मर गया। लेकिन जब बीमारी की अन्तिम अवस्था में भी चावल के बाहर का छिलका जिसको "कनी" या "किनकी" कहते हैं, उसको दिया गया तो वह एकदम चंगा हो गया। इस प्रयोग से यह स्पष्ट हो गया कि किनकी में एक ऐसी वस्तु है जिसकी कमी से बेरी बेरी नामक रोग हो जाता है। इस वस्तु का नाम "विटामिन बी" रक्खा

गया। इसी से इसको "बेरी बेरी हरक विटामिन" भी कहते हैं। हाल में जो खोज इस विटामिन के ऊपर की गई है उससे पता चला है कि यह कई विटामिनों का एक समूह है जिसको बी$_1$, बी$_2$, बी$_3$ बी$_4$...आदि कहते हैं। और पूरे समूह को 'विटामिन बी समूह' या 'विटामिन बी Complex' कहते हैं।

ये विटामिन पानी, एलकोहल व ग्लिसरीन में घुलनशील हैं लेकिन चरबी व तेल में नहीं घुलते। हलके तेजाब में रह सकते हैं पर क्षार से नष्ट हो जाते हैं। यह विटामिन समूह ऊँचे तापक्रम पर टिकाऊ नहीं है।

कमी से विकार—बेरी बेरी, पेट और आँतों की गड़बड़ी जैसे मन्दाग्नि, कोष्ठबद्धता, अफरा आदि; दुर्बलता, तौल का दिन प्रति दिन घटना, 'नर्वस सिस्टम' का बिगड़ना (इससे एक रोग जिसको Neurasthenia कहते हैं हो जाता है); मुँह, नाक, सर, माथा, पैर व घुटनों आदि पर घाव, दिमाग और ज्ञान-तन्तुओं की कमजोरी, रक्त की कमी, हाथ व पैर में दर्द, ब्लड प्रेशर का ठीक प्रबन्ध, भूख कम लगना, बिवाई, नींद का न आना; इत्यादि।

इस समूह का हर एक विटामिन अलग-अलग विकारों के लिए जिम्मेदार है।

प्राकृतिक पदार्थ—खमीर (yeast) चावल की कनकी, गेहूँ की भूसी या चोकर), पत्तेवाली तरकारियाँ जैसे सलाद, पालक, बथुआ, मूली और शलजम के मुलायम पत्ते, फूल गोभी, गाजर, प्याज, गुड़, दूध, अंडा, सोयाबीन व छिलके सहित दाल। निम्नलिखित चीजों में थोड़ी मात्रा में पाया जाता है—माल्ट, पके हुये मटर, आलू, शकरकन्द, नीबू, संतरा, पपीता, तरबूज, खजूर व गोश्त। पर मैदा, किनकी निकले हुये चावल, जानवरों की चरबी व शक्कर इस विटामिन से हीन हैं।

आवश्यक सूचना—'विटामिन बी' की कमी भारतवर्ष में लगभग हर एक मनुष्य में है। यही कारण है कि हम लोग बड़ी जल्दी रोग ग्रसित हो जाते हैं। इसके लिए हम लोगों को आदि से ही ऐसे पदार्थ अपने नित्य के भोजन में सम्मिलित करना चाहिए जिनमें यह विटामिन अधिकता से पाया जाता है। उनमें से खमीर मुख्य है। इसमें पूरा विटामिन बी समूह उपस्थित है। यह या तो नीरा (ताड़ या खजूर के फल का एकदम ताजा रस) के रूप में खाया जा सकता है, या सुखाये हुये चूरा के रूप में। इसके अतिरिक्त हम लोगों को खाना बनाते समय चावल से कनकी, आटे से भूसी व दाल से छिलके कदापि नहीं निकालने चाहिए बल्कि उनके सहित ही खाना चाहिए। मैदा व सफ़ेद शक्कर के खाने में कोई गुण नहीं है, अतः इन चीजों को त्याज्य समझना चाहिए और इनके ऊपर व्यर्थ रुपया खर्च करने में कोई लाभ नहीं है।

"विटामिन सी"

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, नाविकों को एक रोग हो जाया करता था जिसको स्कर्वी कहते हैं। इसमें मनुष्य पीला हो जाता है, शरीर भर में चकत्ते पड़ जाते हैं, तौल कम हो जाता है, दुर्बलता आ जाती है, हड्डी मुलायम पड़ जाती हैं और अन्त में वह मर जाता है। यदि ऐसे रोगी को नीबू का रस दिया जाय तो वह अच्छा होने लगता है। इससे नीबू के तथा अन्य खट्टे फलों के रस में एक ऐसा पदार्थ होता है जिसकी कमी से स्कर्वी रोग हो जाता है। इसका नाम "विटामिन सी" रक्खा गया। इसीलिए इसको "स्कर्वी हरक विटामिन" भी कहते हैं। यह भी विटामिन बी के प्रकार ऊँचे तापक्रम पर टिकाऊ नहीं है।

कमी से विकार—स्कर्वी, हड्डियों का मुलायम पड़ जाना, पायरिया, बाढ़ कम हो जाना, आँव, गठिया, दिल व ब्लड प्रेशर की बीमारी, खाल की बीमारियाँ जैसे खुजली, दाद इत्यादि।

प्राकृतिक पदार्थ—आँवला विटामिन सी के लिए सबसे अच्छी व सस्ती चीज है। इसके अतिरिक्त नीबू, संतरा तथा अन्य खट्टे फल, अमरूद, अनन्नास, पपीता, लीची, आम, अनार, टमाटर, अंगूर, मूली, इमली व प्याज में भी बहुतायत से पाया जाता है। करमकल्ला (पातगोभी), फूल गोभी के पत्ते, कच्चा व ताजा पालक, अंकुर उगे हुये चने व मटर, गाजर, दूध, दही, खरबूजे, तरबूज, सेब व केले में थोड़ी मात्रा में पाया जाता है; लेकिन गोश्त, अंडा, सूखा मेवा, घी, तेल में बिलकुल नहीं होता।

"विटामिन डी"

यह देखा गया कि वह बच्चे जिनको ताजा दूध नहीं मिलता व अंधेरे में रहते हैं जहाँ ताजी हवा व रोशनी नहीं पहुँच सकती, एक ऐसे रोगके शिकार हो गये जिसको 'रिकेट' कहते हैं। ऐसे बच्चे दुबले, बेचैन व चिड़चिड़े मिजाज के होते हैं व प्रायः रोया ही करते हैं। उनकी हड्डियाँ लचीली हो जाती हैं। यह बाद में मालूम हुआ कि उन लोगों के खाने में एक ऐसी वस्तु की कमी थी जिसको 'विटामिन डी' कहते हैं। इसीलिए इसका नाम "रिकेट हरक विटामिन" भी है।

यह विटामिन तेल व चरबी में घुलनशील है पर पानी में नहीं। इसके ऊपर हल्के तेजाब व क्षार का कोई असर नहीं होता। थोड़ी गरमी से इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

कमी से विकार—रिकेट व हड्डी के अन्य रोग, बच्चों को सूखा रोग, हड्डी के ढाँचे का कुरूप हो जाना जैसे Bowlegs, Pigeon Bread, आँत की बीमारियाँ, निमोनियाँ, क्षय, दिल की बीमारी आँखों से कम दिखाई पड़ना, दाद तथा दाँतों की खराबियाँ।

नोट—विटमिन डी की सहायता से अंतड़ियों से कैलशियम व फ़ासफ़ोरस को सोखकर शरीर में इस्तेमाल किया जाता है।

प्राकृतिक पदार्थ—काड, हैलिबट और शार्क मछलियों के जिगर का तेल, दूध, मक्खन, मलाई, अंडे का पीला हिस्सा। कपड़े उतार कर यदि १५ मिनट सुबह या शाम को धूप में बैठा जाय तो विटामिन डी पर्याप्त मात्रा में शरीर को मिलता है। यही कारण है कि भारतवर्ष में जाड़ों में तेल की मालिश करके धूप लेने की प्रथा है।

"विटामिन ई"

चावल, चने, गेहूँ, व कुछ तरकारियों में एक ऐसी वस्तु है जो कि पैदा करने की शक्ति (reproductive power) देती है। यह प्रयोग किया गया कि जब चूहों को ऐसा खाना दिया गया जिसमें यह चीजें नहीं थीं तो उनके कोई बच्चा नहीं हुआ और यदि हुआ भी तो जल्द ही मर गया। इस चीज का नाम "विटामिन ई" रक्खा गया। इसको "निष्फलता हरक विटामिन" भी कहा जाता है। यह तेल व चरबी में घुलनशील है पर पानी में नहीं।

२५०° तक गरम करने पर इसमें कोई हानि नहीं पहुँचती। इसलिए इसको बिना नष्ट किये हुये गरम किया जा सकता है। यह तेजाब और क्षार में भी घुल जाता है। प्रकृति में यह पीले तेल के रूप में पाया जाता है।

कमी से विकार—पैदा करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। इसके शरीर में न होने से बच्चे के पैदा होने सम्बन्धी (reproductivity) तथा अन्य कई प्रकार के विकार आ जाते हैं।

प्राकृतिक पदार्थ—गेहूँ के अंकुर का तेल, सलाद के पत्ते, बिनौले का तेल, चावल, गोश्त, अंडे का योक, दूध, जौ व जई (ओट)

यह पाँच प्रकार के विटामिन मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई विटामिन आजकल मालूम हैं। जैसे :—

"विटामिन एफ"

यह हर एक चरबी में पाया जाता है। इसकी

कमी के कारण खाल की अन्य प्रकार की बीमारियाँ होती हैं।

"विटमिन जी"

यह विटामिन बी, का दूसरा नाम है।

"विटामिन एच"

इसकी कमी से भी खाल की बीमारियाँ जैसे एकजेमा होने का डर रहता है। सर से बाल गिरने लगते हैं। यह खमीर, जिगर और गुरदे में पाया जाता है। इसके गुण विटामिन बी₂ से मिलते हैं; इससे कुछ लोग विटामिन बी₂ को ही विटामिन एच कहते हैं।

"विटामिन आई"

इसकी कमी से ब्रान्कोनिमोनियाँ हो सकता है। यह फलों में खासकर नीबू में, और मुनक्के में पाया जाता है।

"विटामिन के"

यह भी विटमिन सी के प्रकार पीले तेल के रूप में रहता है। १००° तक काफी समय तक गरम करने पर भी यह नष्ट नहीं होता। इसको "रुधिर प्रवाह हरक विटामिन" भी कहते हैं। यह पत्तेवाली तरकारियों में तथा टमाटर में पाया जाता है।

"विटामिन पी"

यह भी रुधिर प्रवाह को रोकता है। यह सब खट्टे फलों के रसों में पाया जाता है।

परिणाम

अन्त में यह कह देना आवश्यक होगा कि अपने को पूर्ण रूप से स्वस्थ रखने के लिए ऊपर लिखी हुई ५ वस्तुओं के अतिरिक्त 'विटामिनों' की भी आवश्यकता है। इस कारण हम सब लोगों को अपने नित्यप्रति के भोजन में कुछ ऐसे सामान सम्मिलित करने चाहिए जिनको 'रक्षक पदार्थ' कहते हैं—उदाहरणार्थ

(अ) ताजा दूध व अंडे,

(ब) तरकारियाँ—मुख्यतः पत्तों वाली तथा

(स) फल—मामूली व सूखे दोनों—खासकर मौसमी फल।

जो रोटी, दाल व चावल हम लोग नित्य खाते हैं, उन्हीं में हम लोगों को यह पदार्थ भी शामिल कर लेना चाहिए। ऐसी खूराक को ही "संतुलित भोजन" कहते हैं। इसके अतिरिक्त जितनी केलारी गरमी हमारे शरीर में नित्य चाहिए, वह हम और चीजों के द्वारा पूरी कर सकते हैं।

सूचना—कुछ चीजें ऐसी होती हैं जिनको कि विटामिन नहीं कहा जा सकता पर वह शरीर में पहुँच कर विटामिन के रूप में बदल जाते हैं। इनको "प्रो-विटामिन" कहते हैं। इनकी आवश्यकता भी शरीर में बहुत है और इनके बारे में बराबर खोज की जा रही है।

नीहारिकाएँ

(NEBULAE)

लेखक: श्री नत्थनलाल गुप्त, जगाधरी

नीहारिका का उल्लेख इस पुस्तक में पीछे कई बार हो चुका है। सब से पहले जर्मनी के दार्शनिक कांट (Kant) ने और फिर उसके पश्चात् फ्रेञ्च ज्योतिर्विद लापलास (Laplace) ने सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन करते हुए यह विचार प्रकट किया था कि दुनिया की पैदाइश एक नीहारिका से हुई है। नीहारिका को अंग्रेजी में नेबुला (Nebula) कहते हैं। यह लेटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ कुहर वा बादल है। अस्तु, नीहारिका आकाश में चमकती हुई गर्म गैस (gas)का एक ढेर होता

है जो हलकी धुन्ध के एक धब्बे या बादल के एक नन्हें से गाले के समान दृष्टि आया करता है। जिस समय काण्ट ने अपना विचार प्रगट किया था उस समय तक नीहारिका एक काल्पनिक वस्तु थी क्योंकि न तो काण्ट ने ही कोई नीहारिका देखी थी और न लापलास ने ही, किन्तु, विलियम हरशल ने, जो उसी समय में हुआ है, जब अपनी दूरबीन का मुख सितारों के निरीक्षण के निमित्त आकाश की तरफ फेरा तो उसे सैकड़ों नीहारिकाएँ देखने में आईं जिससे लापलास के विचार की पुष्टी हुई। पहले पहल तो आकाश में इस प्रकार के जितने भी धब्बे देखे गये उन सब को गर्म और प्रकाशित गैस का ढेर अर्थात् नीहारिका समझा गया किन्तु बाद में कुछ नीहारिकाओं को जब अधिक शक्तिशाली दूरबीनों से देखा गया और वह असंख्य नन्हें-नन्हें सितारों का ढेर सिद्ध हुईं तो साधारणतः यह समझा जाने लगा कि समस्त नीहारिकाएँ वास्तव में सितारों के झुरमटे ही हैं किन्तु अनन्त दूरी पर होने के कारण उनके अलग-अलग सितारों का दिखाई देना कठिन होता है।

अठारहवीं शताब्दि के अन्त तक नीहारिकाओं के सम्बन्ध में ऐसा ही विचार बना रहा। सर विलियम हरशल का सम्मति थी कि कुछ नीहारिकाओं का प्रकाश सितारों के प्रकाश के समान नहीं है। उसके पश्चात् उसका पुत्र सर जॉन हरशल भी इसी विचार का हो गया कि नीहारिकाएँ सितारों का समूह है और सन् १८५४ ई० में ब्रुस्टर (Browster) ने भी अपनी एक पुस्तक में यह विचार प्रगट किया कि ज्यूँ-ज्यूँ दूरबीन की शक्ति बढ़ती जायगी नीहारिकाएँ सितारों के झुरमुट ही सिद्ध होती जायेंगी। किन्तु, २६ अगस्त सन् १८६४ ई० को सर विलियम ह्यूगन्स Sir William Huggins) ने, जब अपने प्रकाश विश्लेषक यन्त्र का मुख अजगर तारा मंडल (Draco) की एक छोटी सी नीहारिका की तरफ किया तो उसने तत्काल जान लिया कि वह नीहारिका साधारण विचार के अनुसार सितारों का झुरमट नहीं वरन् चमकती हुई गर्म गैसों का अम्बार है। क्योंकि उसके रश्मि-चित्र में कृष्ण रेखाओं के बदले प्रकाशित रेखाएँ दिखाई दीं। इसके पश्चात् उसने ओराईन (Orine) (काल पुरुष) की नीहारिका की परीक्षा की और उसे भी सूक्ष्म गैस का महान ढेर पाया। इस प्रकार से सिद्ध होगया, कि सर विलियम हरशल का विचार दुरुस्त था, शेष सब गलती पर थे।

कोई-कोई निहारिका खाली आँख से भी दृष्टि आ सकती है, पर अधिकतर नीहारिकाएँ दूरबीन से ही देखी जा सकती हैं। उनकी आकृति बहुत विचित्र होती हैं। कोई गोल होती है, कोई अण्डाकार कुछ की आकृति छल्ले के समान होती है और कोई केवल प्रकाश की एक लम्बी लकीर सी प्रतीत हुआ करती है। बहुत सी नीहारिकाएँ बेढङ्ग शक्ल की भी होती हैं। प्रायः ऐसा भी देखा गया है कि जब किसी नीहारिका को साधारण दूरबीन से देखा जाता है तो उसकी आकृति और प्रतीत होती है पर जब उसे किसी बड़ी दूरबीन से देखा जाता है तो उसकी शक्ल बिलकुल बदल जाती है, कुछ नीहारिकाएँ दोहरी भी होती हैं अर्थात् दो नीहारिकाओं से मिलकर बनी होती है।

आकृति के विचार से नीहारिकाओं को निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा जा सकता है :—

१—बेढंगी शक्ल नीहारिकाएँ (Irregular Nebulae)

२—पेचदार नीहारिकाएँ (Spiral or Whirlpool Nebulae)

३—अण्डाकार नीहारिकाएँ (Elliptical Nebulae)

४—छल्लाकार नीहारिकाएँ (Annular or Ring Nebulae)

५—ग्रह सदृश नीहारिकाएँ (Planetary Nebulae)

६—तारक नीहारिकाएँ (Stellar Nebulae)

(१) बेढंगी शक्ल की नीहारिकाएँ : ओराईन (Orian) अर्थात् काल पुरुष तारा मंडल में एक बहुत बड़ी नीहारिका है जिसकी आकृति बेढंगी है। इस तारा मण्डल के कटिबन्ध के नीचे तीन मद्धम सितारे उत्तर दक्षिण स्थिति में हैं और काल-पुरुष की कृपाण कहलाते हैं उनके बीच का सितारा खाली आंख से कुछ धुंधला सा प्रतीत होता है, किन्तु जब उसे दूरबीन से देखते हैं तो उस एक सितारे की जगह चार चमकीले सितारे दिखाई देते हैं और बहुत बढ़िया दूरबीन में दो छोटे-छोटे सितारे और भी दृष्टि आने लगते हैं (चि० सं० २) यह सितारे एक प्रकाशित धुंध से घिरे हुए हैं यही काल - पुरुष की नीहारिका है। यह चारों तरफ को दूर-दूर तक फैली हुई है और उसकी आकृति बहुत पेचीदा है। रंग नील सा है और उसकी आकृति कुछ - कुछ बदलती भी रहती है। इसके कुछ भाग दूसरों की अपेक्षा अधिक चमकते हैं। बीच का भाग प्रायः अधिक प्रकाशित हैं और किनारों की तरफ रोशनी मद्धम होती चली गई है। उसकी सीमाओं का निश्चित करना भी कठिन है क्योंकि जितनी अधिक शक्तिशाली दूरबीन से उसे देखा जाता है उतनी ही वह अधिक दूर तक फैली हुई प्रतीत होती है। छः मुखे सितारे के आसपास कुछ दूर तक आकाश प्रकाश-शून्य प्रतीत होता है, किन्तु यह केवल नजर का धोखा है, क्योंकि प्रकाश-विश्लेषक-यन्त्र के द्वारा मालूम किया गया है कि वह जगह भी प्रकाशित गैस से खाली नहीं है। इस नीहारिका के विस्तार के सम्बन्ध में अनुमान किया गया है कि जिस तल पर वह फैली हुई है उसका क्षेत्र-फल हमारे सौर साम्राज्य के क्षेत्रफल से १० लाख गुणा अधिक है।

चि० सं० ? काल - पुरुष तारा मंडल में नीहारिका का स्थान।

छः मुखा सितारा चि० सं० २

छः मुखे सितारे के अतिरिक्त और भी बहुत से सितारे नीहारिका के ऊपर फैले हुए दृष्टि आते हैं; किन्तु आवश्यक नहीं है, कि वह सितारे नीहारिका के बीच में हों। सम्भवतः वह सितारे नीहारिका की अपेक्षा हमारे अधिक निकट हैं और नीहारिका के सामने आ जाने के कारण नीहारिका के बीच में प्रतीत होते हैं।

बेढंगी शक्ल की नीहारिकाएं और भी बहुत सी हैं, किन्तु उन सब का वर्णन करने को यहाँ स्थान नहीं है। राजहंस (Cygnus) तारामंडल में एक बेढंगी नीहारिका है, जो नंगी आँख से दिखाई नहीं देती। यह उत्तरीय अमेरिका के नाम से प्रसिद्ध है। उसे पहले पहल डा० मैक्सवुल्फ (Dr. Maxwolf) ने आविष्कार किया था, और चूँकि उसकी आकृति उत्तरीय अमेरिका के मान-चित्र से मिलती - जुलती है इसलिये यह नाम रख दिया गया है।

वृष राशी (Taurus) में एक नीहारिका है जो सर जॉन हरशल की दूरबीन में तो अण्डाकार प्रतीत होती थी किन्तु लार्ड रौस (Lord Rosse) की बड़ी दूरबीन में उसकी आकृति केकड़े की सी दिखाई देने लगी। इस नीहारिका की धुंधली रोशन सतह पर बहुत से सितारे बिखरे हुए दृष्टि आते हैं। इसी तरह अक्वीला (Aquila) अर्थात् गिद्ध तारा - मंडल में एक डम्बल की आकृति की नीहारिका है किन्तु अधिक शक्तिवाली दूरबीन में उसकी भी आकृति बदल जाती है। उसके बीच में भी बहुत से तारे चमकते नजर आते हैं।

(२) पेचदार नीहारिकाएँ :—इस प्रकार की नीहारिकाओं में प्रकाशित गैस, पानी के भंवर के समान चक्कर खाती हुई प्रतीत हुआ करती है। इसका सब से अच्छा उदाहरण शिकारी कुत्ता (Canes Venatici) नाम के तारा - मंडल की नीहारिका है। साधारण दूरबीन में वह केवल एक गोल मोल धब्बा सा प्रतीत होती है, किन्तु, बड़ी दूरबीन में वह घूमती हुई प्रकाशित गैस का एक बड़ा पेचदार लच्छा सा दिखाई देने लगती है, उसके केन्द्र पर एक प्रकाशित तारा सा दृष्टि आता है जिसके चारों तरफ गैस की दो धाराएँ

घूम गई हैं जो आमने-सामने से निकली हैं। उसके बाहर भी एक प्रकाशित बिम्ब दृष्टि आता है जो धुंधली गैस के एक बन्धेज से बड़े लच्छे के साथ मिला हुआ है। आकाश में इस प्रकार की नीहारिकाओं की संख्या बहुत अधिक है। उनका रंग प्रायः श्वेत होता है।

(३) अण्डाकार नीहारिकाएँ—कुछ नीहारिकाएँ अण्डाकार हैं। इन्द्रमेधा (Andromede) तारा मंडल में एक बड़ी सुन्दर, लम्बे अण्डे के आकार की बहुत बड़ी नीहारिका है। अंधेरी रात में जब आकाश स्वच्छ होता है तो खाली आँख से भी वह देखी जा सकती है। इसके निरीक्षण के लिये कश्यप-तारा मण्डल (Cassiopeia) और पेगासस चतुर्भुज (Pegasus square) के बीच में बड़े ध्यान से देखना चाहिये। खाली आँख से वह एक बहुत ही मद्धम से प्रकाश का जरा सा लम्बोतरा श्वेत धब्बा प्रतीत होता है। किन्तु, बड़ी दूरबीन में वह प्रकाशित गैस का एक बहुत बड़ा बादल मालूम होने लगता है। इसका बीच वाला भाग अधिक प्रकाशित है और उसको गैस की कई पट्टियों ने घेरा हुआ है, जिनकी चमक बीच वाले भाग की अपेक्षा बहुत मद्धम है। इन पट्टियों के मध्य के दो काले अन्तर भी, जो इनको अलग करते हैं स्पष्ट पहचाने जा सकते हैं। सन् १८८५ ई० में इस नीहारिका के केन्द्र के निकट एक नवीन सितारा, जिसका प्रकाश ७ म श्रेणी के सितारों के बराबर था, अचानक ही चमक उठा और कई मास के पश्चात् लुप्त हो गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नीहारिका वास्तव में गोल आकृति की है, किन्तु इसका तल हमारी तरफ से कुछ तिरछा है। इसी कारण वह अण्डाकार प्रतीत होता है।

ख्याल किया जाता है, कि यह नीहारिका इतनी बड़ी है, कि उसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक प्रकाश को पहुँचने में कितने ही वर्ष लग जायेंगे और उसके सामने हमारा सौर साम्राज्य केवल एक छोटा सा धब्बा प्रतीत होगा।

(४) छल्लाकार नीहारिकाएँ :—आकाश में छल्लाकार नीहारिकाएँ बहुत कम पाई जाती हैं। लार्ड रौस (Loed Rosse) के दूरदर्शक से पहले इस प्रकार की केवल चार नीहारिकाएँ मालूम थी किन्तु, लार्ड रौस के दूरदर्शक से पाँच और छोटी-छोटी नीहारिकाएं भी जो पहले प्रकाशित गैस के केवल छोटे-छोटे गोल धब्बे से प्रतीत होती थीं, छल्लाकार नीहारिकाएँ सिद्ध हुईं। अब तक कुल एक दर्जन के लगभग छल्लाकार नीहारिकाएँ मालूम हो सकी हैं।

लीरा (Lyra) नाम के तारा मंडल में एक बहुत बड़ी सुन्दर छल्लाकार नीहारिका है, जो उस तारा-मंडल के बीटा और गामा सितारों के ठीक मध्यम स्थिर है। उसकी आकृति अण्डाकार है और उसके दीर्घ व्यास और लघु व्यास में ५ और ४ का अनुपात है। उसके बीच का रिक्त स्थान बिलकुल काला नहीं है, वरन् बहुत हलके प्रकाश से चमकता है। खाली आंख से वह नीहारिका दृष्टि नहीं आती, किन्तु, एक साधारण सी दूरबीन से भी देखी जा सकती है।

(५) ग्रह सदृश नीहारिकाएं :—यह दूरबीन से देखने पर बड़े ग्रहों के समान प्रतीत होती हैं। अर्थात् उनकी एक गोल वा अण्डाकार टिकिया दृष्टि आती है, जो सब स्थान पर समान प्रकाशित होती है। कुछ की सीमाएँ तो स्पष्ट दृष्टि आती हैं, किन्तु कुछ की सीमाएँ धुंधली रहती हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह किसी प्रकार के वातावरण से घिरी हुई हैं। उनका रंग प्रायः हरा व नीला सा होता है।

इस प्रकार की एक नीहारिका, जो इनमें सबसे बड़ी प्रतीत होती है सप्तऋषि मंडल के सितारा बीटा के पास है। उसके व्यास का अंशात्मक मान २' ४०" है। यदि उसका फासला ६१ राजहंस (61 cygni) के बराबर भी हो तो भी उसके व्यास की लम्बाई हमारे सौर साम्राज्य के व्यास से सात गुणा अधिक होगी। किन्तु, उसका अन्तर वास्तव में इससे कहीं बहुत ज्यादा है और इस-

लिये उसका विस्तार भी बहुत अधिक है। इसी प्रकार की एक नीहारिका अजगर तारा-मंडल (Draco) में पाई जाती है जो ध्रुव तारा और इस तारा-मंडल के गामा सितारे के मध्य में स्थित है। कन्या राशी (Virgo) में भी चित्रा नक्षत्र (Spica) के निकट इसी प्रकार की एक नीहारिका है, जिसके बीच में तो एक प्रकाशित टिकिया सी दृष्टि आती है जिसका दृष्ट व्यास १०" से १५" तक है और उसको चारों तरफ से एक बहुत हलकी प्रकाशित गैस ने घेरा हुआ है। उसको मिलाकर उसका व्यास २' अर्थात् पूर्ण चंद्रमा के व्यास के १५वें भाग के बराबर है।

बहुत सी ग्रह सदृश नीहारिकाएँ बहुत ही छोटी हैं और प्रकाश-विश्लेषक यन्त्र की सहायता के बिना उन्हें सितारों से अलग नहीं पहचान सकते।

(६) तारक नीहारिकाएँ :—कुछ सितारे गोलाकार मद्धम नीहारिकाओं से, जो केवल बड़े-बड़े दूरदर्शकों द्वारा ही दिखाई दे सकती हैं, घिरे रहती हैं। कभी-कभी किसी सितारे के गिर्द कुछ अन्तर पर प्रकाशित गैस का एक छल्ला सा होता है और सितारे और छल्ले के बीच का स्थान रिक्त मालूम होता है, किन्तु, इसका कारण केवल सितारे का तीव्र प्रकाश है। काल-पुरुष (Orian) नाम के तारामंडल में इस प्रकार के दो सितारे (लैम्बडा और एपसाइलन) पाये जाते हैं। कृतिका तारामंडल (Pleiades) के सितारों का भी जब फोटो लिया जाता है, तो उसके छः सितारे फोटो के प्लेट पर प्रकाशित गैस के छोटे-छोटे टुकड़े प्रतीत हुआ करते हैं।

नीहारिकाओं की संख्या

लिक वेधशाला के डाईरेक्टर प्रो० कीलर (Pro Keeler) एक अवसर पर एक नीहारिका का, जो पेगासस (Pegasus) तारामंडल में है, फोटो उतार रहे थे। वह यह देख कर विस्मित रह गये कि फोटो के प्लेट पर न केवल उस नीहारिका की आकृति बनी है, वरन् २० और नीहारिकाओं की आकृति भी बन गई है। इसी प्रकार उन्होंने एक बार इन्द्र मेधा तारा-मंडल की नीहारिका का फोटो उतारा तो फोटो के प्लेट पर उसके अतिरिक्त ३२ और नीहारिकाएँ पाई गई। इससे स्पष्ट है कि आकाश में नीहारिकाओं की संख्या बहुत अधिक है, किन्तु उनमें से प्रायः बहुत ही मद्धम हैं और बड़े-बड़े दूरदर्शकों से भी कठिनता से दृष्टि आ सकती हैं। अत्यन्त मद्धम नीहारिकाओं के प्रकाश का अनुमान लगाया गया है, कि यदि एक मोमबत्ती को, जो १५८ ग्रेन प्रति घंटा जलती हो जलाकर ½ मील के अन्तर पर रख दिया जाय तो उसका प्रकाश अत्यन्त मद्धम नीहारिका के प्रकाश से २०००० गुणा अधिक होगा। किन्तु, फोटो के शीघ्रतम प्रभाव ग्रहण करने वाले प्लेटों पर, यदि उन्हें किसी शक्तिशाली नारीमंडल दूरदर्शक यन्त्र (Equatoreal-Telescope) के साथ लगा कर बहुत देर तक उनके सामने रक्खा जाय, तो ऐसी मद्धम नीहारिकाएँ भी अपना चिन्ह छोड़ जाती हैं। इस प्रकार से फोटोग्राफी की सहायता से उन मद्धम से मद्धम नीहारिकाओं का भी, जिनको अच्छे से अच्छे यन्त्रों से भी देख सकता असम्भव है, पता लगाया जा सकता है। प्रो० कीलर का विचार है कि क्रोसले के परावर्त्तक दूरदर्शक यन्त्र (Crossly's Reflctor) द्वारा; जिससे वह अपने वेध लिया करता था १२०००० नवीन नीहारिकाएँ दृष्टि आ सकती है; जिनमें से आधी के लगभग पेचदार नीहारिकाएँ हैं। उसके पश्चात् उसी वेधशाला के प्रो० पेरिन (Pro. Perrine) ने घोषणा की, कि उसी यन्त्र से ३००००० नीहारिकाएँ देखी जा सकती हैं।

सन् १९२० ई० में मिस्टर कर्टिस (Mr. Curtiss) ने लिक वेधशाला से नीहारिकाओं के सम्बन्ध में एक पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसमें ७६२ नीहारिकाओं का वर्णन है। इनमें से ५१३ तो पेचदार नीहारिकाएँ हैं। ३६ छल्लाकार और ७८ ग्रहसदृश नीहारिकाएँ हैं। शेष के सम्बन्ध में मालूम नहीं कि उन्हें किस श्रेणी में सम्मिलित

किया जाय। इससे प्रगट है कि आकाश में पेचदार नीहारिकाओं की संख्या सब से अधिक है। कर्टिस (Mr. Curtiss) का विचार है, कि बड़े परावर्त्तक दूरदर्शकों द्वारा सात लाख से १० लाख तक नीहारिकाएँ दृष्टि आ सकती हैं;

नीहारिकाओं का फ़ासला, आयतन और गति आदि

कतिपय नीहारिकाओं का लम्बन (Parallex) जानने का प्रयत्न किया गया है, किन्तु, अभी तक कोई कामयाबी प्राप्त नहीं हुई। ख्याल किया जाता है, कि उनका फासला भी सितारों के फासले के समान ही होगा। किन्तु; बाज़ के विचार में प्रायः नीहारिकाएँ सितारों से भी बहुत परे हैं। चूंकि हम नीहारिकाओं का फासला माप नहीं सकते। इसलिये उनके आयतन के सम्बन्ध में भी कोई सम्मति प्रगट नहीं की जा सकती। तो भी इसमें सन्देह नहीं है कि उनमें से कुछ नीहारिकाएँ तो बहुत ही बड़ी हैं। सर राबर्ट वाल की सम्मति है, कि कालपुरुष (Orian) की प्रसिद्ध नीहारिका हमारे सौर साम्राज्य से कई मिलियन गुणा बड़ी होगी।

दूरदर्शकों द्वारा निरीक्षण करके यह मालूम करने का भी प्रयत्न किया गया है, कि सितारों के समान नीहारिकाओं में भी गति पाई जाती है या नहीं। इस प्रकार के निरीक्षणों में कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई है। पर प्रो० कीलर ने प्रकाश-विश्लेषक यन्त्र द्वारा दस नीहारिकाओं में दृष्टि की सीध में गति करने का पता लगाया है। उन्होंने अजगर तारामंडल की प्रसिद्ध नीहारिका के सम्बन्ध में मालूम किया है कि वह ४० मील प्रति सेकण्ड की चाल से हमारी तरफ गति कर रही है; और काल-पुरुष की नीहारिका ११ मील प्रति सेकण्ड की चाल से हमारी दृष्टि की सीध में हमसे दूर जा रही है। हम इस बात को ध्यान में भी नहीं ला सकते, कि बिखरी हुई गैस का एक बहुत बड़ा ढेर, जो हमारे सौर साम्राज्य से भी कितने ही गुण अधिक बड़े क्षेत्र पर फैला हुआ है, किस प्रकार से ४० मील प्र० सेकण्ड की तीव्र गति से आकाश में दौड़ लगा सकता है।

प्रो० केम्बल और मिस्टर मूर (अमेरिका) ने सन् १६१८ ई० में एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें नीहारिकाओं की चालों के सम्बन्ध में बहस की है। उसमें बतलाया गया है, कि ३१ ऐसी नीहारिकाओं की गतियों की मध्यम मान, जिनका व्यास ५" से कम है, १७ मील प्रति सेकण्ड पाया गया है; और ६५ ऐसी नीहारिकाओं की गतियों का मध्यम मान, जिनका व्यास ५" से अधिक है, १६ मील प्रति सेकण्ड है। यह गतियां प्रकाश-विश्लेषक यन्त्र द्वारा जानी गई हैं। बहुत सी ग्रह सदृश नीहारिकाओं में अक्षगति का भी पता लगाया गया है; और युग्म नीहारिकाओं में सम्मिलित आकर्षण केन्द्र के गिर्द कक्षा गति का भी गुमान किया गया है।

नीहारिकाओं की भौतिक तथा रासायनिक रचना

२६ अगस्त सन् १८६४ ई० को सर विलियम ह्यूगिन्स (Sir William Huggins) ने जब अपनी दूरबीन का मुख, जिसके साथ प्रकाश-विश्लेषक लगा हुआ था, अजगर तारामंडल की ग्रह सदृश नीहारिका की तरफ़ फेरा, तो वह यह देखकर अचम्भित रह गये, कि लगातार रश्मि-चित्र के बजाय केवल एक खड़ी हुई प्रकाशित रेखा दृष्टि आ रही है। बहुत ध्यानपूर्वक देखने से थोड़े फासले पर एक और प्रकाशित रेखा दिखाई पड़ी, जो पहली रेखा से भी अधिक बारीक और मद्धम थी, और रश्मि-चित्र के जामनी भाग की तरफ थी, और उससे भी परे उसी तरफ को एक और तीसरी लकीर उससे भी मद्धम दृष्टि आई जो पहली दोनों लकीरों के दर्म्यानी फासले ने लगभग तिगने फासले पर थी। सबसे तेज़ लकीर, पहले, नाईट्रोजन की रेखा समझी गई किन्तु, पीछे की छानबीन से ज्ञात हुआ, कि उस लकीर का सम्बन्ध मैगनेशियम (Magnesium) की कम गर्म वाष्प से है। सब से मद्धम लकीर हाईड्रोजन की F लाइन से समा-

नता रखती है। तीसरी रेखा का पता नहीं लगा कि वह किस पदार्थ की है, किन्तु, वह लकीर उल्का पत्थरों से तय्यार की गई गैस के रश्मि-चित्र में भी प्राय: देखी जाती है। डा० ह्यूगिन्स ने जब कालपुरुष की बड़ी नीहारिका, लीरा तारामण्डल की छल्लाकार नीहारिका और डम्बल की आकृति की नीहारिका के रश्मिचित्रों का निरीक्षण किया तो उनमें भी प्रकाशित रेखाएँ ही पाई गई अतएव उन्होंने घोषित कर दिया कि नीहारिकाएँ सितारों के झुरमुट नहीं, वरन् चमकती हुई गर्म गैसों के अम्बार हैं।

ह्यूगिन्स के पश्चात् वोगेल (Vogel), कोपलेण्ड (Copeland), केम्पवेल (Campbell), कीलर (Keeler) और अन्य वैज्ञानिकों ने भी नीहारिकाओं के रश्मि-चित्र बनाये और उक्त लकीरों के अतिरिक्त और भी बहुत सारी हलकी लकीरें देखी गई। यह बात ध्यान देने के योग्य है कि हाईड्रोजन की रक्त वर्ण की C रेखा, जो प्राय: अत्यन्त प्रकाशित हुआ करती है, नीहारिकाओं के रश्मि-चित्रों में या तो होती ही नहीं या बहुत मद्धम होती है। फ्रैङ्कलेण्ड (Frankland) और लोक्यार (Lockyer) ने परीक्षणों द्वारा यह बात सिद्ध कर दी है कि ताप तथा दवाओं की विशेष अवस्थाओं में हाईड्रोजन के रश्मि-चित्र में केवल एक हरे रङ्ग की लकीर अर्थात् F लाइन रह जाती है, शेष समस्त लकीरें लुप्त हो जाती हैं। इसलिये यह कुछ अचम्भे की बात नहीं है, कि नीहारिकाओं के रश्मि-चित्र इतने सादा होते हैं। उनकी गैसें बहुत हलकी और प्रकाश भी बहुत मद्धम होता है इसलिये उनके रश्मि-चित्रों में केवल चन्द लकीरें ही प्रकट होती हैं। बहुत सी नीहारिकाओं के रश्मि-चित्र में हेलम की D_3 रेखा भी पाई जाती है।

कतिपय नीहारिकाओं के रश्मि-चित्र लगातार भी होते हैं, किन्तु उनमें पीत वर्ण की अपेक्षा हरा भाग अधिक प्रकाशित होता है। इन्द्रमेधा तारामण्डल की नीहारिका से भी लगातार रश्मि-चित्र बनता है, इससे कभी-कभी यह विचार भी प्रकट किया गया है, कि सम्भव है, वह सितारों का ही एक बहुत बड़ा झुरमुट हो। किन्तु, यह याद रखना चाहिये, कि ठोस तरल वा बहुत दवाओं वाली गैस से ही लगातार रश्मि-चित्र नहीं बनता. बरन् कम दवाओं वाली गैस से भी, जिसका तापांश बहुत ऊँचा हो, विशेष-विशेष अवस्थाओं में लगातार रश्मि-चित्र बन सकता है। अत: लगातार रश्मि-चित्र तो इस बात का कोई पक्का प्रमाण नहीं है, कि वह नीहारिका जिसका वह रश्मि-चित्र है अवश्य ठोस वा तरल पदार्थों का एकट्ठा ही है। किन्तु प्रकाशित लकीरों वाले रश्मि चित्रों से तो यह बात निस्सन्देश सिद्ध हो जाती है, कि वह चीज, जिसका वह रश्मि-चित्र है. चमकती हुई सूक्ष्म गैस के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

गैसी नीहारिकाओं के ढूंढ निकालने की सुगम रीति यह है कि ऐसी दूरबीन के, जिसमें प्रकाश-विश्लेषक यन्त्र लगा हुआ हो, सामने से आकाशीय तत्व के प्रत्येक भाग को गुज़रने दिया जाता है। प्रो० पिकरिंग (Pro. Pickering) और कोपलेण्ड (Copelanp) ने इसी रीति से बहुत सी नीहारिकाएँ ढूंढ निकाली हैं। इसके अतिरिक्त आकाश के भिन्न-भिन्न भागों के रश्मि-चित्रों के फोटोग्राफों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से भी प्रो० पिकरिङ्ग ने कितनी ही नवीन ग्रह-सदृश नीहारिकाओं का भी पता लगाया है। उनमें से बहुत सी तो दूरबीन में सामान्य सितारा प्रतीत होती थीं और प्रकाश-विश्लेषक के बिना उनकी वास्तविक रचना का ज्ञान होना असम्भव था।

परिवर्त्तनशील सितारों का वर्णन हम पीछे कर चुके हैं। कुछ नीहारिकाओं के प्रकाश में भी परिवर्त्तन पाया गया है। चुनांचि

परिवर्त्तनशील नीहारिकाएं

सन् १८६१ ई० में यह ज्ञात हुआ कि वह छोटी सी नीहारिका, जो सन् १८५२ ई० में हिन्द साहिब (Hind) ने वृष राशी (Taurus) से दसवीं श्रेणी के एक सितारे के निकट मालूम की थी, बिल्कुल

अदृश हो गई है। लावेरियर (Laverrier) ने भी उसे पेरिस के बड़े दूरदर्शक द्वारा देखने का प्रयत्न किया मगर उसका कहीं पता नहीं चला। वह सितारा भी जो उस नीहारिका के समीप था, पहले की अपेक्षा बहुत मद्धम प्रतीत होता था। यह बात मामूल न हो सकी कि उस नीहारिका के अदृश हो जाने का कारण क्या था। उसके अतिरिक्त कुछ और नीहारिकाएँ भी ऐसी पाई गई हैं जिनका प्रकाश नियत काल के अन्दर घटता-बढ़ता रहता है, उनमें से एक तो श्वेतासुर (Cetus) तारा-मण्डल में और दूसरी कन्या राशी (Virgo) में है।

आकाशीय तल पर जहाँ-जहाँ सितारे अधिक हैं वहाँ नीहारिकाएँ बहुत कम पाई जाती हैं। और जहाँ सितारे कम हैं वहाँ नीहारिकाएं अधिक हैं। अर्थात् सितारों की संख्या तो आकाश-गङ्गा के निकट अधिक होती जाती है, किन्तु नीहारिकाओं की सं या क्रमशः घटती जाती है।

आकाशीय-तल पर नीहारिकाओं की स्थिति।

यदि हम आकाश-गङ्गा के दोनों तरफ फैला हुआ ३०° का चौड़ा पटका ले लें, तो इस पटके में (जिसका क्षेत्रफल आकाशीय गोल के कुल क्षेत्रफल का ½ होगा। सितारे ९० प्रतिशतक और नीहारिकाएँ केवल १० प्रतिशतक हैं। अधिकतर नीहारिकाएँ एक पटके में, जो आकाश-गंगा को सम कोण पर काटता है, पाई जाती हैं। कन्या राशी में नीहारिकाओं की संख्या इस बहुतायत से है कि उसका नाम कन्या राशी का नीहारिका क्षेत्र (Nebulous Region of Virgo) पड़ गया है।

'सत्य की खोज में'

ले० : श्री रमा शकर सिंह, एम० एस-सी०, क्वीन्स कालेज, काशी

यह संसार असत्य है। दार्शनिकों ने सत्य की खोज में ब्रह्म को ही सत्य कहा है। जो कुछ संसार में हम देखते हैं वह केवल भ्रम मात्र है, उसका अस्तित्व नहीं। वैज्ञानिकों ने भी सत्य की खोज की, किन्तु उनका मार्ग भिन्न है। संसार में भौतिक वस्तुओं को जिनमें मात्रा है, भार है वह असत्य और निर्मूल कैसे कह सकते थे? किन्तु इस विचित्र संसार में अनेक प्रकार की वस्तुयें हैं, उनमें मौलिक तत्व क्या हैं, और उनकी रचना के पीछे कौन सा रहस्य छिपा हुआ है, यह एक प्रश्न रहा है।

बहुत कुछ छान-बीन के पश्चात् यह पता लगा कि अनेक प्रकार की वस्तुयें कुछ थोड़े से मूल तत्वों के हेर-फेर से बनी हैं। ये मूल-तत्व भ. परमाणुओं तथा अणुओं के आधार पर बने हैं। इस प्रकार इस जगत् की रचना में ९२ प्रकार के अणुओं की सहायता ली गई है। उस समय तक ऐसा जान पड़ता था कि इस रचना में छोटी से छोटी इकाई है।

कुछ समय हुये, इस अणु की रचना का भी पता लगा और इससे एक विचित्र रहस्य मालूम पड़ा। देखने में सोना और लोहा एक दूसरे से इतने भिन्न होते हुये भी अपनी आन्तरिक रचना में बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं, क्योंकि सभी प्रकार के अणुओं की रचना इने-गिने मौलिक कणों से हुई है। इन मौलिक कणों में तीन ही मुख्य हैं, एक तो एलेक्ट्रन जो ऋणात्मक विद्युतीय कण हैं, और दूसरा प्रोटन जो धनात्मक विद्युतीय कण हैं

और तीसरा न्यूट्रन जो उदासीन हैं। प्रोटन और न्यूट्रन भार में बराबर हैं, अन्तर केवल विद्युतीय और उदासीन होने में है। प्रोटन का भार एलेक्ट्रन से २००० गुना अधिक है। अणु के केन्द्र में प्रोटन और न्यूट्रन हैं, और उनके चारों ओर एलेक्ट्रन उसी प्रकार घूमा करते हैं जैसे सौर मण्डल में सूर्य के चारों ओर गृह घूमते हैं। इस प्रकार इस जगत् के विचित्र रहस्य का उद्‌घाटन हुआ और अनेकता में ऐक्य स्थापित हुआ। इस दृष्टि से सोना और लोहा में अन्तर केवल इन दोनों के अणुओं की रचना में इन्हीं मौलिक कणों की संख्या का है। उदाहरणार्थ, तांबा के अणु में केन्द्र पर २९ प्रोटन और ३४ न्यूट्रन हैं और बाहर की ओर २९ एलेक्ट्रन हैं, सोना के अणु में केन्द्र पर ७९ प्रोटन और ११८ न्यूट्रन हैं और बाहर की ओर ७९ एलेक्ट्रन हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक अणु में प्रोटन और एलेक्ट्रन की संख्या बराबर है जिससे वह अणु बाहर से उदासीन बन जाता है।

वैज्ञानिक खोज में बढ़ते गये। यदि केवल इन्हीं मूल-कणों की सहायता से विभिन्न प्रकार के अणुओं की रचना हुई है तो निसंदेह एक तत्व का रूपान्तर दूसरे तत्व में हो सकता है, कुधातु से सोना बनाया जा सकता है। इस प्रकार पारस पत्थर का निर्माण होने लगा। हृदय-परिवर्तन रूपान्तर के लिये आवश्यक है, इसलिये किसी प्रकार अणुओं के हृदय प्रदेश को आघात् कर के इन मौलिक कणों की संख्या घटाई जा सकती है। तभी यह रूपान्तर संभव है। इसी आधार पर 'साइक्लाट्रान' का आविष्कार हुआ जो 'पारस' का व्यवहारिक नवीन संस्करण मात्र है। इसके द्वारा कुछ अंश तक यह रूपान्तर भी होने लगा, यद्यपि सभी कुधातुओं को सोना नहीं बनाया जा सकता था। इस प्रकार के परिवर्तन में भी अधिक स्वतंत्रता नहीं थीं। फिर भी यह वैज्ञानिक संसार की एक विचित्र घटना है। अणु इसके द्वारा तोड़े भी गये, और एक अद्‌भुत बात यह देखने में आई कि टूटने के बाद अणु के पहले के भार में तथा बाद के दो भागों के भार में अन्तर है। साथ ही साथ प्रयोग के पूर्व तथा बाद में शक्ति में भी अन्तर पाया गया। इन बातों का समन्वय किया गया तो जान पड़ा कि आइनस्टीन द्वारा बताये हुये पदार्थ तथा शक्ति के पारस्परिक रूपान्तर का यह एक उदाहरण मात्र है। यदि पदार्थ पूर्णतया नष्ट किया जा सके तो उससे एक निश्चित मात्रा में शक्ति पैदा हो सकती है। ठीक यही बात यहां हो रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पदार्थ शक्ति के केन्द्रीभूत होने से बनता है।

अब प्रश्न उठता है कि क्या सारा जगत् और यह महान विश्व सनातन है? ऊपर के प्रयोग में इसका रहस्य छिपा हुआ है। संसार की सभी भौतिक वस्तुएँ विलीन होकर शक्ति का रूप धारण कर सकती हैं। संभवतः महाप्रलय में ऐसा ही हो। इस प्रकार हम भी इस संसार को असत्य ही मानते हैं।

सहकारिता

ले० : श्री रामप्यारे लाल अवस्थी, राजकीय कृषि विद्यालय, बुलन्दशहर

सहकारिता शब्द का प्रयोग प्रायः नित्य ही व्यवहारिक कार्यों में होता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग इसे भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग करते हैं। यह शब्द इतना व्यापक है, अतः इसकी व्याख्या आवश्यक है जिससे यह स्पष्ट हो जाय कि कौन से कार्य इस शब्द के अन्तर्गत आते हैं और कौन से नहीं। प्रायः हर शब्द का स्पष्टीकरण उसके साधारण अर्थ से नहीं होता, किन्तु उसके विशेष अर्थ से होता है।

'सहकारिता' शब्द का शाब्दिक अर्थ मिलजुल कर काम करना है। यदि हम इस परिभाषा को मान लें तो हम देखेंगे कि सहकारिता शब्द का प्रयोग ऐसे अनेक कामों के लिये किया जाता है जो वास्तव में सहकारिता शब्द के अन्तर्गत नहीं आते, उदाहरणार्थ, यदि किसी मण्डी के अनाज के आढ़ती आपस में यह निश्चित कर लें कि वे गेहूँ निश्चित भाव जो उन्होंने तय किया है और जो वास्तव में बहुत कम है उससे अधिक भाव पर न खरीदेंगे, यद्यपि कि खरीदारों की दृष्टि में उनका अपना कार्य सहकारी है, किन्तु सहकारिता शास्त्र के अनुसार उनका कार्य सहकारी न होकर एकाधिकृत (Monopolistic) होगा। ट्रस्टस (Trusts), कम्बीनेसन्स (Combinations), मानोपोलीज़ (Monopolies) और जेण्टलमैन्स एग्रीमेन्ट्स (Gentleman's Agreements) जिनका प्रयोग व्यापारिक जगत में साधारणतः होता है, सहकारिता शब्द के अन्तर्गत नहीं आते।

चोर, डाकुओं की संस्थायें जिनका भी उद्देश्य सम्मिलित होकर अपने सदस्यों की आर्थिक उन्नति करना होता है, सहकारिता शब्द के अन्तर्गत नहीं आतीं। यदि सहकारिता शब्द का ध्येय केवल मिल जुल कर कार्य करना होता तो आज जो इसका इतना महत्व है वह न होता। प्रत्येक विचारधारावाली राजनैतिक पार्टी चाहे समाजवादी हो, साम्यवादी हो, मुसलिम लीगी हो, हिन्दू महासभा हो या कांग्रेस, हर पार्टी की विकास योजना में सहकारी समितियों का विशेष स्थान है। रूस जो एक साम्यवादी देश है वहाँ की राज्य-क्रांति के बाद जो घोषणा की गई उसमें यह भी था कि जारिस्ट राज्य में से अगर कोई संस्था रखने योग्य है, वह सहकारी समितियाँ हैं उन्हें अच्छी प्रकार स्थित रक्खा जाय। आज सहकारी समितियों का वहाँ के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में विशेष स्थान है।

सहकारिता शब्द का विशेष अर्थ है। इसका अर्थ सम्मिलित होकर आर्थिक दशा की ही उन्नति नहीं करना है किन्तु नैतिक उन्नति आवश्यकीय है। आर्थिक उन्नति मनुष्य जीवन का एक विशेषअङ्ग है। सहकारी समितियाँ लोगों में एक्य की भावना पैदा करके उन्हें संगठित करती हैं। एकाकी कार्य के स्थान पर सामूहिक कार्य को प्रोत्साहित करती हैं। मनुष्य को स्वावलम्बी, सच्चा, परिश्रमी, आचरिक गुणवाला और मितव्ययी होने की शिक्षा देती हैं, जिसके अनुसार कार्य करके सदस्य अपनी आर्थिक उन्नति कर सकें। हम चोर-डाकुओं की संस्थाओं और अन्य इसी प्रकार की संस्थाओं में इसके विपरीत बात पाते हैं। वे अधिकतर रचानात्मक के स्थान पर अपने स्वार्थहित विघातक कार्य तक करते हैं। सहकारी संस्थाओं में केवल निजी लाभ की दृष्टि से ही सदस्य कार्य नहीं करते किन्तु उस संस्था के लाभ के लिये भी जिसके कि वे एक अंग हैं। ध्येय "एक सब के लिये, सब एक के लिये" होता है। सहयोगी यह अनुभव करता है कि जब वह अन्य सहयोगियों के साथ मिलकर किसी सहकारी व्यवसाय में भाग

लेता है तो उसे तथा उसके सहयोगियों दोनों को लाभ होता है। सहकारी समिति दान की समिति नहीं है, यह व्यापारिक संस्था है। यह निर्बलों को निर्बल न रख कर उन्हें सबल बनाती है। इनका काम नियमानुसार होता है। लाभ, हानि का हिसाब बनाया जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सर्वप्रथम राबर्ट ओवेन (Robert Owen) ने इङ्गलैण्ड में और चार्लस फरियर (Charles Fourier) ने फ्रांस में सहकारिता शास्त्र को आकार दिया। ओवेन ने सर्वप्रथम श्रमजीवियों के मध्य में सहकारी समितियाँ और सेविंग बैंक खोले। ओवेन के लेबर एक्सचेंज (Labour Exchange) का ध्येय बीच के व्यापारियों के लाभ को समाप्त करना था। ओवेन की भाँति चार्लस का भी विचार बीच के व्यापारियों के लाभ को समाप्त कर श्रमजीवियों की क्रयशक्ति में वृद्धि करना था।

यद्यपि कि सर्वत्र ही सहकारिता का पद प्रारम्भिक सिद्धान्त रहा है कि सहकारी समितियों में मनुष्य स्वेच्छा से पारस्परिक सहायता के उद्देश्य से सम्मिलित हों "आवश्यकता आविष्कार की जननी है" अत: विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार की आवश्यकताओं ने भिन्न-भिन्न प्रकार की सहकारी समितियों को जन्म दिया है। इंगलैंड में श्रमजीवियों की दशा में उन्नति का ध्यान रहा जिससे वे अच्छी व्यवहारिक वस्तुयें उचित मूल्य पर खरीद सकें और उनकी क्रयशक्ति में वृद्धि हो, अत: उपभोक्ता स्टोर्स में विशेष प्रगति हुई। डेनमार्क, आयरलैंड, स्वीटज़रलैंड में सहकारिता का सिद्धान्त कृषि-उन्नति, पशुओं की उन्नति, दूध तथा दूध से बनी वस्तुओं एवं कृषि-सम्बन्धी वस्तुओं के क्रय-विक्रय में प्रयोग हुआ और इस कार्य में विशेष उन्नति हुई। जर्मनी में जहाँ पर कि रैफिसन और शुल्ज़ पैदा हुये जिन्होंने साख समितियों को जन्म दिया वहाँ सहकारिता का सिद्धान्त कृषि-ऋण की समस्या को सुलझाने में लगाया गया और ऋण सहकारी समितियों ने विशेष सफलता प्राप्त की। इटली में श्रमजीवियों की समितियों तथा सहकारी-कृषि-समितियों ने विशेष प्रगति की, कैनेडा में सहकारी गेहूँ के केन्द्रों (Wheat Pools) में उन्नति हुई और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में कृषि की उपज तथा फलों की सहकारी बिक्री में प्रगति हुई।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है, कि प्रत्येक देश की स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार वहाँ सहकारिता का सिद्धान्त उस स्थान की समस्याओं को सुलझाने में प्रयोग किया गया, यही कारण है कि भिन्न-भिन्न प्रकार की सहकारी समितियों ने भिन्न-भिन्न देशों में प्रगति की। सहकारिता शास्त्र के विद्वानों ने सहकारिता की विभिन्न प्रकार से परिभाषायें की हैं। समाज शास्त्रियों तथा नियम बनाने वालों (Legislators) ने अपनी-अपनी तरह से परिभाषायें की हैं। हर विद्वान की परिभाषा पर उस देश की परिस्थिति तथा वातावरण का प्रभाव पड़ा है।

होलेक (Holyoake) ने सहकारिता की परिभाषा इस प्रकार की है—"किसी व्यवसाय में जब लोग स्वेच्छा से समानता के आधार पर व्यवस्था में भाग लेने के लिये संगठित हों।"

होलेक साहब की परिभाषा से इंगलैंड में उस समय श्रम की दशा कैसी थी पता चलता है, वे किस प्रकार पूँजीपतियों और व्यापारी मध्य-पुरुषों (Middlemen) द्वारा शोषित थे। उस दशा से मुक्त होने का सहकारिता ही एक मार्ग था।

डाक्टर फे (Dr. Fay) ने अपनी पुस्तक कोआपरेशन ऐट होम एन्ड एब्राड (Co-operation at Home And Abroad) में सहकारी समिति की परिभाषा करते हुये लिखा है—"सहकारी समिति ऐसी संस्था है जो संगठित होकर व्यापार करने के उद्देश्य से निर्बलों द्वारा बनाई गई हो; निस्वार्थ भाव से परिचालित हो तथा उसके ऐसे नियम हों कि संस्था के लाभ को सदस्यों में उनके सहयोग के अनुपात में विभाजित किया जाय।"

सर होरेस प्लंकेट (Sir Hoarace Plunkett) ने सहकारिता की परिभाषा करते हुए लिखा है "संगठन के द्वारा पारस्परिक सहायता अधिक प्रभावशाली हो जाती है।"

हेरिक (Herrick) ने अपनी पुस्तक रूरल क्रेडिट्स (Rural credits) में सहकारिता की परिभाषा इस प्रकार की है, "सहकारिता मनुष्यों का वह कार्य है जो कि स्वेच्छा से संगठित होकर अपनी शक्ति, पूँजी, या दोनों को अपने पारस्परिक लाभ के लिये अपनी आपसी व्यवस्था के अन्तर्गत सब के लाभ या हानि के लिये किया जाता है।"

कालवर्ट (Calvert) ने सहकारिता की परिभाषा अपनी पुस्तक ला एन्ड प्रिंसिपिल्स आफ कोआपरेशन (Law and Principles of Co-operation) में इस प्रकार से की है— सहकारिता एक ऐसा संगठन है जिसमें लोग स्वेच्छा से मनुष्यता के नाते समानता के आधार पर अपने आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सम्मिलित होते हैं।"

भारतीय सहकारी समितियों के एक्ट १६१२ की धारा ४ में सहकारी समिति की परिभाषा इस प्रकार निर्दिष्ट की गई है—"वह समिति है जिसका उद्देश्य अपने सदस्यों में सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार आर्थिक ध्येयों की प्राप्ति करना हो।"

उपरोक्त परिभाषाओं से सहकारिता के अर्थ स्पष्ट हैं कि सहकारिता मनुष्यों का वह ऐच्छिक संगठन है जिसमें वे मनुष्यता के नाते से सम्मिलित होकर आर्थिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये मिल कर काम करते हैं।

सहकारिता के कुछ मौलिक सिद्धान्त हैं जिनके अनुसार सहकारी समितियों का कार्य होता है। यह सिद्धान्त इन्हीं दी हुई सहकारिता की परिभाषाओं में निहित हैं। पूँजी की कमी तथा एकसी आवश्यकताओं ने श्रमजीवियों तथा कृषकों को सहकारिता की ओर प्रेरित किया, अतः पूंजी सहकारिता का सिद्धान्त नहीं हो सकता। सहकारिता का प्रथम सिद्धान्त यह है कि मनुष्य सहकारी समिति में मनुष्यता के नाते से सम्मिलित होते हैं, पूंजीपति होने के कारण नहीं, सम्मिलित होने के लिये कोई ऐसा नियम नहीं रक्खा जाता जिससे निर्धन सम्मिलित न हो सकें। यदि समिति में हिस्सा खरीदना अनिवार्य होता है तो हिस्से का रुपया ऐसी किश्तों में वसूल किया जाता है जिससे निर्धन भी मितव्यता करके अपनी बचत से हिस्से की कीमत अदा कर सकते हैं। जो मेहनती हैं, इमानदार हैं, बात के धनी हैं, झगड़ालू नहीं हैं, सच्चरित्र हैं, सहकारी समितियों में सम्मिलित किये जाते हैं। किन्तु जो मुकदमेबाज हैं, अच्छे आचार के नहीं हैं, काहिल हैं उस समय तक सम्मिलित नहीं किये जाते जब तक अपने चरित्र को ठीक न कर लें या भविष्य में सन्मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा न कर लें।

दूसरा सिद्धान्त यह है, सदस्य समानता के आधार पर सम्मिलित होते हैं। हर सदस्य के समिति में अधिकार समान होते हैं। एक सदस्य एक ही मत देने का अधिकारी होता है, अधिक हिस्सों का अधिकारी होने के कारण एक से अधिक मत देने का अधिकारी नहीं हो जाता। ऊँच-नीच का कोई भेदभाव नहीं होता है। समिति की व्यापार सम्बन्धी बातें साधारण सभा में उपस्थित की जाती हैं जिन पर हर सदस्य अपनी सम्मति दे सकता है। धनवान, निर्धन, किसान, ब्राह्मण, चमार, सबके समान अधिकार होते हैं।

तीसरे, सदस्य स्वेच्छा से समिति में सम्मिलित होते हैं। वे अपनी इच्छा से सदस्यता से अलग होते हैं। समिति में सम्मिलित होने के लिये किसी पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जाता है। सदस्य अन्य नये सदस्यों के समिति में सम्मिलित करने तथा निकालने में अपना मत देते हैं।

चौथे, सदस्यता हर एक के लिये खुली रहती है, कोई जाति-पाँति, गरीब-अमीर, का भेदभाव नहीं रहता है। हर वर्ग के लोग जो सदस्यता की योग्यता रखते हैं सम्मिलित हो सकते हैं। नियम केवल यह है कि समिति में सच्चे, परिश्रमी, मित-

व्ययी तथा आचारिक गुण वाले सदस्य ही सम्मिलित किये जाते हैं ताकि समिति को हानि न हो, और वह भलीभाँति सदस्यों की सेवा कर सके।

पाँचवें, सदस्य अपनी आर्थिक उन्नति के लिये सम्मिलित होते हैं। जो धनी हैं वे धन द्वारा अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते हैं; किन्तु जो निर्धन हैं, जिनकी आर्थिक दशा हीन है, पारस्परिक सहायता तथा सहानुभूति के द्वारा सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार सदस्य आर्थिक दशा में उन्नति करते हैं। यह समिति की आर्थिक सहायता सदस्यों तक ही सीमित रहती है। समिति का उद्देश्य आर्थिक है न कि धार्मिक या राजनैतिक। समिति एक व्यापारिक संस्था है और सहकारिता एक व्यापार करने का ढंग है, यह दान की संस्था नहीं है, यह सदस्यों को निर्धन न रखकर सबल बनाती है, साथ ही सम्मिलित प्रयत्न द्वारा आर्थिक दशा की उन्नति में सहायता होती है।

छठे, समिति का काम प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के अनुसार होता है। प्रत्येक सदस्य का एक मत होता है। साधारण सभा को सर्वाधिकार होते हैं। समिति का प्रत्येक कार्य बहुमत से होता है। सदस्य समिति का प्रबन्ध स्वयं करते हैं। सदस्य ही स्वामी तथा कर्मचारी होते हैं।

सातवें, सहकारी समितियों का उद्देश्य लाभ प्राप्ति न होकर सेवा है। ध्येय समिति का इस प्रकार प्रबंध करना है कि सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुये, उत्तम प्रबन्ध और अच्छी सेवा के साथ साथ बचत हो। सहकारी समिति यद्यपि कि अपनी प्रतिद्वन्दी संस्थाओं की भाँति ही कार्य करती है किन्तु प्रबन्ध ऐसे सुचारू रूप से होता है कि सदस्यों को बचत हो जाती है, जो कि साधारण लाभ से भिन्न है। सहकारी समितियाँ बचत करने में प्रयत्नशील रहती हैं।

सहकारिता के उपरोक्त सिद्धान्तों का प्रयोग भिन्न-भिन्न सहकारी उद्देश्यों की पूर्ति में लगाया गया है। साधारणतः समितियों का कार्य पारस्परिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा आपसी कठिनाइयों को दूर करना है। उद्देश्यों के अनुसार यह भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। सहकारी ऋण के द्वारा सदस्यों को सस्ता ऋण उचित ब्याज पर सुलभ हो जाता है। सहकारी क्रय के द्वारा सदस्यों को अपनी आवश्यकतायें—घरेलू, कृषि-सम्बधी तथा आद्यौगिक अच्छी और उचित मूल्य पर मध्य के व्यापारियों की समाप्ति के कारण प्राप्त हो जाती हैं। सहकारी-विक्रय के द्वारा, मध्य के व्यापारियों की समाप्ति के कारण, सदस्यों को अपनी वस्तुओं की अच्छी कीमत मिल जाती है। अधिक मूल्य की मशीनें जो एक व्यक्ति नहीं खरीद सकता, सहकारी समितियों के द्वारा खरीदकर थोड़े कर देने से सुलभ हो जाती हैं। सहकारी कारखानों के द्वारा सदस्य अपनी वस्तुओं को विक्रय के लिये बना सकते हैं और अपनी घरेलू तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। हम आवश्यकतानुसार सहकारिता के सिद्धान्तों का प्रयोग अन्य समस्याओं को सुलझाने में प्रयोग कर सकते हैं।

सहकारिता का सिद्धान्त हमारे देश के लिये नया नहीं है, यह हमारे जीवन में ओतप्रोत है। वर्तमान रूप में सहकारी समितियाँ इस देश के लिये नई हैं। सम्मिलित कुटुम्ब प्रणाली, ग्राम-पंचायतें तो आदि काल से हैं। वे सहकारी संस्थायें ही हैं। गांव में आज भी सैकड़ों काम सहकारिता के सिद्धान्त के अनुसार होते हैं—विवाह आदि में निमंत्रण की प्रथा, ईख बुआई, कटाई, छिलाई की पेरने के काम में एक दूसरे के सहायता देना, खेतों को सींचने में एक दूसरे को बारी-बारी से सहायता देने का ढंग, ऐसे काम हैं जो हमारे सहकारिता से काम करने के उदाहरण हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन सिद्धान्तों को व्यवहारिक रूप दिया जाय, ग्राम्य-समाज की आर्थिक प्रणाली का आधार सहकारिता हो, व्यक्तिवाद के स्थान पर सामुहिकता को प्रोत्साहन दिया जाय ताकि स्वावलम्बी ग्राम इकाइयों की स्थापना हो सके।

खाद्य पदार्थों में रंग

ले० : श्री विदुर नारायण अग्निहोत्री

खाने पीने की वस्तुओं में रंग का होना बहुत ही महत्वपूर्ण है। स्वादिष्ट और पौष्टिक होते हुये भी भूरे या गंदे रंग वाली चीजों की मांग बाजार में कम रहती है। इसके विपरीत यदि इन चीजों का रंग सुन्दर तथा रुचिकर होता है तो उनका मूल्य बढ़ जाता है। खाद्य पदार्थों में रंग मिलाने का मुख्य उद्देश्य उनको अधिक चित्ताकर्षक बनाना है। विज्ञान ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि उत्तम भोजन का मनोविज्ञान पर अधिक प्रभाव पड़ता है जिसके कारण शरीर की पाचन शक्ति बढ़ जाती है।

खाद्य पदार्थों में रंग मिलाने की प्रथा हमारे देश में प्राचीन काल से चली आती है। बहुधा यह रंग वनस्पति, खनिज तथा कुछ विशेष प्रकार के छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों से प्राप्त होने वाले होते थे। सरसों, हल्दी, मिर्च आदि की महत्ता खाने-पीने की वस्तुओं के रंग को चित्ताकर्षक-बनाने की उतनी ही थी जितनी कि उनको स्वादिष्ट बनाने की। पानी में घुलनशील न होने के कारण इन मसालों के कण बहुधा इधर-उधर फैले रहते हैं और चूंकि चीजों के रंग का हल्कापन या गहराई इन्हीं कणों के परिमाण के ऊपर निर्भर रहती है इन बिना घुले कणों के कारण खाद्य सामिग्रियों में धब्बे पड़ जाते हैं और वह देखने में भी सुन्दर नहीं प्रतीत होतीं इसीलिए इनका प्रयोग अब धीरे-धीरे कम होता जा रहा है और इनकी जगह पर कृत्रिम रंग अधिक उपयोग में आने लगे हैं। कुछ कृत्रिम रंगों में स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाले पदार्थ पाए गए हैं जिससे उनका उपयोग वर्जित बताया गया है। इनमें से मुख्य यह हैं पिकरिक एसिड (Picric acid), विक्टोरिया यलो (Victoria yellow), मैन्चेस्टर यलो (Manchester yellow), आरन्शिया (Aurantica) और Aurine आराइन।

किसी रंग को चुनने से पहले निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है। सबसे मुख्य बात यह है कि जो रङ्ग बाजार में आमतौर पर प्रचलित हैं उनको यकायक बिल्कुल बदल देने का प्रयास नहीं करना चाहिये। जैसे खस और केले के शरबत बहुधा हरे रङ्ग के होते हैं अगर इन्हें नीला या पीला रंग दिया जाये तो बाजार पर इसका प्रभाव संतोषजनक नहीं होगा।

यह बात तै कर लेने के बाद कि किसी पदार्थ में कौन सा रंग देना चाहिये, हमें उस चीज के गुणों को भी ध्यान में रखना है क्योंकि उसी के अनुसार हमें रङ्ग का घोल तैयार करना होगा।

खाने पीने की वस्तुओं में काम में आने वाले बहुत से रंग पानी में ही घुल जाते हैं, कुछ ऐसे भी हैं जो चर्बी तथा तैल पदार्थों में घुलते हैं। साधारणतया हमें ऐसे रंग ही छांटने चाहिये जो कि घोलों में काफी गाढ़ी दशा में रह सकें। बहुधा यह देखा गया है कि गाढ़े घोलों में रङ्ग बोतल की तह में जमा हो जाता है, इसका नतीजा यह होता है कि ऊपर के घोल का रङ्ग हल्का हो जाता है तथा नीचे की तह बहुत गाढ़े रङ्ग की हो जाती है जिसके कारण फैक्ट्री से एकसा रङ्ग के पदार्थ प्रस्तुत नहीं किये जा सकते। ऐसे रङ्गों को उपयोग में नहीं लाना चाहिये। ऐसी अवस्था में गाढ़े घोल के बजाय गहरे रङ्गों का प्रयोग ही उचित तथा लाभदायक है। बाजार में हर प्रकार के हल्के, गहरे, फीके तथा गाढ़े रङ्ग मिलते हैं और ग्राहक अपनी पसन्द तथा आवश्यकता के अनुसार जैसा और जितना रङ्ग चाहें ले सकते हैं।

यह अनुभव किया गया है कि खाद्य पदार्थों में रङ्ग अक्सर मध्यम पड़ जाता है। इसलिये ऐसी चीजों में साधारण रङ्गों का प्रयोग व्यापारिक दृष्टिकोण से अधिक लाभप्रद नहीं होता। हमें ऐसी

चीज़ों में विशेष प्रकार के रङ्ग ही काम में लाना चाहिये। जैसे यदि खाद्य पदार्थ आम्लिक प्रकृति का है तो उसमें ऐसा रङ्ग मिलाना चाहिये जिस पर तेजाब का असर न हो। कुछ खाद्य पदार्थों के बनाने में गन्धक का धुंवा (Sulphur-di-oxide) इस्तेमाल किया जाता है। गन्धक के धुएँ का रसायनिक प्रभाव यह होता है कि चीज़ों का रङ्ग फीका पड़ जाता है, कभी-कभी उनका रङ्ग बिल्कुल ही गायब हो जाता है। इसलिये ऐसी चीज़ों में रङ्ग मिलाते समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि रङ्ग ऐसे हों जिनके ऊपर गन्धक के धुए का असर न हो। टार्ट्रेज़ीन (Tartrazine) अमैरेन्थ (Amaranth), (Ponceau) 3 R, पाइशिन्या २ आर Erythrosine इराथ्रोसीन आदि रङ्गों पर गंधक तथा के धुए का असर नहीं होता।

किसी आम्लिक पदार्थ के साथ अधिक देर गरम करने से भी क़रीब-क़रीब सभी खाद्य पदार्थों के रङ्गों में अन्तर हो जाता है। ऐसी चीज़ों में रङ्ग उनके तैयार होने के कुछ ही पहले मिलाना चाहिए। थोड़ा-थोड़ा रङ्ग धीरे-धीरे डालने से पूरे पदार्थ के सम रूप से मिल जाता है।

अधिकतर रङ्ग पाउडर ही लेकिन कुछ डलों (Crystal) की शक्ल में भी मिलते हैं। तैयार बने बनाये रङ्ग घोल की दशा में बोतलों में मिलते हैं। चूंकि इनके इस्तेमाल करने में लोगों को सुविधा रहती है अधिकतर लोग रङ्गों को घोलों के रूप में ही खरीदते तथा काम में लाते हैं। लेकिन रङ्गों के पाउडर को खरीद कर घोल बनाकर इस्तेमाल करने में किफ़ायत रहती है और इच्छानुसार रङ्ग फीके या गहरे बनाये जा सकते हैं।

कभी-कभी व्यापारी रङ्गों में डेक्स्ट्रिन, चीनी नमक आदि मिला देते हैं ताकि उनकी मात्रा बढ़ जाए। कभी तो उनका उद्देश्य रङ्गों में उपस्थित अशुद्धियों को कम करने का भी रहता है। देखने में तो ऐसे रङ्ग सस्ते मालूम होते हैं लेकिन वास्तव में उनको इस्तेमाल करते में अधिक पैसा खर्च करना पड़ता है। बाजार में विशुद्ध रङ्गों का मिलना दुर्लभ है इसलिये रङ्ग केवल उत्तम छाप और विश्वसनीय दूकानों से ही खरीदना चाहिये।

रङ्ग का घोल बनाने का सबसे आसान तरीक़ा यह है कि एक बड़े बरतन में पाउडर को रखकर ठंडे पानी से सान लिया जाय। फिर उसमें धीरे-धीरे खौलता हुआ गरम पानी उपयुक्त मात्रा में मिलाना चाहिये जब तक कि मनचाहे रङ्ग की गहराई न आ जाय। पानी व रङ्ग को अच्छी तरह हिलाते रहना नितान्त आवश्यक है क्योंकि अधिकतर रङ्ग कई प्रकार की ऐसी चीजों को एक में मिलाकर बनाए जाते हैं जिनकी घुलने की शक्ति अलग-अलग होती है। इसलिए रङ्ग घोलते समय इस बात पर अच्छी तरह ध्यान देना चाहिये कि रङ्ग का प्रत्येक कण पूर्ण रूप से घुल जाये। ऐसा न होने से चीजों में धब्बे पड़ने का डर रहता है और रङ्ग सम रूप से चीजों में मिल भी नहीं पाता।

घोल के ठंडा हो जाने के बाद उसे सुरक्षित रखने के लिये पाश्चराइज़ (pasteurize) कर लेना चाहिये।

पलक मारने की क्रिया

ब्रिटिश वैज्ञानिक के मनोरंजक अनुसन्धान

लें० : श्री एल० राबर्टस्

क्या आपने इस पर कभी विचार किया है कि पलक मारना कितनी विलक्षण क्रिया है ? शेफील्ड विश्वविद्यालय के भौतिकशास्त्र विभाग में काम करने वाले डाक्टर राबर्ट लॉसन नामक ब्रिटिश वैज्ञानिक ने पलक मारने की क्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन कर कुछ उपयोगी और मनोरंजक निष्कर्ष निकाले हैं।

समान स्थिति में साधारण व्यक्तियों के लिए पलक मारने की अनेकों क्रियाओं के बीच वाली अवधि लगभग एक सी होती है यह मोटी बात डाक्टर लॉसन के अनुसंधानों का आधार है। इस अवधि की दृष्टि से लोगों को चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है। प्रथम श्रेणी में, जिसे "जे टाइप" कहा गया है, पुरुष औसतन प्रति २.८ सेकेंडों पर पलक मारते हैं और स्त्रियां चार सेकेंडों पर; दूसरी श्रेणी—"प्लैटो टाइप" में लोग औसतन बारह सेकेंडों पर पलक मारते हैं। तीसरी श्रेणी का नाम 'बाईमॉडल टाइप" है और ये प्रति ३.६ सेकंडों पर पलक मारते हैं। ऐसे व्यक्ति बहुत कम होते हैं, पर इनसे भी कम होते हैं "सिपिट्रिकल टाइप"--चौथी श्रेणी - के लोग जो ५.८ सेकेंडों की अवधि पर पलक मारते हैं ।

अद्भुत निष्कर्ष

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यह विभिन्न व्यक्तियों की जाँच समान स्थितियों में की गई है। हाँ, विशेष परिस्थितियों में, जैसे उत्तेजनापूर्ण वाद-विवाद में, क्रोध और उत्साह में, पलकें स्वभावत: साधारण से अधिक शीघ्र मारी जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त, धूल और हवा के कारण भी वह काम जल्दी किया जा सकता है, और रोशनी की चकाचौंध अथवा शोरगुल के कारण भी। यह भी देखा गया है कि होठों के बीच में जलता हुआ सिगरेट रखने पर लोग साधारण की तुलना में कभी-कभी दुगनी बार पलक मारते हैं।

पलक मारने की क्रिया के चलचित्र लिए गए थे जिनसे यह पता लगा कि पलकों को बन्द करने में ०.०५ सेकेंड लगते हैं; इसके बाद वे ०.१५ सेकेंडों तक बन्द रहती हैं और खुलने में उन्हें ०.२० सेकेंड लगते हैं। ०.३ सेकेंडों तक आँखों से बिल्कुल नहीं दीखता और पुतलियों के आर-पार पलकों के घूमने के कारण, ०.२५ सेकेंडों तक आंखों की रोशनी धुँधली रहती है।

इन जाँचों के कारण डाक्टर लॉसन ने उपर्युक्त चारों श्रेणियों के लिए औसतन आँकड़े तैयार किए जिनके अध्ययन से हम अद्भुत निष्कर्षों पर पहुँच सकते हैं। उदाहरणार्थ, "जे टाइप" के पुरुषों में आँखें प्रति घण्टे में बारह मिनटों के लिए पूरी अथवा आधी बन्द रहती हैं। पलकें मारने के कारण प्रति घण्टे में साढ़े छः मिनटों के लिए ये बिल्कुल नहीं देखते। इस सम्बन्ध में विभिन्न श्रेणियों से सम्बन्ध रखने वाले आँकड़े बहुत विपरीत हैं। "जे टाइप" के पुरुषों द्वारा आंखों का प्रयोग करने वाले सारे समय में बीस प्रतिशत ऐसा होता है जिसमें वे बिल्कुल नहीं देखते अथवा बहुत कम और "प्लैटो टाइप" में यह अनुपात ४.६ प्रतिशत होता है।

वास्तविक प्रभाव

ब्रिटेन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्र "नेचर" में डाक्टर लॉसन ने इस विषय पर कई शिक्षाप्रद लेख लिखे हैं। जब आप शेफील्ड विश्वविद्यालय में अध्यापक थे आपने देखा कि कई विद्यार्थी, अनुसन्धानों में सिद्धहस्त होने पर भी, अपने

प्रयोगों में समय के अनुमान से सम्बन्ध रखने वाले उचित आँकड़े प्राप्त करने में असमर्थ थे। डाक्टर लॉसन की धारणा है कि इन अशुद्धियों का कारण पलकें मारने की क्रिया है जो, जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं; "जे टाइप" के लोगों में बहुत पाई जाती है।

वैज्ञानिक अनुसन्धानों में रेडियम धातु से निकलने वाली बिजली की किरणों का नापना एक ऐसी क्रिया है जिसमें अशुद्धियां बहुत होती हैं। एक ग्राम रेडियम से प्रति सेकेंड जितने विद्युत कण निकलते हैं इसका पता लगाना वास्तव में एक कठिन काम है क्योंकि ये कण बहुत ही शीघ्र—एक सेकेंड के दस हज़ारवें भाग के अन्दर—लुप्त हो जाते हैं; इसके अतिरिक्त प्रत्येक बार पलक मारते समय ०.३ सेकेंड तक अनुसंधान करने वाले को कुछ दीखता भी नहीं।

हमारे दैनिक जीवन पर भी पलक मारने की क्रिया का विशेष प्रभाव पड़ता है। मोटर चलाते समय पलक मारना, और बार-बार पलक मारना, खतरे से खाली नहीं कहा जा सकता। कहने की आवश्यकता नहीं कि वायुयान चालकों पर इस क्रिया का प्रभाव, विशेषतः युद्धकाल में, बहुत महत्वपूर्ण होता है।

कौन जाने, भविष्य में विभिन्न रोजगारों में लोगों की नियुक्ति इस बात को ध्यान में रखकर की जाएगी कि पलक मारने की दृष्टि से वे किस श्रेणी में आते हैं।

सूर्य का अक्षय शक्ति-भंडार

(SOURCE OF SOLAR ENERGY)

ले० : श्री सूरजभान गर्ग, एम० एससी०, प्रोफेसर, भौतिक विज्ञान-विभाग, मेरठ, कालिज

उषा की लालिमा पूर्व क्षितिज पर छा गई। मानों अपने प्रिय प्रभात का आगमन सुन लजा गई हो। मरीचिमाली का प्रत्येक देश और युग में आदर रहा है। प्राचीन आर्य सूर्य के पुजारी थे। यूनान आदि पाश्चात्य देशों में भी सूर्य को प्रमुख देवता माना गया था। आज के वैज्ञानिक-युग में यद्यपि सूर्य को देवता तो नहीं माना जाता, परन्तु सृष्टि के एक अंश के विकास-क्रम के लिये इसे अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। इस पृथ्वी पर का समस्त प्राणी-वर्ग, चल अथवा अचल, अपने जन्म तथा जीवन के लिए सूर्य की रश्मियों पर निर्भर है। सूर्य न केवल ग्रह, उपग्रह इत्यादि का जन्मदाता ही है, अपितु उन पर दिन प्रतिदिन होने वाली घटनाओं का भी एक प्रमुख कारण है। इस पृथ्वी पर हम बड़े-बड़े भव्य भवन बनाते हैं, उपवन लगाते हैं और विज्ञान की अनेक देनों को पा, अपने में ही नहीं समाते। परन्तु कभी हमने सोचा भी कि यदि सूर्य न होता तो यह जीवन ही सम्भव न होता। बच्चों के प्रिय चन्दा मामा, अपनी शुभ्र ज्योत्सना से चमकते दिखाई न देते, प्रेमी-प्रेमिकाओं की प्रिय मिलन चंद्र-रात्रियाँ स्वप्न की बातें रह जातीं। सोचिये जब सूर्य-ग्रहण लगता है, केवल थोड़ी ही देर के लिये सूर्य अपना प्रकाश और ताप रोक लेता है, तब कैसा विचित्र और भयानक सा लगने लगता है। पशु-पक्षी बैचेन, वृक्ष लता-पत्र इत्यादि जीवन-विहीन, सारा संसार ही मृत सा लगने लगता है। इतना महत्वपूर्ण है सूर्य का प्रकाश और ताप।

परन्तु क्या सूर्य सदैव से इसी प्रकार प्रकाश और ताप भेजता रहा है? और फिर आगे कब तक ऐसा ही चलता रहेगा।? हमने ठोस को गर्म होते देखा है। जैसे-जैसे उसका तापक्रम बढ़ता

जाता है, उसमें से प्रकाश निकलने लगता है। इस प्रकाश का रङ्ग क्रमशः लाल, पीला और अन्त में सफेद होता है। इस कार्य में ठोस का कुछ भाग लगातार, जलकर समाप्त होता रहता है। यदि सूर्य को भी हम इसी प्रकार के तप्त ठोस के समान मान लें तो क्या सूर्य का अन्त जलकर राख हो जाने में है? यदि नहीं तो फिर जलकर समाप्त हो जाने वाले अंश की पूर्त्ति कहाँ से और किस प्रकार होगी। अभी कुछ वर्षों पूर्व इन प्रश्नों का उत्तर ठीक प्रकार से देना सम्भव न था, परन्तु पिछले दिनों कार्नेल-विश्वविद्यालय के प्रौफेसर बैथ ने इनका सन्तोषप्रद उत्तर दे दिया है।

प्रौफेसर बैथ के विचारों पर मनन करने से पहिले यह आवश्यक है कि हम इस सृष्टि को बनाने वाली ईंटों (कणों) से परिचित हो जावें। सारा संसार कणों से मिलकर बना है। इन कणों में प्रधानतः चार प्रकार के कण (fundamental-particles) रहते हैं। प्रथम वे जिन पर धन विद्युत (+charge) रहती है, इन्हें पोजीट्रोन (Positrons) कहते हैं। दूसरे प्रकार के कणों में ऋण-विद्युत (–Charge) रहती है, इन्हें इलेक्ट्रोन (electron) कहते हैं। तीसरे प्रकार के कणों में किसी भी प्रकार की विद्युत नहीं रहती, इनको न्यूट्रोन (neutron) कहते हैं। चौथे प्रकार के कण प्रोटोन (Proton) कहलाते हैं। यह हाइड्रोजन के नाभिकण (nucleus) होते हैं। इन चारों प्रकार के कणों के मेल से ही विभिन्न तत्व बने हैं। प्रत्येक तत्व (element) में अणु (molecule) और परमाणु (atom) रहते हैं। परमाणुओं से मिलकर अणु बनते हैं और परमाणुओं को बनाने वाले हमारे यही चारों प्रकार के कण हैं।

परमाणु की बनावट विचित्र है। यदि हम किसी प्रकार उसके अन्दर घुस सकें तो वह अन्दर से पोला (empty) ही दीखेगा। बीच में बहुत छोटा सा कण स्थित होगा। इसे नाभिकण कहते हैं। पूरे परमाणु का भार इसी छोटे से कण में निहित रहता है। नाभिकण के चारों ओर इलेक्ट्रोन चक्कर काटते दीखेंगे। मानों परमाणु एक छोटा सा सौर-मण्डल सा है, जिसमें सूर्य के स्थान पर नाभिकण और ग्रहों के स्थान पर इलेक्ट्रोन हैं। परमाणु में इलेक्ट्रोनों की संख्या, उसके तत्व पर निर्भर करती है। जिस प्रकार ट्रेन केवल पटरी पर ही चल सकती है, उसी प्रकार ये इलेक्ट्रोनों भी केवल निश्चित मार्गों पर ही चल सकते हैं। क्योंकि नाभिकण पर धन-विद्युत रहती है, और इलेक्ट्रोन पर ऋण-विद्युत, इस लिये नाभिकण, इन इलेक्ट्रोनों पर अपना पूरा अंकुश रखता है। परन्तु जो इलेक्ट्रोन केन्द्र के नाभिकण से जितनी ही अधिक दूर होगा, उतना ही उस पर नियन्त्रण भी कम होता जावेगा। इस प्रकार सबसे बाहर वाले इलेक्ट्रोन पर यदि कोई बाहरी कण आक्रमण करे तो वह परमाणु को छोड़, उसका बन्दी भी बन सकता है। वैसे साधारणतः बाहर वाला इलेक्ट्रोन पहरेदारी का काम करता है। जैसे ही किसी दूसरे परमाणु का इलेक्ट्रोन इस परमाणु में घुसने का यत्न करता है, यह उसे अपने ऋण-विद्युत के कारण धक्का देकर रोकता है। (एक सी विद्युत वाले कणों के कारण)। इलेक्ट्रोन तथा नाभिकण के बीच खाली स्थान का अनुमान एक उदाहरण से लगा लीजिये। मान लीजिए, आप एक ऐसे गोल मैदान में खड़े हैं, कि जिसका व्यास तीन फर्लाङ्ग है। इस विशाल गोले के केन्द्र पर एक आँवला (फल) पड़ा है। तो आँवला आपका नाभिकण और छोटे-छोटे कण इलेक्ट्रोन होंगे। ऐसे मैदान को आप खाली नहीं कहेंगे।

परमाणु का नाभिकण भी कई प्रकार के कणों से मिलकर बना होता है। साधारणतः इसमें न्यूट्रोन व प्रोटोन रहते हैं। विभिन्न तत्व उनके नाभिकणों द्वारा ही पहचाने जाते हैं। जैसे सोडे के परमाणु को लीजिये। इसके नाभिकण के चारों ओर १० इलेक्ट्रोन घूमते रहते हैं और नाभिकण में २३ प्रोटोन, और १८ इलेक्ट्रोन हैं। प्रोटोन, न्यूट्रोन और पोजीट्रोन से मिलकर बनता है। इतना ही नहीं, न्यूट्रोन और पोजीट्रोन आपस में बदलते भी

रहते हैं। नाभिकण को बनाने वाले कण परस्पर उसी प्रकार बँधे रहते हैं जैसे अणु के भीतर परमाणु और परमाणु के भीतर इलेक्ट्रोन और नाभिकण परमाणु की लगभग सारी शक्ति, नाभिकण में ही निहित रहती है। आधुनिक अणुबम इसी असीम शक्ति का परिणाम है। अणु-बम का आविष्कार केवल इस बात का आविष्कार है कि नाभिकण के विभिन्न कणों को बाँधने वाली शक्ति को कैसे प्राप्त किया जावे।

लार्ड रदरफोर्ड ने बतलाया था कि प्रोटोन द्वारा नाभिकण की असीम शक्ति बाहर प्रकट नहीं हो सकती, क्योंकि दोनों पर धन-विद्युत रहती है। परन्तु न्यूट्रोन इस कार्य को भली भाँति कर सकेगा, क्योंकि इसमें किसी भी प्रकार की विद्युत नहीं रहती, न तो इसे नाभिकण खींच कर अपने पेट में समा लेगा. और न इसे धक्का देकर बाहर ही फेंक देगा। इस तथ्य का प्रयोग, १९३४ ई० में प्रो० फर्मी ने किया। उन्होंने एक तत्व के नाभिकण को दूसरे प्रकार के नाभिकण में बदल कर तत्वों के परस्पर परिवर्तन (Transmutation) सम्बन्धी स्वप्न को पूरा कर दिया।

परन्तु नाभिकणों के टूटने से इतनी प्रबल शक्ति क्यों प्राप्त हो जाती है? यदि नाभिकण के टूटने से पहले उसको तौला जावे, और फिर टूटने पर उसके विभिन्न कणों को एकत्र करके तौला जावे, तो दोनों तौलों में कुछ अन्तर आवेगा। यही अन्तर इस अपार शक्ति का कारण है। आइन्सटाइन के सापेक्ष सिद्धान्त (relativity theory) से शक्ति (E) और मात्रा (M) एक ही हैं। [$E = MC^2$, जब कि c = प्रकाश का वेग लगभग २ लाख मील प्रति सेकिंड]। इस प्रकार चाहे तौल में बहुत ही कम अन्तर आवे, परन्तु उससे मिलने वाली शक्ति यथेष्ट प्रबल रहेगी।

सूर्य के तल पर तापक्रम ६०००° शतांश है। जैसे-जैसे हम इसके केन्द्र की ओर जाते हैं, तापक्रम बढ़ता जाता है। केन्द्र पर यह लगभग ५ करोड़ डिग्री शतांश है। यह तापक्रम इतना अधिक है कि इसमें न केवल अणुओं से परमाणु अलग हो जाते हैं, अपितु परमाणु में भी, नाभिकण के चारों ओर घूमने वाले इलेक्ट्रोन भी उसके अंकुश से निकल कर अलग हो जाते हैं। इस प्रकार वहाँ विभिन्न तत्वों के नाभिकण परस्पर गोलाबारी करना आरम्भ कर देते हैं। इस गोलाबारी से नाभिकण टूट-टूट कर, अपना रूप बदलने लगते हैं। एक प्रकार का नाभिकण, दूसरे प्रकार के नाभिकण में बदल जाता है, और फिर तीसरे में। इस प्रकार यह क्रम चलता रहता है। परन्तु टूटने और परिवर्तन के क्रम में प्रत्येक बार नाभिकण का कुछ अंश समाप्त होकर प्रकाश और शक्ति किरणों के रूप में बाहर निकलता रहता है। यही ताप और प्रकाश के रूप में हम तक आती है।

परन्तु नाभिकणों के टूटने (nuclear fission) का यह क्रम क्या सदैव चलता रहेगा? प्रो० बैथ के अनुसार, हाइड्रोजन के नाभिकण (प्रोटोन) को भिन्न प्रकार के नाभिकणों के रूप में परिणित करके साढ़े पैंसठ लाख (६५,५००,-०००) वर्ष बाद सारी क्षति की पूर्ति करके, सूर्य फिर पहली दशा में आ जाता है। उन्होंने इस पूरी क्रिया की छः अवस्थायें बतलाई हैं।

प्रथम अवस्था:—हाइड्रोजन का नाभिकण—प्रोटोन, प्रहार करके कार्बन के नाभिकण (छः प्रोटोन + छः न्यूट्रोन) में घुस जाता है। अब वहाँ सात प्रोटोन और छः न्यूट्रोन हो जाते हैं। इस प्रकार नये नाभिकण का भार १३ हो जाता है यह नाइट्रोजन के अनुरूप (isotope) का नाभिकण है। संकेतों द्वारा—

$$C^{12} + H^{1} \rightarrow N^{13} + \text{प्रकाश किरणें}$$

(कार्बन) (प्रोटोन) (नाइट्रोजन का अनुरूप) तथा ताप
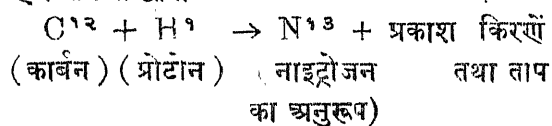
दूसरी अवस्था:—

अस्थायी होने के कारण नाइट्रोजन के अनुरूप के एक प्रोटोन का पोजीट्रोन जलकर समाप्त हो जाता है। इस प्रकार नाभिकण में एक न्यूट्रान बढ़ जाता है और एक प्रोटोन कम होता है। इस नये

नाभिकण में ६ प्रोटोन + ७ न्यूट्रोन हो जाते हैं। यह कार्बन का अनुरूप है। संकेतों द्वारा—

$N^{13} \rightarrow C^{13}$ + एक पोजीट्रोन
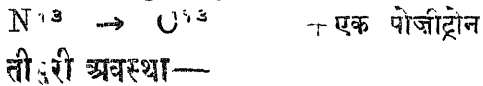
तीसरी अवस्था—

प्रोटोन, फिर इस १३ परमाणु-भार वाले कार्बन पर प्रहार करता है। इससे अब ७ प्रोटोन+७ न्यूट्रोन नाभिकण में हो जाते हैं। यह नाइट्रोजन का नाभिकण है।

$C^{13} + H^{1} \rightarrow N^{14}$ प्रकाश तथा ताप
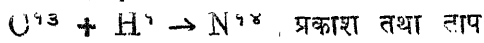
चौथी अवस्था—

प्रोटोन के फिर प्रहार करने पर नये नाभिकण में ८ प्रोटोन के तथा ७ न्यूटोन हो जाते हैं। यह आक्सीजन के अनुरूप का नाभिकण है।

$N^{14} + H^{1} \rightarrow O^{15}$ + प्रकाश तथा ताप
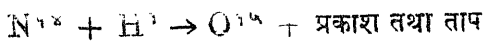
पाँचवी अवस्था—

अस्थायी होने के कारण नाभिकण का एक प्रोटोन का एक पोजीट्रोन जलकर न्यूट्रोन बन जाता है। इस प्रकार नये नाभिकरण में ७ प्रोटोन और ८ न्यूट्रान हो जाते हैं। यह नाइट्रोजन के अनुरूप का नाभिकण है।

$O^{15} \rightarrow N^{15}$ + एक पोजीट्रोन
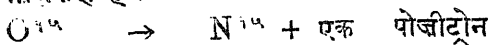
छठी अवस्था—

अब प्रोटोन अन्तिम बार प्रहार करता है। इससे आक्सीजन का नाभिकण (८ प्रोटोन+८ न्यूट्रोन) बन जाता है। यह नाभिकण भी बँटकर दो भागों में हो जाता है, एक तो २ प्रोटोन+२ न्यूट्रोन से मिलकर हीलियम बन जाता है और दूसरा भाग ६ प्रोटोन और ६ न्यूट्रोन मिलकर कार्बन का नाभिकण बन जाता है। इस प्रकार साढ़े पैंसठ लाख वर्ष बाद अब फिर कार्बन पर प्रोटोन का प्रहार होता है और पीछे वाला क्रम दोहराया जाता है।

$N^{15} + H^{1} \rightarrow C^{12}_{6} + He^{4}_{2}$
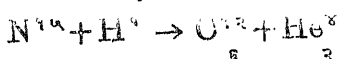
इस सारे क्रम में हाइड्रोजन के नाभिकण—प्रोट्रोन, हीलियम के नाभिकण में परिणत होते रहते हैं। सूर्य को बनाने वाली विभिन्न गैसों में हाइड्रोजन की मात्रा ३५% है। गणना से प्रो० बैथ ने बतलाया कि सूर्य अभी १२ अरब (१२,०००, ०००,०००) वर्ष तक इसी गति से प्रकाश और ताप भेजता रहेगा। अब तक उसने केवल १% हाइड्रोजन का ही भक्षण करके इतनी ताप और प्रकाश भेजा है।

ऊपर की सभी अवस्थाओं को प्रयोगशाला में सम्भव करके परीक्षा कर ली गई है। पहली तीन अवस्थायें प्रो० बैथ द्वारा; चौथी, केम्ब्रिज के डा० करन तथा डा० स्ट्रोदर; पाँचवीं स्वयं डा० बैथ द्वारा और छठी हालोवे द्वारा सिद्ध की जा चुकी हैं। यह सफलता २७ अप्रेल १६४१ को प्राप्त हुई।

यद्यपि सूर्य अब तक कुल हाइड्रोजन का १% ही गँवा पाया है। परन्तु इसीसे पृथ्वी का ताप-क्रम कुछ डिग्री बढ़ गया है। यदि यही क्रम चलता रहा तो वह दिन भी आवेगा कि अधिक ताप के कारण पृथ्वी तल पर कोई प्राणी ही जीवित न रह सकेगा। स्वयं सूर्य का आकार भी बढ़ जावेगा यदि कोई भाग्यवान (१,०००,०००,०-००) वर्ष तक जीवित रह सके तो वह देखेगा कि उस समय का सूर्य, आज के सूर्य से कुछ बड़ा दीखेगा। मान लीजिये आपको अमरता का वरदान मिल गया है। तो करोड़ों वर्ष बाद आप देखेंगे कि शनैः शनैः ताप की अधिकता से जीवन लोप होता जा रहा है, समुद्रों का जल भाप बन रहा है। और एक दिन सूर्य की सारी हाइड्रोजन समाप्त हो जावेगी। इस प्रकार उसका प्रकाश व ताप को पैदा करने वाला ईंधन समाप्त हो चुका होगा। इसलिये संतुलन रखने के लिये सूर्य सिकुड़ना प्रारम्भ करेगा। इस सिकुड़न से इसकी गर्मी कम होती जावेगी। इससे पृथ्वी की गर्मी भी कम होती जावेगी। सूर्य का ताप बढ़ने से जो जीवन समाप्त हो गया था, फिर जीवित हो उठेगा इसमें कौन पहिले आवेगा, कौन पीछे, क्या कहें ? फिर यह ताप इतना कम हो जावेगा कि प्राणी-वर्ग समाप्त हो जावेंगे, इस बार ताप की अधिकता

से नहीं, शीत की अधिकता से। पृथ्वी बर्फ से जमी हुई, ऊजड़ और ठंडे ग्रह में बदल जावेगी। और सूर्य एक बहुत छोटा, अत्यन्त भारी, और बहुत ही कम चमकीला तारा रह जावेगा।

इस भविष्यवाणी के आधार आज भी इस सृष्टि में हैं। बृहस्पति, शनि, यम, वरुण इत्यादि ऐसे ही ठंडे ग्रह हैं। और लुब्धक (Sirium) तारे का साथी, सूर्य के भविष्य का सा तारा है। फिर भी कुछ निश्चित मत इस विषय में अभी नहीं दिया जा सकता।

समुद्र से रेशम

लेखक : श्री० इगॉन लारसेन

कुछ समय हुआ एडिनबरो में एक प्रदर्शिनी दिखाई गई थी जिससे यह मालूम हुआ कि पुरानी कथाओं में विज्ञान के सामयिक चमत्कारों का कितना सुन्दर अनुमान लगाया था। हजारों वर्षों से समुद्रतट पर रहने वाले यूरोपीय और एशियाई देशों के लोग एक ऐसी कच्ची वस्तु का उपयोग कर रहे हैं जिसे बड़े परिमाण में और बहुत सरलता के साथ प्राप्त किया जा सकता है। यह वस्तु एक समुद्री पौधा है।

ग्रेट ब्रिटेन के अनेकों समुद्रीय प्रदेशों की भाँति इसका उपयोग जापान में बहुत समय तक उपयोगी खाद के रूप में किया गया था। उत्तरी आयरलैंड की खाड़ियों में समुद्री पौधे के खेतों पर यह खाद प्राचीन विधियों के अनुसार तैयार की जाती है। आर्कनी द्वीपों में समुद्री पौधे से ढकी हुई चट्टानें भेड़ों के चरने के काम में आती हैं। उत्तरी स्काटलैंड के निवासी उबाले हुए समुद्री पौधे में जई का आटा मिलाकर बछड़ों को देते हैं।

वैज्ञानिकों का प्रयत्न

आयरलैंड और स्काटलैंड के समुद्रतट पर पौधा मनुष्य समुद्री के भोजन के रूप में उपयुक्त होता है। ये पौधे आयोडिन, सोडा, पोटाश तथा सज्जीखार इत्यादि रसायनिक पदार्थों के सम्मिश्रण होते हैं। इन विभिन्न वस्तुओं को अलग निकालने के लिए पौधों को जलाना आवश्यक है। एक प्रकार के नीले समुद्री पौधे से प्राकृतिक रंग प्राप्त होते हैं और कुछ पौधे औषधियों के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

समुद्री पौधों की ओर विज्ञान का ध्यान हाल ही में आकर्षित हुआ। इसके उपयोग की कई आधुनिक विधियाँ हैं जिन्हें एडिनबरो प्रदर्शिनी में देखकर दर्शक बहुत विस्मित हुए। इस प्रदर्शिनी का आयोजन स्काटलैंड के समुद्री पौधों में अनुसंधान करने वाले सम्मेलन ने किया था।

सितम्बर १९४७ में इस संस्था को मुसेलबरो नामक स्थान में एक सुसज्जित आधुनिक प्रयोगशाला की प्राप्ति हुई। जीवविद्या विशेषज्ञ समुद्री पौधे की उपज और उसे जीवित रखने की विधियों का अध्ययन कर रहे हैं। इंजीनियर इन पौधों को काटने की विधि में जाँच कर रहे हैं और रसायनिक का ध्यान इनके विश्लेषण तथा औद्योगिक महत्व की ओर है। यह सब जानते हैं कि समुद्री पौधे से एक सम्पन्न रसायनिक उद्योग की स्थापना जिसमें १,५०,००,००० पौंड की वस्तुएँ प्रति वर्ष बनाने की क्षमता हो, की जा सकती है।

विभिन्न प्रकार

समुद्र के अंदर भूमि के ऊपर से कहीं अधिक पौधे उगते हैं। उदाहरणार्थ, आर्कनी द्वीपों के चारों ओर पन्द्रह लाख टन काटने योग्य समुद्री पौधे पैदा होते हैं; अनेकों समुद्रतटीय प्रदेशों में इन पौधों की उपज प्रति मील पर सौ टनों से अधिक है।

समुद्री पौधे होते भी कई प्रकार के हैं—एक ओर अत्यंत सूक्ष्म पौधे और दूसरी ओर ७०० फ़ीट लम्बे वृक्ष। कुछ पौधे समुद्र की सतह पर तैरते रहते हैं; कुछ चट्टानों से लिपट जाते हैं और कुछ ज्वार-भाटा द्वारा समुद्र के किनारे फेंक दिए जाते हैं।

इनके विभिन्न प्रकारों की सूची बनाना ही एक बड़े परिश्रम का काम है। जल के भीतर स्थित समुद्री पौधों के जंगलों का पता लगाने के लिए राडर का उपयोग और वायुयानों द्वारा चित्र खींचना आवश्यक हुआ है। वैज्ञानिकों ने समुद्री सतह के नीचे स्थित पौधों का सुगम अध्ययन करने के लिए एक विशेष यंत्र का आविष्कार भी किया।

इस प्राकृतिक सम्पत्ति के औद्योगिक उपयोग के लिए सर्व प्रथम आवश्यकता उन्हें काटने की सस्ती विधियों का पता लगाना है। ज्वार-भाटा द्वारा समुद्र के किनारे छोड़े हुए पौधे हाथ से सुगमतापूर्वक काटे जा सकते हैं। एक व्यक्ति घंटे भर में एक हंडरवेट तक काट सकता है। किन्तु पानी के अंदर यंत्रों का उपयोग आवश्यक है क्योंकि काटने पर पौधे समुद्र की तह तक पहुँच जाते हैं। स्काटलैंड के समुद्रतट पर छः विभिन्न विधियों और यंत्रों का प्रयोग किया जा रहा है ताकि इनमें सबसे सुगम यंत्र और विधि का पता लगाया जा सके।

दूसरी समस्या यह है कि समुद्री पौधों से प्राप्त वस्तुओं का औद्योगिक उपयोग किस प्रकार किया जाय। अब तक यह काम केवल आल्र्जानिक एसिड की सहायता से किया जा सका है। समुद्री पौधों से निकाले गए प्रत्येक टन आल्र्जानिक एसिड के साथ-साथ तीन टन उपयोगी रसायनिक पदार्थ भी प्राप्त होते हैं जिनका उपयोग उचित विधियों के अभाव के कारण अभी तक नहीं हो सका है। वास्तव में, वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए यह एक बड़ा क्षेत्र है। आल्र्जानिक एसिड "आल्गीन" नामक गाढ़े द्रव के बनाने में उपयुक्त होता है जिसकी खोज स्टैनफर्ड नामक ब्रिटिश वैज्ञानिक ने १८८४ में की थी।

प्रथम महायुद्ध के समय में इस द्रव पदार्थ से सरेस बनाया गया था और द्वितीय महायुद्ध ने इसका उपयोग पहली बार कृत्रिम रेशे तैयार करने में देखा।

फ़ैशन के क्षेत्र में

इन रेशों के कारण अनुसंधान करने वालों को पहले बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं क्योंकि साबुन अथवा सोडे से धोने पर ये रेशे घुल जाते थे। पर आज यही इनका मुख्य गुण हो गया है क्योंकि इन्हें अन्य रेशों के साथ मिलाकर बुनने से करेव, गोटा और नक़ली रेशम इत्यादि बनाना सम्भव हुआ है।

फ़ैशन के क्षेत्र में समुद्र की तल से प्राप्त रेशम का भविष्य बहुत उज्वल है। समुद्री पौधों से उत्पन्न वस्तुओं की सहायता से अनेकों कांतिवर्धक वस्तुएँ भी तैयार की गई हैं। ब्रिटेन के विकसित प्लास्टिक उद्योग में भी इनका उपयोग हो रहा है और इनकी सहायता से काग़ज़ तथा प्लाइवुड के तख्ते भी बनाए गए हैं। बच्चों का दूध, दूध का पाउडर तथा कोको में एक विशेष प्रकार का समुद्री पौधे से उत्पन्न पदार्थ मिलाने पर ये पानी में जल्दी घुलने योग्यहो जाती हैं। मुरब्बे और अचार डालने का काम समुद्री पौधों से उत्पन्न पदार्थ की सहायता से आसान बन जाता है। आइस क्रीम, गोश्त का शोरबा और पका हुआ अंडा और दूध इनके मिश्रण से अधिक स्वादिष्ट बन सकते हैं। स्पष्टत: समुद्री पौधे अनेकों उपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति का सम्पन्न साधन हैं। इसी से 'अगार' नामक वस्तु की उत्पत्ति हुई है जो औषधि के क्षेत्र में पहले जापान की विशेषता थी और आज ब्रिटेन की। कच्चे पदार्थ के रूप में इस समुद्री पौधे के लिए भविष्य में एक महत्वपूर्ण स्थान निश्चित है।

यांत्रिक चित्रकारी

नक़शे घर की कार्यवाही

(गतांक से आगे)

ले० श्री ओंकार नाथ शर्मा

नक़शे के काग़ज़ों के आकार और नाप—

प्रत्येक नक़शा घर में नित्य उपयोग के लिये काग़ज़ों के कुछ विशेष नाप निश्चित कर लिये जाते हैं और फिर पुर्जों के नक़शे जिस पैमाने पर भी उसमें आ सके बना दिये जाते हैं। निम्न-लिखित नाप के काग़ज़ों का अकसर प्रयोग किया जाता है :—२४" × ३६", १८" × २४", १२" × १८" और ९" × १२"। यह नाप बाज़ार में मिलने वाले काग़ज़ के रूलों में से काट कर बनाये जा सकते हैं और इसी नाप के ट्रेसिंग क्लाथ और ब्ल्यूप्रिंट नील प्रतिलिपियों के काग़ज़ भी काटे जा सकते हैं। उपरोक्त नापों को देखने से मालूम होगा कि १८" × २४" का नाप २४" × ३६" का आधा है, और इसी प्रकार १२" × १८" का नाप १८" × २४" का आधा होता है और ९" × १२" का नाप १२" × १८" का आधा होता है। इस प्रकार से काग़ज के टुकड़े करने से काग़ज बरबाद नहीं होता। छोटे पुर्जे तो अकसर पूरे पैमाने पर चित्रित किये जाते हैं अतः जिस भी नाप के काग़ज में सुविधा से उसके सब दृश्य आ जावें बना दिये जाते हैं लेकिन बड़े नाप के काग़ज़ों पर या तो बहुत बड़े पुर्जे जिनकी सब बारीकियाँ दिखाना अभीष्ट होता है बनाये जाते हैं या असेम्ली अर्थात् संगम नक़शे बनाये जाते हैं। उदाहरण के लिये तफसील चित्र तो अकसर पूरे आधे अथवा चौथाई पैमाने पर बनाये जाते हैं लेकिन संगम चित्र अकसर आठवें, बारहवें और सोलहवें पैमाने पर बनाये जाते हैं तब कहीं वे बड़े से बड़े नाप के काग़ज में प्रदर्शित किये जा सकते हैं।

मोटरकार बनाने वाले एक कारखाने में सबसे छोटे नक़शे के काग़ज का नाप ८½" × ११" निश्चित किया हुआ है यह नं० १ काग़ज है। नं० २ काग़ज इसका दुगना अर्थात् ११" × १७" है। साधारण तौर पर रोज़मर्रा काम में आने वाले नक़शे इसी नाप के काग़ज पर बनाये जाते हैं। नं० १ का काग़ज तो केवल नक़शों की पुस्तकों के उपयोग में ही आता है। नं० ३ का काग़ज १७" × २२" होता है जो कि औजार गृह में बनाये जाने वाले औजारों के पूरे पैमाने के नक़शे बनाने के काम में आता है और नं० ४ का काग़ज जो कि इसका भी दुगना होता है अर्थात् २२" × ३४" वह फरमों के पूरे पैमाने के नक़शे बनाने के काम में आता है, और नं० ५ का अर्थात् ३४" × ४४" का काग़ज जनरल अरेंजमेन्ट अर्थात् बृहत् संगम चित्र बनाने के काम में आता है।

यांत्रिक चित्र बनाने के तरीक़ों का बंधेज—

वैसे तो सारी दुनिया भर के नक़शे घरों और कारखानों में यांत्रिक चित्रों के बनाने का तरीक़ा क़रीब-क़रीब एक सा ही है जैसा कि इस लेख माला के प्रथम भाग में समझाया जा चुका है। क्योंकि यांत्रिक चित्रकला गणित की बुनियाद पर खड़ी हुई दुनिया भर के यांत्रिकों और कारीगरों की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है लेकिन फिर भी प्रत्येक कारखाने वाले अपने सुभीते के लिये यांत्रिक चित्रों के बनाने के तरीक़ों में कुछ न कुछ फेर-बदल कर ही लेते हैं, अतः प्रत्येक नक़शा घर में एक-एक चार्ट इस प्रकार का बना लिया जाता है जिसमें निम्नलिखित बातें बहुत ही संक्षेप में बता

कर निश्चित कर दी गई हों। और फिर उस कारखाने में काम करने वाले प्रत्येक यांत्रिक, कारीगर और यांत्रिक चित्रकार का फर्ज हो जाता है कि यंत्रों की बनावट सम्बन्धी अपने विचार प्रदर्शित करते समय उन्हीं तरीक़ों को बरते नहीं तो ग़लतफ़हमी हो जाने के कारण निर्माण विभाग में नुक़सान हो जाने की बहुत सम्भावना हो जाती है।

१—भिन्न-भिन्न प्रकार की रेखाओं की आकृति और उनका उपयोग।
२—नक़शे के काग़जों की नाप।
३—पैमानों की सूची जिनका साधारणतया उपयोग किया जाय।
४—आवश्यकता पड़ने पर नक़शों में पुर्जों की छाया किधर से प्रदर्शित की जाय।
५—कटाव की लकीरों के प्रकार।
६—प्रलम्बता कौन से कोण की हो ?
७—चूड़ियाँ प्रदर्शित करने के तरीके।
८—यांत्रिक क्रिया सूचक चिन्ह या संकेत।
९—शब्दों के संक्षिप्त रूप।
१०—नाप की सीमायें प्रदर्शित करने के तरीक़े।
११—नक़शे के हेडिंग, पैमाना, सूचना, सारिणियाँ, पुर्जों के नाम, फर्म का नाम आदि बातें कहां और किस प्रकार दी जावें, उनका नमूना

बंधेज की प्रथा (Standardisation)—चाहे किसी भी प्रकार के यंत्र की रचना अथवा निर्माण किया जावे, कुछ सामान ऐसा होता है जो कि हेर-फेर कर कई जगह काम में आता है जैसे—बोल्ट, नट, टेपरपिनें, तारपिनें, सीधीपिनें रिवट स्क्रू, बुश, वाशर, कॉटर, टोंटियां, इन्स्युलेटर, टरमिनल और तार इत्यादि। इन सब भिन्न-भिन्न प्रकार की चीजों के नाप आदि सारणी के रूप में लिख लिये जाते हैं और उनकी पुस्तकें बना दी जाती हैं जिन्हें बंधेज पुस्तक अथवा स्टैन्डर्ड बुक (Standard book) कहते हैं और कारखाने के सब यांत्रिक चित्रकारों और फ़ोरमैनों को हिदायत कर दी जाती है कि नये यंत्रों की रचना (Design) और निर्माण (Constraction) करते समय जहाँ तक हो सके उन किताबों में दी हुई चीज़ों का ही उपयोग करें क्योंकि वे चीजें बनी बनाई, कारखाने के स्टाक में सदैव तैयार रहती हैं। यदि यांत्रिक चित्रकारों को इस प्रकार की हिदायत न की जावे तो वे सदा उपरोक्त प्रकार की मनमाने नापों की चीजों की तरह निरन्तर रचना करते जावेंगे और कारखाने में हर समय नये-नये नापों की साधारण चीजें बनानी पड़ेगी जिनके कारण कारखाने में व्यर्थ का काम बढ़ जावेगा और कारखाने की उत्पादित सामग्री बड़ी मंहगी पड़ेगी। प्रत्येक अच्छे नक़शे घर में कम से कम एक अनुभवी और योग्य यांत्रिक चित्रकार को इसी काम पर नियुक्त कर दिया जाता है जो कि बंधेज की चीजों की पुस्तकों, सारिणियों और नक़शों का सम्पादन और संशोधन करता रहता है।

नक़शों की सूची और संख्या—आधुनिक नक़शा घरों में नक़शों की संख्या और सूची उनके वर्गीकरण के अनुसार बनाई जाती है। यह वर्गीकरण मशीनों या अदद की जाति के अनुसार होता है और उसका एक संकेताक्षर निश्चित कर दिया जाता है। उदाहरण के लिये—

(१) खराद मशीनों के लिये—"ख"
रंदा मशीनों के लिये—"र"
बरमा मशीनों के लिये—"ब"
मिलिंग मशीनों लिये—"म" इत्यादि

(२) फिर प्रत्येक प्रकार की मशीन के वर्ग के भी उपवर्ग बना दिये जाते हैं जो कि उनके नाम के अनुसार होते हैं। यथा—

६"सेन्टर की खराद के लिये—ख ६
८"सेन्टर की खराद के लिये—ख ८
१०" सेन्टर की खराद के लिये—ख १० इत्यादि

इसी प्रकार रंदा मशीनों का भी उनकी दौड़ के अनुसार वर्गीकरण किया जाता है, यथा—

१०"दौड़ के रंदे के लिये—र १०
१४"दौड़ के रंदे के लिये—र १४
१६"दौड़ के रंदे के लिये—१ १६ इत्यादि

(३) – फिर प्रत्येक मशीन को भी कई भागों में विभक्त कर दिया जाता है, इस प्रकार के प्रत्येक विभाग को उस मशीन का "उपसंगम" (sub-assmbly) कहते हैं। उदाहरण के लिये—खराद मशीनों के निम्नलिखित उपसंगम हो सकते हैं और उन्हें उन्हीं के नाम के अनुसार भिन्न भिन्न संकेताक्षरों से चिन्हित कर दिया जाता है। यथा, एक १० "सेन्टर की खराद पर

फ्रेम—फ, पूरे नकशे पर ख १० फ
हेडस्टॉक—ह, पूरे नकशे पर ख १० ह
टेलस्टॉक—ट, पूरे नकशे पर ख १० ट
टूल स्लाइड—स, पूरे नकशे पर ख १० स
गीयर बकस—ग, पूरे नकशे पर ख १० ग
पंप—प, पूरे नकशे पर ख १० प इत्यादि

(४)—फिर प्रत्येक उपसंगम के पुर्जों को भी अलहदा-अलहदा चिन्हित किया जाता है लेकिन उनके लिये संकेताक्षर देने के बजाय संख्या दी जाती है, यथा १० "सेन्टर की खराद के टेलस्टॉक के लिये।

टेल स्टॉक की फ्रेम १ ख १० ट
टेल स्टॉक के फिक्सिंग बोल्ट २ ख १० ट
टेल स्टॉक के की बुश ३ ख १० ट
टेल स्टॉक का स्क्रू ४ ख १० ट
टेल स्टॉक का हेन्डव्हील ५ ख १० ट

टेल स्टॉक का लॉक बोल्ट ६ ख १० ट इत्यादि

उपरोक्त संकेत क्रम को वृक्ष के रूप में नीचे दिखाया जाता है।
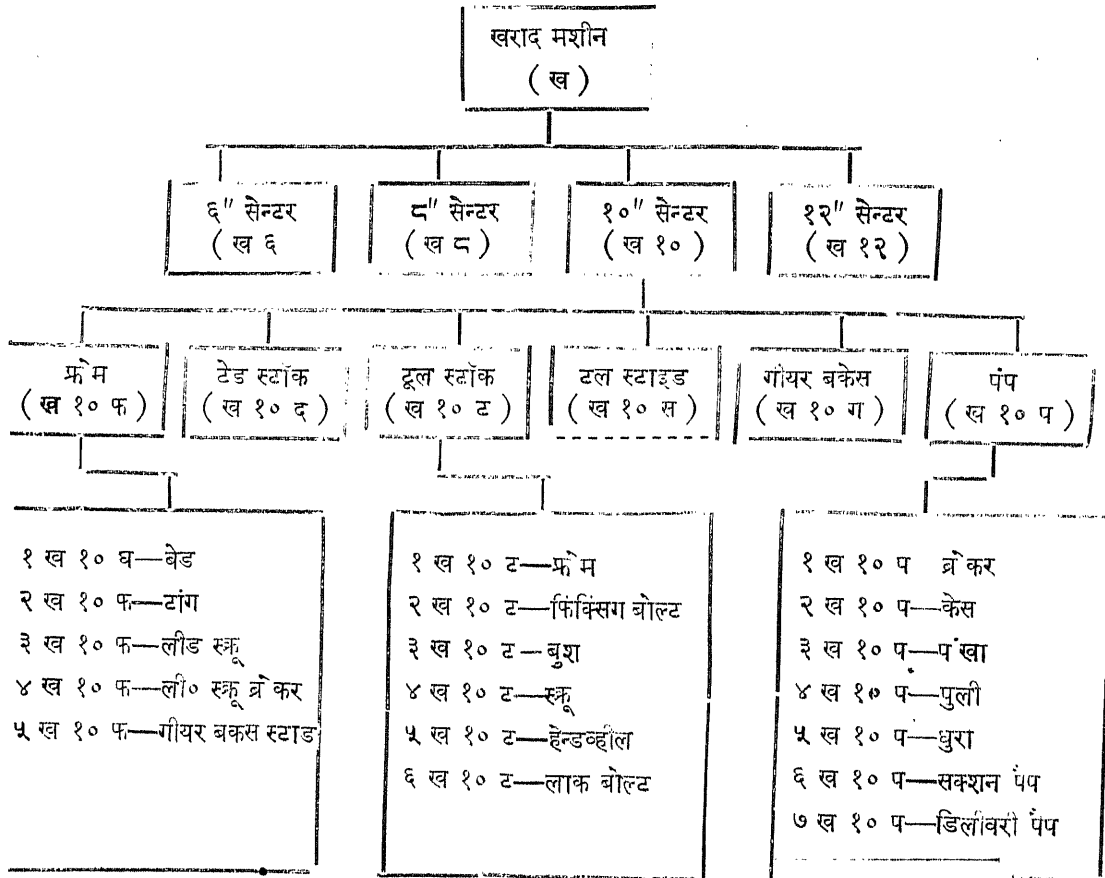
इस उदाहरण में तीन शाखायें ही पूरी कर दिखाई है, लेकिन शेष भी इसी प्रकार पूरी कर ली जाती हैं।

वृहत सूची—नकशों की वृहत सूची में भी उपरोक्त प्रकार के विभाग होने चाहिये और प्रत्येक नकशे के लिये एक एक कार्ड होना चाहिये। कार्डों के रूप में सूची रखने से खास सहूलियत यह रहती कि ज्यों-ज्यों नये-नये नक़शे बनते जाते हैं और पुराने तब्दील होते जाते हैं या रद्दी होते जाते हैं, उनके कार्ड भी, इच्छानुसार बदले, बनाये। रद्दी किये अथवा आवश्यकतानुसार आगे-पीछे जमाये अथवा एक फाइल से दूसरे फ़ाइल में रखे वा बदले जा सकते हैं। रजिस्टर में ऐसा नहीं हो सकता। कार्डों के सूचीपत्र की सहायता से नकशों को ढूँढ़ना भी बड़ा सरल होता है। यह तरीक़ा है तो बहुत खर्चीला, परन्तु इसका विशेष खर्चा काम की सहूलियत के सामने कुछ भी नहीं है। नमूने का एक कार्ड नीचे दिया जाता है, जिससे मालूम होगा कि उसमें कौन-कौन सी बातें लिखना आवश्यक है। यह कार्ड किस प्रकार के फाइल और बक्सों में रखने चाहिये उनका वर्णन करने की यहाँ आवश्यकता नहीं क्योंकि इस प्रकार के फाइलों का आधुनिक दफ्तरों में खूब प्रचार है।

पटना यंत्र निर्माणशाला

नकशा क्रम सं० ७ म १६ ग　　　　ता०
नाम चित्रकार　　　　हस्ताक्षर जांचने वाला
नाम पुर्ज़ा—टेबल-फीड, गीयर बकस की खोल
नाम मशीन खड़ी मिलिंग मशीन नं० ७
पुर्जे की क्रम सं० १४४८
उपसंगम नकशे की दराज़ सं० १७
उप संगम नकशे की दराज़ म सं० १६ ग
संगम नक़शे की दराज़ सं० ५
संगम नमशे की दराज़ सं म १६
इस नकशे की दराज सं० ५६
नकशे की वृहत् क्रम सं० ४४७३२

यंत्र, औजार, और फरमों की सूचीः—

आधुनिक कारखानों के नकशे [illegible] खाने के सब यंत्रों, औज़ारों और फरमों की एक वृहत सूची कार्ड के रूप में होती है जिसमें यांत्रिक चित्रकार लोग जान सकें कि उनके कारखाने में कौन-कौन से यंत्र, औज़ार और फरमें मौजूद हैं और उनसे क्या क्या काम लिया जा सकता है। फरमों की सूची से मालूम हो जाता है कि कौन-कौन से फरमे ऐसे के ऐसे ही काम में लाये जा सकते हैं और किनमें थोड़ा हेर-फेर कर कर उनसे काम निकाला जा सकता है। और उन्हीं के अनुसार जहां तक हो सकती है यंत्रों की रचना भी की जाती है। क्योंकि हर समय थोड़ी सी भिन्नता के लिये ही नया फरमा बनाना पैसे की बरबादी करना ही है।

यंत्रों की सूची—इसमें बताना चाहिये कि कौन सा यंत्र किस विभाग में लगा हुआ है? उसके द्वारा क्या-क्या काम हो सकता है? सबसे बड़ा और सबसे छोटा किस नाप का अदद इसमें बँध सकता है? उस यंत्र की कीमत क्या है? कब खरीदा गया था? कितनी जगह रोकता है? उसकी चाल क्या है? कितनी शक्ति खर्च होती है? उसका प्रतिघंटा चालू खर्च क्या है? और उसका बनाने वाला कौन है? इत्यादि।

औज़ारों की सूची—इस सूची में जिग और फिकश्चर भी शामिल किये जाते हैं। इस सूची के दो मुख्य भाग होने चाहिये। एक में तो स्वतंत्र रूप से हाथ से काम करने के औजार हों और दूसरे में विशेष यंत्रों के साथ काम करने के औजार हों। सूची में प्रत्येक औजार के लिये बताना चाहिये कि उससे क्या-क्या काम लिया जा सकता है, और उसे कब और किस काम के लिये बनाया गया था, उस पर क्या खर्च पड़ा था और यदि बना बनाया खरीदा तो कब और किससे? इत्यादि।

फ़रमों और ठप्पों की सूची—इस सूची में बताना चाहिये कि अमुक फ़रमा अथवा ठप्पा कौन

से पुर्जे के बनाने के लिये बनाया गया था। इस पुर्जे का नकशा नम्बर भी देना चाहिये। वह कौन से पदार्थ का बनाया गया है ? किस धातु पर काम कर सकता है ? यदि ठप्पा है तो कितनी मोटी प्लेट या चद्दर पर काम करेगा और वह ठंडा वा गरम पर ? वह कब बनाया गया था ? उसकी क्या कीमत पड़ी थी ? इत्यादि

उपयोगी सूचानायें—नकशे घर में, यांत्रिक चित्रकारों की सहायता के लिये उपयोगी सूचनायें, सुसम्पादित सारणियां और नकशे तस्वारों के रूप में दीवारों पर टंगी रहनी चाहिये। जिससे पुस्तकों के पन्ने उलटने के बजाय वे उसे दीवार पर ही एकदम जाकर देख लें। नकशों में काम आने वाले संकेत आदि भी चार्ट के रूप में जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, बनाकर दीवार पर टांक देना चाहिये।

पुस्तकालय और सूचीपत्र संग्रह—यंत्र और औजार विक्रेताओं के सूचीपत्रों, कारखानों के व्यापार से सम्बन्ध रखने वाले उद्योग-धंधों और तत्सम्बन्वी विज्ञानों की पुस्तकों एक बृहत संग्रह भी होना चाहिए। जिससे यंत्रिक चित्रकार लोग समय-समय पर सहायता ले सके। वहां के कार्यकर्त्ता कारखाने के व्यापार के सम्बन्ध में अपनी योग्यता बढ़ा सकें अपनी जानकारी को सामयिक रख सकें इसलिये वह सम्बन्धी कुछ सामयिक पत्र भी मँगवाने चाहिये और उनके पुराने अंकों की जिल्दे बांध कर रखनी चाहिये।

कारखाने को नक़शे देना—कारखाने को जिनका नकशों की जरूरत पड़ती है उनको केवल नीललिपियाँ ही दी जाती हैं और ट्रेसिंग पर बना हुआ नकशा नकशे घर के बाहिर किसी भी हालत में नहीं जाने दिया जाता क्योंकि कारखाने उसके मैले हो जाने और फट जाने का डर रहता है, और एक बेर उस पर दाग लग जाने के बाद फिर उसकी नीललिपियाँ साफ नहीं बन सकतीं।

कारखाने में भेजने के पहिले बड़े नाप के नकशे, जिनके बहुत लोगों के हाथ में जाने की सम्भावना रहती है। उनकी नील लिपयों को कपड़े पर बनाया अथवा चिपका दिया जाता है और छोटे नकशे पुट्ठे या तीन तह की लकड़ी पर चिपका दिये जाते हैं।

जो भी नक़शा कारखाने के किसी विभाग को भेजा जाता है। उसकी रसीद मँगवा ली जाती है और फटने-टूटने पर जब तक कि वह बेकार नक़शा वापस नहीं लौटा दिया जाता तब तक उसके बदले में दूसरा नक़शा नहीं दिया जाता।

जब कि किसी नक़शे में कोई तबदीली या संशोधन किया जाता है तब उसकी सारी नील लिपियाँ कारखाने से वापस मँगवा ली जाती हैं। और उन सब में संशोधन कर दिया जाता है।

कारखाने में भेजे गये सब नक़शों का सही लेखा रखना और उस पर कड़ा नियंत्रण रखना बहुत आवश्यक है क्योंकि मान लीजिये, यदि कोई नक़शा खो जावे अथवा संशोधन के समय पुराने नक़शे को बिना मँगवाये ही नया अर्थात् संशोधित नक़शा दे दिया जावे और कुछ दिनों बाद वह संशोधित नक़शा (तो कहीं दब कर आँख से ओझल हो जावे और इत्तिफ़ाक से वही पुराना, बिना संशोधन किया हुआ ग़लत नक़शा सामने आ जावे और उसके अनुसार यदि काम भी तैयार हो जावे तो हजारों रुपये के माल के रद्दी हो जाने की सम्भावना हो जाती है।

घर में ईंधन की बचत

ले०:—ए० डबल्यू० हैज़लैट

कोयला संसार की एक प्रधान पूँजी है। इसलिये नहीं कि वह प्रमुख ईंधन है बल्कि इससे रसायनिक, विभिन्न प्रकार के रंग, लैम्प-होल्डर और अन्य प्लासटिक वस्तुएँ तैयार करते हैं।

संसार की वर्त्तमान अवस्था को देखते हुए कोयले का बेकार फेंका जाना सहन नहीं किया जा सकता, इसलिये ग्रीनविच स्थित ब्रिटिश सरकारी ईंधन अनुसन्धान केन्द्र ने ईंधन के प्रयोग की उचित विधियाँ मालूम करने के लिये अध्ययन और प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया है। यहाँ के वैज्ञानिकों ने जहाज़ों और उद्योग में कोयले की खपत में कमी करने की विधियों का पता चला लिया है जिससे भविष्य में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इसकी बचत हो सकेगी। अब ये वैज्ञानिक घरेलू खपत की ओर ध्यान दे रहे हैं, और इस कार्य की सुविधा के लिये एक नवीन प्रयोगशाला भी बनकर तैयार हो चुकी है।

इस प्रयोगशाला में पहली बार इस बात की जाँच-पड़ताल की जायेगी, कि उस जीवनोपयोगी गरमी का अंत क्या है जो कि विभिन्न प्रकार के कमरा-गरमों द्वारा किसी साधारण कमरे में छोड़ी जाती है? इसी तरह मोटर अथवा हवाई जहाज़ के इधर-उधर उड़ते धुवें की परीक्षायें भी की जायेंगी।

सबसे पूर्व ईंधन की खपत गति और धुवें की मात्राओं को जाँचा जायेगा और इसके साथ-साथ गरमी बखेरने वाले साधनों को आँकना भी आवश्यक है। लेकिन व्यवहारिक अवस्थाओं की पूर्णरूप से परीक्षा किये बिना इन बातों का पता लगना कठिन है।

हर वस्तु को गरम करने के लिये ईंधन फूँकना पड़ता है—वह चाहे कोयला, बुझा हुआ पत्थर का कोयला, गैस अथवा धुवांरहित नवीन सामग्री हो—और ईंधन जलने के साथ-साथ वायु भी मिलती-खपती रहती है। कमरे में बाहर से आने वाली हवा वहाँ की पूर्व वायु की तुलना में ठण्ढी होती है। लेकिन जलते ईंधन का धुँवा चिमनी अथवा धुँवाकस के ज़रिये इधर-उधर फैलने के कारण एक गरम गैस बन जाती है जिसमें वह बाहरी फालतू हवा भी मिली होती है। अपूर्ण रूप से जली आग से उठने वाला धुवाँ ईंधन के व्यर्थ जाने का एक प्रमाण है जो कि चिमनी द्वारा बाहर निकल जाता है।

भारी बचत

कमरे के बाहर कैसी भी रोक हो, पर गरमी, दीवारों, फ़र्श और आच्छादन आदि के ज़रिये बाहर निकलती रहेगी। यदि गरमी की ऐसी मात्राओं को कमरे के अन्दर ही जाँचा जाये तो भी निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि चूल्हे-अंगीठी की कितनी गरमी का उचित प्रयोग हो सका है और अन्य प्रकार के साधनों—यन्त्रों से उत्पन्न होने वाली गरमी की तुलना में यह कैसा काम देती है? प्रत्यक्ष रूप से इस बात का पता तब ही चलता है जबकि एक घरवाला बिल का भुगतान करता है; और राष्ट्रीय दृष्टिकोण से इसका हिसाब लगाने पर पता चला है कि घरों में ५ प्रतिशत कम ईंधन प्रयुक्त किये जाने पर ब्रिटेन में २५ से ३० लाख टन कोयले की वार्षिक बचत हो सकती है।

नवीन प्रयोगशाला के एक कमरे में १२ फुट घेर और ९ फुट ऊँचाई रखने वाले चार गरमी-निर्माण-यन्त्रों की परीक्षायें की जाती हैं जिनके ऊपर-नीचे और चारों ओर परीक्षा-यन्त्र लगा दिये गये हैं। बड़े—लगातार—तापक्रम वाले हरएक

बन्द स्थान के मध्य में एक गरमी-निर्माण-साधक लगादिया जाता है जिससे परीक्षा स्थान से फैलने वाली गरमी की सही-सही मात्रा का पता चल जाता है। यह सब कमरे की दोनों दीवारों को ढक कर किया जाता है, फर्श और आच्छादन को तावे की चादरों से विभिन्न भागों में बाँट दिया जाता है, प्रत्येक विभाग दो फुट से एक फुट का होता है, और हर एक विभाग के अन्दर और बाहर वाले तापक्रम की तुलनात्मक जाँच होती रहती है। इस विधि द्वारा हर दीवार अथवा उसके प्रत्येक भाग से निकलने वाली गरमी की अलग अलग पड़ताल हो जाती है। अन्य यन्त्रों द्वारा अन्दर आने वाली वायु के तापक्रम की जाँच और धुवाँकस से बच कर निकल जाने वाली गैस का भी पता चलता रहता है।

प्रयोगशाला में वस्तु-ठण्डक एक मशीन लगा दी गई है जिससे वर्ष के हर मौसम में यह कार्य किया जा सकता है। परीक्षण कमरे से सम्बन्धित बाहरी तापक्रम की जाँच जाड़ों के अतिरिक्त गरमी में भी की जा सकती है। परीक्षण और आप-से-आप चलने वाले बड़े-बड़े और गहन यन्त्रों द्वारा कमरे में पैदा होने वाली गरमी के अंतिम परिणामों का पता चलता रहता है।

अनुसन्धान के कारण

हर प्रकार की गरमी के संबन्ध में ऐसी समस्या पैदा हो सकती है। ब्रिटेन में ईंधन संबन्धी खोज के दो कारण हैं। एक तो नवीन मकानों का निर्माण जिनमें सारी आवश्यक सुविधाओं और सुखों के अतिरिक्त गरमाई व्यवस्था भी शामिल है, ईंधन द्वारा ही पूरा किया जा सकता है, इसीलिये इसकी बचत का प्रश्न सामने है। दूसरा कारण यह कि निर्यात बढ़ाने के लिये भी कोयले की खपत में कमी करना आवश्यक हो गया है।

यह समस्या जैसे अधिकतर यूरोप पर प्रभाव डालती है वैसे ही ब्रिटेन पर भी। चालीस वर्षों से इस कठिनाई को अनुभव किया जा रहा है क्योंकि एक औसत गृहस्थी को सर्दी-पाले के मौसम में सुख और रक्षा के लिये अपने घर के मूल्य से अधिक धन ईंधन पर खर्च करना पड़ता है। इस खोज की महानता हर स्थान पर अनुभव की जायेगी।

शहद में मिलावट

ले०: श्री रमेश बेदी आयुर्वेदालङ्कार, हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

बाजार में नक़ली और मिलावटी शहद आया करता है। मिलावट के लिए आमतौर पर साधारण खाण्ड की चासनी बनाकर और उसमें विभिन्न पदार्थ मिलाकर उसे सुगन्धित तथा स्वादु बना दिया जाता है। यह चीज़ फिर असली शहद के साथ मिला दी जाती है और यह मिलावट इतनी अधिक की जाती है कि बाजार में शुद्ध शहद प्राप्त करना भी कठिन हो गया है। एक चतुर कृत्रिम शहद बनाने वाले का नुस्खा निम्न है :—

खाण्ड ५ सेर, पानी १ सेर और शुद्ध शहद आधा सेर। एक तार की चासनी बनाकर शुद्ध खाण्ड को शहद में मिला दिया जाता है। सुगन्धित करने केलिए कभी-कभी कुटा हुआ जायफल और इलायची को खाण्ड के पानी के घोल में डालकर पकाया जाता है और गाढ़ा होने पर छान लिया जाता है। देहरादून, हरिद्वार, मसूरी, लाहौर आदि में हमने इस प्रकार के शहद को बहुत बिकते देखा है। बेचने वाले आमतौर पर गुजरात के बागड़िये होते हैं। ये लोग पात्र में मक्खियों के छत्ते के टुकड़े और मरी हुई मक्खियाँ भी डाल लेते हैं जिससे ग्राहक को शहद की असलियत पर तुरन्त विश्वास बैठ जाता है। यह शहद रुपये का ढाई-

तीन सेर तक मिल जाता है। इन शहदों में फिटकरी भी मिलाई हुई पाई गई है जो वास्तव में स्वास्थ्य के लिए हानिकर है।

शहद में सामान्यतया निम्नलिखित मिलावटें की जाती हैं—द्राक्षोज, परिवर्तित शर्करा, गन्ने की खाण्ड, शीरा, घटिया दर्जे का माल्ट एक्स्ट्रेक्ट और निशास्ता।

असली शहद की राख का परिमाण बहुत तुच्छ सा होता है। यदि यह ०.३ प्रतिशतक से अधिक बने तो खट् कैलशियम सलफेट (Calcium sulphate)की परीक्षा करनी चाहिए। यदि यह काफी मात्रामें मिले तो यह निशास्ते से बने द्राभोज (Starch glucose) या परिवर्तित शर्करा की मिलावट का प्राय: निश्चित संकेत समझना चाहिए। हेड्नर (Hedner)[1] ने बताया है कि असली शहद की राख सदा क्षारीय होती है और कृत्रिम द्राक्षोज की राख उदासीन प्रतिक्रिया वाली होती है। नमूने के जलीय घोल में बेरियम क्लोराइड (Barium Chloride) मिलाने से भी सलफेटों की परख की जा सकती है। असली शहद में सलफेट नहीं होते। लेकिन मधु-तुषार (Honey dew) में H_2SO_4 के रूप में प्रति सौ ग्राम में तिहत्तर मिलिग्राम सलफेट होते हैं। मधु-तुषार (हनी ड्यू) बहुत से वृक्षों और पौदों के पत्तों का स्राव है। इसे भी जब मक्खियाँ शहद के साथ इकट्ठा कर लेती हैं तो परीक्षा करते हुए शहद में सलफेट मिल जाते हैं।

परिमाण में अधिक प्राप्त राख में क्लोराइड (Chlorides) काफी मात्रा में मिलें तो यह इशारा सम्भवतः शीरे की मिलावट की ओर समझना चाहिए।

निशास्ता शहद का अंग नहीं है। आयोडीन (iodine) की प्रतिक्रिया से यह झट पता लग जाता है। यदि यह पर्याप्त परिमाण में विद्यमान है तो मैदा या कोई दूसरा निशास्ता मिलाया गया समझना चाहिए।

परिवर्तित शर्करा से बने सीरप (गाढ़े शर्बत) जब बाजार में आने लगे तो इनकी असली शहद में मिलावट ढूंढ निकालना बहुत कठिन था। परिवर्तित शर्कर से बने शर्बत (इन्वर्ट शूगर सीरप) में दो शर्कराक्ष, फलोज और द्रभोज समान परिमाण में होती है और यही शर्कराएं शहद में भी विभिन्न अनुपातों में होती हैं। इसी कारण ऐसी मिलावट का पता लगाना अधिक कठिन है।

परिवर्तित शर्कराओं से बना सीरप शीघ्रता से दानेदार हो जाता है। मधुमक्खी पालकों का पहले यह विश्वास रहा है कि दाने बन जाना शहद की शुद्धता की पहिचान है और इसी कारण कई पालक तो अब भी अपने लेबिलों पर इस बात को लिखते हैं। निस्सन्देह यह सत्य नहीं है। परिवर्तित शर्कराओं के शर्बत आजकल ऐसे भी बनाए जा रहे हैं जिनमें दाने नहीं बनते और वे द्रव रहते हैं। सीरप में थोड़ी सी गोंद मिला दी जाती है जो स्फटिकों के निर्माण को रोकती है। यह मिलाया गया पदार्थ पता लगाना कठिन नहीं है। कोई भी पालक जो अपनी मक्खियों को सरदियों में इस प्रकार का शर्बत देता है उसे अपनी मधुमक्खीशाला में शीघ्र ही प्रवाहिका के कुछ बुरे उदाहरण देखने में आएंगे। पिछले युद्ध के समय जर्मनी में परिवर्तित शर्कराओं का शर्बत बहुत अधिक इस्तमाल हुआ था और यह कृत्रिम मधु के नाम से बेचा जाता था।

साधारण खाण्ड से बनाये हुए शहद की पहिचान के लिए शहद को स्फटिकीभवन के विन्दु तक ठण्डा करके स्फटिकों की परीक्षा करें। इसके अतिरिक्त इक्षु शर्कर और द्राक्षोज की रासायनिक परीक्षा करके इनकी प्रतिशतकता मालूम करें।

सरदियों में जब शहद जमने लगता है तो कई बार उस समय कनस्तर में सूखी खाण्ड मिला दी जाती है जो नीचे के स्फटिकों में मिल कर मधु-शर्करा जैसी ही हो जाती है। ऐसे कनस्तर के

१. एनेलिस्ट, १८८५, १०, २१७।

ऊपर की सतह से लिया गया शहद रासायनिक परीक्षा में विशुद्ध मालूम देगा परन्तु असलियत इससे भिन्न है। इसलिए पात्र में आधे जमे हुए शहद की जब परीक्षा करने लगें तो परीक्षा के लिए जमे हुए शहद को लेना अधिक विश्वसनीय परिणाम देता है।

निस्सारित मधु बोतलों में या डिब्बों में पड़ा-पड़ा जब दानेदार हो जाता है तो आप लोग इसे सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और प्रायः इस परिणाम पर कूद पड़ते हैं कि यह मिलावटी शहद है। वास्तव में ऐसी बात नहीं है। बोतल या डिब्बा खोलने के बाद प्रत्येक शुद्ध शहद कुछ सप्ताहों में दाने बना सकता है, खास कर सरदियों में या यदि शहद रेफ्रिजरेटर में अथवा किसी भी ठण्डे स्थान पर रखा गया हो। अंशतः या पूर्णतया दानेदार शहद ठीक वैसा ही शुद्ध होता है जैसा कि द्रव शहद अणुवीक्षिक (Microscopic) परीक्षा करने पर असली शहद में पराग कण सदा नज़र आयँगें। जिस कृत्रिम शहद में प्राकृतिक शहद बिलकुल नहीं है, अणुवीक्षिक परीक्षा करने पर उसमें फूलों के पराग नहीं मिलेंगे जब कि प्रत्येक प्राकृतिक शहद में पराग कण अवश्य होते हैं। शहद के अनेक नमूनों की अणुवीक्षिक परीक्षा की गई है और उसमें मिलने वाले पराग कणों का अध्ययन किया गया है। मक्खियाँ जिन फूलों से रस लाई थीं शहद में उन्हीं फूलों के पराग कण पाये गये हैं। किसी-किसी शहद में, अपवाद रूप में यह भी देखा गया है कि जिन फूलों से रस लाया गया है उनके पराग कण विद्यमान न थे। बहुत अच्छी तरह साफ़ किये गये शहद में पराग कण कम मिलते हैं। अणुवीक्षिक परीक्षा से यह मालूम किया जा सकता है कि शहद में किस फूल के पराग कण हैं। जिस फूल के पराग हों वही उस शहद का उद्भव स्थान समझना चाहिए। इस प्रकार से पता लगा लेने की योग्यता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि विभिन्न फूलों के पराग कणों की विशेष पहिचान में दक्षता प्राप्त कर ली जाय। बहुत से पराग कणों के अणुवीक्षिक फोटो (Microphotographs) ग्रीबेल (Griebel) के निबन्धों [1] में और संयुक्त राज्य के कृषि-विभाग के ब्यूरो आफ़ केमिस्ट्री, बुलेटिन संख्या ११०,९०८ में दिये गये हैं।

पराग कण की परीक्षा करने के लिए शहद को चार गुणा पानी में घोलें। कुछ देर पड़ा रहने दें जिससे पराग कण बैठ जायं। सेन्ट्रीफ्यूज में शहद को घुमाने से पराग कणों को बैठने में अधिक सहायता मिलती है। पराग कणों की बहुत भारी फलकें (Starch) तैयार कर लेनी चाहिए और विभिन्न प्रकार के पराग कणों को गिनना चाहिए तथा उन्हें पहिचानने की कोशिश भी करनी चाहिए। यदि किसी शहद के लेबिल पर किसी विदेश का पता लिखा हो और आपको सन्देह हो कि यह शहद विदेश से नहीं आया और हमारे ही देश की उपज है तो उसमें विद्यमान पराग कणों में अगर आप कुछ ऐसे पराग कण ढूंढ़ लेते हैं जो उस देश के पौदों में नहीं पाये जाते तो आपके सन्देह को इससे पुष्टि मिल जाती है। इसी तरह एक फ़र्म जब किसी विशेष फूल के स्रोत के नाम पर शहद बेच रही है, जैसे "कमल मधु, तो आप उस शहद की अणुवीक्षिक परीक्षा में कमल के पराग ढूंढ़िये। न मिलने पर उसकी ईमानदारी पर सन्देह किया जाना चाहिये।

असली शहद के अन्दर मोम, मक्खियों के या किसी दूसरे जीव के कुछ अंश हो सकते हैं। अणुवीक्षिक (माइक्रोस्कोप) के नीचे इनकी साव-धानी से परीक्षा करनी चाहिए।

परिवर्तित शर्करा, कृत्रिम द्राक्षोज (Starch glucose), इक्षु शर्करा, मधु-तुषार (हनी ड्यू) आदि की शहद में मिलावट जानने के तरीके बहुत पेचीदा हैं और साधारण पाठकों के लिए उनको समझना कठिन होगा इसलिए उन्हें हम यहाँ नहीं दे रहे। इस विषय के जिज्ञासु पाठक एलन के

१. Zeit. Unters- Lebens., 1930, 59, 63, 197, 441, and 1931, 61, 241.

कमर्शियल ऑर्गैनिक एनेलिसिस को देखें। कई बार मक्खियों को खाण्ड, कृत्रिम द्राक्षोज, निशास्ता आदि के घोल खाने को दिये जाते हैं। मक्खियाँ इन्हें छत्तों में इकट्ठा कर लेती हैं। बहुत अधिक सूक्ष्म विचार किया जाय तो यह भी एक प्रकार का कृत्रिम शहद ही होगा। इस प्रकार के सब कृत्रिम शहदों की पहचान एलन के ग्रन्थ में है। शहद के रसायनिक विश्लेषण करने का तरीका और उसका विस्तृत रासायनिक संघठन तथा असली और नकली शहद की प्रयोगशाला में परीक्षा करने आदि के सम्बन्ध में लण्डन की सरकारी प्रयोगशाला के केमिस्ट डाक्टर जोह्न राल्फ निकल्हस की पुस्तक बहुत सहायक है !

[लेखक की अप्रकाशित पुस्तक से]

मध्य प्रदेश की खनिज सम्पत्ति

ले० डा० अरुण दे, सागर विश्वविद्यालय

यह यान्त्रिक युग है—सभ्यता के प्रसार के साथ हमारी मांगें भी दिन पर दिन बढ़ती जा रही हैं और हमारी चाहों को सन्तुष्ट करना और कठिन होता जाता है। आज से १०० वर्ष पूर्व हम जिससे तृप्त होते थे आज हम उससे कहीं अधिक आकांक्षा रखते हैं। इस सभ्यता के क्षुधा-निवृत्ति के लिए हमें अनेकानेक नई वस्तुओं की खोज में लगना पड़ता है और वैज्ञानिक नित्य नूतन गवेषणा से संसार को आश्चार्यन्वित करता है। संसार की सभ्यता के इतिहास में धातुओं का स्थान विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि धातु-युग से मानव-सभ्यता को एक नूतन रूप प्राप्त हुआ, गत कई सौ वर्षों में अनेक नये धातुओं का आविष्कार हुआ जिससे हमें अनेक लाभ प्राप्त हुए, खेद की बात है कि यद्यपि सहस्र वर्ष पूर्व भारत में अनेक वैज्ञानिक थे और हमारे देश की ज्योति समस्त पृथ्वी को स्तम्भित करती थी, आज हमारे वैज्ञानिकों को अपनी पूर्व प्रतिष्ठा का एक शतांश भी प्राप्त नहीं।

हमारे देश में ही ऐसी वस्तुयें हैं जिनसे हमें अनेक लाभ हो सकते हैं। ऐसे अनेक खनिज पदार्थ हैं जिन पर अभी बहुत कार्य हो सकता है और वह केवल वैज्ञानिक दृष्टि से ही नहीं परन्तु वाणिज्य कल्पनाओं के लिए भी प्रशस्त क्षेत्र होगा। हमारे मध्य-प्रदेश में बहुत खनिज पदार्थ पाये जाते हैं जिन पर अभी यथेष्ट कार्य नहीं हुआ और जिन पर अनेक सम्भावनायें हैं। गत वर्ष सागर विश्वविद्यालय के कान्वोकेशन के दीक्षान्त भाषण देते समय मध्य प्रदेश के प्रधान मन्त्री माननीय पण्डित रविशंकर शुक्लजी ने कहा, "यह आवश्यक है कि वैज्ञानिक दृष्टि को हृदयंगम किया जाय और जीवन के प्रश्नों का हल पाने के लिए वैज्ञानिक उपायों का अवलंब हो..." इस प्रकार यदि हम इस प्रान्त में कई विज्ञान सम्बन्धी व्यवसायों को आरम्भ करें तो हमें बहुत सफलता प्राप्त हो सकती है। शुक्ल जी ने इस बात पर भी ध्यान दिया कि मध्य प्रदेश में वैज्ञानिक उद्योग के लिए अनेक प्रशस्त क्षेत्र हैं। इस लेख में हम इस प्रदेश के खनिज पदार्थों की आलोचना करेंगे और यह देखने की चेष्टा करेंगे कि यहाँ के खनिज पदार्थों से क्या-क्या व्यवसाय आरम्भ किये जा सकते हैं।

शक्ति-कोयला

किसी भी व्यवसाय में सर्वप्रथम आवश्यक वस्तु है शक्ति। अभी इस प्रदेश में वैद्युत् शक्ति का प्रसार अधिक नहीं हुआ, परन्तु यहाँ की नदियों से हम जल-प्रपात जनित शक्ति (hydro-electric power) ले सकते हैं। मध्य प्रान्तीय सरकार बेनगंगा नदी से जल-प्रपात जनित शक्ति लेने की योजना कर रही है और आशा है कि यह

कार्य सम्पूर्ण होने पर हमारे प्रदेश में वैद्युत् शक्ति बहुत कम मूल्य पर प्राप्त होगी।

विद्युत शक्ति के न होने पर हम शक्ति रूप में अग्नि का व्यवहार कर सकते हैं। अग्नि के लिए मध्य प्रदेश में बहुत लकड़ी और कोयला पाया जाता है। इस प्रदेश के जंगलों से बहुत लकड़ी मिल सकती है। मध्य प्रान्तीय कोयला भी बहुत उत्कृष्ट है जो शक्ति उत्पादक रूप में व्यवहार हो सकता है। छत्तीसगढ़ प्रान्त, तथा सतपुड़ा व वर्धा घाटियों में कोयला पाया जाता है। जियोलाजिकल सर्वे (Geological Survey) के डा० फाक्स (Dr. Fox) का मत है कि मध्य प्रदेश में १७०,००० लाख टन कोयला है। परन्तु इस संख्या को आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली से पुनर्विवेचन करना उचित है एवं अन्यान्य स्थानों में भी कोयले की सम्भावना की परीक्षा करनी चाहिए।

मूल्यवान खनिज: हीरा, सोना, चांदी तथा टंगस्टन—मध्य प्रदेश में १०० वर्ष पूर्व हीरे (diamond) पाये जाते थे, परन्तु आजकल इन खानों में कार्य स्थगति है। बहुमूल्य पत्थर की खोज बहुत ही उचित और लाभदायक होगी।

नदी के बालू से बालाघाट, बस्तर, भंडारा, बिलासपुर, जशपुर, माण्डला, रायपुर, सिवनी और उदयपुर अंचल में कहीं-कहीं स्वर्ण भी पाया जाताहै। धारवार की पहाड़ी तथा जबलपुर जिले के अन्तर्गत भागों में कहीं-कहीं थोड़ा सोना मिलता है परन्तु यह सोना निकालने के लिए अधिक लाभदायक न होगा।

जबलपुर तथा नागपुर जिले में कहीं कहीं थोड़ी चांदी भी सीसे तथा ताँबे के साथ पायी जाती है परन्तु इस पर अधिक कार्य नहीं हुआ।

नागपुर जिले में कई स्थानों पर क्वार्टज़ की शिराओं (quartz veins) में टंगस्टन (tungsten) मिला है। टंगस्टन वैद्युत् बल्ब में काम आता है। अतः इसकी खोज बहुत ही फलप्रद होगी।

विद्युत वाहक ताँबा और उपयोगी धातु लोहा:

वैद्युत् शक्ति संचालन ताँबे में बहुत अच्छी तरह होती है। अतः आधुनिक व्यवसायों में ताँबे का स्थान बहुत उच्च है। वैज्ञानिकों का मत है कि भारत में ताँबे की बहुत कमी है इस कारण इस मूल्यवान धातु के खोज में हमें लगना चाहिए। हमारे प्रदेश के जबलपुर, बालाघाट तथा द्रुग जिलों में ताँबे के खनिज पाये गये हैं, परन्तु वे अच्छे नहीं हैं।

मध्य प्रदेश के प्राय सब अंशों में लोहा पाया जाता है। अतः यदि यहाँ पर आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली से इस धातु की शुद्धि की जावे तो बहुत ही लाभदायक होगा। लोहा सब व्यवसायों में उपयोगी है अतएव इस धातु पर प्रत्येक देश के भविष्य की उन्नति निर्भर होती है हमारे देश में यदि लोहेको शुद्ध कर यन्त्रादि बनाये जावें तो हम दूसरे पर निर्भर न रहेंगे।

वायुयान निर्माणोपयोगी धातु-अलुमिनियम:

गत महायुद्ध में आकाश का युद्ध सर्वाधिक फलप्रद सिद्ध हुआ। वायुयान के निर्माण में अलुमिनियम व्यवहृत होता है। मध्य प्रान्त में अलुमिनियम के खनिज बहुत पाये जाते हैं। हाल में भारत सरकार के उद्योग-विभाग के अध्यक्ष सर ज्ञानचन्द्र घोष हमारे प्रान्त में खनिज बाक्साइट (bauite) की परीक्षा करने आये थे। उनका मत है कि मध्य प्रदेश का यह खनिज पृथ्वी के सर्वोत्कृष्ट खनिजों में से है। अभी प्रान्तीय सरकार कटनी में एक अलुमिनियम बनाने का कारखाना खोलने की योजना कर रही है और सस्ती वैद्युत् शक्ति मिलने पर यह व्यवसाय बहुत ही लाभदायक तथा देश के लिए उपकारी सिद्ध होगा।

मध्य प्रदेश में बालाघाट के अन्तर्गत बैहार में तथा कटनी, माण्डला, और सिवनी में बाक्साइट पाया जाता है। किसी बाक्साइट के साथ ११ प्रतिशत तक टाइटेनियन (titanium) भी मिलता

है। इससे टाइटेनियम निकालना यथेष्ट लाभदायक होगा।

एक अति प्रयोजनीय धातु मेंगनीज़

मेंगनीज़ (manganese) मध्यप्रदेश की सबसे प्रयोजनीय धातु है। इसका खनिज पाइरोलूसाइट (pyrolusite) यथेष्ट अच्छे रूप में पाया जाता है और किसी स्थान पर तो उसमें प्राय. ६६ प्रतिशत तक मेंगनीज़ डाइ-आक्साइड मिलता है। इस प्रदेश में बालाघाट, नागपुर, भण्डारा, छिन्दवाड़ा जिलों में यह पाया जाता है। दूसरे जिलों में थोड़ा बहुत पाइरोलुसाइट मिलता है, लोहे के साथ मेंगनीज़ फ़ौलाद (manganese steel) बनाने के काम आता है, अतः इस व्यवसाय की उन्नति उपयोगी सिद्ध होगी।

नमक तथा सोडा

कई स्थानों में, यथा पूर्णा नदी की घाटी में और बरार में नमक का पानी (brine) पाया जाता है। चान्दा जिले में कहीं नमक अन्यान्य खनिजों के साथ मिलता है। बरार प्रान्त में लोनार झील में क्षार का पानी मिलता है -कहीं सोडा बाइकार्बोनेट भी पाया जाता है।

खनिज जल

मध्य प्रदेश के नाना स्थानों पर ऐसे जलाशय हैं जिनके पानी में अनेक खनिज घुलित रहते हैं। किसी-किसी झील के पानी का तापक्रम साधारण तापक्रमों से ऊँचा रहता है। छिन्दवाड़ा में एक ऐसी झील में सलफर डाइ—आक्साइड घुला है और उसका तापक्रम १३४° फा० है। ऐसे जलाशय होशंगाबाद, सिरगुजा, योतमाल में भी हैं जिनमें विभिन्न खनिज घुलित अवस्था में हैं, वे अधिकतर गन्धक के खनिज हैं।

अन्यान्य खनिज

मध्य प्रदेश में अन्यान्य अनेक खनिज पदार्थ मिलते हैं। जैसे असबेष्टस (asbestos) तथा बराइटीज़ (barytes) कई स्थानों पर मिलता है। लाल ओकर (red ochre) भी पाया जाता है जो पेंट बनाने के काम आता है। अनेक स्थानों पर मकान बनाने के उपयुक्त पत्थर तथा मिट्टी (building materials) संगमर्मर, बर्तन बनाने वाली मिट्टी (ceramic clays), फायर क्ले, फ्लोरस्पार, फूलर्स अर्थ, टाल्क, सोपस्टोन आदि भी पाया जाता है।

इससे प्रतीत होता है कि मध्य प्रदेश खनिज सम्पत्ति में बहुत धनी है। देश की स्वाधीनता के साथ देश के व्यवसायों की भी उन्नति अनिवार्य है और यदि वैज्ञानिक उपायों से इन खनिजों पर कार्य किया जाये तो हमारे देश के समृद्धिशाली प्रदेशों में यह प्रदेश उच्च स्थान प्राप्त करेगा।

फ़ासफ़ोरस व दियासलाइयाँ

समस्त रासायनिक तत्वों में फ़ासफोरस एक बहुत ही आलौकिक गुण वाला तथा उपयोगी तत्व है। इसका मुख्य गुण यह है कि यह हवा की उपस्थिति में जलने लगता है और इस क्रिया में रोशनी निकलती है और इस प्रकार रात्रि में फ़ासफ़रोस का टुकड़ा जुगनूँ की तरह चमकदार दिखाई पड़ता है। इसका मुख्य उपयोग हमारे नित्य प्रयोग में आने वाली दियासलाइयों में होता है।

फ़ासफ़ोरस की गवेषणा भी बड़े मनोरञ्जक ढंग से हुई। जर्मन वैज्ञानिक ब्रान्ड ने १६६६ में वैज्ञानिक संसार को एक मोम ऐसा चमकदार पदार्थ दिखलाया। स्वाभाविक ही था कि लोगों का कौतूहल इससे जागृत हुआ और वह इस अद्भुत पदार्थ को बनाने की विधि पूँछने लगे। परन्तु ब्रान्ड अपनी गवेषणा को छिपी रख कर उससे रुपया पैदा करना चाहता था। दुर्भाग्यवश उसको अपने इस लक्ष्य में सफलता न मिल सकी। बाद में मालूम हुआ कि ब्रान्ड महाशय ने इस तत्व को मूत्र को कोयले के साथ गरम करके प्राप्त किया था। इसके लगभग सौ वर्ष बाद सन् १७७४ में लेवाज़िए ने यह सिद्ध किया कि वह एक तत्व है।

यह प्रकृति में स्वतंत्र रूप से नहीं पाया जाता क्योंकि यह बहुत ही क्रियाशील (active) होता है। हड्डियों में यह कैलसियम फ़ासफ़ेट के रूप में पाया जाता है और इसी रूप में यह चट्टानों में भी होता है।

फ़ासफ़ेट से फ़ासफ़ोरस बनाने के लिये पहले हड्डियों को हवा में गरम किया जाता है जिससे उड़नशील व जलनशील पदार्थ निकल जाते हैं और हड्डी चूरे के रूप में हो जाती है। इस चूरे को बालू व पिसे कोयले के साथ मिला कर बिजली द्वारा गरम होने वाली एक भट्ठी में रक्खा जाता है और कोयले के विद्युत्‌द्वारों के बीच में विद्युत् धारा (Current) प्रवाहित करके इसे ग किया जाता है। बालू का सिलिका कैलसियमरम फासफेट के साथ मिलकर कैलशियमसिलीकेट व फासफोरस पेन्टाआक्साइड बनाता है और यह फासफोरस पेन्टाआक्साइड कोयले द्वारा अवकृत (reduce) होकर फासफोरस में परिवर्त्तित हो जाती है।

कैलसियम फासफेट + सिलिका = कैलसियम सिलीकेट + फासफोरस पेन्टाआक्साइड

फासफोरस पेन्टाआक्साइड + कार्बन = फासफोरस + कार्बन मानोक्साइड

फासफोरस के वाष्प ताँबे के बर्तनों में रक्खे हुये पानी में ले जाये जाते हैं जिससे यह एक ठोस सफेद पीले पदार्थ के रूप में मिल जाता है। यह हवा में जल जाता है। अतः इसे पानी ही के अन्दर रखते हैं।

फासफोरस के बहुरूप—फासफोरस के कई बहुरूप हैं परन्तु मुख्यतः यह पीले या सफेद तथा लाल रूपों में पाया जाता है जिनको श्वेत या पीला फासफोरस तथा लाल फासफोरस कहते हैं। इनका अंतर इस प्रकार है :—

	पीला फासफोरस	लाल फारफोरस
१ अवस्था	यह रवेदार होता है	यह भी रवेदार होता है पर रवे छोटे होते हैं
२ रंग	पीला	लाल भूरा
३ पारदर्शिता	यह अल्प पारदर्शक है	यह अपारदर्शक है
४ गंध	लहसन की सी गंध	इसमें गंध नहीं होती
५ घनत्व	१.८३	२.२०
६ जहरीलापन	यह जहर है	यह जहरीला नहीं है
७ घुलनशीलता	पानी में नहीं घुलता पर कार्बन डाई सलफाइड में घुल जाता है	यह न पानी में घुसता है न कार्बन डाई सलफाइड में
८ हवा का प्रभाव	यह हवा में चमकता है और जल जाता है	यह नहीं चमकता
९ जलने का तापक्रम	यह ३०° से० पर जलता है	यह २४०° से० तक गरम करने से जलता है
१० कास्टिक सोडा का प्रभाव	यह घुलकर फासफीन बनाता है	इस पर कोई प्रक्रिया नहीं होती

फासफोरस के बहुरूपों का आपस में परिवर्तन—

(१) पीले से लाल—पीले फासफोरस को निष्क्रिय वायुमंडल में आयोडीन के एक टुकड़े के साथ २४०° से० तक गरम करने से यह लाल फासफोरस में परिणत हो जाता है।

(२) लाल से पीला—लाल फासफोरस को निष्क्रिय वायुमंडल में ५५०° से० तक गरम करके इसके बने वाष्प को एकदम ठंडा कर दिया जाता है जिससे यह पीले रूप में बदल जाता है।

फासफोरस के उपयोग—इसका सबसे बड़ा उपयोग दियासलाई बनाने में है। कभी-कभी इसे आटा व ग्रीज़ में मिलाकर चूहा मारने के काम में लाया जाता है। इसे आग लगाने वाले बम में भी प्रयोग करते हैं। फासफेट के रूप में इसे दवाई बनाने तथा खाद बनाने के काम में लाते हैं।

दियासलाइयाँ

यह तो तुम अच्छी तरह जानते होगे कि दो चीज़ों की रगड़ से आग पैदा होती है। पत्थर की सड़क पर जब घोड़े तेज़ी से दौड़ते हैं तो उनके पैर के नीचे लगे लोहे व पत्थर की रगड़ से चिन-गारियाँ निकलती दिखलाई देती हैं। इसी प्रकार चाकू की धार तेज करने वाला जब चाकू के फल को तेज घूमते हुए चक्र पर रगड़ता है तो बहुत जोर का चिनगारियाँ निकलती हैं। जंगलों में अपने आप लगने वाली आगों का हाल तो तुमने सुना ही होगा जिनको दावानल कहते हैं यह भी लकड़ियों के आपस में रगड़ने से पैदा होती है।

प्राचीन समय में आग इसी सिद्धान्त पर बनाई जाती थी। लकड़ी या पत्थर के दो टुकड़ों के बीच में रुई रख कर उनको रगड़ा जाता था जिससे रगड़ से निकली हुई चिनगारी रुई को जला देती थी।

दियासलाई भी इसी सिद्धान्त पर बनाई गई परन्तु इनमें शीघ्र जलने वाले पदार्थ जैसे गंधक व फासफोरस का उपयोग किया गया। इस प्रकार की दियासलाई सबसे पहले १८२७ में एक फ्रान्सीसी महोदय ने बनायी जिनका नाम सेरियो था। इनमें लकड़ी की एक तीली पर ऐन्टीमोनी सलफाइड, पोटैसियम क्लोरेट व गोंद का मिश्रण लगा रहता था और इसे सैन्ड पेपर पर रगड़ कर जलाया जाता था।

लूसीफर मैच या पुरानी दियासलाइयाँ—

एक दूसरे प्रकार की दियासलाइयाँ सन् १८३२ से प्रचलित हुईं। इनकी तीलियों को पहले पिघले गंधक में डुबो कर फिर इन पर पीले फासफोरस, पोटैशियम क्लोरेट व गोंद से बना एक लेप चिपका कर इनको सुखा लिया जाता है। इनको कहीं भी रगड़ कर जलाया जा सकता था। इस रगड़ क गर्मी से फासफोरस जल उठता था। इनमें कई बुराइयाँ थीं। एक तो यह मामूली रगड़ से जल उठती थीं जिससे इनका रखना खतरे से खाली न था, दूसरे पीला फासफोरस जहरीला होने के कारण इनके कारखानों में काम करने वाले लोगों को एक प्रकार की बीमारी हो जाती थी। इन कारणों से १९१२ के बाद पीले फासफोरस का प्रयोग इस काम के लिये गैरकानूनी ठहराया गया है। अब तो इसके स्थान पर लाल फासफोरस का प्रयोग होता है।

सेफ्टी मैच या निरापद दियासलाइयाँ—

इनके उपयोग में कोई खतरा नहीं है। इन दियास लाइयों की तीलियों में नीचे लिखे पदार्थों का मिश्रण लगा रहता है:—

(१) ऐन्टीमोनी सलफाइड
(२) पोटैशियम क्लोरेट या लाल फासफोरस
(३) पिसा हुआ काँच
(४) गोंद

दियासलाइयों के डिब्बियों के बगल पर जो मसाला लगा रहता है उसमें

(१) लाल फासफोरस
(२) पिसा काँच
(३) सरेस

का मिश्रण होता है। इन दियासलाइयों की विशेषता यह है कि इनकी तीलियाँ डिब्बियों पर लगे मसाले ही पर रगड़ने से जलती हैं, किसी भी वस्तु पर रगड़ने से नहीं। अतः इनमें कोई खतरा नहीं है।

रासायनिक विधि से आग बनाना—

(१) शकर व पोटैशियम क्लोरेट के मिश्रण में एक-दो बूँद तीव्र सलफ्यूरिक अम्ल डालने से आग निकलने लगती है। चूरन बेचने वालों को यह करते तुमने अवश्य देखा होगा।

(२) कागज, रुई या कपड़े पर कुछ पोटैशियम परमैंगनेट रख कर उसके ऊपर तीव्र सलफ्यूरिक अम्ल की कुछ बूँदें डालने से आग जल जाती है।

विज्ञान-परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१—**विज्ञान प्रवेशिका, भाग १**—विज्ञान की प्रारम्भिक बातें सीखने का सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ;

२—**चुम्बक**—हाईस्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० सजि०; ॥=)

३—**मनोरञ्जक रसायन**—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १॥),

४—**सूर्य-सिद्धान्त**—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें, मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखक को हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—**वैज्ञानिक परिमाण**—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०; ॥),

६—**समीकरण मीमांसा**—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १॥) द्वितीय भाग ॥=),

७—**निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)**—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी० ; ॥),

८—**बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित**—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १),

९—**गुरुदेवके साथ यात्रा**—डाक्टर जे० सी० बोसीकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।-),

१०—**केदार-बद्री यात्रा**—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

११—**वर्षा और वनस्पति**—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।),

१२—**मनुष्य का आहार**—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१३—**सुवर्णकारी**—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पंचौली; ।),

१४—**रसायन इतिहास**—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।॥),

१५—**विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक**—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१६—**फल-संरक्षण**—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ, २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०; २),

१७—**व्यङ्ग-चित्रण**—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १॥)

१८—**मिट्टीके बरतन**—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; १॥),

१९—**वायुमंडल**—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र, सजिल्द; १॥),

२०—**लकड़ी पर पॉलिश**—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख-

प्रसाद और श्रीरामरत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥),

२१—**उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर**—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, आकार बड़ा विज्ञानके बराबर २६० पृष्ठ, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २॥),

२२—**कलम-पेबंद**—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥),

२३—**जिल्दसाज़ी**—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द १॥।),

२४—**त्रिफला**—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२५—**तैरना**—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२६—**अंजीर**—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक श्री गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२७—**सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग**—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६),

२८—**वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवाएँ**—ले० डा० सन्त-प्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२९—**खाद्य और स्वास्थ्य**—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—**विज्ञान हस्तामलक**—ले० स्व० रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगका यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी है। सुन्दर, सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रोंसे सुसज्जित है, आजतककी अद्भुत बातोंका मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयोंमें भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञानकी एक समूची लैब्रेरी है, एक ही ग्रंथमें विज्ञानका एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२—**सौर-परिवार**—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२) इस पुस्तक पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक मिला है।

३—**भारतीय वैज्ञानिक**—१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियाँ—ले० श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।।) अजिल्द ३)

४—**वैक्युम-ब्रेक**—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फिटरों इंजन-ड्राइवरों, फ़ोर-मैनों और कैरेज एग्जामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक—भगवतकृष्ण दीक्षित, दीक्षित प्रेस, इलाहाबाद। प्रकाशक—विज्ञान-परिषद्, बेली रोड इलाहाबाद,

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र

भाग ६७ | सम्वत् २००५, अगस्त-सितम्बर १९४८ | संख्या ५-६

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

बेली रोड, इलाहाबाद ।

वार्षिक मूल्य ३)] [एक संख्या का मूल्य ।)

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्की इस उद्देश्यसे स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकमदे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

विषय सूची

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६७] सम्वत् २००५, अगस्त-सितम्बर १९४८ [संख्या ५, ६

भारतीय स्वतंत्रता का सांस्कृतिक महत्व*

सर चन्द्रशेखर व्यङ्कट रमन

मैं सदा एक यात्री रहा हूँ। मैंने संसार के विभिन्न भागों की यात्रा की है परन्तु मैं सदैव शीघ्र से शीघ्र यात्रा समाप्त करके भारत वापस चला आता हूँ। जब कभी भी भारत से बाहर होता हूँ मेरा हृदय अपने प्रिय देश की ओर ही लगा रहता है। एक बार ऐसा हुआ कि बिना चेष्टा के ही मुझे यूरोप के एक देश में विश्व-विद्यालय की प्रोफ़ेसरी के लिये आमंत्रित किया गया, जिसे मैंने अपनी मूर्खता से स्वीकार कर लिया। परन्तु ईश्वर की असीम कृपा से किसी न किसी भांति मुझे उससे छुटकारा मिल गया और मुझे अपना देश छोड़ना नहीं पड़ा। फिर भी मैं उन लोगों की हार्दिक प्रशंसा करता हूँ जिन्होंने स्वदेश को ऐसे समय में छोड़ा जबकि समय उनके अनुकूल न था। अपने देश के लिये उन्होंने विपत्तियों का सामना किया स्वतंत्रता तथा वीरता के साथ उन्होंने कष्ट सहन किये और विदेशों में अपना घर बनाया और मैं जानता हूँ कि उनके दिल पर क्या बीतती होगी जबकि वह सदैव अपने मातृभूमि के बारे में सोचते हुये उससे अलग रह रहे हैं। निसंदेह ही वह दिन अपार आनन्द का था जब कि भारत को स्वाधीनता प्राप्त हुई जिसके लिये विदेश में रहने वाले भारतीयों ने अपनी समस्त शक्ति से काम किया था।

आज मैं भारत के बालकों को देखता हूँ और अनुमान करता हूँ कि भारत की नवीन सन्तानों का उदय हो रहा है। इन नवीन सन्तानों की क्या भावनाएं होंगी और वे क्या करेंगी इसके बारे हमको बहुत कम कहना होगा पर यह निसंदेह ही निश्चित है कि भारत का भविष्य इन्हीं नव-सन्तानों पर निर्भर करता है। नवयुवक तथा युवतियां और बच्चे जो युवावस्था को प्राप्त हो रहे हैं उन्हें स्वतंत्र भारत में बढ़ने तथा पनपने का सौभाग्य प्राप्त है। वह इसका अर्थ समझ सकते हैं और यह उन पर ही निर्भर है कि वह भारत का

* स्वतंत्रता दिवस पर अमरीका में दिया गया प्रीतिभोज भाषण ।

उत्थान करें, उसे कठिनाइयों तथा सङ्कटों से उबारकर आगे ले जावें और उसके गौरव पूर्ण भविष्य का निर्माण करें।

मुझे सदैव से अपने देश से प्रेम रहा है यद्यपि अपनी देशभक्ति का मैंने खुल्लम खुल्ला कभी परिचय नहीं दिया यद्यपि मैं ६० वर्ष की आयु का हूँ पर मैंने राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं ली। मैं कभी भी कांग्रेस का सदस्य नहीं रहा और न कभी किसी प्रकार की छोटी अथवा बड़ी सभा में शामिल हुआ। लोग कह सकते हैं कि मैं अपने शरीर को कष्ट नहीं देना चाहता था या जेल जाने से डरता था। उन दिनों जेलयात्रा बड़ी ही सरल थी। मुझे एक कहानी याद आ रही है। २४ वर्ष व्यतीत हुए जब मैं पासाडेना (Pasadena) में था। मैं वहां कैलीफोर्निया इंस्टीयूट के टेकनालाजी विभाग की ओर से भ्रमणकर्त्ता प्रोफेसर की हैसियत से भाषण दे रहा था। वहां डाक्टर मिलीकन ने मुझे एक सभा में भोज के पश्चात् भाषण देने के लिये निमंत्रित किया। आप सोच सकते हैं १९२४ ई० का वर्ष एक भारतीय के लिये परिहासवत् न था। वे चाहते थे कि मैं भारतीय राजनीति पर बोलूँ। वे प्रयत्नशील थे कि मैं भारत की राजनैतिक स्थिति पर प्रकाश डालूँ पर मैं हिमालय, विंध्याचल, गङ्गा, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी, कृष्णा आदि पर भाषण देता रहा। मैं राजनैतिक बिन्दु की ओर नहीं आया यद्यपि वह मुझे उसकी ओर खींचते ही रहे और भारतीय राजनीति के बारे में मेरी राय जानने की कोशिश करते ही रहे। उस समय मैंने अपने दो प्रभावशाली वाक्यों में भारतीय परिस्थिति का सार किया था। मैंने कहा—सज्जनो! मैं आप लोगों से राजनीति या राजनैतिक परिस्थिति पर बातें नहीं करना चाहता। मैं केवल आपके सम्मुख एक भारतीय राजनीतिज्ञ की परिभाषा यूँ करना चाहता हूँ कि वह या तो जेल में रह चुका है या उसमें जाने के योग्य अपने को बना रहा है। मैं इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता क्योंकि मैं अपने सफल वैज्ञानिक जीवन का सहसा अन्त नहीं देखना चाहता। ये शब्द १९२४ ई० में कहे गये थे। आप लोग देख रहे हैं कि वे कितने भविष्य-भाषी थे। इन्हीं दो वाक्यों में वे समस्त भारत की राजनैतिक स्थिति का भास पा सकते थे।

यद्यपि मैं कभी भी एक घोषित देशभक्त नहीं था फिर भी अपने मार्ग में मैं विश्वास करता था और उसमें देश भक्त था। मैं सदैव से विश्वास करता रहा हूँ कि राजनैतिक जीवन और राजनैतिक संघर्ष में ही समस्त भारतीय युवकों तथा युवतियों के लिये स्थान नहीं है। भारतीय संस्कृति, भाषा, विज्ञान तथा अन्य रचनात्मक कार्यों में भी भारत को आगे बढ़ना है। इसलिए इनमें पर्दे से पीछे काम करने वाले व्यक्ति लगें और संसार को दिखा दें कि यदि भारत को मौका दिया जाय तो वह बड़े-बड़े काम कर सकता है। मुझे विश्वास था कि जब भारत का, भारत के उत्थान का इतिहास लिखा जावेगा तो ऐसे पर्दे के पीछे सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं का भी उल्लेख अवश्य होगा।

सर आशुतोष का बुलावा

यही भावना मेरे मस्तिष्क में विराजमान थी जब कि मैं भारतीय अर्थविभाग का एक अफ़सर था और एक दिन सन्ध्या को सर आशुतोष मुकरजी ने मुझे बुलाया। उन्होंने मुझे एकान्त में बुला कर प्रभावशाली शब्दों में कहा कि मैं विज्ञान के मार्ग में लगूं। उस समय भारतीयों का और खास कर अफ़सरी लाइन के लोगों का अफ़सरी छोड़कर विज्ञान की सेवा में पदार्पण करना सरल कार्य न था। पर मैंने इसे बिना हिचकिचाहट स्वीकार कर लिया। मुझे इस चुनाव के लिये किञ्चितमात्र भी पछतावा नहीं है। यह केवल विज्ञानरूपी बुलावा ही न था वरन् अप्रत्यक्ष रूप में मेरे भीतर यह भावना भी थी कि भारत की प्राचीन संस्कृति का अन्त हो रहा है। उसे पुनर्जीवन देना है।

हमें आज यह कदापि न भूलना चाहिये कि भारत की अपनी प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता है।

हमने अपने प्रचीन वैज्ञानिकों तथा विशारदों के निजी कार्यों का वर्णन नहीं किया है पर उनका कार्य, विज्ञान और संस्कृति हमारे पास है। उस समय भी मैंने यही महसूस किया था और आज भी महसूस कर रहा हूं कि हम भारतीयों को सिद्ध करके दिखा देना है कि हम अपने पूर्वजों की कपूत सन्तानें नहीं हैं। हमें यह दिखा देना है कि समस्त संसार के साथ ही साथ हमारी भी अपनी एक अनोखी संस्कृति है। हमें सिद्ध कर देना है कि न केवल भौतिक जगत में हम उच्चतम स्तर पर हैं वरन् हम प्रत्येक सांस्कृतिक क्षेत्र, विज्ञान, भाषा और बौद्धिक क्षेत्र में भी उच्चतम स्तर पर हैं। हमें अपने पूर्वजों द्वारा प्राप्त उच्चतम भौतिक तथा बौद्धिक स्तर पर पहुँचना है। यही मेरा ध्येय उस समय था। मेरा विचार है कि जिस स्वतन्त्रता को भारत ने प्राप्त किया है वह अपने कार्यों से सिद्ध करता रहेगा कि वह उसके योग्य है।

अपने जीवन के पिछले वर्षों में यही मेरा ध्येय रहा है। मैंने कभी भी निजी व्यक्तिगत नाम की चाह नहीं की है यद्यपि ऐसे अवसर वैज्ञानिकों के जीवन में आते हैं कि वे अपने व्यक्तिगत कार्यों के कारण ख्याति प्राप्त कर लेते हैं पर मैंने ऐसा कभी भी नहीं किया है। मेरा कभी भी ऐसा विचार नहीं रहा है। कोई भी अकेला व्यक्ति चाहे वह जितना योग्य और कुशल हो कभी भी बहुत अधिक कार्य नहीं कर सकता। यह कार्य इसी भांति हो सकता है कि नवयुवकों को अपने समीप बुलाकर उन्हें अपने कार्यों की दीक्षा दी जाय, भार सौंपा जाय और कार्य में लगाया जाय और अपने विचारों से उन्हें परिपूर्ण किया जाय केवल इसी भाँति भारत वैज्ञानिक उच्च स्तर पर पहुँच सकता है। यही धारणा मेरे सामने थी और है कि विज्ञान का विस्तार केवल भौतिक जगत में ही सीमित न रहना चाहिए। हमें भौतिक पारितोषिक प्राप्त हो सकते हैं। वैज्ञानिक मार्ग में जो खोजें होती हैं, जो सफलतायें मिलती हैं उनसे मशीनों के जगत में पूँजी उत्पादन में सफलता प्राप्त होती है पर मेरा विश्वास है कि केवल भौतिक जगत में सफलता प्राप्त करने वाला वैज्ञानिक स्वयं अपने प्रति सच्चा नहीं होता है। वह सच्चा वैज्ञानिक तभी हो सकता है जब वह उच्चतम मार्ग की ओर बढ़े और सत्य की खोज करे। उसे सत्य की खोज करनी चाहिये और उच्चतम बौद्धिक उन्नति को ही अपना पारितोषिक समझना चाहिए। यह मेरे प्रमुख ध्येयों में से एक ध्येय है।

वैज्ञानिक का कर्तव्य

एक तीसरा ध्येय जो मेरे मस्तिष्क में सदैव रहा है पर मैं उसे अंगीकार करने में अब तक असफल रहा हूँ और जिसकी ओर मैं भविष्य में अपनी शक्ति लगाना चाहता हूँ वह है यह कि वैज्ञानिक का अपने देश के प्रति भी कर्तव्य होता है। वैज्ञानिक का कर्तव्य है कि वह अपनी योग्यता का वितरण निशुल्क रूप से स्वतन्त्रता पूर्वक करे। यह वितरण केवल उन कुशल व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये जो इसे समझने में दक्ष हैं वरन् इस ज्ञान का वितरण इस रूप में होना चाहिये कि समस्त साधारण जनता उसे भली भाँति समझ सके और उससे लाभ उठा सके तथा सत्य की खोज की ओर अग्रसर हो सके। प्रत्येक साधारण मनुष्य को आवश्यक वैज्ञानिक बातों का ज्ञान होना जरूरी है। यह एक बड़ा महत्वपूर्ण विचार है। भारत में इस ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। आज विज्ञान केवल कुछ ही गिने चुने व्यक्तियों तक ही सीमित है। मैं विज्ञान को साधारण जनता की पूँजी बनाना चाहता हूँ। यह पूँजी समस्त जनता की होनी चाहिये। यह कार्य अति शीघ्र होना चाहिये। मैं चाहता हूँ कि पूर्व इसके भारत की गणना संसार के उच्चतम देशों में हो यह कार्य समाप्त हो जाय। हम केवल चन्द आदमियों, मुट्ठी भर वैज्ञानिकों के द्वारा इस स्तर पर नहीं पहुँच सकते हैं। हमें अपने साथ अपने देश को उठाना है। और इस कार्य को हम तभी कर सकते हैं, जैसा कि मैं देखता

हूँ, जबकि हम अपने ज्ञान का विभाजन और विवरण करें। आज का संसार वैज्ञानिक युग का है इसलिए वैज्ञानिक ज्ञान का साधारण जनता में स्वतंत्रतापूर्वक वितरण करके ही हम अपने देश का स्तर उच्चतम बना सकते हैं।

[विश्ववाणी के सौजन्य से]

जरा चांद तक

ले० : श्री० राजकुमार जैन

उस दिन मेरे मित्र ने कहा कि बड़े आश्चर्य की बात है हमारे कुछ साहसी युवक आज चाँद को जा रहे हैं। मैं भौचक्का सा रह गया! अखबारों में पढ़ा तो था कि अमेरिका में वैज्ञानिक इसी बात पर विचार कर रहे हैं और उन्हें पूर्ण आशा है कि शीघ्र ही पूर्ण सफल भी हो जायेंगे परन्तु यह आशा कदापि नहीं थी कि इतनी जल्दी वह सफल हो सकते हैं। इस कारण मैंने पूछा कि भाई तुम्हें कैसे मालूम हुआ।

"जरा जनाब हिन्दुस्तान टाइम्स उठा कर देखिये।" मन ही मन विज्ञान की अपार लीला पर आश्चर्य करता हुआ घर पहुँचा और पत्र को पढ़ा, मालूम हुआ कि उसमें एक गल्प के तौर पर मनगढ़न्त चाँद की सैर के विषय में लेख है, और मेरे मित्र में भी औरों की तरह बेपरवाही है। इस कारण उसने इस गल्प को एक सत्य घटना समझा है, लेकिन हमको फिर भी इस बात पर जरा विचार करना चाहिये। आज हम यद्यपि इस अवस्था में हों कि केवल नीति ही बतला सके पर वह समय दूर नहीं कि हम वायु-मंडल के बाहर की सैर करें।

वास्तव में विषय जरा अधिक रोचक है—उस सुन्दर देश के ऊपर चलना-फिरना जिसको हम इतनी दूर से देख कर ही आनन्द और उत्साह से भर जाते हैं बड़ी सुखद कल्पना है और परमाणु शक्ति (Atomic Evergy) के हमारे वश में आ जाने के कारण यह अधिक कठिन कार्य नहीं है! इसीलिये इससे पहले कि हम अपनी यात्रा की संभावना पर विचार करें, जरा अपने वायुयान के इतिहास को जल्दी-जल्दी पन्ने उलट जायें क्योंकि दोनों चीजें आपस में सम्बन्धित हैं।

उन वायु नौकाओं पर तो विचार करना व्यर्थ है जो कि वास्तव में हवा से हल्के थे और इसी कारण से उड़ते थे! इसलिए हमें ऐसे वायुयानों पर गौर करना है जो मशीन की शक्ति से चलाये जाते हैं, जिन्होंने कि अपनी वर्तमान अवस्था तक आने में असामान्य वैज्ञानिक कौशल और कारीगरी खर्च कराई है। इस विषय में सबसे बड़ा प्रयत्न सर जार्ज केली ने किया। उसने स्थिर परों का समर्थन किया और डाई हीड्रल कोण (Di hedral Angle) का सर्व प्रथम ज्ञान कराया। १८६३-६६ तक लीलियेंथल ने जो इस विषय में अनुसंधान किये हैं वह अमूल्य हैं। वह एक प्रकार के वायु-यातायात का संस्थापक कहा जा सकता है!

आधुनिक शताब्दी का एक अच्छा वायुयान भी एक विचित्र वस्तु है। इसका रूप एक चिड़िया जैसा होता है। ढाँचा एलमुनियम का जो कि हल्की धातु है उसका बना होता है। ढाँचे के मुख पर बिजली के पंखों के समान एक propeller होता है जो कि एक शक्तिशाली मोटर के द्वारा चलाया जाता है। चूंकि हमारी मोटरकारों में प्राय: प्रयोग होने वाले इंजन (Internal Combustion Engine) की गति काफी होती है। इसलिए वह बिना उपकरण (Gear) इत्यादि के एकदम ऐंजिन के धुरे से जोड़ दिया जाता है। वायुयान के मुख से जरा ही अंदर की ओर दोनों तरफ पंख होते हैं जो एलीरोन के द्वारा ऊपर-नीचे किये जा सकते हैं (देखो चित्र नं० १) इन्हीं

एलीरोन की सहायता विमान-चालक (Pilot) यान के पार्श्व भाग का संतुलन स्थिर रखता है, इसके पिछले भाग में एलीवेटर और टेल प्लेन्स (Elevator and Tail Planes) होते हैं जो कि चालक की नाविक की तरह पतवार का भी काम देते हैं और साथ ही साथ यान की स्थिरता का संरक्षण करते हैं। ढाँचे के नीचे की ओर तीन पहिये होते हैं दो आगे की ओर एक पिछले भाग में। इन्हीं की सहायता से यान पृथ्वी पर चलता है और इस प्रकार इतनी गति प्राप्त कर लेता है कि वह उसको ऊपर उठाने में भी सहायता करती है। इन प्रधान अंगों के अलावा और भी बहुत से कल-पुर्जे होते हैं। वर्तमान वायुयानों में बेतार की सुविधाएं और शत्रु से रक्षा करने के लिये बन्दूकें और अब बाद वाली जाति का प्रयोग बढ़ता जा रहा है ऐसे जहाजों में अधिकतर हम दस मील की ऊँचाई तक उड़ान लगा सकते हैं।

प्रश्न सहज ही एक जिज्ञासु के मस्तिष्क में प्रश्न आता है कि भला फिर हम किस प्रकार इस वायुमंडल से बाहर पहुँच सकते हैं? क्या यह असम्भव है? हाँ, इस प्रकार के यान हमारी काल्पनिक उड़ान में कोई भाग नहीं ले सकते क्योंकि इनके अंदर एक बहुत बड़ी कमी है वह यह है कि इनकी ऊपर उठने की निपुणता (effeciency) जैसे-जैसे हम ऊपर पहुँचते हैं कम होती जाती है। इसका कारण पूर्ण रूप से प्रत्यक्ष है। यह यान हवा की शक्ति से ही ऊपर उठते हैं। मशीन केवल इनकी गति बढ़ाकर वायु की आपेक्षित गति बढ़ाती
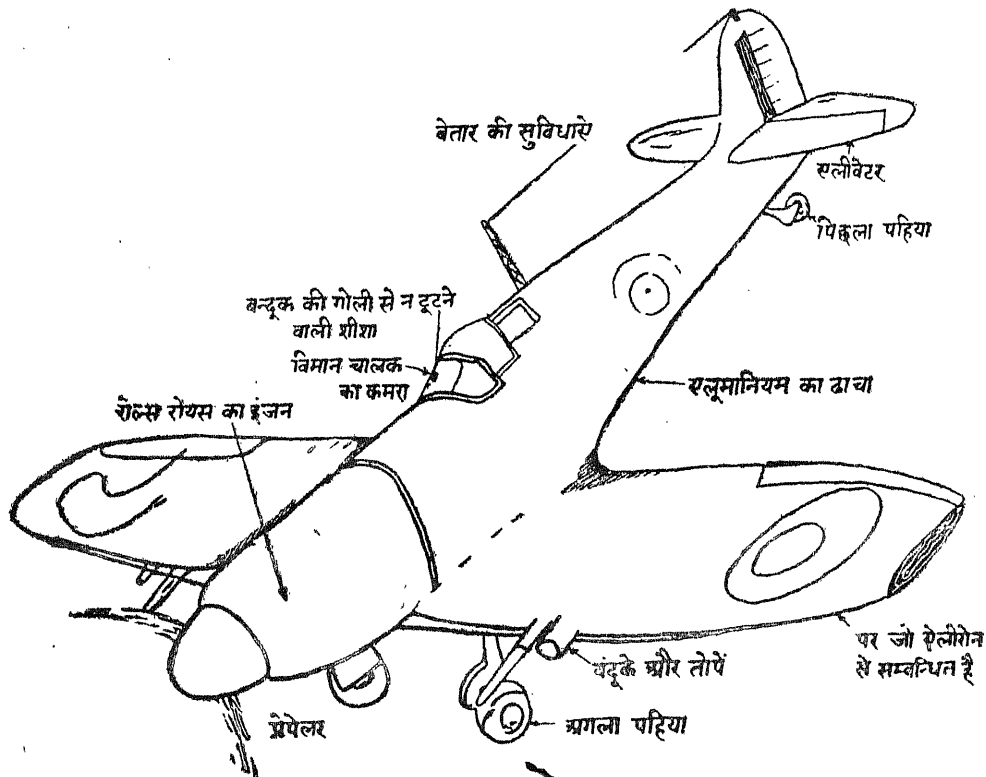
चित्र सं० १

छोटी-छोटी तोपें भी होती हैं। कुछ यानों में पर दोहरे होते हैं और कुछ में इकहरे, पर धीरे-धीरे है, जो इन्हें अधिक ऊपर उठाती हैं क्योंकि ऊपर की ओर वायु का घनत्व बराबर गिरता जाता है।

इस कारण इस यान की उठने की शक्ति भी कम होती जाती है। वैज्ञानिकों की इस समस्या के सुलझाने का कोई उपाय न सूझ पड़ता था। अंत में अपनी अद्भुत बूझ और असीम कौशल से वर्षों के परिश्रम के बाद उन्होंने गुत्थी सुलझा ही ली। इस नये चमत्कार का नाम है, "जेट प्रोपलशन एंजिन" (Jet Propulsion Engine)। पाठकों को यह नाम कदाचित नवीन जान पड़े क्योंकि यह पिछले १०—१५ वर्षों की ईजाद है। आश्चर्य की बात है कि इसमें प्रोपेलर नाम की कोई चीज नहीं है। साथ ही साथ यह एक बहुत ही साधारण वस्तु जान पड़ती है। पर तो भी जो कठिनाइयाँ इसको कार्यरूप में परिणत करने में पड़ी है वह असंख्य और अति विकट थीं।

जहाँ तक ढाँचे का प्रश्न है वह लगभग ज्यों का त्यों है। हाँ, इसमें चालक मशीन बड़ी ही कौशल की है आप ने प्रायः देखा होगा कि यदि आप बन्दूक चलायें तो एक झटका अपने आप की पीछे को लगता है किसी चीज के दबाने पर आप ही जोर पड़ता है। वैज्ञानिक जगत के सम्राट "सर आइज़क न्यूटन" ने इसी बात को अपने सिद्धान्त में नियमबद्ध किया है। प्रत्येक क्रिया के साथ साथ उतनी ही मात्रा में विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया होती है। इसी सिद्धान्त पर यह आविष्कार की गई है। यान के मुख पर एक छेद होता है और अंदर एक हवा खींचने का मोटर होता है जिससे
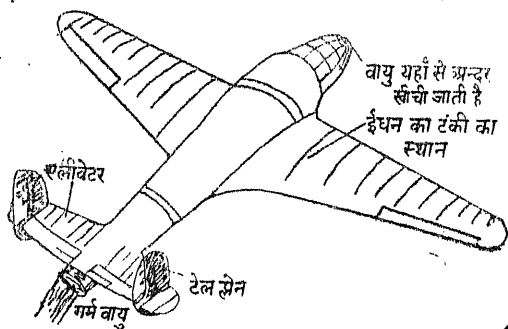
चित्र सं० २

हवा खींची जाती है। यह वायु किसी भी मशीन द्वारा दबाव से संकुचित कर दी जाती है। उदाहरणतः Axial Flow turbined air Compresser इस प्रकार दबाई हुई वायु का दबाव गर्मी और ज्वलन् (Combustion) से और भी अधिक बढ़ा दिया जाता है और इसीलिए जब यह गर्म और दबी हुई वायुयान के अंतिम छोर पर स्वतंत्र की जाती है तो बहुत वेग और शक्ति के साथ यह बाहर निकलती है। और न्यूटन के सिद्धान्त के अनुसार यान को आगे और ऊपर की ओर धकेलती है। इसमें कार्य करने की शक्ति ऊँचाई के साथ-साथ बढ़ती है जो कि इसका एक प्रधान गुण है। दूसरी बात जो बिल्कुल प्रत्यक्ष है वह यह है कि यदि स्वतंत्र होने वाली वायु की रफ्तार बढ़ाई जा सके, यान उतनी ही तेजी से ऊपर उठ सकता है। इस यान का प्रत्येक भाग का चित्रण चित्र नं० २ में करिये। अब हम कहीं बाहर की सैर की भी बात सोच सकते हैं।

आइये! फिर देर ही क्या है जरा चाँद तक ही घूम आवें इसके पहले हम अपने नये यान का निरीक्षण कर लें!

हमारी नई जेट प्लेन में एंजिन को चलाने के लिए पेट्रोल और वायु की आवश्यकता थी। वायु तो यह मंडल से ही ले लेता था और पेट्रोल भर कर ले जाना पड़ता था। पर हमारा राकेट (Rocket) साधारण नहीं है। इसे अपनी यात्रा वायु-मंडल के बाहर भी करनी है। इस कारण इसमें अपनी वायु भी साथ है। यह अपनी कार्य क्षमता में कभी-कभी नहीं होने देगा चाहे बाहर वायु बिल्कुल न हो और चाहे वायु की चादर कितनी ही पतली हो। यह शून्य में भी चलता रहेगा और इसमें पर दोहरे नहीं हैं क्यों जैसा ऊपर बताया गया है इकहरे परवाला (Mono Plane) अधिक निपुण है। यह एलूमीनियम के एक धातु संकर की पतली पर मजबूत चादरों का बना हुआ है ताकि बाह्य शून्य के दबाव को सहन कर सकें! ५ या ६ टन के लगभग इसमें ईंधन भरा हुआ है क्योंकि हमारी

यात्रा बहुत लंबी और संशययुक्त है। एक स्थान पर शून्य में काम आने के लिये वायु भरी हुई है और दूसरे भाग में मार्ग पर श्वास के लिये आकसीजन (Oxygen) है। एक भाग में हमारी छोटी सी प्रयोगशाला है। जो शीशे की दीवारों की है। इसमें हमारे प्रयोग आदि के सामान तरतीब से रखे हुये हैं। संतुलन के लिये प्रधान जेट से समकोण बनाती हुई चार जेट हैं। जो पार्श्व तथा ऊपर नीचे की तुल्यता स्थिर करती है।

हमारा यान बिल्कुल तैयार है आइये हम भी इस उड़ान का आनंद लेवें। हमारा राकेट (Rocket) एक दूसरे यान पर सवार कर दिया गया। यह यान हमको उचित गति देकर वापस आ जायगा क्योंकि गणित द्वारा यह ज्ञान हुआ है कि हमारे यान की गति ४ मील प्रति सेकिंड है अथवा १४००० मील प्रति घंटे के लगभग होनी चाहिये जिससे प्रत्यक्ष है कि (Exhaust) गति दो मील प्रति सेकिंड से अधिक होनी चाहिये इतनी तीव्र गति हमारे लिये वर्तमान उपसाधनों से असंभव प्रतीत होती है। पर परमाणु शक्ति ने सफलता के द्वार खोल दिये हैं और वह समय शीघ्र ही आने वाला है जब ऐसी अद्भुत कल्पना वास्तविक रूप से सफल हो सकेगी (देखिये चित्र ३)।

हमारा यान अब पृथ्वी से उठा रहा है। हमारा हृदय आने वाले दृश्यों की कल्पना करके हिलोरें ले रहा है। हमारे नीचे की भीड़ धीरे-धीरे विलीन होती जा रही है। हमारी पृथ्वी का कोलाहल समाप्त हो रहा है और केवल कभी-कभी हल्की फुसफुसाहट कर्णगोचर हो रही है। सड़कों की धूल, मंडल की शीतलता तथा आनंददायक वायु में परिवर्तित हो गई है। हमारा ग्राम पीछे छूटता जा रहा है। शीघ्र ही हम सात मील की ऊँचाई पर पहुँच गये हैं। बादल आदि बाधायें नीचे छूट चुकी हैं। आकाश निर्मल और नीला है। सूर्य का आगमन पर उसके प्रकाश की चकाचौंध सैकड़ों गुनी मालूम पड़ती है। जैसे-जैसे सूर्य आकाश में चढ़ता जाता है गर्मी की तीव्रता बढ़ती जाती है यहाँ तक कि शरीर झुलसने लगता है और अब तो गर्मी असह्य हो गई खैर ज्यों-त्यों करके रात आई और एकदम अत्यधिक ठंड महसूस हुई, यहाँ तक कि प्रातः जब आँख मलते हुये उठे तो यान चारों ओर कई इंच मोटी बर्फ से ढका हुआ था।

पाठक कदाचित सोचें कि अब तो जितना हम आगे बढ़ते हैं उतनी ही गर्मी और सर्दी की अतिशयता मिलेगी तो उनकी यह धारणा निर्मूल नहीं है। परन्तु इन उँचाइयों के गर्भ में अनेक अन्य आश्चर्य भरे पड़े हैं। इन उँचाइयों को हमारे सांसारिक वैज्ञानिकों ने अपने दूसरे सुवाहकों से पता लगाया था जैसे ध्वनि तरंग और रेडियो की लहरें। अब हम धीरे-धीरे ३० मील की ऊँचाई पर आये हैं। यहाँ पर हमको ओजोन (Ozone) की एक परत मिली।

चित्र सं० ३

यह परत वायु-मंडल के दबाव पर केवल ⅛" मोटी है। इसकी वास्तविक मोटाई हमारे वैज्ञानिकों ने नाप कर ली है। आप लोग इसे शायद कोई

महत्व न दें पर पतली परत हमारे संसारी जीव के लिये एक बहुत बड़ी ईश्वरीय देन है। अगर यह कुछ कम पतली होती तो इसमें से गुजर कर इतनी अधिक अल्ट्रा वायोलेट रश्मि आतीं कि हम सब रिकेट (Rickets) नामक रोग के शिकार हो जाते पर यदि अधिक मोटी होती तो यह किरणें इतनी कम आती कि स्वास्थ्य को हानि पहुँचाती। यह तुच्छ परत इन किरणों के लिये एक विशाल छनने और एक शासक का कार्य करती है क्योंकि ओजोन (Ozone) गैस में इन किरणों के सोखने की शक्ति है।

धीरे-धीरे हम ऊपर काफी ऊँचाई पर आगये हैं। अब हमारा वाहक यान वापस चला गया है और हम निर्जन पथ पर बराबर बढ़ते चले जा रहे हैं गर्मी तथा चिन्ता से पसीना छूट रहा है। हम बराबर उसे अपने माथे पर से झटक रहे हैं, अरे यह क्या हुआ यह तो बड़े आश्चर्य की बात है! पसीने की बूंदें वायु में तैरने लगीं, हममें से एक साहब खड़े-खड़े ही सो रहे हैं। उनको झकझोरा तो बोले भाई जरा सो लेने दो बड़ी जोर से नींद आ रही हैं, चलने को कदम बढ़ाते है तो फिसल पड़ते हैं, एक सिक्का ऊपर को उछाला, लो वह तो नीचे आने का नाम ही नहीं लेता वहीं चिपक गया। अजीब दुनिया है यह, यहाँ आकर्षण शक्ति शून्य है और यहाँ की अवस्था आप लोग कभी भी नहीं समझ सकते जब तक आप हमारे साथ न हो।

इस काल्पनिक और मनोरंजक जगत को छोड़ कर हमारे यान ने एक पलटा ले लिया है। अब हम धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं। वह यान जब बिना किसी चालक शक्ति के वेगपूर्वक बढ़ रहा है क्योंकि चाँद की आकर्षण शक्ति की सीमा में यह आ गया है हमारा चालक अब अत्यंत सावधान है कारण यह है कि इसको सूर्य के विशाल आकर्षण क्षेत्र से अपनी रक्षा करनी है, दूसरे यह कि उल्काओं से टकरा कर चूरा-चूरा हो जाने का डर है। तीसरे उसको गति को वश में रखना है कि यह इतनी तीव्र न हो जाय कि चाँद के तल से टकरा कर छिन्न-भिन्न न हो जाय।

हमारे साथी वैज्ञानिक भी अपने कार्य में दत्तचित्त हैं। वह अपने मंत्रों पर झुके हुए बराबर निरीक्षण कर रहे हैं और अन्तरिक्ष रश्मि Cosmic Rays की अधिकता पर दांतों तले उँगली दबा रहे हैं। पृथ्वी के वैज्ञानिक इन साधनों से वंचित है। संदिग्ध ही, ई और "एफ" विद्युत परमाणु की परतें मिल रही हैं। यह वही परतें हैं जो कि रेडियो की ध्वनि को प्रतिबिंबित करती हैं और इन्हीं के कारण रेडियो का आविष्कार सफलीभूत हुआ हैवीसाइड और केनली Heaviside and Kenneley के अथक परिश्रम की आज प्रतीक्षा रही है हो और इसके बाद हमारा यान शून्य में आ गया।

इस प्रान्त के विषय में हम बहुत ही कम जानते हैं। इसका प्रधान अंग हाइड्रोजन गैस है जो क्रीड़ा बच्चों के गुब्बारे में भरने के काम आती हैं। एक नई दुनिया के हम पहले दर्शक होंगे। प्रकृति की इस नयी और अनोखी प्रयोगशाला के प्रथम निरीक्षक। विज्ञानवेत्ताओं के लिये यह अमूल्य अवसर है, प्रत्येक क्षण प्राण से अधिक प्यारा है। यही पर संसार के सबसे अद्भुत रासायनिक रूपान्तर (transmutation) हो रहे हैं। एक धातु दूसरी धातु में बदलती है और साथ ही साथ सबसे निर्दोष द्रव्य का संपूर्ण क्षय हो रहा है जिनसे असीम शक्ति जो कि एटोमिक बम्ब से कहीं अधिक विनाशकारी है उत्पन्न होती है। यहाँ पर हमारे दक्ष वैज्ञानिक मुँह बाये इस प्राकृतिक निरीक्षण से अपनी अयोग्यता और क्षुद्रता का परिचय प्राप्त कर रहे हैं और सोच रहे हैं कि किस प्रकार मानव समाज के लिये यह बिखरी पड़ी शक्ति संग्रह की जाये।

और, अब दूर क्षितिज पर एक गोला घूमता नक्षत्र दृष्टि पड़ता है, यह हमारा निर्दिष्ट चन्द्र है, अब यह ऐसा दिखाई दे रहा है जैसा कि कैली-

फोरनिया प्रयोगशाला से हमारी बड़ी दूरबीन से दिखाई पड़ता है। वह नदियाँ हैं वह पर्वत हैं वह चट्टानें और घाटियाँ हैं। वह समुद्र और वह ज्वालामुखी के मुख परन्तु कहीं जल नहीं दिखाई पड़ता। सब चीजें साफ-साफ दिखाई दे रही हैं, जीवन के सब लक्षण हैं, पर अफसोस जल का कहीं पता नहीं। न वायु है, न वायु-मंडल और न कोई जीव। विशाल ज्वालामुखी के से मुख दिखाई पड़ते रहे हैं जिनकी विशालता धीरे-धीरे बढ़ती जाती है, जैसे-जैसे हमारा यान निकट पहुँचता जाता है, कई तो हमारी पृथ्वी के सबसे बड़े एरीजोना वाले मुख से बड़े हैं। पास आने पर इनका वास्तविक रूप नजर पड़ता है, एक लम्बी पर्वतों की चक्राकार श्रंखला है जो कि २०,००० फुट के लगभग ऊँची है और इसके मध्य हमवार मैदान जो कहीं २००० मील चौड़ा है जिसके बीचोंबीच प्राय: एक चोटी है। यह चीजें पृथ्वी पर पहेली सी लगती हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि यह मृत ज्वालामुखी है, पर उनके चारों और लावा का चिन्ह तक न होने से हम इसमें संदेह करते हैं, कुछ का मत है कि यह चिन्ह उन स्थानों का स्मरण कराते हैं जहाँ उल्का चन्द्र से टकराये थे, पर पृथ्वी से चन्द्र पर पाई जाने वाली इनकी अधकता इस विश्वास में अड़चन डालती है। अन्य विशेषज्ञों की धारणा है कि यह उस समय बने जब चंद्रमा द्रव रूप से ठंडा हो रहा था और पिघले हुए धन पदार्थ ने इसमें बड़े-बड़े बुलबुले बना दिये जो कि कुछ समय पश्चात फूट गये। यह बात सत्य हो सकती है क्योंकि चाँद की आकर्षण शक्ति पृथ्वी से बहुत कम है। वास्तविक कारण की जाँच पड़ताल हमारे विशेषज्ञ सतह पर जाकर करेंगे। हो सकता है कि इन्हीं में से कोई कारण हो या हमारी पहेली का उत्तर कुछ और ही हो।

इनसे भी बड़े काले-काले धब्बे जिनको वैज्ञानिक मेरिया (Maria) नाम से संबोधित करता है, जल रहित समुद्र हैं और इनमें सैकड़ों मील लम्बी दरारें हैं। चाँद बहुत ही निकट आता जा रहा है और वैसे ही वैसे इसका प्रकाश कम होता जा रहा है। हृदय को उत्सुकता ने धर दबाया है। बिना जल और वायु की यह दुनियाँ कैसी अद्‌भुत होगी। जल और वायु ही तो प्रधान पदार्थ हैं और इनकी अनुपस्थिति हम को विश्व का कई सहस्र वर्ष का पुराना इतिहास पता लगाने में सहायता देगी।

अब हमारा विमान चाँद से सिर्फ दस मील की दूरी पर चक्कर लगा रहा है। यकायक हमारे दो नवयुवक पैराशूट द्वारा वायुयान से कूद पड़े और धीरे-धीरे सतह पर भी पहुँच गये वहाँ उन्होंने एक विचित्र दृश्य देखा। जीवन वहाँ कहीं भी सफल न हो सकता था वायु और जल के अतिरिक्त तापक्रम भी असह्य था। दिन में इतनी गर्मी थी कि जल जो वह साथ ले गये थे भाप बन कर उड़ जाता था और रात्रि में उनकी श्वास से ठोस कार्बन डाइ-आक्साइड के कण निकलते थे। वायु और धूल के न होने से रोशनी की किरणों का छितराना न हो सकता था इस कारण उषा की अरुणाई ही न थी। चांद में की मिट्टी लगभग पृथ्वी जैसी थी। उन्होंने कई जल रहित समुद्रों को घूमा। Mare Serenitatis ४३३ मील लम्बा था और Max Ibraium ७५० मील। इसका क्षेत्रफल ३४०००० वर्ग मील था। यहाँ पर यद्यपि कोई पर्वत एवरेस्ट की चोटी से ऊँचा नहीं है पर पृथ्वी की विशालता के अनुसार वहाँ के पर्वत भी काफी ऊँचे थे। Doerfel श्रेणी २६६४१ फीट ऊँची थी, न्यूटन श्रेणी २३८५३ फीट और ऐसी ही ऊँची चोटियाँ थीं।

पर चारों ओर की निस्तब्धता बहुत ही भद्दी लगती थी। एक विचित्र देश है यह वास्तव में, एक सुंदर देशका उदासीन दृश्य, नक्षत्र की उस अवस्था का चित्र जिसे वायु और जल छोड़ कर चले गये हैं, एक घूमती हुई दुनियां, एक संसार का ढाँचामात्र--इसके अपनी दूरबीन गाड़े और दूर

हमारी पृथ्वी दिखाई पड़ी और हमको वहाँ की याद आगई। हमने जल्दी-जल्दी चाँद का वह पिछला भाग जो आज तक कोई न देख सका था देखा और फिर वापस जहाज पर सवार हुए।

हमारी यात्रा अपने सबसे निकट सम्बन्धी तक पूरी हूई और इसने एक नये वाद सार्वलौकिक वाद को जन्म दे दिया।

यहाँ पर मैं यह प्रत्यक्ष कर देना उचित समझता हूँ कि यह सुन्दर यात्रा कितनी मनोरंजक और सहल मालूम पड़े पर इसके वास्तविक रूप में होने के लिये अभी कई अजेय अड़चनें पूरी करनी है। इस विषय में वैज्ञानिकों के सन्मुख जो विशेष समस्यायें हैं उनमें सबसे बिकट ठोस ईंधन का आविष्कार है क्योंकि गैस या द्रव हालत में वह जगह बहुत घेरता है। ज्योतिष विद्या के धुरंधरों को दूसरी गुत्थी सुलझानी है वह यह कि वाह्य मंडल में विचरण करने वाले असंख्य उल्काओं का पता लगाना है और उनकी स्थिति भी मालूम करना है। क्योंकि हमारे यात्री मार्ग में ही यान पर जाने से असफल हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त हमें अदृश्य शत्रुओं अर्थात अल्ट्रा वायलेट और अंतरिक्ष रश्मियों से रक्षा करनी है जिनकी अधिक मात्रा प्राण ग्राहक होगी। हमें तापक्रम की अविशयता और विद्युत परमाणुओं की परतों से अपना बचाव करना है।

इस कारण अभी हम अपने ध्येय से बहुत दूर हैं यद्यपि हाल ही में नये 'राकेटों (Rockett) ने ३८०० मील प्रति घंटा की गति प्राप्त कर ली है और ११० मील की ऊँचाई तक वह पहुँच भी चुके हैं।

आश्चर्यजनक हीलियम

लेखक :—डा० रमेश चन्द्र कपूर, प्रयाग विश्व-विद्यालय

हीलियम, जिसकी खोज सर्व प्रथम सूर्य के वायुमण्डल में हुई थी, संसार की सबसे आश्चर्य-जनक गैस है। सूर्य में इसकी खोज हो जाने के सत्ताइस वर्ष पश्चात् पृथ्वी के वायुमण्डल में इसकी खोज हुई। इसके अनुसंधान हो जाने के बाद भी, इसे वायुमंडल से निकालना बहुत कठिन कार्य था। इसकी मात्रा का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि वायु में यह ०·००१ प्रतिशत से भी कम पाई जाती है। वायुमण्डल से इसके एक घन-फुट निकालने में ७००० रुपये से भी अधिक लग जाते थे।

हीलियम, हाइड्रोजन को छोड़ कर, सब गैसों से हलकी है। इसकी विशेषता यह है कि यह अत्यंत निष्क्रिय है; अर्थात् किसी भी तत्व से मिल कर रासायनिक पदार्थ नहीं बनाती है। इसी गुण के कारण, हाइड्रोजन के विपरीत, इसमें आग नहीं लग सकती है। इसलिये इसका उपयोग वायुपोतों-में बहुत अच्छी प्रकार हो सकता है। इसका उपयोग यदि हाइड्रोजन के स्थान पर पहले होता तो बहुतसी दुर्घटनाएँ न हुई होतीं। संसार का सबसे बड़ा वायुपोत "हिंडनबर्ग" भी हाइड्रोजन में आग लगने के कारण जल गया था।

परन्तु इसको निकालने में सबसे बड़ी कठिनाई का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। कुछ झरनों में भी यह बहुत न्यून मात्रा में पाई जाती है और इसे उनसे निकालने में बहुत मंहगा पड़ता था। इसके साथ ही साथ इतनी कम गैस निकलती थी कि एक वायुपोत के भरने में १००० वर्ष लग जाते।

कुछ वर्ष पूर्व इसकी खोज अमेरिका के टेक्साज प्रदेश में हुई। वहाँ पर यह प्राकृतिक अवस्था में बहुत अधिक मात्रा में है और गत महासमर से पहले अमेरिका में करोड़ों घनफुट की मात्रा में निकाली गई थी। यहाँ से निकालने के

पश्चात् एक घनफुट गैस का मूल्य एक आने से भी कम पड़ने लगा। अमेरिका में इसकी खोज होने के बाद इसकी माँग बहुत बढ़ गई। वायुपोतों के अतिरिक्त और बहुत कार्यों में यह आने लगी है। अमेरिका में यह इतनी अधिक मात्रा में निकलने लगी कि यह अब पृथ्वी में गाड़ी जा रही है जिससे आगे प्रयोग में लाई जा सके।

इसका हिमांक (जमने का तापक्रम)—२७२ डिग्री सेन्टीग्रेड है; अर्थात् बर्फ जमने के तापक्रम से २७२ डिग्री सेन्टीग्रेड कम है। भूगर्भशास्त्री, आजकल, इसे तेल के कुएँ खोजने के लिए प्रयोग करते हैं। यह पृथ्वी में कई स्थानों पर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में डाली जाती है और कुछ समय पश्चात् इसकी खोज पास के तेल के कुओं में की जाती है। इसके कुओं में पहुँचने के समय से पृथ्वी के अन्दर तेल की धारा का पता लगता है। यह निष्क्रिय होने के कारण इस कार्य के लिए अति उत्तम सिद्ध हुई है।

गोतेखोर, गहरे समुद्र में जाते समय इसको काम में लाते हैं। नाइट्रोजन के स्थान पर, यदि इसे आक्सीजन के साथ मिला कर दिया जाय तो साँस लेते समय इससे अधिक आराम मिलता है और यह लाभदायक भी होती है। अधिक गहरे समुद्र में जाने से गोतेखोरों के मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है। हीलियम के उपयोग करने से यह प्रभाव कम हो जाता है।

औषधिगृहों और अस्पतालों में भी इसका बहुत उपयोग होता है। इसमें किसी प्रकार के भी जीवाणु नहीं पनपने पाते हैं। इसलिए इसका उपयोग फलों को भली भाँति और जीवाणु रहित रखने में बहुत बढ़ गया है। हीलियम के वायुमण्डल में रखे हुए फल सड़ते भी नहीं हैं। बड़े-बड़े कमरों की वायु के साथ थोड़ी हीलियम मिलाने से फल जल्दी सूखते जाते हैं।

कुछ वैज्ञानिकों का कथन है कि वायुयानों के टायरों में हवा के स्थान पर यदि हीलियम का प्रयोग किया जाय तो टायरों का भार बहुत कम हो जायगा। परन्तु इस ओर इसका उपयोग अभी नहीं हुआ है। इसका उपयोग दमा के इलाज में भी हुआ है।

हीलियम का द्रवांक लगभग—२६९ डिग्री सेन्टीग्रेड है। इस कारण यह सब गैसों के पश्चात द्रव अवस्था में पहुँचती है। द्रव हीलियम के तापक्रम पर स्वर्ण की विद्युत चालकता (electrical conductivity) बिलकुल न्यून हो जाती है। परन्तु राँगे की चालकता बहुत हो जाती है। उस तापक्रम पर हीलियम में स्निग्धता बिलकुल नहीं रहती है। यदि द्रव हीलियम को एक बार हिला दिया जाए तो बहुत समय तक वह इसी प्रकार हिलती रहेगी।

द्रव हीलियम दो प्रकार की होती है। पहले प्रकार की हीलियम साधारण द्रव की भाँति प्रतीत होती है। परन्तु दूसरे प्रकार की हीलियम का व्यवहार अत्यंत ही असाधारण होता है। यदि हम एक बीकर में असाधारण हीलियम को भरें और एक खाली प्याला उस पर तैराएँ तो उसमें हीलियम किनारे से चढ़ कर भर जाएगी। इसी प्रकार यदि हम हीलियम से भरा एक प्याला उस बीकर के ऊपर लटकाएँ, तो फिर प्याले के किनारों द्वारा हीलियम नीचे के बीकर में आ जायगी।

अभी तक द्रव हीलियम किसी उपयोग में नहीं आई है। परन्तु वैज्ञानिकों का विचार है कि अणु बम के समान इसका उपयोग भी कुछ समय पश्चात् हो सकेगा। इस समय तक सम्पूर्ण हीलियम की कुञ्जी अमेरिका के पास है। दूसरे देशों में इसका उपयोग उसी की दया पर निर्भर है।

रक्त की अदल-बदल

शिशु-रक्षा का नवीन उपाय

लेखक—इगन लार्सेन

श्री० और श्रीमती जोन्स के तीन बच्चे उत्पन्न हुए थे। एक जीवित रहा और दो होते ही मर गये थे। उनके बच्चे अन्य शिशुओं की तुलना में इतने अस्वस्थ और दुर्बल किस लिये थे, क्या इसमें माता-पिता का दोष था?

डाक्टरों ने इन दोनों के रक्त की परीक्षा ली। जब श्रीमती जोन्स उत्तरी इंगलैंड के चेस्टर स्थित सिटी अस्पताल में अपना चौथा बच्चा जनने के लिये गईं तो वहाँ उसकी सेवा के लिये कई विशेषज्ञ उपस्थित थे। शिशु का जन्म होते ही उसके रक्त की अदल-बदल आरम्भ कर दी गई, पूर्व रक्त को निकाल कर अन्य स्वस्थ्य प्राणी का रक्त भर दिया था। यह सारा कार्य नन्हीं मारग्रेट को रूई-ऊन की गद्दी से ढकी मेज पर लिटा कर किया गया था। विशेषज्ञ और अन्य २५ डाक्टर पूर्व रक्त का कष्ट-रहित खिंचाव और नवीन रक्त का प्रवेश कार्य बड़े ध्यान से अध्ययन कर रहे थे। केवल एक घन्टे में यह सारा काम निबटा दिया गया था। एक गुप्त प्राण-रक्षक के रक्त को उसकी नाड़ियों में दौड़ाने का फल यह हुआ कि आज वह संसार के अन्य बालकों की तरह स्वस्थ्य और सुन्दर है।

इसी तरह ब्रिटेन में बहुत से बच्चों की प्राण-रक्षा की जा चुकी है। वहाँ के अनेकों प्रान्तीय अस्पतालों में इसी कार्य-विधि को प्रयुक्त किया जाता है। स्थानीय अधिकारियों की ओर से हर प्रकार का प्रबन्ध हो जाता है। ल्यूइज्म स्थित अस्पताल में दिसम्बर १९४७ से लेकर अब तक ऐसे दस शिशुओं का इलाज हो चुका है। जिनमें, दो में रक्त-परिवर्तन विधि अनावश्यक रही, सात में सफल और एक शिशु जन्म से ही अत्यधिक रोगी होने के कारण मर गया था।

औषधि-विज्ञान में, रक्त प्रकार अनुसन्धान की खोज केवल दो वर्ष पूर्व की गई थी, जिसे "रेसस-फैक्टर" कहते हैं। १९४० में पहिली बार यह पता चला था कि रेसस बन्दर के लाल जीव छिद्रों को सफ़ेद चित्तियों वाले सुअर के शरीर में छोड़ देने से अवयव पैदा हो जाते हैं जोकि रेसस बन्दर के लाल जीव छिद्रों के अलावा ८५ प्रतिशत श्वेत मनुष्यों के लाल जीव छिद्रों को भी एकत्रित कर देते हैं। कुछ रोगियों के रक्त की अदल-बदल करने में ऐसे एक उपाय द्वारा, अकस्मात उलटा असर होता देखा गया। उल्टे असर का कारण यह था कि श्वेत जाति में भी दो प्रकार के मानवी "रेसस टाइप" लाल जीव छिद्र होते हैं—

रे-पाज़िटिव-टाइप, अर्थात् ८५ प्रतिशत जोड़ा हुआ और

रे-नेगेटिव-टाइप, अर्थात् १५ प्रतिशत नहीं जोड़ा हुआ।

कुछ शिशुओं की मृत्यु का कारण उनके माता-पिता के रक्त प्रकार की विभिन्नता थी—

माता—रे-नेगेटिव

पिता—रे-पाज़िटिव और शिशु—रे-पाज़िटिव।

अधिकांश मामलों में मातृक भेद के अवयव पिता और बच्चों के लाल जीव छिद्रों के साथ एकत्रित हो जाते थे। बहुधा ऐसे माता पिता का प्रथम शिशु सामान्य होता था लेकिन दूसरे बच्चे के बाद से भयंकर लक्षण प्रकट होने लगते थे।

उपस्थित भय

यूरोप और अमेरिका में पहले २५० में से एक की और अब ५०० शिशुओं में से एक की मृत्यु होती है। जन्म के बाद सामान्य रूप से रोग के

लक्षण रक्तहीनता अथवा पांडुरोग में बढ़ते रहते हैं। लेकिन एक बार रोग के लक्षण बढ़ जाने पर रोकना कठिन हो जाता है। जन्म के उपरान्त १२ से १५ घन्टों तक ही, रक्त की अदल-बदल द्वारा शिशु की प्राण-रक्षा हो सकती है।

इसी कठिनाई के कारण डाक्टर शिशु जन्म से पूर्व ही माताओं की शारीरिक परीक्षा करने का प्रयत्न करते हैं, जिससे समय पर आवश्यक सामग्री तैयार रहे और रक्त की अदल-बदल का कार्य शीघ्र आरम्भ किया जा सके। अधिकांश रूप से माता-पिता के रक्त की विभिन्नता के कारण ही गर्भावस्था के अंतिम मास में गर्भ बिगड़ जाता है और यही शिशु के रोग का कारण है।

शिशु का ८५ प्रतिशत रक्त ही अन्य प्राणी के रक्त से बदला जाता है क्योंकि बाकी १५ प्रतिशत सारे शरीर में समाया हुआ होता है। रक्त की अदल-बदल की कार्यविधि न्यूयार्क, अमेरिका के डा० डाइमॉन्ड द्वारा प्रचलित की गई थी, अन्य रूपान्तर और सुधार; जैसे रक्त को जमने से रोकना आदि का सफल सम्पादन ब्रिटेन में किया गया था। सामान्य रूप से इस अदल-बदल में लगभग डेढ़पाव रक्त की आवश्यकता पड़ती है।

रक्त-प्रकार अनुसन्धान द्वारा मनुष्य शरीर और जीव रचना संबन्धी समस्या के विभिन्न रूपों का अभी तक पूरी तरह हल नहीं हो सका है। मनुष्य का 'रे-टाइप' श्रेणीक्रम निश्चित रूप से बिलकुल ठीक है। एशिया की सब जातियाँ 'रे-पाजिटिव होती है लेकिन यूरोप और अमेरिका में मिश्रित जातियाँ हैं इसलिये वहाँ ८५ प्रतिशत पाजिटिव और १५ प्रतिशत नेगेटिव होते हैं। लेकिन (वास्कयूज) फ्रेंच लोगों में 'रे-नेगेटिव' की अधिक मात्रा होती है।

यूरोप में 'रे-नेगेटिव' पत्नियों और 'रे-पाजिटिव' पतियों के विवाहित जोड़ों की संख्या १२ प्रतिशत हैं, लेकिन ऐसे २० जोड़ों में से केवल एक में कठिनाई उत्पन्न होती है। आमतौर पर प्रथम बच्चा सामान्य होता है। "एरिथ्रोब्लास्टोसिस" (परिभाषिक नाम) रोग केवल आगामी गर्भावस्थाओं में पैदा होने लगता है। कुछ स्त्रियों की प्रथम गर्भावस्था में ही रोग खड़ा हो जाता है, जोकि पहिले से रक्त की अदल-बदल करके रोका जा सकता है। वर्तमान विज्ञान में यही एक सर्वोत्तम उपाय है जिसके द्वारा माता के रक्त में उत्पन्न होने वाले प्राणनाशक अवयवों के प्रभाव से शिशु की प्राणरक्षा की जा सकती है।

"खमीर के व्यवसाय"

(FERMENTATION INDUSTRIES)

ले—बालकृष्ण अवस्थी बी० एस-सी०

साधारण बनावट वाले प्राकृतिक पदार्थों में, उबाल के साथ, परिवर्तित हो जाने की क्रिय को फरमेंटेशन (Fermentation) कहते हैं। इस क्रिया में 'कार्बोनिक एसिड गैस या कार्बन डाई आक्साइड निकलती है। यह क्रिया ऐसे पदार्थों द्वारा होती है जिनको अंग्रेजी में 'फरमेण्ट' या 'इनजाइम' कहते हैं।

एनजाइम—यह नाइट्रोजन वाले संयुक्त पदार्थ हैं जो कि बनावट में एलबूमेन वाले पदार्थों के समान होते हैं। इनकी बनावट का अभी ठीक रूप से ज्ञान नहीं है। प्रायः हर एक एनजाइम पानी में घुलनशील है। यह प्रकृति में पौदों और जीव-जन्तुओं दोनों में बहुतायत से पाये जाते हैं। यह पेट के रस व थूक में भी मौजूद हैं। प्रत्येक

एनजाइम एक विशेष रासानिक क्रिया के लिए जिम्मेदार होता है। रासायनिक क्रियायें जो इनके द्वारा होती हैं, उनके अनुसार वह कई भागों में बाँटी जा सकती हैं।

फ़रमेंटेशन की क्रिया किस प्रकार होती है, इसको समझाने के लिए तीन प्रकार के सिद्धान्त रक्खे गए हैं जो कि क्रमशः 'लीबिग' 'पास्त्योर' और 'बुख़नर' ने दिए हैं। लगभग सन् १८४० ई० में लीबिग ने कहा कि जिस पदार्थ में खमीर पैदा होता है (Fermentation) या जो पदार्थ सड़ता है (Putrefaction), उसके परमाणु एक नाचती हुई दशा में रहते हैं जिसके कारण शक्कर के अणु शराब (एलकोहल) व कार्बन डाई आक्साइड में परिवर्तित हो जाते हैं। सन् १८६० में पास्त्योर ने अपना मत स्पष्ट किया। उन्होंने खमीर (Yeast) का उदाहरण देते हुये कहा कि इस fungus को बढ़ने के लिए कुछ शक्ति (energy) की आवश्यकता है और यह शक्ति फ़रमेंटेशन की क्रिया से उसको प्राप्त हो जाती है। अतः उन्होंने इस क्रिया को जीव सम्बन्धी बतलाया। सन् १८६७ में 'एडुआर्ड बुख़नर' ने यह सिद्ध कर दिया कि इस क्रिया के लिए किसी भी जीव की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने ईस्ट का रस निकाला और दिखलाया कि केवल यही फ़रमेन्टेशन के लिए काफ़ी है। यह क्रिया इसलिए होती है कि उस रस में एक प्रकार का एनज़ाइम होता है जिसको 'ज़ाइमेस' कहते हैं। इस प्रकार से उसने पिछले दोनों रसायनिज्ञों के मतों को गलत बतलाया और दुनिया को यह दिखला दिया कि फ़रमेन्टेशन के लिए किसी भी जीवित वस्तु की आवश्यकता नहीं है बल्कि जो एनज़ाइम उनमें मौजूद होते हैं, उन्हीं की वजह से यह क्रिया होती है।

जो छोटे जीव 'एनज़ाइम' के नाम से पुकारे जाते हैं, बहुत ही सूक्ष्म पौदे हैं जो कि केवल माइक्रोसकोप से ही दिखलाई देते हैं। यह तीन श्रेणी के हैं—Yeasts, moulds और bacteria। इन्हीं के द्वारा तरह-तरह के फ़रमेन्टेशन होते हैं जिससे कई प्रकार के उपयोगी पदार्थ बन सकते हैं। इनमें 'ईस्ट' सब में प्रमुख है और ये शक्कर के अतिरिक्त नाइट्रोजन वाले पदार्थ को भी खाने के तौर पर उपयोग करते हैं। ईस्ट का सबसे बड़ा कार्य शराब के फ़रमेन्टेशन-(Alcoholic fermentation) को पैदा करना है। इससे शक्कर—शराब और कार्बन डाई आक्साइड में विभाजित हो जाती है। इसमें कई एनज़ाइम पाये जाते हैं जैसे ज़ाइमेस, इन्वरटेस, तथा माल्टेस (Zymase, Invertase, maltase) आदि। ईस्ट अलग अलग भाँति के होते हैं जैसे बियर ईस्ट (Bear yeast) अथवा ब्रूअरी ईस्ट (Brewery yeast) डिस्टलिरी ईस्ट (distillery yeast), बेकर ईस्ट (B.ker's yeast) तथा वाइन ईस्ट (wine yeast) इत्यादि। इनकी कई एक श्रेणी (speceis) हैं।

अब एनज़ाइम व फरमेण्ट का रूप दे चुकने के बाद पूरे विषय को हम ४ भागों में बाँट सकते हैं:—

(१) वाइन (wine),

(२) बियर (Beer)

(३) स्पिरिट तथा औद्योगिक एलकोहल (sprits and industrial alcohols)

(४) एसीटिक, लैटिक तथा ब्यूटेरिक अम्ल (acetic, lactic and butyric acids)

हिन्दुस्तानी में नं० १, २, व ३—तीनों को 'शराब' कहते हैं पर अंग्रेजी में इनके पृथक् पृथक् नाम हैं क्योंकि यह अलग-अलग तरीकों से बनाये जाते हैं और इनमें अलग-अलग स्वाद होता है। अब हम हर एक का वर्णन यहाँ संक्षेप में करेंगे।

(१) **वाइन**—यह वह शराब है जो कि अंगूर के रस को फ़रमेण्ट करके बनाई जाती है और इसमें टपकाव (distillation) की आव-

श्यकता नहीं होती। यह फ़रमेण्टेशन 'वाइन ईस्ट' के द्वारा होता है। जो कि अंगूर के छिलकों के साथ रहता है व हवा में हर जगह मौजूद है। अंगूर के रस में ८० प्रतिशत पानी, १५ प्रतिशत ग्लूकोज़ व ५ प्रतिशत में और अम्ल होते हैं। जैसे अंगूर हम आरम्भ में लेंगे, उसी के अनुसार ही वाइन बनेगी।

रीति—पके हुये अंगूरों को दबा कर उनका रस निकाला जाता है और उसको प्राकृतिक रूप से फ़रमेण्ट होने दिया जाता है। अन्त में सब शक्कर (ग्लूकोज़), एलकोहल और कार्बन डाई आक्साइड में परिवर्तित हो जाती है। इस क्रिया में ३ से १५ दिन तक लग सकते हैं। इसके बाद इसको जमा करके रख दिया जाता है जबकि उसमें वाइन की अनोखी महक व स्वाद आ जाती है।

अगर इस शराब को हम और बढ़िया बनाना चाहते हैं तो इसमें शक्कर या एलकोहल पर्याप्त मात्रा में मिला देते हैं। फ़ालतू अम्ल को निकाल देने से भी वाइन का स्वाद अच्छा हो जाता है। यदि इसमें कोई विकार आ जाता है तो यह कड़वी हो जाती है।

बनावट—(composition) एलकोहल ७—१५ प्रतिशत। इसके अलावा थोड़ी-थोड़ी मात्रा में शक्कर, ग्लिसरीन व कुछ अन्य रस (extracts)।

यदि फ़रमेण्ट किये हुये अंगूर के रस को हम टपकाव (distil) से साफ़ करें तो ब्रान्डी बनती हैं। इनमें 'कोग्नैक' सबसे मशहूर है। इस क्रिया में जो 'फ्यूज़ल आयल' निकलता है, उसमें मुख्यतः "ब्यूटाइल, प्रोपाइल और एमाइल एलकोहल" रहते हैं।

(२) बियर—यह वह शराब है जो कि अनाज को फ़रमेण्ट करके बनायी जाती है। यह वाइन और स्पिरिट से इसलिए भिन्न है कि इसमे एलकोहल की मात्रा केवल ३ से ६ प्रतिशत ही होता है। पर इसमें अन्य रस अधिक रहते हैं। यह किसी भी अन्न या गल्ले से बन सकती है पर बहुधा जौ से बनाई जाती है जिसमें कि ६० से ६५ प्रतिशत स्टार्च होता है।

रीति—जौ को पानी में फुला लेने के बाद उसको जमने दिया जाता है और जब उसमें अंकुर निकल आते हैं तो उसमें एक एनजाइम—'डायस्टेस' पैदा हो जाता है जिसमें कि स्टार्च को एक शक्कर—'माल्टोज़' में परिवर्तित कर देने का गुण है। इस उगे हुये अन्न को 'माल्ट' कहते हैं जो कि एक भट्टी पर सुखा लिया जाता है। इसको पीस कर काफ़ी पानी के साथ ६०° तक उबालते हैं। इससे सारा स्टार्च, माल्टोज़ व कुछ 'डेक्सट्रीन' के रूप में बदल जाता है। इस क्रिया को 'मैशिंग' कहते हैं। इसके बाद इसको एक विलायती बेल के फल (hops) के साथ गरम करते हैं। ठंडा करने के बाद इसमें खमीर (ईस्ट) मिलाया जाता है। इसमें एक एनजाइम जिसको 'माल्टेज़' कहते हैं, मौजूद रहता रहता है जो माल्टोज़ शकर को ग्लूकोज़ शकर में बदल देता है। अब यह ग्लूकोज़, जाइमेस (जो कि ईस्ट का मुख्य एनजाइम है) के द्वारा एलकोहल में परिवर्तित हो जाता है। इस शराब को, जो कि इस प्रकार के फ़रमेण्टेशन से बनती है, बियर कहते हैं। इसमें आवश्यकतानुसार महक डाल दी जाती है। बियर बनाने के काम को अंग्रेजी में brewing कहते हैं और वह जगह जहां यह काम होता है Brewery कहलाती है।

'ऊपर के स्टार्च से जो डेक्सट्रीन बना था, वह फरमेण्ट नहीं करता बल्कि बियर में उसी प्रकार से मौजूद रहता है। केवल माल्टोज ही सड़ कर अन्त में शराब बनाता है।

• जर्मनी, अमरीका व इंगलैंड दुनिया में सबसे अधिक बियर बनाने वाले देश हैं। चूंकि बनाने की रीति में छोटी-छोटी बातों में फरक होता है, इससे हर देश की शराब में भी फरक रहता है।

(३) स्पिरिट व औद्योगिक एलकोहल—यह पिछले दोनों शराबों से पृथक् है क्योंकि यहां पर मुख्य काम एलकोहल का टपकाव (distillation) है। फरमेण्ट होने के बाद जो चीज़ आती है, उसको डिस्टिल करके उसमें से जितना शुद्ध एल-कोहल होता है, निकाल लेते हैं।

निम्नलिखित ३ प्रकार के पदार्थों से यह बनाया जा सकता है—

(अ)—स्टार्च वाले पदार्थ-जैसे आलू, जौ, चा ल आदि।

(ब)—शक्कर वाले पदार्थ-जैसे मीठे फल, गन्ने व चुकन्दर की चीनी, गुड़।

(स)—पहले से सड़े हुये पदार्थ—जैसे वाइन।

भारतवर्ष में सबसे सस्ता पदार्थ जिससे शराब बनाई जाती है, शीरा है। शक्कर की फैक्टरियों में यह बहुतायत से निकलता है। जब यह तरीका मालूम न था, तब लाखों मन शीरा बरबाद जाता था। पर अब इन सबसे शराब बना ली जाती है।

यह क्रिया ४ खंडों में बांटी जा सकती है।

(अ) स्टार्च वाले पदार्थ से शक्कर वाले पदार्थ बनना (यदि आरम्भ में स्टार्च वाला पदार्थ लिया गया है),

(ब) शक्कर का, एनज़ाइम की सहायता से, एलकोहल में विभाजित हो जाना,

(स) एलकोहल वाली तरल पदार्थ का टपकाव अथवा डिस्टिलेशन, और

ठ) डिस्टिलेट का रेक्टीफ़िकेशन।

(अ) मान लीजिये कि हम आलू से चले। उसको भाप के साथ एक पेस्ट बना लेंगे और इससे "भट्टी का सुखाया हुआ माल्ट" मिला दिया। ६०° पर गरम करने पर आलू का स्टार्च सब माल्टोज के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह क्रिया आधे घंटे में खतम हो जाती है। इसके बाद इसमें डिस्टिलरी ईस्ट मिलाया जाता है जिससे कि ग्लूकोज़ बनता है।

(ब) यदि चुकन्दर या गन्ने के रस का या गुड़ का प्रयोग किया गया है, तो रीति कुछ भिन्न हो जाता है। गुड़ में मामूली शक्कर (या गन्ने की शक्कर) होती है। उसका पानी से १० प्रतिशत पतला कर लिया जाता है और फिर उसमें "एमोनियम सलफ़ेट" व "सलफ्यूरिक एसिड" मिलाते हैं। इसके बाद उसमें डिस्टिलरी ईस्ट डाल कर गरम करते हैं। पहले गुड़ (या शीरा) की शक्कर ग्लूकोज में बदल जाती है और अन्त में फ़रमेण्टेशन द्वारा एलकोहल और कार्बन डाई आक्साइड बनते हैं। कार्बन डाइ आक्साइड गैस के निकलने की वजह से शीरे में झाग उठता है। डिस्टिलरी में बड़े बड़े हौजों में यह खौलाव होता है। एलकोहल के साथ ही कुछ खराब महक वाले—'फ्यूज़ल आयल' भी पैदा होते हैं जिनको 'स्पिरिट फ्यूज़ल आयल' कहते हैं।

(स) अब जो फरमेंट हुआ मेश (Fermented mash) बचता है, उसमें एलकोहल लगभग १८ प्रतिशत होता है। इसके बाद इसको टपकाव की रीति से साफ़ करते हैं। इस काम के लिए बड़ी बड़ी डिस्टिलरियों में (Continuous distillation) के आधार पर काम होता है। इससे हम एक बार में ही ६० प्रतिशत एलकोहल निकाल सकते हैं। जो बचा खुचा अब हौज में बचता है, उसे स्पेण्ट वाश (Spent wash) कहते हैं। इसमें स्टार्च या गुड़ की सारी प्रोटीन मौजूद रहती है और इसलिए इसको जानवरों को खिलाने के काम में लाते हैं। आखिरी टपकाव के बाद हमको एक ओर तो ६० प्रतिशत एलकोहल मिल जाता है और दूसरी ओर फ़्यूज़ल आयल।

(३) आखिरी अवस्था को 'रेक्टीफ़िकेशन' कहते हैं। इस ६० प्र० श० एलकोहल में, जो ऊपर मिला, शराब के अतिरिक्त 'एल्डीहाइड' और फ़्यूज़ल आयल रहते हैं। इस क्रिया का मुख्य अभिप्राय शराब से इन्हीं चीज़ों को एकदम निकाल देना है। पहले एसीटैल्डीहाइड निकल जाता है। उसके बाद

'रेक्टीफाइड स्पिरिट' निकलती है जिसमें ६३ से लेकर ६६ प्र० श० एलकोहल होता है। पर फ्यूज़ल आयल जिसका कि उबाल तापमान बहुत ऊंचा है, वही बच रहते हैं जो कि बाद में निकाल लिए जाते हैं। इनमें से फिर नीचे लिखे हुये यौगिक (Compounds) निकाले जाते हैं।

स्पिरिट फ्यूज़ल आयल की बनावट

एमाइल एलकोहल-६८ प्र० श०, नार्मल प्रोपाइल एलकोहल ७ प्र० श०

आइसोब्यूटाइल–२४" प्र० श० और एस्टर-१ प्र० श०

आजकल जो कार्यालयों में नये यन्त्र लगे हैं, उनका मूल 'distillation and rectification' है। इसमें (स) और (ड) क्रिया एक साथ ही हो जाती है और हमको fermented mash से एक बार में ही रेक्टीफाइड स्पिरिट व फ़्यूजल आयल अलग-अलग मिल जाते हैं। साधारण कार्यों के लिए यह स्पिरिट सबसे शुद्ध एलकोहल मानी गई है और हर एक काम में प्रयोग की जा सकती है।

यदि हमको और तेज एलकोहल की आवश्यकता है तो हम उसको भी इसी रेक्टीफाइड स्पिरिट से बना सकते हैं। यहाँ पर इस सबका वर्णन करना व्यर्थ ही होगा। ६६-६ प्र० श० एलकोहल को 'पावर एलकोहल' कहते हैं और यही एलकोहल मोटरों में पेट्रोल के साथ १:४ के अनुपात में इस्तेमाल किया जाता है।

स्पिरिट को यदि हम आवश्यकतानुसार पतला करके सुगन्ध वाले पदार्थों की उपस्थिति में डिस्टिल करें तो जो शराब मिलती है, उसको 'लिकर' कहते हैं उदाहरणार्थ—जिन, रम, ह्विस्की। इसमें २५ से ६० प्र० श० तक एलकोहल होता है। यह वाइन और बियर, दोनों से तेज होते हैं।

ईथाइल एलकोहल, व्यवसाय में कई कामों के लिए इस्तेमाल किया जाता है, इसीसे इसको 'इन्डस्ट्रियल एलकोहल' भी कहा जाता है। शराब के अतिरिक्त, एलकोहल और बहुत सी नयी-नयी चीज़ों में इस्तेमाल किया जा रहा है। इसलिए इस देश में इसका सस्ते दामों में तैय्यार होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इसकी सहायता से कई व्यवसाय आरम्भ किये जा सकते हैं।

गुड़ या स्टार्च वाले पदार्थों में एक दूसरी प्रकार का फ़रमेन्टेशन भी होता है जो कि एक प्रकार के Bacteria से होता है जिनको अंग्रेजी में Bacillus clostrduim acetobutylicum कहते हैं। इससे मुख्य पदार्थ जो निकलता है, वह 'नार्मल ब्यूटाइल एलकोहल' है।

(४) सिरका, लैक्टिक एसिड व ब्यूटाइरिक एसिड—

(अ) सिरका—यह एसीटिक एसिड का ४—१० प्रतिशत घोल है। यह शराब वाली चीज़ों को oxidise करके बनाया जाता है। इस काम के लिए एक प्रकार के Bacteria का प्रयोग किया जाता है जिनको 'बैक्टरीरियम एसीटाई' कहते हैं। इनको भी एलकोहल के अतिरिक्त नाइट्रोजन वाले पदार्थों की आवश्यकता होती है। इसलिए सिरका या एसीटिक एसिड बनाने के लिए वाइन, बियर या और कोई एलकोहल वाले पदार्थ से चलना पड़ता है। यह माल्ट से भी बनाया जा सकता है। इसको एक ऐसे तरल पदार्थ में परिवर्तित कर देते हैं जिसको अंग्रेजी में wort कहते हैं। इसमें ईस्ट मिलाकर शक्कर से शराब बना लेते हैं। शराब चाहे किसी भी प्रकार से बनाई जावे, उसकी तेज़ी ६ या ७ प्र० श० अवश्य रहनी चाहिए। इस घोल को जब ऊपर लिए हुये बैक्टीरिया के द्वारा oxidise करते हैं तो एसीटिक एसिड बन जाती है। इसके बीच में एसीटैल्डीहाइड भी बन जाती है। तैय्यार किये हुये सिरके में बहुत थोड़ी मात्रा एलकोहल की भी होनी चाहिए नहीं तो एसिटक एसिड कुछ बैक्टीरिया के द्वारा (जो सिरका बनाते समय उसमें रहते हैं) और oxidise हो जायगा और फलतः सिरका बिगड़ जावेगा। इस सिरके को छान लेते हैं जबकि शुद्ध सिरका बन जाता है।

(ब) लैक्टिक एसिड—यह ग्लूकोज़ के घोल से 'लैक्टिक फ़रमेण्टेशन' द्वारा बनाया जाता है। अंगूर के रस पर 'बैसिलाई एसिडाई लैक्टाई' की प्रतिक्रिया की जाती है। इससे जल्द ही उबाल या फ़रमेंटेशन आरम्भ हो जाता है और ग्लूकोज का एक अणु लैक्टिक एसिड के २ अणुओं में विभाजित हो जाता है।

एवरी का तरीका—मीठे घोल को एक घण्टे तक उबालते हैं। उसको फिर बड़े हौज़ों में ले जाते हैं जहाँ पर उनमें बैक्टीरिया मिलाये जाते हैं। तापमान ४५ से ५५° तक रक्खा जाता है इसलिए कि और दूसरे प्रकार के एनज़ाइम उसमें न पैदा हो जायं जिनके कारण अन्य प्रकार के पदार्थ भी साथ-साथ बनने लगें। खड़िया को पानी में मिला कर धीरे-धीरे उसमें डालते हैं जबकि लैक्टिक एसिड का कैलसियम लवण बनने लगता है। इसको फिर गरम करके छान लेते हैं जब हमको कैलशियम लैक्टेट का स्वच्छ घोल मिल जाता है। इसमें फिर सलफ्यूरिक एसिड मिलाते हैं जबकि कैलशियम सलफ़ेट इस घोल में अघुलनशील होने के कारण अलग बैठ जाता है।

जब इसको छानते हैं और नीचे जो स्वच्छ घोल आता है उसको गरम करते हैं, तो लैक्टिक एसिड भूरे शरबत के रूप में बन जाता है।

(स) ब्यूटाइरिक एसिड—यह भी उसी प्रकार से कैलशियम कारबोनेट की उपस्थिति में—स्टार्च या शक्कर से फ़रमेण्ट करके बनाया जाता है। घोल में 'ब्यूटाइरिक एसिड बैक्टीरिया' मिलाते हैं तो कैलशियम का लवण बनता है। इसमें सोडियम कारबोनेट मिला कर उसको सोडियम के लवण में बदल लेते हैं। अन्त में जब इसमें सलफ्यूरिक एसिड (गंधक का तेजाब) मिलाते हैं तो ब्यूटाइरिक एसिड बनती है। इसको टपकाव की रीति से और पदार्थों से अलग कर लेते हैं। शुद्ध ब्यूटाइरिक एसिड तेल के प्रकार का तरल पदार्थ है जिसमें कि बदबूदार महक होती है!

खाद्य पदार्थों में सुगन्ध

लेखक—श्री विदुरनारायण अग्निहोत्री, बी० एस०, सी० (ऐग्री०), डिप० आई० एफ० टी०

खाद्य पदार्थों की लोकप्रियता और विक्रय विशेषकर तीन बातों पर निर्भर है। (१) जिन वस्तुओं से वह पदार्थ बनाया गया है उनका श्रेष्ठ श्रेणी का होना। (२) उस पदार्थ को बाजार में इस प्रकार प्रस्तुत करना कि चित्ताकर्षक हो। (३) वह पदार्थ खाने-पीने के विचार से उत्तम हो अर्थात् उसमें मनहरण सुगन्ध का होना। यह अन्तिम बात सम्भवतः सबसे अधिक महत्त्व रखती है।

शब्द-कोष में देखने से सुगन्ध का अर्थ मिलता है कि "सुगन्ध वह वस्तु है जिसके कारण एक पदार्थ दूसरे से पहचाना जा सके। यह कुछ ऐसी वस्तुओं के मिश्रण से बनती है जिससे कोई पदार्थ केवल पहचाना ही न जा सके वरन् दूसरों से भली भाँति अलग भी किया जा सके।" खाने पीने का आनन्द खाद्य-पदार्थों की सुगन्ध पर ही निर्भर है। इससे पाचन-क्रिया में सहायता मिलती है। बिना सुगन्ध के भोजन का महत्त्व केवल इतना ही है जितना कि किसी विशेष फल प्राप्त करने के लिये इतनी औषधि का खा लेना।

इससे स्पष्ट है कि यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम उन तमाम बातों का भलीभाँति अध्ययन करें जिनका किसी सुगन्ध को प्रयोग करते समय ध्यान में रखना उचित है। यहाँ उन्हीं बातों का वर्णन सूक्ष्म रूप से किया जाता है।

आजकल जो सुगन्ध-पदार्थ बाजारों में मिलते

हैं उनको तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) प्राकृतिक-सुगन्ध, (२) मिश्रित-सुगन्ध, (३) कृत्रिम-सुगन्ध।

प्राकृतिक-सुगन्ध—अधिकतर सुगन्ध पदार्थ सन्तरा की जात वाले फलों के छिल्कों को दबाकर इकट्ठे किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी हैं जो बहुत से बीज, वृक्षों की छाल, जड़ों, पत्तियों और फूलों आदि का भाप की सहायता से भपका लगा कर प्राप्त किये जाते हैं। किसी खाद्य-पदार्थ को सुगन्धित बनाने के लिए यह सुगन्ध-पदार्थ बहुत सूक्ष्म मात्रा में ही उपयुक्त होते हैं इसीलिए इनको सुगमता के साथ प्रयोग में लाने के लिए इथाइल अल्कोहल, आइसो-प्रोपाइल अल्कोहल आदि तरल पदार्थों में घोल लेते हैं। कभी कभी इनका मूल्य कम करने के लिए इनमें पानी भी मिलाया जाता है। फलों के रस भी, जो किसी पदार्थ को सुगन्धित बनाने के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं इसी श्रेणी के हैं।

मिश्रित-सुगन्ध—यह फल तथा अन्य पदार्थों के मिश्रण से बनती है। अधिकतर फल और अन्य प्राकृतिक पदार्थों के साथ कुछ रासायनिक पदार्थ मिलाकर ही सुगन्ध तेज़ की जाती है।

कृत्रिम-सुगन्ध—इनको बनाने के लिये केवल रासायनिक पदार्थ ही इस अनुपात में मिलाये जाते हैं कि मिश्रण किसी प्राकृतिक या किसी अन्य प्रकार की मनचाही सुगन्ध का रूप धारण कर ले।

भाँति-भाँति के खाद्य-पदार्थों में इस्तेमाल करने के लिए सुगन्ध-पदार्थ भी कई रूपों में पाये जाते हैं। साधारणतया सुगन्ध-पदार्थ स्वच्छ तरल रूप में मिलते हैं और इनका प्रयोग भी लगभग सबसे पुराना है। सुगन्ध-तेल, इथाइल अल्कोहल, आइसो-प्रोपाइल अल्कोहल आदि के घोल की दशा में रहते हैं। कभी-कभी अल्कोहल के स्थान पर कुछ खानेवाले तैल-पदार्थ भी घोल बनाने के लिये काम में लाये जाते हैं, ऐसी दशा में सुगन्ध-पदार्थ या तो गाढ़े तरल या लगभग लेई के रूप में हो जाता है। बहुत से सुगन्ध-पदार्थ जो आजकल प्रयोग में लाये जाते हैं किसी लसदार चीज़ पर बनाये जाते हैं और वह गंदले गाढ़े घोल (emulsion) के रूप में होते हैं। हाल ही में कुछ सुगन्ध-पदार्थ बाजारों में पाउडर के रूप में भी विक्रयार्थ रक्खे गये हैं।

सुगन्ध-पदार्थ में कुछ विशेषताओं का होना आवश्यक है। सुगन्ध-पदार्थ वही अच्छा है जो मन को लुभा ले और इसके साथ साथ उसमें असली पदार्थ के अधिक से अधिक गुण विद्यमान हों।

सुगन्ध का खाद्य-पदार्थ में भली भाँति पस जाना नितान्त आवश्यक है। इसीलिये सुगन्ध-पदार्थ या तो पूर्णरूप से घुलनशील हो या सम्पूर्ण खाद्य-पदार्थ में भली भाँति फैल कर स्थि रह सके। ऐसा न होने से खाद्य-पदार्थ रुचिकर न होगा।

सुगन्ध-पदार्थ मिलाते समय हमको यह बात भी ध्यान में रखना है कि लोगों के स्वाद में इतना अन्तर रहता है कि देश के हर भाग में एक ही सुगन्ध पसन्द नहीं की जाती। इसलिये हमें उनकी रुचि के अनुसार ही सुगन्ध को घटा बढ़ा कर मिलाना चाहिये। कहीं कहीं लोगों के स्वाद में तो बहुत अन्तर नहीं रहता लेकिन रीति-रिवाज के भिन्न होने के कारण ही इन सुगन्ध-पदार्थों के उपयोग में भी अन्तर रहता है।

खाद्य-पदार्थ बनाते समय मुख्य ध्येय यही होना चाहिये कि वह श्रेष्ठ है। यद्यपि सुगन्ध-पदार्थ इतनी सूक्ष्म मात्रा में मिलाये जाते हैं कि इससे खाद्य-पदार्थ के मूल्य में अधिक अन्तर नहीं होता फिर भी सुगन्ध-पदार्थों की बहुत कीमती नहीं होना चाहिये।

यह बात तो सर्वमान्य है कि प्राकृतिक सुगन्ध-पदार्थ अर्थात् फलों के रस आदि के प्रयोग से ही सबसे अच्छी सुगन्ध प्राप्त होती है परन्तु अब कृत्रिम सुगन्ध पदार्थों के बनाने व मिलाने की

क्रिया इतनी उन्नति कर रही है कि इनका प्रयोग ऐसी दशाओं में भी उतनी ही सफलता के साथ हो सकेगा जहां पर प्राकृतिक सुगन्ध-पदार्थों का उपयोग मूल्य के कारण वर्जित हो जाता है।

सुगन्ध मिलाते समय हमें इस बात पर भी ध्यान देना है कि जिस पदार्थ में हम उन्हें मिला रहे हैं वह किस प्रकृति का है क्योंकि उसीके अनुसार हमें सुगन्ध-पदार्थ छांटना होगा इसीलिये हमें निर्मल स्वच्छ और गंदले रङ्ग के पेय बनाते समय भिन्न भिन्न सुगन्ध-पदार्थ प्रयोग में लाने चाहिये।

अनुभव किया गया है कि कुछ खाद्य पदार्थों को थोड़े दिन रखने से उनकी सुगन्ध उड़ जाती है। ऐसी दशा में भी हमें विशेष प्रकार के सुगन्ध-पदार्थ ही काम में लाने चाहिये।

ऊपर कहा जा चुका है कि सुगन्ध पदार्थ किसी अल्कोहल या तैलमें घोल कर बनाए जाते हैं। कभी-कभी इनके कारण खाद्य-पदार्थों में एक विशेष प्रकार का स्वाद व सुगन्ध आ जाती है। जिन पदार्थों को कम तापक्रम पर ही बनाया जाता है उनमें यह अवगुण अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अतः घोल बनाते समय ऐसे पदार्थ ही प्रयोग में लाना चाहिये जिनमें कोई स्वाद या सुगन्ध न हो।

बनाते समय बहुधा पदार्थों से सुगन्ध उड़ जाती है इसलिये उनको केवल उस समय मिलाना चाहिये जब कि पदार्थ बिल्कुल बन कर तैयार हो जाये लेकिन उसमें सुगन्ध-पदार्थ भली भाँति सम्पूर्ण पदार्थ में मिल जाये।

गुणात्मक विश्लेषण

लेखकः - डा० सत्यप्रकाश तथा डा० रामचरण मेहरोत्रा

धात्वीय मूलों का परीक्षण

विलयन तैयार करना—किसी लवण या मिश्रण में उपस्थित मूलों की परीक्षा आरम्भ करने के पहिले उसे किसी उपयुक्त विलायक में घोलकर विलयन तैयार कर लेना आवश्यक है। साधारणतया निम्न विलायकों में क्रमानुसार घोलने का प्रयत्न करना चाहिए:—

(१) पानी, (२) तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (३) सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (४) तनु नाइट्रिक अम्ल तथा (५) सान्द्र नाइट्रिक अम्ल।

प्रत्येक विलायक में पदार्थ की विलेयता का परीक्षण करने के लिए पदार्थ की पृथक् मात्रा लेकर आरम्भ करना चाहिए। लगभग ४-५ घ० से० विलायक एक परीक्षण नली में लेकर उसमें एक चुटकी पदार्थ डालो। देखो कि वह घुलता है या नहीं। इसके अनन्तर उसको बुन्सन ज्वालक की लौ में धीरे-धीरे गरम करो और देखो कि साफ घोल बन जाता है या नहीं। यदि साफ घोल न बने, तो अगले विलायक के साथ परीक्षण करके पदार्थ के लिए उपयुक्त विलायक चुन लो।

समूहों में वर्गीकरण—मूलों के गुणों के आधार पर उन्हें ८ समूहों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) **प्रथम समूह** में रजत, पारद (मरक्यूरस), तथा सीसा हैं क्योंकि इन सबके क्लोराइड जल में अविलेय हैं। इस समूह को **रजत समूह** भी कहते हैं और इसके अवक्षेपण के लिए हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का प्रयोग होता है।

(२) द्वितीय समूह में पारद (मरक्यूरिक), सीसा, बिस्मथ, कैडमियम, ताम्र, आर्सेनिक, एण्टीमनी तथा वंग (टिन) हैं क्योंकि इनके सलफाइड हलके एसिड में अविलेय हैं। इस समूह को

ताम्र-आर्सेनिक समूह भी कहते हैं और इस समूह के सदस्यों को अवक्षिप्त करने के लिए अम्लीय घोल में हाइड्रोजन सलफ़ाइड प्रवाहित करते हैं।

(३) **तृतीय समूह** के सदस्य लोहा, क्रोमियम तथा ऐल्युमीनियम हैं। इस समूह के मूलों के हाइड्रौक्साइड अमोनियम क्लोराइड तथा अमोनिया मिश्रण में अविलेय हैं। इस समूह को **लोह समूह** भी कह सकते हैं और इसके अवक्षेपण के लिए अमोनियम क्लोराइड तथा अमोनिया घोल का प्रयोग करते हैं।

(४) **चतुर्थ समूह** में यशद (ज़िंक), मैंगनीज़, निकेल तथा कोबल्ट हैं। इन चारों धातुओं के सलफ़ाइड अम्लीय घोल में तो विलेय हैं परन्तु क्षारीय घोल में अवक्षिप्त हो जाते हैं। इस समूह को **यशद समूह** भी कह सकते हैं और इनको अवक्षिप्त करने लिए क्षारीय घोल में हाइड्रोजन सलफ़ाइड प्रवाहित करना चाहिए।

(५) **पञ्चम समूह** के सदस्य कैलसियम, स्ट्रौन्शियम तथा बेरियम हैं। इसे **कैलसियम समूह** भी कहते हैं और इन तीनों के कार्बोनेटों को अमोनियम कार्बोनेट द्वारा अवक्षिप्त करते हैं क्योंकि शेष मूलों में इन्हीं के कार्बोनेट अविलेय हैं।

(६) **षष्ठ समूह** में मैगनीसियम है, मैगनीसियम का अवक्षेपण सोडियम फ़ॉसफेट से किया जाता है।

(७) **सप्तम समूह** में सोडियम तथा पोटैसियम हैं। इनके लवण उपर्युक्त किसी भी समूह में अवक्षिप्त नहीं होते और मूल मिश्रण में इनकी परीक्षा बुन्सन ज्वाला के रङ्गों द्वारा करते हैं।

(८) **अष्टम समूह** में केवल अमोनियम है। इसकी परीक्षा मूल मिश्रण को कास्टिक सोडा के साथ गरम करके करते हैं।

प्रथम या रजत समूह

[Pb, Ag, Hg (ous)]

पानी या नाइट्रिक अम्ल वाले घोल में तनु हाइड्रोक्लारिक अम्ल डालने से लेड क्लोराइड, सिलवर क्लोराइड तथा मरक्यूरस क्लोराइड अवक्षिप्त हो जाते हैं। इनकी परीक्षा निम्न सारणी में दी गई विधि से कर सकते हैं :

अवक्षेप को थोड़े जल के साथ गरम करो और घोल का गरम-गरम ही छान लो ?

<table>
<tr><td rowspan="2">निस्यन्द :
लेड क्लोराइड ।
उपर्युक्त निस्यन्द में एसीटिक एसिड तथा पोटैसियम क्रोमेट के घोल डालो । यदि पीला अवक्षेप आवे, तो सीसा (Pb) उपस्थित ।</td><td colspan="2">अवशेष : सिलवर क्लोराइड तथा मरक्यूरस क्लोराइड । अवशेष को अमोनिया से प्रतिकृत करो और छान लो :</td></tr>
<tr><td>निस्यन्द : सिलवर अमोनिया क्लोराइड ।
इसमें नाइट्रिक अम्ल आधिक्य में डालने पर यदि सफ़ेद अवक्षेप प्राप्त हो, तो रजत (Ag) उपस्थित ।</td><td>अवशेष :
यदि काला है तो पारद [Hg (ous)] उपस्थित ।</td></tr>
</table>

द्वितीय या ताम्र-आर्सेनिक समूह

[Hg(ic), Pb, Bi, Cu, Cd, As, Sb, Sn]

प्रथम समूह के अवक्षेपों को छानने के अनन्तर जो निस्यन्द प्राप्त हो, उसमें हाइड्रोजन सलफ़ाइड प्रवाहित करो। यदि अवक्षेप प्राप्त हो तो द्वितीय समूह के तत्व उपस्थित हैं। अवक्षेप को छान लो और निस्यन्द को पानी से हलका करके फिर हाइड्रोजन सलफ़ाइड प्रवाहित करो। यह क्रिया तब तक करो जब तक छानने के बाद निस्यन्द में और अवक्षेप न आवे। सारे अवक्षेप को एकत्रित करके पीत अमोनियम सलफ़ाइड से प्रतिकृत करो और मिश्रण को छान लो —

अवशेष :

मरक्यूरिक, लेड, बिसमथ, कापर तथा कैडमियम सलफाइड इसे ताम्र उप समूह कह सकते हैं।

निस्यन्द :

प्राप्त निस्यन्द का एक भाग लेकर उसमें तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल आधिक्य में डालो। यदि अवक्षेप सफ़ेद हो तो आर्सेनिक, एण्टीमनी तथा वंग (टिन) अनुपस्थित।

यदि उपर्युक्त क्रिया में अवक्षेप पीला, भूरा या सफ़ेद के अतिरिक्त और किसी भी रंग का आवे तो आर्सेनिक, एण्टीमनी तथा वंग (टिन) उपस्थित।

इन तीनों मूलों के समूह को आर्सेनिक उपसमूह कह सकते हैं।

इन दोनों उपसमूहों की परीक्षा निम्न सारणी के अनुसार की जा सकती है।

(क) ताम्र उपसमूह

अमोनियम सलफ़ाइड में अविलेय ताम्र समूह के सलफ़ाइडों को पानी से धो कर नाइट्रिक अम्ल (३ सा) से प्रतिकृत करो ३ सा नाइट्रिकअम्ल बनाने के लिए सान्द्र नाइट्रिक अम्ल के १ भाग में ३ भाग पानी मिलाओ। उपर्युक्त मिश्रण को थोड़ी देर गरम करके छान लो।

अवशेष : मरकरीसलफ़ाइड इसे अम्लराज ($HCl + HNO_3$) में गरम करके घोलो। घोल को हलका करके छानो और निम्न परीक्षण करो :

(१) घोल + स्टैनस क्लोराइड। सफ़ेद अथवा काला अवक्षेप। पारद (Hg) उपस्थित

(२) घोल + चमकदार ताम्र छीलन। ताम्रपृष्ठ पर पारे का संचय। पारद उपस्थित।

निस्यन्द : लेड, बिस्मथ, कॉपर, कैडमियम नाइट्रेट। इसमें थोड़ा सा एलकोहल और तनु सलफ्यूरिक अम्ल डालो। जो अवक्षेप आये उसे छान लो।

- **अवक्षेप :** सफ़ेद लेड सलफेट। इसे अमोनियम एसीटेट में घोलो और पोटैसियम क्रोमेट डालो। यदि पीला अवक्षेप तो सीसा (Pb) उपस्थित
- **निस्यन्द :** बिस्मथ, कॉपर, कैडमियम लवण। इसमें अमोनिया आधिक्य में डालो। जो अवक्षेप आये, उसे छान लो।
  - **अवक्षेप :** सफेद बिसमिथ हाइड्रौक्साइड। इसे सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में घोल कर बहुत से जल के साथ मिला दो। यदि सफेद अवक्षेप तो बिस्मथ (Bi) उपस्थित
  - **विलयन,** कापर, कैडमियम लवण। यदि यह नीला है तो ताम्र (Cu) उपस्थित।
    - उपर्युक्त निस्यन्द + एसीटिक अम्ल आधिक्य में + पोटैसियम फेरोसायनाइड। लाल अवक्षेप या रंग आवे तो ताम्र (Cu) अनुमोदित।
    - उपर्युक्त निस्यन्द में हाइड्रोजन सलफ़ाइड प्रवाहित करो। जो अवक्षेप आवे उसमें हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डालो। घोल को छान कर उसे पानी से हलका करो और फिर हाइड्रोजन सलफ़ाइड प्रवाहित करो। यदि पीला अवक्षेप आये तो कैडमियम (Cd) उपस्थित।

(ख) आर्सेनिक समूह

यदि पीत अमोनियम सलफ़ाइड वाले घोल में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल आधिक्य के डालने पर सफेद में अतिरिक्त किसी भी रङ्ग का अवक्षेप आवे तो अमोनियम सलफ़ाइड वाले पूरे निस्यन्द में अम्ल डालकर पूरा अवक्षेप प्राप्त कर लो। इस अवक्षेप को धो कर उसे सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के साथ उबालो और छान लो।

अवशेष :	निस्यन्द : टिन तथा एण्टीमनी क्लोराइड। इसको दो भाग में विभक्त करो।		
आर्सेनिक सलफ़ाइड। इसे सान्द्र नाइट्रिक अम्ल के साथ गरम करके घोल लो। घोल + अमोनियम मॉलिबडेट। यदि बसन्ती अवक्षेप तो आर्सेनिक (As) उपस्थित।	निस्यन्द – ज़िक-प्लैटिनम युग्म यदि प्लैटिनम पर काला रंग चढ़े, तो एण्टीमनी (Sb) उपस्थित।	विलयन में लोह-चूर्ण या कील डाल कर उबालो। एण्टीमनी धातु के काले कण अवक्षिप्त हो जायेंगे। इन्हें छान कर अलग करो।	
		अवशेष : एण्टीमनी। इसको टारटेरिक तथा नाइट्रिक अम्ल में घोलकर हाइड्रोजन सलफ़ाइड प्रवाहित करो। यदि नारङ्गी अवक्षेप आये तो एण्टीमनी (Sb) उपस्थित।	निस्यन्द : इसमें मरक्यूरिक क्लोराइड डालो। यदि सफेद या काला अवक्षेप आये तो वंग (Sn) उपस्थित

तृतीय या लोह समूह

[Fe, Cr, Al]

द्वितीय समूह के अवक्षेप को छानने के अनन्तर जो निस्यन्द प्राप्त हो उसे थोड़ी देर तक उबालो, जिससे उसमें विलीन हाइड्रोजन सलफाइड निकल जाये। अब घोल में थोड़ा सा सान्द्र नाइट्रिक अम्ल डाल कर उसे उबालो जिससे फेरिक लवण फेरस में ऑक्सीकृत हो जाये। घोल में अमोनियम क्लोराइड घोल (लगभग १० घ० से०) और अमोनिया (आधिक्य में) डालो और धोओ। जो अवक्षेप आये, उसे छान लो।

अवशेष : फेरिक, क्रोमिक तथा ऐल्युमीनियम हाइड्रौक्साइड। इसको कास्टिक सोडा के साथ दो तीन बार गरम करो और फिर ब्रोमीन जल डाल कर हिलाओ और गरम करो। मिश्रण को छान लो।

अवशेष : फेरिक हाइड्रौक्साइड।	निस्यन्द को दो भागों में बाँट लो।	
इसको नाइट्रिक अम्ल में घोल लो। प्राप्त घोल + पोटैसियम फेरोसायनाइड। यदि गहरा नील। अवक्षेप तो लोह (Fe) उपस्थित।	निस्यन्द + एसीटिक अम्ल (आधिक्य में) + पोटैसियम क्रोमेट यदि। पीला अवक्षेप तो क्रोमियम (Cr) उपस्थित।	निस्यन्द + अमोनियम क्लोराइड (अधिक्य में)। यदि सफेद अवक्षेप तो ऐल्युमीनियम (Al) उपस्थित।

चतुर्थ या यशद समूह

[Co, Ni, Zn, Mn]

तृतीय समूह के अवक्षेपों को छानने के बाद जो निस्यन्द प्राप्त हो उसमें हाइड्रोजन सलफ़ाइड प्रवाहित करो। प्राप्त अवक्षेप को धोकर उस पर तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डाल कर हिलाओ और फिर छान लो।

अवशेष : निकेल तथा कोबल्ट सलफ़ाइड। इनको सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल तथा पोटैसियम क्लोरेट के एक कण के साथ गरम करके घोल लो।

घोल को वाष्पीकृत करके सुखा लो। चूर्ण को पानी या तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में घोलो। इसमें सोडियम बाइकार्बोनेट चूर्ण आधिक्य में डालो और ब्रोमीन जल डाल कर खूब हिलाओ। यदि ठंढे में ही हरा रंग आवे, तो कोबल्ट (Co) उपस्थित।

उपर्युक्त घोल को अब गरम करो। यदि काला अवक्षेप आवे, तो निकेल (No) भी उपस्थित।

निस्यन्द : जिंक तथा मैंगनीज़ क्लोराइड। इस घोल को उबाल करके इसमें विलीन हाइड्रोजन सलफ़ाइड पूरी तरह से निकाल दो। अब इसमें कास्टिक सोडा आधिक्य में डालो और छान लो।

निस्यन्द : जिंक लवण। इसमें हाइड्रोजन सलफ़ाइड प्रवाहित करो। यदि सफ़ेद या हरा सा अवक्षेप आवे, तो यशद (Zn) उपस्थित।

अवशेष : मैंगनीज़ हाइड्रौक्साइड। इसे टंकण मौक्तिक में लेकर परीक्षण करो। कत्थई रंग का मुक्ता प्राप्त हो तो मैंगनीज (Mn) उपस्थित।

(२) अवक्षेप को सोडियम कार्बोनेट तथा पोटैसियम नाइट्रेट के साथ गलाओ। यदि हरा पदार्थ मिले जो अम्ल के साथ गुलाबी रंग दे, तो मैंगनीज़ (Mn) का होना पुष्ट।

पञ्चम या कैलसियम समूह

[Ba, Sr, Ca]

चतुर्थ समूह से प्राप्त निस्यन्द को उबाल कर कुछ सान्द्र कर के छान लो और अवक्षेप लो और अब इसमें अमोनियम कार्बोनेट डाल कर गरम करो और हिलाओ। यदि सफ़ेद अवक्षेप हो तो एसीटिक अम्ल में घोल लो। अब इसमें पोटैसियम क्रोमेट डालो। यदि अवक्षेप आवे तो आधिक्य में क्रोमेट डाल कर छान लो।

अवशेष : बेरियम क्रोमेट। इसकी ज्वाला-परीक्षा करो। यदि हरे रंग की ज्वाला आये, तो बेरियम (Ba) उपस्थित।

निस्यन्द : स्ट्रौंशियम तथा कैलसियम एसीटेट। इसमें अमोनियम सलफ़ेट डालो। यदि अवक्षेप आये, तो आधिक्य में अमोनियम सलफ़ेट डाल कर अवक्षेप छान लो।

अवशेष : सफ़ेद स्ट्रौंशियम सलफ़ेट। इसकी ज्वाला-परीक्षा करो। यदि स्थायी अरुण ज्वाला प्राप्त हो तो स्ट्रौंशियम (Sr) उपस्थित।

निस्यन्द : कैलसियम एसीटेट। इसमें अमोनियम आक्ज़ेलेट डालो। यदि सफ़ेद अवक्षेप आये, तो कैलसियम (Ca) उपस्थित।

इस अवक्षेप की ज्वाला-परीक्षा करो। यदि क्षणिक लाल ज्वाला आये, तो कैलसियम (Ca) का होना पुष्ट।

षष्ठ या मैगनीसियम समूह

पञ्चम समूह के अवक्षेपों को पृथक् करके प्राप्त निस्यन्द में सोडियम फॉसफेट डाल कर काँच की छड़ से हिलाओ। यदि सफेद अवक्षेप आये तो मैगनीसियम (Mg) उपस्थित।

सप्तम या सोडियम समूह

मूल मिश्रण को एक शीशे के ऊपर लेकर उस पर सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डालो। प्लैटिनम तार से ज्वाला-परीक्षा करो।

यदि ज्वाला स्वर्ण-पीत रंग की हो तो सोडियम (Na) उपस्थित। यदि ज्वाला दो कोबल्ट काँचों से देखने पर भी बैंजनी रंग की दिखलाई पड़े, तो पोटैसियम (K) भी उपस्थित।

अष्टम या अमोनियम समूह

मूल मिश्रण एक चुटकी लेकर कास्टिक सोडा के साथ गरम करो। यदि अमोनिया गैस निकले तो अमोनियम मूल (NH_4) उपस्थित।

अम्लीय मूलों का परीक्षण

साधारणतया तुम्हें निम्न अम्लीय मूलों का परीक्षण करना होगा :

(१) आयोडाइड, (२) आक्जेलेट, (३) एसीटेट, (४) कार्बोनेट, (५) क्लोराइड, (६) क्लोरेट, (७) नाइट्राइट, (८) नाइट्रेट, (९) फॉसफेट, (१०) क्लोराइड, (११) बोरेट, (१२) ब्रोमाइड, (१३) सलफाइट, (१४) सलफाइड, (१५) सलफेट।

उपर्युक्त अम्लीय मूलों का परीक्षण करने के लिए निम्न प्रयोग करो।

१. थोड़ा सा ठोस मिश्रण एक परीक्षा-नली में लेकर उस पर ५-६ घ० से० तनु सलफ्यूरिक अम्ल डालो। ठण्ढे में जो प्रतिक्रिया हो उसे देखो। इसके बाद इस नली को गरम करो और देखो कि कोई क्रिया होती है या नहीं। यदि कोई गैस निकलती प्रतीत हो तो उसके रंग तथा गन्ध पर ध्यान दो।

निरीक्षण	निष्कर्ष	पोषक परीक्षण
१. ठण्ढे में गैस निकलती है जो गरम करने पर बढ़ जाती है। गैस को चूने के पानी में प्रवेश कर के देखो। वह दूधिया हो जाता है।	कार्बोनेट	
२. रंगहीन गैस निकलती है जिसमें गन्धक के जलने की गन्ध होती है।	सलफाइट	पोटैसियम डाइक्रोमेट में डूबा निस्यन्द पत्र यदि गैस में रक्खा जाये, तो वह हरा हो जाता है।
३. रंगहीन गैस निकलती है जिसमें हाइड्रोजन सलफाइड की गन्ध होती है।	सलफाइड	लेडएसीटेट में डूबा निस्यन्द-पत्र यदि गैस में रक्खा जाता है, तो वह काला हो जाता है।
४ लाल भूरी गैस निकलती है जिसकी तीक्ष्ण गन्ध होती है।	नाइट्राइट	एक निस्यन्द-पत्र को पोटैसियम आयोडाइड, स्टार्च तथा तनु सलफ्यूरिक अम्ल में डुबो कर गैस में रक्खो, तो वह नीला हो जाता है।

२ एक चुटकी मिश्रण लेकर उसे सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल के साथ गरम करो।

निरीक्षण	निष्कर्ष	पोषक परीक्षण
१. कड़कड़ाने की ध्वनि के साथ पीली गैस निकलती है।	क्लोरेट	—
२. सिरके की महक	एसीटेट	मिश्रण के एक भाग को पानी के साथ गरम कर के छान लो। प्राप्त निस्यन्द में फेरिक क्लोराइड डालो, तो वह रक्त सा लाल हो जायेगा।
३. अम्लीय वाष्प निकलते हैं, जो ताम्र छीलन डालने पर लाल या भूरे गैस के रूप में परिवर्त्तित हो जाते हैं।	नाइट्रेट	मिश्रण को पानी में घोलकर छान लो। निस्यन्द में थोड़ा फेरस सलफेट घोल डालकर हिलाओ। अब परीक्षा-नली की दीवार के सहारे सान्द्र सलफ्यूरिक अम्ल की कुछ बूँदें डालो। यदि नाइट्रेट उपस्थित है तो अम्ल तथा घोल के सङ्गम पर 'भूरे रङ्ग का विलय' प्राप्त होगा।
४. कार्बन मोनौक्साइड तथा कार्बन डाइऑक्साइड गैस का मिश्रण निकलता है। कार्बन मोनौक्साइड गैस नीली ज्वाला से जलती है और कार्बन डाइऑक्साइड चूने के पानी को दूधिया कर देती है।	ऑक्जेलेट	(१) मिश्रण को थोड़े सोडियम कार्बोनेट तथा पानी के साथ १० मिनट तक उबाल कर छान लो और जो निस्यन्द प्राप्त हो उसमें एसीटिक अम्ल आधिक्य में डालो और अब कैलसियम क्लोराइड घोल डालो। यदि ऑक्जेलेट उपस्थित है तो एक सफेद अवक्षेप आयेगा। (२) उपर्युक्त अवक्षेप को लेकर उसे सलफ्यूरिक अम्ल में घोल लो और उसमें पोटैसियम परमेंगनेट का घोल डालो तो वह विरंजित हो जायेगा।
५. अम्लीय तीक्ष्ण गन्ध वाले वाष्प निकलते हैं। यदि मिश्रण में थोड़ा मैंगनीज़ डाइऑक्साइड डाल दी जाये तो क्लोरीन गैस निकलती है।	क्लोराइड	मिश्रण को सोडियम कार्बोनेट तथा जल के साथ १० मिनट उबाल कर छान लो और प्राप्त विलयन पर नाइट्रिक अम्ल आधिक्य में डालकर सिलवर नाइट्रट का घोल डालो। यदि क्लोराइड उपस्थित है तो नाइट्रिक अम्ल में अविलेय तथा अमोनिया में विलेय एक सफेद अवक्षेप प्राप्त होगा।

६. लाल भूरे वाष्प जिनमें ब्रोमीन की गन्ध होती है।	ब्रोमाइड	मिश्रण को सोडियम कार्बोनेट तथा जल के साथ उबाल कर जो विलयन प्राप्त हो उसमें सिलवर नाइट्रेट घोल डालने पर हल्का पीत अवक्षेप प्राप्त होगा। यह अवक्षेप नाइट्रिक अम्ल में अविलेय परन्तु सान्द्र अमोनिया में विलेय होगा।
७. अयोडीन की गन्ध वाले बैंजनी वाष्प निकलते हैं।	आयोडाइड	ब्रोमाइड के लिए जो उपर्युक्त प्रयोग दिया गया है, उसमें गहरा पीला अवक्षेप प्राप्त होगा। यह अवक्षेप नाइट्रिक अम्ल तथा सान्द्र अमोनिया दोनों में अविलेय होगा।

(क्रमशः)

यांत्रिक चित्रकारी

गतांक से आगे

यांत्रिक रचनाओं और नकशों की जांच

लेखकः श्री ओंकार नाथ शर्मा (आगरा)

नकशों में गलतियाँ छोड़ने से भारी कीमत चुकानी होती है

देखने में कोई नक़शा चाहे कितना भी सुन्दर प्रतीत होता हो यदि उसकी बनावट अशुद्ध है अथवा उसमें दिये गये नामों में कुछ अशुद्धियाँ और गलतियाँ रह गई हों तो वह कारखाने के उपयोग के लिये बिलकुल बेकार समझा जायगा। विशेष कर उन कारखानों में जहाँ कि यंत्र आदि का निर्माण बहुत अधिक मात्रा में होता है। उनके उपयोग के लिये बनाये गये किसी नक़शे में यदि कोई गलती रह जाय तो उसके कारण बहुत से धन और समय की बरबादी हो सकती है। उदाहरण के लिये मान लीजिए, किसी कारखाने को किसी एक ही प्रकार के ५०० यंत्रों के निर्माण का आदेश मिला है। अब नकशों की सहायता से फरमे बन गये, उन फरमों के जरिये से ढलाईखाने ने भी अपना काम जल्दी से जल्दी यथा सम्भव पूरा कर दिया और उन पुर्जों पर आवश्यक खराद आदि का काम भी पूरा होगया। और लोहारखाने आदि अन्य विभागों ने भी उक्त ५०० यंत्रों के आदेश का काम समाप्त कर दिया और उन पर आवश्यक खराद भी हो गई फिर जब सर्वप्रथम यंत्र को जोड़ कर खड़ा किया गया तब मालूम पड़ा कि कुछ पुर्जे अपने स्थान पर उचित प्रकार से फिट नहीं होते अथवा अपना कार्य नहीं करते। खोजने पर मालूम पड़ा कि वे पुर्जे तो नकशे के अनुसार ही सही-सही बने हैं लेकिन मूल अशुद्धि नक़शे की है। अब उस अशुद्धि को ढकने के लिये, शायद कुछ नये पुर्जे ढलवाने पड़ें, मौजूदा पुर्जों को दुबारा खरदवाना पड़े अथवा उस यंत्र

की बनावट में कुछ छोटी-मोटी तब्दीलियाँ करनी पड़ें जो कि एक प्रकार से अनावश्यक सी हैं, अतः इस सब की वजह से यंत्रों के तैयार होने और आदेश के पूरा होने में व्यर्थ की देर लग जावेगी और सम्भव है उस संस्था को ठेके में भारी आर्थिक हानि भी उठानी पड़े। ऐसे मौके पर जब हम नक़शे की तरफ़ ध्यान देते हैं तो उसमें कोई बड़ी ही मूर्खतापूर्ण गलती दिखाई देती है। उदाहरण के लिये, या तो नाप के अंकों के साधारण जोड़ या बाकी में गलती कर दी गई है, अथवा कोई नाम दुबारा और बेकार दे दिया गया है और नकशा बनाते समय उसके और नापों में कई संशोधन करने के बाद उस नाप में संशोधन करना रह गया अथवा किसी विशेष नाप को प्रदर्शित करने वाला कोइ बाण का मत्था किसी गलत लाइन पर लगा दिया गया।

नकशे केवल सही ही नहीं होने चाहिये बल्कि साफ और सुपाठ्य भी होने चाहिये। सुपाठ्य से आशय है कि उस नक़शे की प्रत्येक रेखा इस प्रकार साफ और नियमानुसार बनी हो कि वह रचना करने वाले यांत्रिक के विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दे। प्रदर्शित वस्तु के प्रलम्बित दृश्यों, काटों (Sections) और अन्य दृश्यों, नामों और सूचनाओं को व्यवस्थित रूप से अंकित करना भी सुपाठ्यता में शामिल है। प्रत्येक रेखा को एक दूसरे से सफाई के साथ जोड़ना, अंकों और अक्षरों को सुन्दर लिखना और नकशे को सर्वथा दाग-धब्बे रहित बनाना सफाई कहलाती है।

नकशों की जांच करने की आवश्यकता:—

सुव्यवस्थित ढंग के आधुनिक बड़े कारखानों में रिवाज होता है कि जब नकशे सब प्रकार से बनकर तैयार हो जाते हैं तब नकशे-घर का अफसर जो कि चीफ ड्राफ्टस्मैन अथवा मुख्य यांत्रिक-चित्रकार स्वयं उनकी बारीकी से जांच करता है और जब उसे समय नहीं मिलता तब उसके अन्य अनुभवी सहकारी इस काम को करते हैं। कुई छोटे नकशे-घरों में रिवाज होता है कि एक ड्राफ्टस्मैन (यांत्रिक चित्रकार) के बनाये नकशों की जाँच दूसरा यांत्रिक चित्रकार करता है; खैर जो कुछ भी हो किसी भी यांत्रिक चित्रकार को अपने खुद के बनाये नकशों की जाँच नहीं करनी चाहिये क्योंकि अक्सर वह निज के विचारों में इतना लिप्त रहता है कि अपनी गलती नहीं पकड़ सकता। जाँच करने का उद्देश्य केवल नापतोल की ही गलतियाँ पकड़ना नहीं होता बल्कि रचना के मूल सिद्धान्तों और यंत्र की कार्यप्रणाली की बारीकी से आलोचना करना भी होता है।

जांच करने के लिये ट्रेसिंग की जाँच करना अधिक सुविधाजनक होता है, लेकिन कई लोग नीललिपि को अधिक पसंद करते हैं क्योंकि जाँच करने वाला उस पर अधिक स्वतंत्रता से कांट-छांट और चिह्न आदि बना सकता है और उसकी सहायता से फिर बाद में ट्रेस करनेवाले ट्रेसिंग को सफाई और होशियारी से सुधार सकते हैं। इस हालत में, ट्रेसिंग पर सुधार करने वाले के बाद, जाँच करने वाले को ट्रेसिंग का अपनी नीललिपि से फिर मिलान कर देखना चाहिये कि उसकी इच्छानुसार उसमें सुधार किये गये हैं या नहीं। जाँच के लिये जब नीललिपि का उपयोग किया जाय तब उसकी गलतियाँ और सुधार तो उस पर लाल पेंसिल से लिखने चाहिये और जो नाप आदि सही हों उनके अनुमति सूचक चिन्ह पीली पेंसिल से बनाने चाहिये, फिर जाँच करने वाले को ट्रेसिंग पर अपने हस्ताक्षर भी करने चाहिये और जाँचे हुए नीललिपि को भविष्य में हवाले के निमित्त सुरक्षित रख देना चाहिये।

जाँच करने का तरीका :—नकशों की जांच करने का काम यथाक्रम होना चाहिये। कभी कोई बात जांच ली और कभी कोई बात जांच ली ऐसा करने से कई बातें निगाह से छूट ही जाती हैं। अतः जाँच करने वाले को अपने कार्य की एक ठोस योजना बना लेनी चाहिये जिसमें प्रत्येक विषय के जुदा-जुदा विभाग हों और जाँच करते समय एक

ही विषय पर अपने विचारों को केन्द्रित कर सके। यहाँ पर जो अनुभवपूर्ण योजना उदाहरण के लिये दी गई है वह चार विभागों में है यथा—(१) रचना, (२) चित्रण, (३) नाप (४) सूचनायें। पाठकों को बता देना आवश्यक है कि सब प्रकार के यंत्रों की रचना और नकशों की जाँच करने के लिये एक ही योजना काम नहीं दे सकती, विषय की भिन्नता के साथ साथ उसमें भी भिन्नता होना अनिवार्य है। अतः पाठक अपने अपने व्यापार और काम के अनुकूल अपनी अपनी योजनायें बना लें और उसके अनुसार काम किया करें।

रचना (General Design)

१—सिद्धान्तः—जिन सिद्धान्तों पर आप के यंत्र की रचना की गई है, उसके अनुसार क्या वह सम्पूर्ण यंत्र और उसके प्रत्येक अंग वैज्ञानिक कसौटी पर पूरे उतरते हैं ?

२—उपयुक्त पदार्थ का चुनावः— आपकी विचाराधीन वस्तु का निर्माण करने के लिये क्या उपयुक्त पदार्थ चुना गया है ? यदि हां, तो देखिये कि उस पदार्थ या धातु का नाम नियत जगह पर लिखा गया है या नहीं। यदि किसी विशेष कारण-वश किसी नई प्रकार की धातु अथवा पदार्थ या मिश्रण का उपयोग करना पड़े तो देखिये कि ढलाई-खाने अथवा अन्य प्राथमिक विभागों के पथ प्रदर्शन से लिये उस पदार्थ की पूरी तफसील अथवा मिश्रण का नुसखा उस नकशे पर पूर्ण अथवा संकेत रूप से यथास्थान दिया गया है या नहीं।

३—मजबूतीः—(क) देखिये कि आपके विचाराधीन अदद पर तनाव बल है अथवा संम्पीडन बल (Compression) है अथवा चिराव बल है और वह भी सरल (Simple), संयोजित (Compound) अथवा मिश्रित (Complex) प्रकार का है ?

(ख) देखिये कि उचित अभयगुणक का (Factor of safety) चुनाव किया गया है या नहीं। यह चुनाव करते समय खोटी कारीगरी और दुरुपयोग को न भूलिये।

(ग) जिन जिन अददों में चूड़ियां बनाई जावेंगी, क्या उन चूड़ियों का आकार उस अदद के माल और उस पर पड़ने वाले बल के अनुकूल हैं अर्थात् क्या वे उस बल को सह लेंगी ?

४—गणित की सूक्ष्मताः—देखिये कि भिन्न भिन्न मापों का गणित करने में अव्यवहारिक और निरर्थक सूक्ष्मता तो कहीं अपेक्षित नहीं की गई है ? उदाहरण के लिये मान लीजिये कि आप किसी ढलाई अथवा गढ़ाई के अदद की जांच कर रहे हैं और ड्राफ्टसमैन उसका कोई नाप ८ १/६४" मांग रहा है, लेकिन उस अदद का काम इतना मोटा और स्थूल है कि उसके नाप में १/१६" तक की कमी-बेशी कोई फरक नहीं पैदा करती और उसके आसपास जगह भी काफी है और वहां कोई खराद भी नहीं होने का है तो आप १/६४" को छोड़ कर केवल ८" ही रखिये, लेकिन, हाँ, आगे गणित करने में ५/६४" को न भूलिये अर्थात् उसका समावेश कर लीजिये।

५—चलाऊपन और घिसाई के लिये गुंजाइश

(क) :—सब उभार वाली टक्करें अर्थात वक्ष (Bosses) इतने मोटे बनाये जावें कि जिनको कम से कम तीन बार रंदा करके, फेस (Face) करके अथवा ग्राइंड करके सही किया जासके और बाद में उन्हें चौरस करके उन पर अस्तर (liner) भी कसा जा सके।

(ख) देखिये कि उन छेदों में जिनमें कोई चीज़ चलने के कारण घिसाई हो सकती है बुश लगाये गये हैं या नहीं।

(ग) देखिये कि सब प्रकार के बेयरिंग और घिसाई पड़ने वाले अददों में समायोजन (Adjustment) का प्रबंध किया गया है या नही ? और उन्हें आवश्यकता पड़ने पर ग्राइन्ड करने और "तंग" (रिड्यूस) करने की गुँजाइश रखी गई है या नहीं ?

६—कार्यक्षमता :—(क) देखिये कि आवश्यकतानुसार गोली और बेलन के बेयरिंग और अन्य प्रकार के संघर्षण को कम करने वाले उपकरणों काउ प्रयोग किया गया है या नहीं ?

(ख) देखिये कि चालू पुर्जों पर तेल पहुँचाने के लिये छेद, खाँचे, नालियाँ आदि बनाये गये हैं और लुब्रीकेटर यथा स्थान लगाये गये हैं या नहीं ? यह भी इस प्रकार से लगाये जाने चाहिये कि चालू मशीन में बिना किसी खतरे के तेल देने के लिये पहुँच हो जाय।

७—पहुँच (Accessibility) :—

(क) देखिये कि जो पुर्जा किसी दूसरे पुर्जे में बिठा कर अथवा, वैसे ही, पूरे यंत्र में कहीं पर फिट करना चाहते हैं, वह दूसरे अन्य पुर्जों के फिट हो जाने पर अपने स्थान पर बिना किसी अटकाव या अड़चन के लग भी सकेगा या नहीं अथवा उसका वहां पर लगना केवल आपका स्वप्न मात्र है ?

(ख) यंत्र को जोड़ते या मरम्मत करते समय कारीगरों के औजारों (पाने, पेचकस, छेनी और हथौड़ा) के पहुँचने और उन्हें चलाने के लिये काफी जगह है या नहीं ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि वहां कारीगरी का हाथ भी न पहुँच सके।

(ग) बंद और घिरा हुई जगहों में चलने वाले पुर्जों में तेल दे सकने और उनका निरीक्षण करने के लिये उचित स्थानों पर ढक्कन और खिड़कियां बनाई गई हैं या नहीं ?

८—निरापद कार्य (Safe working)

(क)—देखिये कि आपका विधाराधीन पुर्जा बिना किसा अन्य पुर्जे से टकराये शान्ति से काम कर सकेगा या नहीं और निरापद कार्य के लिये काफी छूट (Clearance) रखी गई है या नहीं ?

(ख)—पुर्जों में तापजनित प्रसारादि के लिए उचित गुंजाइश छोड़ी है या नहीं ?

(ग)—संचालक के निकट, अथवा ऐसे स्थान पर जहाँ कि यंत्र संचालक सम्भवतः कार्यवश जा सकता है, वहां लगे हुए किर्री की गति को दिशा ऐसा तो नहीं हैं जिसमें उसके कपड़े वगैरः पकड़ में आजावें। जहां ऐसी सम्भावना हो वहां ढाल (Safe guards) लगा देनी चाहिये।

(घ) चलते चलते मशीन के किसी भी पुर्जे ढीला होकर खुलने की सम्भावना न रहे और जहां ऐसा होना सम्भव हो वहां पर देखिये कि आवश्यक प्रकार के चेकनट, स्प्रिंगवाशर, तारपिन, काटर, चाबी और पेंच आदि लगाये गये हैं या नहीं ?

(ङ)—शाफ्टों के फ्लेंजों में सेफ्टीकालर इतने ऊँचे बने होने चाहिये कि फ्लेंजों के सब बोल्ट वगैरा कालरों से नीचे नीचे ही रह जावें।

(च)—फीड स्क्रू और फीड शाफ्टों के सिरे पर लगाये जाने वाले हेन्डिल किसी प्रकार के उपयुक्त क्लच के द्वारा ढीले लगाये जाने चाहिये जिससे भूल से भी कोई हेन्डिल चल कर नुक्सान न पहुँचा दे।

साधारण आकृति—(क)—प्रत्येक ढ़ले हुए अदद के लिये ध्यान देकर देखिये कि उसके कोनों, किनारों और मोडों को गोल कर दिया गया है और जहाँ जहाँ भी उसके माल की मोटाई में परिवर्त्तन किया गया है वह एकदम नहीं बल्कि धीरे धीरे और गोलाई अथवा सलामी देकर किया गया है। यह याद रखना चाहिए कि ढलाई में माल की मोटाई का एकदम परिवर्त्तन कर देने से वे उस परिवर्त्तन के स्थान पर विशेषतया कमजोर हो जाते हैं अथवा चटख जाते हैं। क्योंकि मोटा माल देर में और पतला जल्दी ठंडा हो जाता है जिससे उस स्थान पर आंतिरिक चांप (Internal strains) उत्पन्न हो जाते हैं।

(ख) देखिये कि वे गढ़े हुए अदद भी जिन पर कि किसी प्रकार का बल पड़ता है मोटाई परिवर्त्तन (Change of section) के स्थान पर गोलाई दिये गये हैं या नहीं क्योंकि एकदम चांप में भिन्नता पड़ने से वे भी वहीं से टूट जाया करते हैं।

(ग) देखिये कि जहां तक हो सके गढ़ाई के सब अदद सरल आकृति के हों और उनमें अधिक मोड़ वगैर न हों क्योंकि अधिक वक्र अददों का गढ़ना बड़ा कठिन काम होता है।

(घ) देखिये कि वे सब अदद जिन्हें कि किसी विशेष स्थान से ग्राइन्ड किया जायगा, उस स्थान के आरंम्भ और अन्त में साथ के पहिए का अटकाव दूर करने के लिये आवश्यक खांचे (Necked) बना दिये गये हैं या नहीं।

१०—उत्पादन में किफायत:—(क) देखिये कि आपके विचाराधीन पुर्जे की जगह कोई प्रमाणिक बंधेज का (Standard) पुर्जा लगाया जा सकता है, जो वही काम दे? कोई परवाह नहीं कि उसके कारण आपको आसपास के पुर्जों और यंत्र की रचना में थोड़ा हेर फेर करना पड़े। ऐसा करने से उस यंत्र के निर्माण में काफी किफ़ायत होगी। जहां तक हो सके प्रमाणिक बोल्ट, नट, काटर और पिन इत्यादि का ही उपयोग कीजिये।

(ख) देखिये कि आपके विचाराधीन यंत्र का प्रत्येक पुर्जा जैसा कि रचना में (Design) दिखाया गया है वह सब प्रकार से बिलकुल ठीक है और उसमें कुछ भी हेर फेर कर के यंत्र को अधिक अच्छा या सस्ता नहीं बनाया जा सकता?

११—सुन्दरता:—जहां तक हो सके पूरे यंत्र को और उसके एक एक पुर्जे और अदद को सुन्दर वक्र देकर और सुव्यवस्थित ढंग से फिट करके सुरुचिपूर्ण और समरूप (Symmetrical आकृति देने की चेष्टा करनी चाहिए, लेकिन इससे यह कभी नहीं समझना चाहिये कि सुन्दरता के पीछे मजबूती, चलाऊपन और सस्तेपन की उपेक्षा कर दी जाय।

१२—अन्तिम विचार—मान लीजिये कि आपकी यंत्र रचना सब प्रकार से निर्दोष है लेकिन सोचिए कि क्या आपके कारखाने में वैसा यंत्र बनाने के लिये पूर्ण साधन और उपकरण हैं? यदि नहीं है, तो आपको आपकी रचना उन उपकरणों और साधनों के अनुकूल बनानी पड़ेगी।

१ (क) जिगों की रचना के सिद्धान्त

१३—साधारण विचार:—देखिये कि आपका जिग मूर्खोपयोगी (फूल-प्रूफ) बनाया गया है अर्थात् उसमें अदद सदैव ठीक ही तरीके से बैठाया जा सकेगा और गलत तरीके से किसी भी दशा में नहीं बैठाया जा सकेगा।

(ख)—देखिये कि आपका विचाराधीन जिग अथवा फिक्श्चर यथा-साध्य मजबूत परन्तु हलका बनाया गया है या नहीं। हलका बनाने के लिये अनावश्यक माल को कोर (लील) बनाकर निकाल देना चाहिये और मजबूत बनाने के लिये आवश्यकतानुसार जहाँ-तहाँ फलक (वेब) लगा देने चाहिये।

(ग)—देखिये कि खरादोपयोगी तैल और साबुन के मिश्रण के पहुँचने और बाहर निकलने के लिये रास्ता बना है या नहीं।

(ग)—देखिये कि खुरदरे कास्टिंगों को जिग में रखने के लिये काफी छूट रखी गई है या नहीं।

(ङ)—देखिये कि खराद के चिपों (छिलकों) के निकलने के लिये रास्ता है या नहीं, और क्या वे खरादे हुए हिस्से साफ़ भी किये जा सकते हैं या नहीं।

१४—नियुक्ति स्थल (Locating points)

(क)—देखिये कि जिग में रख कर खरादे जाने वाले अदद के कम से कम दो स्थिर अंगों (component parts) की नियुक्ति (location) जिग के तत्सम्बन्धी नियुक्ति स्थलों (locating points) पर हो जाय।

(ख)—देखिये कि खुरदरे कास्टिंगों के लिये नियुक्ति स्थल समायोजनीय (Adjustable) हों।

(ग)—देखिये कि कारीगर जब खरादे जाने वाले अदद को जिग में बैठावे तब वह जिग के नियुक्ति स्थलों को आँख से देख सकता है या नहीं?

१५ — बुशें (क)— देखिये कि जिग में जितनी भी बुशें लगाई जा रही हैं वे सब प्रमाणिक नाप (Standard dimensions) की हैं या नहीं? प्रमाणिक नाप की होने से यह लाभ होगा कि आवश्यकता पड़ने पर, काम करते समय, एक जिग में से बुश निकालकर फौरन दूसरे में लगाई जा सकेगी।

(ख)—देखिये कि जितनी भी बुशें जिग में लगाई गई हैं वे सब जिग के पायों द्वारा बनी सम्मिलित ज्यामितिक आकृति के भीतर-भीतर ही हैं।

(ग)—देखिये कि बरमा मशीन और बोरिंग मशीन पर काम आने वाले जिगों में, गाइड बुशों के सामने टिकाव (Resting Surface) का काफी प्रबंध कर दिया गया है।

१६—क्लैम्प वगैरा (क)—देखिये कि सब क्लैम्प ऐसी जगह और इस प्रकार से लगाये गये हैं, कि खरादते समय वे रुखानी अथवा बरमे के दबाव को भली-भाँति झेल सकें।

(ख)—देखिये कि जहाँ तक सम्भव हुआ है क्लैम्प के अधिक से अधिक भाग, जिग अथवा फिक्श्चर के स्थायी अंग (Integrae part) बना दिये गये हैं।

(ग)—देखिये कि जहाँ तक हो सका है सब क्लैम्पों को खरादे जाने वाले अदद के किसी न किसी टिकाव स्थल (Bearing surface) के सम्मुख लगाया गया है या नहीं, जिससे कि वे दबाव पड़ने पर दम न देने पावें।

(घ)—देखिये कि जिन जिग और फिक्श्चरों को, काम करने के लिये, मशीन के ठीपे बाँधना आवश्यक है, उन में ऐसा कर सकने के लिये आवश्यक स्थानों पर पंजे (lags) बनाये गये हैं या नहीं।

(ङ)—देखिये कि जिग और फिक्श्चरों को उठाने, धरने और खोलने के लिये, आवश्यकतानुसार हेन्डिल वगैरह लगाये गये हैं या नहीं।

(च)—देखिये कि जिगों को कसने और बाँधने के क्लैम्प आदि साधन, यथासाध्य फुर्ती से लगने और खुलने वाले हों, लेकिन उनकी बनावट भी जहाँ तक हो सके बहुत ही सरल होनी चाहिये। क्योंकि ज्यादा पेचीदा (Complicated) साधन जल्दी ही घिस जाते और खराब हो जाते हैं।

१७—जिग अथवा फिक्श्चर के द्वारा निर्माण में किफायत: देखिये कि आपका विचाराधीन जिग अथवा फिक्श्चर इतना कीमती तो नहीं हो जायगा कि जिसके कारण उसकी सहायता से खरादे हुए पुरजे, मौजूदा औजारों के द्वारा तैयार किये जाने के बनिस्बत अधिक खर्चीले पड़ जावें।

सोवियट विज्ञान

लेखक—श्री उल्यानो वस्काया

सोवियट क्रान्ति के पहले रूस में विज्ञान का काम मास्को तथा विश्वविद्यालय वाले कुछ बड़े बड़े शहरों में होता था। अक्टूबर की क्रान्ति ने लोगों की रचनात्मक प्रवृत्तियों को विकसित होने का अवकाश दिया; इस कारण सोवियट संघ के सभी प्रजातन्त्रों तथा देश के दूर दूर के भागों में विज्ञान का काम तेजी के साथ किया जाने लगा। इस समय सभी प्रजान्त्रों में या तो अपने विज्ञान परिषद हैं या अखिल संघीय विज्ञान परिषद की शाखाएँ हैं।

दूसरे महायुद्ध के समय में देश की वैज्ञानिक संस्थाएँ बड़ी सहायक सिद्ध हुईं। उदाहरणार्थ, विज्ञान परिषद की भूगर्भशास्त्र की संस्था में अनेकों स्थानों पर लोह तथा अलोह धातुओं की खोज

की। इसी कारण निकोपोल के मैंगनीज की कमी कज़ाकस्तान ने पूरी कर दी। नए लोहे की खोज के कारण धातु-संशोधन के नए कारखाने बनाए जा सके। विज्ञान परिषद् की शाखा के वैज्ञानिकों ने कई ऐसे अनुसन्धान किए जिनके कारण कोयले, ताँबे, अलमुनियम, निकल इत्यादि की उत्पत्ति बढ़ाई जा सकी। कुछ नए तेल वाले प्रान्तों का विशेष अध्ययन किया गया और तेल निकालने के तरीकों में सुधार सुझाए गए। उद्योग-धन्धों तथा चिकित्सा से सम्बन्ध रखने वाले अनेकों पदार्थ सोवियट संघ के दूर दूर के भागों में खोज निकाले गए।

युद्ध के बाद के वर्षों में केन्द्रीय विज्ञान परिषद् की शाखाओं की संख्या बढ़ती ही गई। इस समय इसकी छः शाखाएँ हैं और सात अनुसन्धान के केन्द्र। ये शाखाएँ, यूराल, पश्चिमी साइबेरिया, तुर्कमेनिया, किर्गीजिया, कज़ाकस्तान, ताजिकिस्तान और कज़ान में हैं; और अनुसन्धान के केन्द्र सुदूर पूर्व, कोमी प्रजातन्त्र, करेलियनफिनिश प्रजातन्त्र, मोल्डेवियन प्रजातन्त्र, कोला प्रायद्वीप, दघेस्तान प्रजातन्त्र तथा सखालीन में हैं।

विज्ञान परिषद् की शाखाओं का काम अपने अन्तर्गत अनेकों अनुसन्धानिक केन्द्रों का नियंत्रण करना है; और अनुसन्धान केन्द्रों का काम यह होता है कि वे किसी प्रदेश की प्राकृतिक सम्पत्ति, अर्थ-व्यवस्था तथा संस्कृति का अध्ययन करें।

सब मिलाकर अनुसन्धानिक संस्थाओं की संख्या ३०, प्रयोगशालाओं की ८०, पौधों के विभाग की ७, इत्यादि। इन संस्थाओं में लगभग ढाई हज़ार वैज्ञानिक और शिष्य काम करते हैं। इन संस्थाओं द्वारा किए गए अनुसन्धानों में अनेक बहुत प्रयोगात्मक महत्व रखते हैं। अधिकांश अनुसन्धानों का उद्देश्य किसी विशेष प्रान्त की विशेष समस्याएँ सुलझाना होता है। उदाहरणार्थ, विज्ञान परिषद् की शाखाओं ने यूराल की धातुओं की नसों का विशेष अध्ययन किया है; इन धातुओं की बनावट का अध्ययन पहली बार किया गया और दुर्लभ धातुओं की खोज की गई।

पश्चिमी साइबेरिया की शाखा के वैज्ञानिकों ने अनेकों प्रकार की मशीनें, गुफाओं और गोदामों में काम करने के लिए तैयार कीं; इनसे माल लादने का काम लिया जाता है। इनमें लगे हुए नए और विशेष यंत्रों के कारण सतह में काम बड़ी उपयोगिता के साथ किया जा सकता है। सुदूर पूर्व में कोलतार का विशेष अध्ययन किया गया; इसके फलस्वरूप प्लास्टिक की उत्पत्ति में बड़ी सहायता पहुँची।

विज्ञान परिषद् की शाखाओं के वैज्ञानिकों ने सभी प्रजातन्त्रों में उनकी भूमि और पौधे सम्बन्धी नक्शे तैयार किए और औषधि के अनेकों पौधों के आविष्कार ने चिकित्सालयों को यह अवसर दिया कि औषधियों की उत्पत्ति में वे स्थानीय पौधों का उपयोग कर सकें। पहाड़ों पर स्थित हरी, चरने वाली भूमि के विषय में तुर्कमेनियन वैज्ञानिक संस्था ने एक तरीका खोज निकाला है। तुर्कमेनियन और ताजिक शाखाओं ने पशुओं की नई जातियों के पैदा करने और पुरानी, अर्थात इस समय की जातियों में शारीरिक विकास करने के विषय में उपयोगी आविष्कार किए हैं।

पहाड़ी टैगा के केन्द्र में शाकभाजी की खेती की ओर विशेष प्रयत्न किया गया है और इस कारण इनकी उत्पत्ति में कई गुना वृद्धि हुई। कोला के केन्द्र में फ़ासफ़ेट के खाद्द्रव्यों की उत्पत्ति का नया तरीका ढूंढ़ निकाला गया है। कज़ान को छोड़कर विज्ञान परिषद् की सभी शाखाओं में पौधों के उपवन हैं। दो हज़ार से अधिक पौधे स्थानीय वातावरण में आजमाए जा रहे हैं; इनमें से आधे तो वातावरण के अनुकूल सिद्ध हुए हैं और इनमें से पक्की जातें भी निकाली गई हैं। पोलर प्रान्त में स्थित पौधों के उपवन मुरमान्स्क तथा उसके आसपास के गावों को हरी घास देते हैं। दूसरा और इतना ही मनोरंजक पौधों का उपवन सोवियट संघ के दूसरे अन्त पर स्थित है : गोर्मी

बटखाँ प्रान्त में। यह पामीर का उपवन है जो कि समुद्र की सतह से २,३०० मीटर ऊपर है।

विज्ञान परिषद की शाखाएँ भाषा और संस्कृति के क्षेत्र में उपयोगी काम करती हैं। प्रजातन्त्रों में ये संस्थाएँ शब्दकोष तैयार करती हैं; स्थानीय मुहावरों का अध्ययन करती हैं, ऊँची कक्षाओं के लिए पुस्तकें तैयार करती हैं और लोगों के साहित्य का अध्ययन करती हैं। विभिन्न स्थानों की संस्कृति का अध्ययन करने के लिए इन्होंने १९४६ में ६७ प्रतिनिधि मण्डल भेजे। केवल पिछले वर्ष के अन्तर्गत वैज्ञानिकों ने ६,२७५ भाषण दिए और रिपोर्टें पढ़ीं। परिषद की शाखाओं द्वारा एक वर्ष में ३५० वैज्ञानिक प्रकाशन (पुस्तकें, रिपोर्ट, लेख इत्यादि) हुए; प्रेस में छपने के लिए सब मिलाकर २,७०० वैज्ञानिक सामग्रियां भेजी गईं।

स्थानीय जनता से वैज्ञानिक तैयार करने में परिषद की शाखाओं ने बड़ा उपयोगी कार्य किया है। १९३४ में यूराल की विज्ञान परिषद में सेटोबस्की नामक व्यक्ति छोटे वैज्ञानिक कर्मचारी के रूप में भरती हुआ; पर ग्यारह वर्ष बाद "डाक्टर आफ सायंस" (विज्ञान का पण्डित) की डिग्री इसको प्राप्त हुई। इस समय वह यूराल की वैज्ञानिक परिषद की प्रेसिडियम का उपाध्यक्ष है; सोवियट संघ के प्रमुख धातु-विशेषज्ञों में उसकी गणना होती है। वलाटीमोर मिखाइलाव यूराल विज्ञान परिषद में १९३८ से काम कर रहा है। १९४२ में उसे स्तालिन पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस प्रकार के अनेकों उदाहरण दिए जा सकते हैं। विज्ञान परिषद की शाखाओं की विशेषता यह है कि उनमें ऐसे लोग वैज्ञानिक का काम कर रहे हैं जो अक्टूबर की क्रान्ति के पहले बिलकुल निरक्षर थे।

गणितीय संकेत

लेखकः ब्रज मोहन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

पारिभाषिक शब्दों के साथ साथ हमें पारिभाषिक सङ्केतों पर भी विचार करना होगा। कुछ लोगों का मत है कि हमें समस्त वैज्ञानिक सङ्केत ज्यों के त्यों अंग्रेजी से ले लेने चाहिए। इस प्रकार भिन्न २ देशों के वैज्ञानिकों में विचार विनिमय सरलता से हो सकेगा। यदि प्रत्येक देश के सङ्केत अलग अलग रहेंगे तो आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिक को रूसी गवेषणा-पत्रों के पढ़ने में कठिनाई होगी। इसका परिणाम एक दिन यह निकलेगा कि भिन्न २ देश के वैज्ञानिक एक दूसरे से दूर हटते चले जायंगे, और इस प्रकार कभी भी कोई अन्ताराष्ट्रीय वैज्ञानिक सङ्केत लिपि बन ही न पायेगी।

इस तर्क के समर्थक ऐसे प्रस्ताव को व्यावहारिक रूप देने में जो कठिनाइयाँ पड़ेंगी, उन पर ध्यान नहीं देते। यदि हमने अंग्रेजी के समस्त सङ्केतों को अपना लिया तो हमारे मुद्रणालयों को नागरी लिपि के अतिरिक्त ग्रीक लिपि के भी सारे वर्ण रखने पड़ेंगे। यूँ ही हिन्दी की छपाई में पर्याप्त कठिनाइयाँ हैं, एक कठिनाई और बढ़ जायगी। हिन्दी का मुद्रण इस समय भी महँगा है; इस प्रकार और महँगा हो जायगा। इस समय हिन्दी की छपाई के लिए चार केस चाहिए; तब कदाचित छः केसों की आवश्यकता पड़ेगी। दूसरे शब्दों में, हिन्दी की छपाई सरलतर होने के बदले कठिनतर हो जायगी।

एक बात और भी है। इस प्रकार के तर्क सुनने से ऐसा प्रतीत होता है कि देश में केवल वे ही युवक अध्ययन करते हैं जिन्हें अन्त में गवेषणा करनी होती है। हमें केवल गवेषकों का ह

हित ध्यान में नहीं रखना है जिनकी संख्या किसी भी देश में १% भी न होगी। हमें अधिक समय और शक्ति तो साधारण विद्यार्थियों की शिक्षा पर लगानी है जिनकी संख्या ९९% से भी अधिक होगी। जो विद्यार्थी स्कूलों में शिक्षा पाते हैं, उनमें से बहुत से हाई स्कूल के पश्चात् अध्ययन छोड़ देते हैं। जो विद्यार्थी कालिजों में शिक्षा ग्रहण करते हैं, उनमें से बहुत से बी० ए० के पश्चात् शिक्षा छोड़ देते हैं। जो विद्यार्थी एम० ए० पास करते हैं उनमें से भी थोड़े ही ऐसे निकलते हैं जो गवेषणा-कार्य में अपना जीवन लगाते हैं। इस अत्यल्प संख्या के कारण सारे देश पर एक विदेशी, दुर्बोध संकेत-लिपि लाद देना कहाँ की बुद्धिमानी होगी ?

आज एक विद्यार्थी पढ़ता है कि H_2O का अर्थ है 'पानी, क्योंकि H = Hydrogen और O = Oxygen; और पानी में दो भाग हाइड्रोजन के रहते हैं, १ भाग ऑक्सीजन के। परन्तु, आज से ५० वर्ष पश्चात् के स्कूल का, एक हिन्दुस्तानी छात्र कदाचित अंग्रेजी वर्णमाला से सर्वथा अनभिज्ञ होगा। वह 'H' और 'O' का क्या अर्थ लगायेगा ? आज वह जानता है कि 'H' अंग्रेजी वर्णमाला का एक वर्ण है जिसकी ध्वनि 'ह' की सी होती है। उस दिन का विद्यार्थी केवल इतना समझेगा कि 'H' एक विशेष प्रकार का चिन्ह है जिसमें दो लकीरें खड़ी रहती हैं और उनके बीच में एक लकीर पड़ी। न वह H और हाइड्रोजन का सम्बन्ध समझेगा, न H_2O और पानी का। वह केवल बिना समझे रट लिया करेगा कि H_2O एक चिन्ह विशेष है पानी के लिए। दूसरे शब्दों में, यह चिन्ह उसके मस्तिष्क पर एक अनावश्यक मृत भार हो जायगा।

इसके विरुद्ध, यदि हम हाइड्रोजन को 'उदजन' और आक्सीजन को 'जारक' कहें तो पानी के लिए संकेत होगा

$$उ_2 ज ।$$

इस संकेत को पढ़ते ही विद्यार्थी समझ लेगा कि 'उ' का अर्थ है 'उदजन' और 'ज' का अर्थ है 'जारक'। ऐसी स्थिति में यह संकेत विद्यार्थी के मस्तिष्क में एक जीवित पदार्थ की भाँति अंकित रहेगा।

एक बात अवश्य है। कुछ वैज्ञानिक संकेत ऐसे हैं जिन का सम्बन्ध किसी भाषा से या तो कभी था ही नहीं, या पहिले था तो अब रहा नहीं। ऐसे संकेत ज्यों "के त्यों" अपनाये जा सकते हैं। चार सरल अंकगणितीय क्रियाओं संकेत

$$+ \quad - \quad \times \quad \div$$

जैसे अंग्रेजी में हैं वैसे ही हिन्दी में। यद्यपि ये चिन्ह भी प्राचीन भारत में सर्वथा ऐसे ही नहीं थे। जो आज ऋण चिन्ह (–) कहलाता है, किसी समय यही धन चिन्ह था। ऋणात्मक संख्याओं को निरूपित करने के लिए संख्या के ऊपर एक बिन्दी लगाई जाती थी जैसी आजकल 'आवर्त दशमलव' का निरूपण करने के लिए लगाई जाती है।* परन्तु इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि ऊपर दिए हुए चारों चिन्ह आज देश भर में सर्वमान्य हो गए हैं। इसी प्रकार, समता '=' जैसा अंग्रेजी में है, वैसा ही हिन्दी में। भिन्न के निरूपण के लिये 'बटे का चिन्ह' अंग्रेजी और हिन्दी में एक सा ही है। मूल चिह्न $\surd$ में भी कोई अन्तर नहीं है। और भी बहुत से चिह्न ऐसे हैं जो अंग्रेजी और हिन्दी में एक से रहते हैं :

$$\because \quad \therefore \quad \equiv \quad \parallel \quad \not\perp \quad \angle \quad ⌢ \quad \angle \quad \surd \quad \triangle \quad \square \quad \odot \quad (\,) \quad \{ \, \} \quad [\,] \quad \rightarrow$$

अतएव मेरा प्रस्ताव है कि अंग्रेजी के जिन गणितीय चिह्नों का किसी भाषा से सम्बन्ध नहीं है। वे ज्यों के त्यों अपना लिए जाँय जैसे

*उदाहरणार्थ देखो—विभूति भूषण दत्त: दी बनारस मैथिमैटिकल-बुलेटिन कलकत्ता मैथिमैटिकल सोसायटी

$\int$ अनुकलन चिह्न* | | मापाक (मौडूलस) चिह्न

L क्रमगुणन चिह्न | | सारणिक (डिटर्मिनेण्ट) चिह्न

∞ अनन्ती चिह्न

$\propto$ अनुपातीयता चिह्न ‖ ‖ मैट्रिक्स का चिह्न (अ)

शेष सारे चिह्नों का यथा साध्य अनुवाद करना चाहिए। मैं अपने तत्सम्बन्धी प्रस्ताव यहाँ देता हूँ।

अंग्रेजी में एक रूढ़ि सी बन गई है कि बिन्दुओं के निरूपण के लिए बड़े अक्षर प्रयुक्त होते हैं और गुणकों और लम्बाइयों के लिए छोटे अक्षर। नागरी लिपि में बड़े और छोटे अक्षर तो होते नहीं, परन्तु एक एक अक्षर पर सोलह सोलह मात्रायें लगाई जा सकती हैं। अंग्रेजी की वर्णमाला में केवल २६ वर्ण है, ग्रीक वर्णमाला में २४। अतः दोनों लिपियों में मिलाकर ५० अक्षर होते हैं। इसकी तुलना में नागरी लिपि में ५२ अक्षर होते हैं और प्रत्येक अक्षर पर सोलह मात्रायें लगाई जा सकती हैं। अतएव, हमारे पास तो अक्षरों की बहुलता है। समस्त मात्राओं की तो कदाचित आवश्यकता ही न पड़ेगी। मेरा विचार है कि सम्प्रति हम प्रथम ६ मात्रायें चुन लें। इनमें से तीनों दीर्घ मात्राओं के निरूपण के लिए नियुक्त कर दें, तीनों ह्रस्व मात्राओं को गुणकों और लम्बाइयों के लिए:—

A, B, C... का, खा, गा,...... की, खी, गी,
कू, खू, गू,.......

a, b, c,......क, ख, ग,.......कि, खि, गि......
कु, खु, गु,......

P, Q, R.. ...पा, फा, बा,......पी, फी बी,......
पू, फू, बू,......

p, q, r, ...प, फ, ब,... पि, फि, बि,......
पु, फु, बु,......

हिन्दू गणित में परम्परा से अज्ञात राशियों x, y, z,-के लिए य, र, ल, का प्रयोग होता चला आया है। इस रूढ़ि को बदलने की कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती। अतएव तत्येव तत्सम्बन्धी राशियों के लिये संकेत इस प्रकार न होंगे :—

x, y, z,	य, र, ल
$x_1, x_2, x_3,$	$य_1, य_2, य_3,$
x′, y′, z′,	य, र, ल
$\dot{x}, \dot{y}, \dot{z},$	यं, रं, लं

अब यहाँ कुछ अन्य चिन्हों की सूची देता हूँ:—

α, β, γ... ज्ञातकोण	अ, आ, इ, ई, ...
θ, ϕ, γ... अज्ञात कोण	क्ष, त्र, ज्ञ,......
O (origin)	मू (मूलबिन्दु)
e (eccentricity)	उ (उत्केन्द्रता)
e (coefficient of restitution)	प्र (प्रत्यानयन गुणक)
e (exponential)	घ (घातांकीय)
E (exponential)	घा
$i \left(= \sqrt{-1} \right)$	ए ($= \sqrt{-१}$)
$\pi \left(= \dfrac{\text{Circumference}}{\text{Diameter}} \right)$	प्या ($= \dfrac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$)*
r (radius vector)	त्र (सदिश त्रिज्या)
s (radius of curvature)	त्रि (वक्रता त्रिज्या)
n (any number)	सं (कोई संख्या)
r (running term)	ध (धावी पद)*
Σ (Sigma = Sum)	योग
$\sum_{r=0}^{r=n}$	$\underset{ध=०}{\overset{धू=सं}{\text{योग}}}$
Lt (Limit)	सी (सीमा)

*इसमें सन्देह नहीं कि यह चिन्ह अंग्रेजी के 'S' का ही रूपान्तर मात्र है, परन्तु सम्प्रति यह जिस प्रकार लिखा जाता है, इसका 'S' से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रह गया है।

* डा० रघुवीर का संकेत।

Lt	सी
$n \to \infty$	सं
Determinant $\triangle$	सा (सारणिक)
$\triangle^0$	सा$_०$
$\triangle^1$	सा$_१$
Determinant $\triangle$	वि (विवेचक)
S (Sum)	यो (योग)
P (Product)	फ (गुणनफल)
Q (Quotient)	भा (भागफल)
R (Remainder)	शे (शेष)
^nP_r	स$^{क्र}_{घ}$
Sin (Sine)	ज्या
Cos (Cosine)	कोज्या (कोटिज्या)
tan (tangent)	स्प (स्पर्शज्या)
Cot (Cotangent)	कोस्प (कोटि स्पर्शज्या)
Sec (Secant)	व्युको (व्युत्कोज्या)
Cosec (Cosecant)	व्यु (व्युज्या)
Vers (Versed Sine)	उज्या (उत्क्रम ज्या)
Covers (Coversed Sine)	उको (उत्क्रम कोटिज्या)
$Sin^{-1} x$	ज्या$^{-१}$ य
Sinh (Hyperbolic Sine)	अज्या (अतिपरवलीय ज्या)
Cosh (Hyperbolic Cosine)	अकोज्या (" कोटिज्या)
t (time)	स (समय)
s (Distance)	द
v (velocity)	वे
u (inital velocity)	व (आदिवेग)
f (acceleration)	ग (गतिवृद्धि)
$v = u + ft$	वे = व + ग स
$S = ut + \frac{1}{2} ft^2$	द = व स + $\frac{१}{२}$ ग स^{२}
$v^2 = u^2 + 2fs$	वे^{२} = व^{२} + २ ग द
m (Gradient)	त (प्रवणता)
$y = mx + c$	र = त य + द

$\frac{x}{a} + \frac{y}{b} = 1$	$\frac{य}{क} + \frac{र}{ख} = १$
$\frac{\text{Sin A}}{a} = \frac{\text{Sin B}}{b} = \frac{\text{Sin C}}{c}$	$\frac{ज्या\ का}{क} = \frac{ज्या\ खा}{ख} = \frac{ज्या\ गा}{ग}$
$ax + by + c = 0$	कय + खर + ग = ०
$xX + Yy = 1$	य या + र रा = १
h, k	ट, ठ
p (perpendicular)	ल (लम्ब)
$x \cos\alpha + y \sin\alpha = p$	य कोज्या अ + र ज्या अ = ल
$lx + my + n = 0$	ट य + ठ र + ड = ०
$ax^2 + 2hxy + by^2 + 2gx + 2fy + c = 0$	कय^{२} + २ जय र + खर^{२} + २ छय २ चर + ग = ०
f (x) (function)	फ (य) (फलन)
F (x)	फा (य)
u (x)	फि (य)
v (x)	फु (य)
w (x)	फ (य)
f^1 (x)	फे (य)
$\mathring{f}$	फं
fx	फ$_{य}$
f^1 (x)	फ$^{-१}$ (य)
∂x	चय
δx	चाय
Dn	चिय
$\frac{dy}{dx}$	$\frac{चर}{चय}$
$\frac{\delta y}{\delta x}$	$\frac{चार}{चाय}$
$\frac{\delta y}{\delta x}$	$\frac{चिर}{चिय}$
Dn y	ची$_{य}$

$\int f(x)\, dx$	फ (य) चय
$\int_a^b f(x)\, dx$	$\int_{क}^{ख}$ फ (य) चय

पाठक यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार इतने चिन्हों का अनुवाद किया है, उसी प्रकार अन्य चिन्हों का अनुवाद भी हो सकता है। जो चिन्ह (अ) में दिए गए हैं, उनका भी अपनी लिपि में अनुवाद क्यों न कर लिया जा ? कारण यह है कि इन चिन्हों का किसी भाषा से सम्बन्ध नहीं है। अतएव आशा हो सकती हैं कि संसार की शेष भाषायें भी इन चिन्हों को ज्यों का त्यों अपना लेंगी। इस समय भी संसार की कई भाषायें ऐसी हैं जिन्होंने ऊपर दिए हुए प्राय: समस्त चिन्हों का अपनी भाषा में रूपान्तर किया है, परन्तु चिन्हों (अ) में से अधिकांश ज्यों के त्यों ले लिए हैं जैसे फ्रेंच और इटैलियन। यदि ऐसे समस्त चिन्ह संसार की सारी भाषायें अपना लें तो वैज्ञानिकों के विचार विनिमय में थोड़ी बहुत सुविधा अवश्य हो जायगी। इसी प्रकार यदि उपरि-लिखित सूची के समस्त चिन्ह भी संसार भर अपना लिए जायँ तो वैज्ञानिक जगत में और भी सुविधा हो जायगी। परन्तु इस बात की तनिक भी आशा नहीं कि कोई भी समृद्ध भाषा किसी अन्य भाषा के भाषा-सम्बन्धी चिन्ह अपना ले। इसमें केवल राष्ट्रीय गर्व का ही प्रश्न नहीं है। ऐसी दशा में जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है, विद्यार्थी के लिए चिन्ह और भाषा में कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। आज से ५० वर्ष पश्चात् का भारतीय विद्यार्थी कदाचित् रोमन लिपि से सर्वथा अनभिज्ञ रहेगा। यदि उसको बताया जायगा कि 'Na' चिन्ह 'Sodium' का द्योतक है तो उसकी समझ में यह कदापि नहीं आयेगा कि 'Na' किस प्रकार 'Sodium' का द्योतक हो गया। उसे केवल तोते की भाँति इस तथ्य को घोट लेना पड़ेगा। इसके विरुद्ध यदि उसे बताया जायगा कि 'क्ष' वर्ण 'क्षारातु' का द्योतक है तो इस तथ्य के समझने में उसे तनिक भी कठिनाई नहीं पड़ेगी क्योंकि 'क्षारातु' का प्रारम्भिक वर्ण 'क्ष' है। इसी प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण मैं यहाँ और देता हूँ :—

Potassium (K)	दहातु (द)
Iron (Fe)	अयस् (अ)
Silver (Ag)	रजत (र)
Tin (Sn)	त्रपु (त्र)
Antimony (Sb)	अंजन (अं)
Tungsten (W)	चण्डातु (च)
Gold (Au)	स्वर्ण (स्व)
Mercury (Hg)	पारद (प)
Lead (Pb)	सीस (सी)

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान परिषद का कार्य

भारत की वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसधान परिषद तथा इससे सम्बद्ध संस्थाओं ने १९४७ तक जो महत्वपूर्ण कार्य किया है उसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है :

इस परिषद् के अन्तर्गत ये तीन संगठन हैं जो इसके कार्य में सहायता पहुँचाते हैं :—

(१) वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान बोर्ड, (२) अणुशक्ति अनुसन्धान बोर्ड और (३) औद्योगिक सम्पर्क समिति।

अनुसन्धान परिषद् का प्रबन्ध एक प्रबन्ध

समिति के हाथ है जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू तथा उपाध्यक्ष उद्योग और रसद मंत्री डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी हैं।

भौतिक और रासायनिक अनुसन्धान

परिषद् की भौतिक प्रयोगशालाओं में जो अनुसन्धान किये गये उनमें से कुछ ये हैं : प्रोड्यूसर गैस प्लांट, मशीनी तेल का उत्पादन, सूखे तेल का उत्पादन, परतदार गत्ता, सींगों के बचे-खुचे टुकड़ों तथा काफी के बीजों से प्लास्टिक का निर्माण, गैस अवरोधक कपड़े का उत्पादन, कार्बन की वस्तुओं का निर्माण आदि।

रासायनिक प्रयोगशाला में वनस्पति क्षार, वनस्पति जन्य रंग, तथा पौधों की छाल, जड़, फूल आदि के सम्बन्ध में व्यापक अनुसन्धान किये गये। नीम से कई उपयोगी वस्तुएं तैयार करने के ढंग निकाल लिये गये हैं। नीम क्षार को व्यापारिक आधार पर तैयार करने का पट्टा कर दिया गया है। भिलावा फल के अन्दर जो तरल पदार्थ निकलता है उससे एक बढ़िया किस्म का रोगन तैयार किया गया है।

अनुसन्धान समितियों की देख-रेख में विभिन्न अनुसन्धान केन्द्रों में भी कितने ही उपयोगी अनुसन्धान किये गये। फ़ासफेट युक्त खाद तैयार करने के कार्य में पर्याप्त प्रगति हो चुकी है। पेनिसलीन औषधि तैयार करने के लिए वनस्पति दूध के सम्बन्ध में छानबीन की गयी है।

बंगलौर की विज्ञानशाला में यह भी प्रयत्न किया गया कि देश में जो बचाखुचा औद्योगिक सामान बेकार जाता है उसका उपयोग कैसे किया जाय। एंटरोवायोफोस, एट्रोपीन, एमेटीन जसी औषधियाँ तैयार करने के उद्देश्य से कलकत्ता में अनुसन्धान कार्य किया गया। यह पता लगाने का भी प्रयत्न किया गया कि भारतीय खनिज पदार्थों में रेडियम कितनी मात्रा में पाया जाता है।

बम्बई के विश्वविद्यालय में रंग-रसायन का एक स्कूल स्थापित किया है। जहाँ वनस्पति रंग, रासायनिक रंग और नकली रंग के सम्बन्ध में अनुसन्धान किये जा रहे हैं। मद्रास में गिल्टियों से कई औषधियाँ तैयार करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

प्रयुक्त और आधारभूत अनुसन्धान के विषय में विभिन्न अनुसन्धान समितियों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। शुद्ध नमक का निर्माण, खली से प्लास्टिक का उत्पादन, लकड़ी में राल का समावेश, सस्ते रेडियो सेटों का निर्माण, चीनी मिट्टी के बरतनों के लिए रंगों का उत्पादन आदि, के विषय में उपयोगी अनुसन्धान किये गये हैं। कोयले को धोने तथा शीशे की रेत को साफ करने के विषय में की गयी छानबीन के परिणाम प्रकाशित हो चुके हैं।

अनुसन्धान का उपयोग

अब तक अनुसन्धान परिषद् ने अपने ४३ अनुसन्धानों को पेटेण्ट पर दिया है। इससे परिषद् को रायल्टी के तौर पर १ लाख ६८ हजार रुपये का लाभ हुआ है। इसके अतिरिक्त परिषद् द्वारा निकाले गये उत्पादन के कई नये ढंगों का रसद उन्नति समिति, अमरीकी हवाई सेना, भारतीय वायुसेना तथा रक्षा विभाग ने बहुत लाभ उठाया है। उदाहरण के तौर पर, वनस्पतिक तेलों से एक नये ढंग द्वारा ईंधन तथा मशीनी तेलों का काम लिया गया है।

युद्धकाल में इस ढंग से ५ करोड़ रुपये का तेल तैयार किया गया। इसी प्रकार परिषद् के अनुसन्धानों के फलस्वरूप १ करोड़ रुपये का गैस विरोधक कपड़ा तैयार किया गया, १ करोड़ रुपये के मूल्य के मशीनी तेल तैयार हुए और आग बुझाने का एक नया घोल तैयार किया गया। अनुसन्धानों ने सरकार को अधिक टैक्स दिलवा कर, लोगों को रोजगार दिलवाकर तथा वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध करा कर देश का बहुत कल्याण किया है।

अब तक परिषद् के अनुसन्धान कार्य पर लगभग ६५ लाख ६ हजार रुपया खर्च किया जा चुका है।

इस परिषद् की सिफारिश पर भारत सरकार अब तक वैज्ञानिक अध्ययन के लिए ५०० भारतीय

छात्र, ब्रिटेन और अमरीका भज चुकी है। अनुसन्धान परिषद् ने अपने अनुसन्धानों के फलस्वरूप १०४ वस्तुएँ भारत में २ वस्तुएँ अमरीका में तथा ५ ब्रिटेन में पेटेंट करायी हैं।

अनुसन्धान परिषद् की ओर से औद्योगिक तथा टेक्निकल जानकारी बताने का भी प्रबन्ध है। अब पूछ-ताछ की संख्या एक वर्ष में ६५० तक पहुंच गयी है। परिषद् की ओर से एक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती है जिसमें नये-नये अनुसन्धानों के सम्बन्ध में सारगर्भित लेख प्रकाशित होते हैं।

टेलीफ़ोन आविष्कारक

लेखक—विद्रुम मरे

इस विस्तीर्ण संसार को अनेक व्यक्तियों ने संकुचित बनाने का प्रयत्न किया लेकिन उनमें सबसे अधिक श्रेय टेलीफोन आविष्कारक, स्काटलैंड के श्री० ए० जी० बेल को प्राप्त है—आप वाक्शक्ति विशेषज्ञ थे। गत वर्ष उनका शतवर्षीय जन्म दिवस मनाया गया था।

एडिनबरो महाविद्यालय, श्री बेल के पुराने सम्बन्धों को चिरस्मरणीय रखने के लिये एक योजना बना रहा है, जिसमें ऐबर्डीन के मारक्विस और लार्ड ट्वीडसम्योर बहुत रुचि रखते हैं। 'रायल सोसायटी' और इन्सटिट्यूशन ऑफ ऐलेकट्रिकल इंजीनियर्स के अतिरिक्त और भी बहुत सी विदेशी संस्थायें इसमें दिलचस्पी रखती है।

श्री ग्राहम बेल का जन्म ३ मार्च १८४७ में ऐडिनबरो स्थान पर हुआ था। उन्होंने एडिनबरो और लन्दन महाविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की। लेकिन स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण वह अपने पिता के साथ १८७० में कनाडा चले गये।

दो वर्ष पश्चात् केवल २५ वर्ष की आयु के इस प्रतिभाशाली व्यक्ति ने बोस्टन (अमरीका) में बहरों के अध्यापकों को शिक्षा देने के लिये एक विद्यालय खोला जिसमें वाणी की यंत्रविद्या भी सिखलाई गई।

हम ग्राहम बेल को शिक्षक की अपेक्षा आविष्कारक के रूप में अधिक स्मरण करते हैं। विभिन्न प्रकार की वाणी के प्रति उनकी रुचि ने उन्हें बिजली द्वारा ध्वनि फेंकने वाले एक यंत्र के तैयार करने का अवसर प्रदान किया, और यह आविष्कार अनेक सुधारों और रूपान्तरों के पश्चात् एक आधुनिक टेलीफोन के रूप में सामने आया है।

श्री बेल ने प्रकाश किरण में से उत्पन्न होने वाली तरङ्गों द्वारा ध्वनि फेंकने वाली कल और संकेतिक चिह्नकला सम्बन्धी यंत्र का भी आविष्कार किया था, और वह वायुयान में भी रुचि रखते थे। इनकी मृत्यु १६२२ में हुई, जब वह ७५ वर्ष के थे।

क्षमा-याचना

विज्ञान के प्रकाशन में जो असाधारण विलम्ब हो रहा है उसके लिए विज्ञान परिषद् के पदाधिकारी पाठकों तथा ग्राहकों से क्षमा चाहते हैं। हमारी कठिनाई केवल प्रेस की रही है। इधर चार पाँच महीनों से प्रयाग के लगभग समस्त प्रेस सरकारी काम में व्यस्त है। इस काम में उन्हें अधिक पैसा मिलता है और फलस्वरूप वह हमारी पत्रिका को छापने के काम में हाथ नहीं लगाना चाहते क्योंकि आर्थिक परिस्थितियों के कारण हम उन्हें मुँह माँगी छपाई देने में असमर्थ हैं। आशा है विज्ञान प्रेमी हमारी कठिनाई समझ कर हमें क्षमा करेंगे। हम अपनी ओर से प्रयास तो कर रहे हैं कि अगले मास तक विज्ञान यथा समय निकलने लगे, परन्तु यदि हमारा प्रत्येक ग्राहक एक और ग्राहक बना कर हमारी सहायता कर सके, तो निश्चय ही हम विज्ञान को समय ही पर नहीं, वरन् आज से कहीं अधिक उन्नत भी कर सकेंगे। जिन सज्जनों ने हमें जनवरी से ग्राहक बनाने को लिखा है, उन्हें हम इसी अंक से ग्राहक बनाकर यह अंक भेज रहे हैं, आशा है वे इसे स्वीकार कर हमारी सहायता करेंगे।

हीरालाल दुबे
प्रधान मंत्री

विज्ञान-परिषद् की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकों की सम्पूर्ण सूची

१—**विज्ञान प्रवेशिका, भाग १**—विज्ञान की प्रारम्भिक बातें सीखने का सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ;

२—**चुम्बक**—हाईस्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० सजि०; ॥=)

३—**मनोरञ्जक रसायन**—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १॥),

४—**सूर्य-सिद्धान्त**—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें, मूल्य ६) ! इस भाष्यपर लेखक को हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—**वैज्ञानिक परिमाण**—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०, ॥),

६—**समीकरण मीमांसा**—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १॥) द्वितीय भाग ॥=).

७—**निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)**—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० ए० एस-सी० ; ॥),

८—**बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित**—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १),

९—**गुरुदेवके साथ यात्रा**—डाक्टर जे० सी० बोसीकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।≈),

१०—**केदार-बद्री यात्रा**—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

११—**वर्षा और वनस्पति**—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।),

१२—**मनुष्य का आहार**—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१३—**सुवर्णकारी**—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पंचौली; ।),

१४—**रसायन इतिहास**—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।॥),

१५—**विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक**—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१६—**फल-संरक्षण**—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ, २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०; २),

१७—**व्यङ्ग-चित्रण**—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १॥)

१८—**मिट्टीके बरतन**—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; १॥),

१९—**वायुमंडल**—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र, सजिल्द; १॥),

२०—**लकड़ी पर पॉलिश**—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इसके कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख

प्रसाद औ... रतन भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ ... जिल्द; ३॥),

२१—उपयोगी तरकीबें और हुनर सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, आकार बड़ा विज्ञानके बराबर २६० पृष्ठ, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २॥),

२२—कलम-पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥),

२३—जिल्दसाजी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द १॥।),

२४—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२५—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२६—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६),

२८—वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्त-प्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२९—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—विज्ञान हस्तामलक—ले० स्व० रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगका यह निराला ग्रंथ है। इसमें सरल सादी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रोंसे सुसज्जित है, आजतकको अद्भुत बातोंका मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयोंमें भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेला यह एक पुस्तक विज्ञानकी एक समूची लैब्रेरी है, एक ही ग्रंथमें विज्ञानका एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२—सौर-परिवार—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२) इस पुस्तक पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक मिला है।

३—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियाँ ले० श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र ३८०पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।।) अजिल्द ३)

४—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फिटरों इंजन-ड्राइवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्जामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक—मगनकृष्ण दीक्षित, दीक्षित प्रेस, इलाहाबाद। प्रकाशक—विज्ञान-परिषद्, बेली रोड इलाहाबाद,